सेठ भोलाराम सेकसरिया-स्मारक ग्रन्थमाला—९

हिंदी के कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य में संगीत

लेखिका
उषा गुप्ता, एम० ए०, पी-एच० डी०
हिंदी विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय



प्रकाशक
लखनऊ विश्वविद्यालय

प्रथमावृत्ति ११००] [विक्रमाब्द २०१६

प्रथम संस्करण ११००

मूल्य —पन्द्रह रुपये

मुद्रक—
नव-ज्योति प्रेस,
पानदरीवा, चारवाग, ल

अम्मी

और

पापा की

कृतज्ञता प्रकाश

श्रीमान् सेठ शुभकरन जी सेकसरिया ने लखनऊ विश्वविद्यालय की रजत जयंती के अवसर पर विसवां शुगर फैक्टरी की ओर से बीस सहस्र रुपये का दान देकर हिंदीविभाग की सहायता की है। सेठ जी का यह दान उनके विशेष हिंदी अनुराग का द्योतक है। इस धन का उपयोग हिंदी में उच्च कोटि के मौलिक एवं गवेषणात्मक ग्रंथों के प्रकाशन के लिये किया जा रहा है, जो श्री सेठ शुभकरन सेकसरिया जी के पिता के नाम पर 'सेठ भोलानाथ सेकसरिया स्मारक ग्रंथमाला' में संग्रथित होंगे। हमें आशा है कि यह ग्रंथमाला हिंदी साहित्य के भंडार को समृद्ध करके ज्ञानवृद्धि में सहायक होगी। श्री सेठ शुभकरन जी की इस अनुकरणीय उदारता के लिये हम अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

दीनदयालु गुप्त
प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, हिंदी तथा आधुनिक
भारतीय भाषा-विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय

विषयानुक्रमणिका

प्रथम अध्याय

(प्रवेश १–४६)

दूसरा अध्याय

(संगीत और साहित्य ५०–१००)

तृतीय अध्याय

(कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में संगीत प्रेरणा के उपादान १०१-११५)

चतुर्थ अध्याय

(कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में संगीत संबंधी उल्लेख ११६-१७१)

पंचम अध्याय

(कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में प्रयुक्त राग-रागिनियां १७२-२१६)

षष्ठ अध्याय

(कृष्णभक्तिकालीन साहित्य की समीक्षा सगीत सिद्धांतों के निकष पर २१७-२८६)

सप्तम अध्याय

(कृष्णभक्तिकालीन सगीत की भाषागत विशेषतायें २८७-३२८)

अष्टम अध्याय

(लय, ताल और गायन प्रणाली के आधार पर कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में प्रयुक्त पदों की समीक्षा ३२९-३६४)

परिशिष्ट

उपोद्घात

संगीत में चंचल मन को मुग्ध करने की अमोघ शक्ति है, इस तथ्य को सभी मानते हैं। इसी मोहिनी शक्ति के कारण भक्तों ने भी चित्तवृत्ति के लिए अन्य साधनों के साथ संगीत को भी साधन रूप में अपनाया है। यों साधारण जीवन में भी संगीत की महत्ता और लोक प्रियता सर्व विदित है। मनुष्य तो क्या पशु जगत भी संगीत की स्वर-लहरी के वशीभूत हो जाता है। संगीत की रमणीयता के कारण ही बहु विषयक साहित्य में कवियों ने इसका समावेश किया है। वाक्य की रसात्मकता भाव पर तो निर्भर रहती ही है परन्तु वाक्य की लय और उसकी संगीतमयी भाषा भी उस रसात्मकता को द्विगुणित कर देती है। हिन्दी साहित्य के निर्गुण-सगुण सन्तों, धर्म-प्रचारकों तथा लौकिक कवियों ने अपने भाव और विचारों को संगीतमयी वाणी में व्यक्त किया है। हिन्दी साहित्य के मध्यकालीन कृष्ण-भक्तों के काव्य में प्रेम और सौन्दर्य के साथ संगीत का सुखद समन्वय हुआ है। कृष्ण-भक्तों ने अपनी विनय, अपनी अकिंचनता, अपनी सांसारिक प्रतारणाओं की वेदना, अपने आराध्य-कृष्ण का माहात्म्य, अपनी शरणागति की भावनायें तथा उनके चरित्र, संगीत की सरसता के सहारे व्यक्त किये हैं। उनके काव्य में संगीत-तत्व का विशिष्ट समावेश है। उन्होंने लोक और शास्त्रीय दोनों प्रकार के संगीत का अध्ययन किया था और दोनों प्रकार के संगीत को उन्होंने अपनी भावना की अभिव्यंजना का माध्यम बनाया था। गीत गोविन्द के रचयिता जयदेव, विद्यापति, अष्टछाप के सूरदास, परमानन्ददास, कुंभनदास, नन्ददास, गोविन्दस्वामी, स्वामी हरिदास, श्री हितहरिवंश, मीरा आदि भक्त-जन उच्च कोटि के शास्त्रीय गायक थे। अष्टछाप की तो कीर्तन-सेवा उनकी दिनचर्या का एक अंग ही थी।

कृष्ण की मोहिनी मुरली के स्वर के साथ कृष्णभक्तों का मधुर स्वर भी मुखरित है। वैष्णवों के वार्ता-साहित्य से विदित है कि अकबर जैसे विविध कला प्रेमी और कला-श्रयदाता इन भक्तों के पदगायन सुनने के इच्छुक रहते थे। अकबर के दरबार के प्रमुख गायक तानसेन ने हरिदास स्वामी तथा गोविन्दस्वामी से गान विद्या सीखी थी। यों तो हिन्दी का अधिकांश काव्य वृत्तों में बद्ध होने के कारण संगीतमय है परन्तु कृष्णभक्ति का साहित्य सरसता और मनमोहकता का एक अनुपम भंडार है।

बहुत समय से मैं चाहता था कि हिन्दी कवियों के लोक और शास्त्रीय संगीत तत्व का भी अध्ययन हो। इसी भाव से प्रेरित होकर मैंने सन् १९५२–५३ में कुमारी (अब श्रीमती) उषा गुप्ता को उनकी संगीत-प्रियता और संगीत की विशिष्ट रुचि के कारण, एम० ए० द्वितीय वर्ष के निबन्ध का विषय संगीत से सम्बन्धित दिया। यह निबन्ध इन्होंने योग्यता और अनुशीलन के साथ लिखा। फिर १९५३ में मैंने इन्हें "हिंदी के कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य मे संगीत" विषय पी-एच० डी० हेतु दिया और हमारे विभाग के अनुभवी अध्यापक डा० विपिन विहारी त्रिवेदी इस कार्य के निर्देशक नियुक्त हुए। यह कहते हुए मुझे बड़ा हर्ष है कि डा० त्रिवेदी के सुयोग्य निर्देशन मे श्रीमती गुप्ता को इस विश्वविद्यालय ने सन् १९५५ ई० में पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की।

विदुषी लेखिका ने अपनी इस अनुसंधान कृति को आठ भागों मे विभाजित किया है। इसके आरम्भ में कृष्णभक्ति और उसके सम्प्रदायों पर प्रकाश डालते हुए कृष्ण-भक्तो की संगीत-प्रेरणा और उनके संगीत-ज्ञान का विवरण दिया गया है। इनके पदो मे लोक और शास्त्रीय संगीत-तत्वो को बताते हुए, इनकी संगीतमयी भाषा का विश्लेषण भी किया गया है। इन भक्तो के साहित्य को श्रीमती डा० गुप्ता ने ताल, स्वर और विविध गायन-पद्धति की कसौटी पर भी परखा है। राग-रागिनियो की पुरातन स्वरूप-धारणा और चित्रों के आधार से भी अपनी विवेचना को लेखिका ने सारगर्भित बनाया है। छपे ग्रन्थो के अतिरिक्त हस्तलिखित अप्रकाशित सामग्री की सहायता से भी यह अध्ययन मौलिक और महत्वपूर्ण हो गया है। मैं इस कृति के लिए श्रीमती डा० गुप्ता और उनके निर्देशक डा० त्रिवेदी दोनो को बधाई देता हूँ। श्रीमती गुप्ता अपने विषय को डी० लिट० उपाधि के लिये भी बढ़ा रही है और मुझे आशा है कि वे अपने इस संकल्प मे भी सफल होंगी। वे प्रशंसा और शुभ कामना की पात्री है। लखनऊ विश्वविद्यालय से इस ग्रन्थ को प्रकाशित करते हुए मुझे बड़ा हर्ष है।

दीनदयालु गुप्त

डा० दीनदयालु गुप्त,
एम०ए०, एल०एल०बी०, डी० लिट्०,
प्रोफ़ेसर तथा अध्यक्ष,
हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय-भाषा-विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

प्रस्तावना

राग और विराग, अमर्ष और प्रसन्नता, हास्य और रुदन, उत्साह और निराशा, साहस और भय के सम-विषम क्षणों में व्यक्ति के आंदोलित मन से अनायास जो स्वसंवेद्य निरपेक्ष उद्गार स्वरित हुए उनको उसने क्रमशः परिशीलन कर, अन्य अनुकूल स्वरों से अनुस्यूत कर तथा उत्तरोत्तर विचार और परीक्षण साधना द्वारा परसंवेद्य बना सकने में गायन के माध्यम से सफलता प्राप्त की। मुख से स्वर निसृत होने के साथ ही उसने क्षण विशेषों में यह भी लक्ष्य किया होगा कि उसके हाथ, पैर, कटि आदि एक विशेष ढंग से थिरकते हैं तथा कपोल, चक्षु, भृकुटि आदि भी विशेष रूप से गति लेने लगते हैं जिनका परिज्ञान और अध्ययन नृत्य की मुद्राओं द्वारा गायन को सहायता प्रदान करने के लिये नियोजित हुआ होगा। गायन और नृत्य को सुव्यवस्थित रूप प्रदान हेतु कालांतर में वाद्य यन्त्रों का अवलंब गवेषित हुआ होगा। किस प्रकार गायन, नृत्य तथा वादन कलायें विकसित होकर संगीत नाम धारण कर एक सक्षम कला में परिणत हुए यह एक स्वतंत्र और विस्तृत विवेचन का प्रसंग है परन्तु इतना निर्विवाद है कि संगीत एक शास्त्रीय कला बन कर मानव को लगभग प्रत्येक क्षेत्र में सहारा देने के लिये अवतरित हुआ।

जिस प्रकार हास्य और विनोद किसी मानव समुदाय या वर्ग के सांस्कृतिक स्तर के अनुरूप होते हैं उसी प्रकार किसी जाति अथवा देश का संगीत सुनकर हम उसकी सांस्कृतिक समृद्धि का पता पा सकते हैं। प्रत्येक जाति, वर्ग और देश के संगीत जलवायु और वातावरण से प्रभावित होने के कारण अपनी-अपनी विशेषता रखते हैं। वैसे इस समय पाश्चात्य और पूर्वी ये ही दो संगीत की प्रसिद्ध प्रणालियाँ हैं जिनका साधारण अभिज्ञान स्वरों की विषमता (disharmony) तथा समता (harmony) के विधान द्वारा सहज ही किया जा सकता है।

मानव की आदि दुर्बलता है अवलम्ब और प्रेरणा के स्रोत की चिरंतन खोज जिससे उसे सतत अग्रसर होने की शक्ति प्राप्त होती रहे। और प्रेम ने उसकी अभिलाषा की पूर्ति की है। यदि प्रेम लौकिक हुआ तो मानव ने लोक में अलौकिक कार्य कर दिखाये और यदि वह ईश्वरोन्मुख हुआ तो अध्यात्म क्षेत्र का दिव्य रूप वह दूसरों के लिये भी सुलभ कर सका। अनुसंधान कर्ता यदि खोज करें तो उन्हें अखिल विश्व के साहित्य और संगीत में प्रेम के इन्हीं उभय पक्षों की कृतियाँ अन्य भावों तथा संवेदनाओं की अपेक्षा अधिक मिलेंगी। लौकिक प्रेम से अलौकिक प्रेम में अपेक्षाकृत अधिक आस्था, स्थायित्व और शांति पाई जाती है क्योंकि वहाँ परपक्ष की शाश्वत-असीम अजेयता के कारण मनोनुकूल स्वकल्पित आशा ही आशा और नितांत सहानुभूति रहती है इसी से बहुधा निराशा तथा उत्पीड़न के क्षणों में स्थूल के प्रति प्रेम परिवर्तित होकर सूक्ष्म अदृश्य सत्ता के प्रति भी हो जाता है। परमात्मा के प्रति प्रीति और प्रतीति चाहे किसी प्रलोभन वश हो या किसी आकुलता वश अथवा भर दी गई निष्ठा के कारण, वह इतनी प्रबल होती है कि सब ओर से निराश और विदग्ध मानव अंतत उसी में

आकर त्राण पाता है। यही कारण है धार्मिक साहित्य की विपुलता का। और इस आध्यात्मिक रचना को जहाँ और जब संगीत का बल मिला है वह अत्यंत मर्मस्पर्शिनी हो गई है।

प्राकृत-अपभ्रंश युग में शैल्यूष और मागधों द्वारा साधारण जन-मन को रिझाने के लिये रचित डफली पर गाये जाने वाले गेय मात्रिक छंदों ने काव्य-कृतियों हेतु नवीन द्वार उन्मुक्त कर दिये थे। हिंदी साहित्य ने अपने उत्तराधिकार में यह ऐसी पैतृक सम्पत्ति प्राप्त की जिसका वह आजतक सदुपयोग करता चला आ रहा है। अपने युगारंभ में ही हिंदी की रचनाओं में मात्रिक वृत्तों को अपनाने के कारण गेय गुण की सम्पन्नता रही है। जहाँ तक धार्मिक साहित्य का संबंध है हिंदी का संतकाव्य जिसमें निर्गुणोपासक कबीर प्रभृति चिन्तकों के सरस स्वाभाविक पद, जायसी आदि सूफी संतों की गेय दोहा-चौपाई पद्धति पर प्रणीत प्रबंध काव्य तथा सगुणोपासक कृष्णभक्तों के सख्य भाव के अनन्य एकांतिक प्रणय के पद और राम भक्त तुलसी के दास्य भाव के विनय और दैन्य गर्भित पद एवं उनका गेय मानस— संगीत के दृष्टिकोण से दैवी वरदान है।

कृष्ण का चरित्र आदि से ही भारत में परम आकर्षण का केन्द्र बिंदु रहा है। श्रीमद्भागवत्, गीतगोविंद, विद्यापति पदावली आदि के माध्यम से उसने वह रूप प्रस्फुटित किया कि उससे मधुर भक्ति के अंकुर फूटे। हिंदी के कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में सूर और मीरा प्रभृति भक्तों की कृतियाँ उत्कृष्ट कोटि के संगीत की रचनायें है। ये अनन्य भक्त काव्य-गुणों से तो पूर्ण थे ही संगीत-शास्त्र में भी पारंगत थे। संगीत और काव्य की मर्मज्ञता तथा सच्चे भक्त की तन्मयता और वीतराग भावना लक्ष्यकर ही सूरदास, कुंभनदास, नंददास आदि भक्तों को आचार्यों ने अपना शिष्य बनाया था। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि कृष्ण-भक्ति के प्रचार में इन भक्त कवियों के संगीत ने जादू का काम किया।

गायन में स्वर और ताल साधना प्रधान होती है और काव्य में शब्द-साधना के साथ वर्ण एवं मात्रा गणना। गायक शब्द का मुखापेक्षी नहीं होता और यही कारण है कि बहुधा हम शास्त्रीय गायकी में शब्दों की ऐसी तोड़-मरोड़ पाते है कि वास्तविक पद के अर्थ का ही पता नहीं लग पाता। परन्तु गायन की इस विशेषता से परिचित संगीतज्ञ-कवियों के पद गायक के स्वरों में बँधकर ठीक उतरते है। कृष्णभक्तिकालीन काव्य को ऐसे अनेक संगीतज्ञ कवियों का योग मिला जिससे अभिभूत हो उनकी कृतियों का आकलन करने के लिए, डॉ० उषा गुप्ता ने उनके अध्ययन को अपने निबंध का विषय बनाया और भातखंडे संगीत-विश्वविद्यालय में प्राप्त संगीत-शिक्षा उनकी सहायिका बनी।

'निज कवित्त केहि लाग न नीका' को आधारित कर मैं अपनी प्रिय शिष्या के प्रस्तुत निरभ्यवेक्षण के विषय में कुछ न कहना ही समुचित समझता हूँ। 'संतनि जीहा जासु' सहृदय समालोचक विद्वत् वर्ग के विचारार्थ कृति प्रस्तुत है, वे ही इसका निर्णय करें।

सहायक प्रोफेसर
लखनऊ विश्वविद्यालय
१ जनवरी १९६०

विपिनविहारी त्रिवेदी

भूमिका

पुरुष-नारी-सौन्दर्य, ईश्वरोपासना, जनकल ध्वनियाँ, पक्षियो के कलरव गान आदि सगीत के प्रेरक तत्व कहे जाते है। सगीत को विश्व के पदार्थों में अभिनवीकरण का श्रेय मिला है। चिरकाल में इसने मानव-मस्तिष्क में नवीन् रग भरकर भावनाओ की मधुरिमा की सृष्टि की तथा निराशा के प्रागण में आशा और आनद के उत्स पैदा कर दिये और कालान्तर में यह विश्व का नैतिक विधान बनकर लोक को दिव्य सौन्दर्य प्रदान करने वाला हुआ। शान्ति और आनद की खोज ने भी सगीत को मानव के लिये सुलभ किया। निराशा, अवसाद और दु ख के क्षणो में अवलम्ब हेतु तथा आशा के प्रतिफलित और आकाक्षा की पूर्ति पर स्वाभाविक आह्लाद उदग्र निर्झर हो क्रमश विकसित होकर सपुष्ट सगीत में परिवर्तित हुए जिसने आत्मिक सौन्दर्य का उद्घाटन कर परानद की राशि से साक्षात् करने का समर्थ सम्बल दिया।

" 'सगीत' और 'काव्य' कलात्मक और रसात्मक होते हुए भी मूलत एक दूसरे मे भिन्न है। सगीत में रस की अवतारणा जहा ध्वनि के 'ताल' और 'स्वर' के कलात्मक आरोह और अवरोह के माध्यम से उपस्थित कर दी जाती है वही काव्य में रस की निष्पत्ति शब्द शक्ति के छदबद्ध कलात्मक सयम मे सिद्ध होती है।" यह सत्य है कि साहित्य और सगीत पृथक्-पृथक् भी सच्चे आनद को प्रदान करने वाले ह। बिना सगीत के काव्य तथा बिना काव्य के उत्कृष्ट कोटि के सगीत का सृजन हो सकता है किंतु ऐसी अवस्था में एक के बिना दूसरा अपूर्ण ज्ञात होता है। साहित्य तथा सगीत कला अपना स्वतत्र अस्तित्व रखते हुए भी अनेक अशो में अन्योन्याश्रित है अत दोनो का सुन्दर समन्वय सोने में सुगध उत्पन्न कर देता है। जहाँ साहित्य और सगीत दोनो मिलकर स्वर्गीय आनद प्रदान करते है वहाँ की छटा अनुपम हो जाती है।

श्रेष्ठ काव्य में सगीत का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यो तो कवि बडा समर्थ कलाकार होता है। वह श्रोता अथवा पाठक को अपनी कल्पना के थिरकते पखो पर बैठा कर स्वर्णिम लोक में विचरण करवाता है। अन्य कलायें अपने उपकरणो के कारण बद्ध है

किंतु कवि के लिए भी एक बंधन है। उसके शब्दों का प्रभाव उन व्यक्तियों तक ही सीमित होता है जो उसकी भाषा से परिचित तथा अभ्यस्त हों। संगीत इस परिधि से भी उन्मुक्त है। संगीत तो विश्वव्यापी कला है। उच्चतम संगीत का प्रभाव देश, काल और व्यक्ति मात्र तक ही सीमित नहीं रहता। स्वरों की भाषा सार्वभौमिक है। सुन्दर स्वरों में आवद्ध संगीत के राग किसी भाषा विशेष के गान न होकर सृष्टि के अमर संकेत होते हैं जो नादमाधुर्य के सहारे जड़ तथा चेतन दोनों को आत्मविभोर और लीन कर देने की अपूर्व क्षमता रखते हैं। दुःख और वियोग पड़ने पर जब मानव के अन्तराल की पीड़ा अश्रु-सरोवर के रूप में उमग उठी तब आनंद और संयोग के क्षणों में उसके अन्तःकरण का सुख-स्रोत हास्य-निर्झर रूप में विवृत हुआ। इन्हीं दोनों परिस्थितियों में कोकिला, पपीहे, मयूर, तीतर, मैना प्रभृति पक्षियों के सुने हुए एवं अनुकरण किये हुए स्वरों की स्मृति गति और ताल में बँधकर कभी विहाग के रूप में प्रकट हुई और कभी जयजयवंती रूप में स्फुरित। इसी प्रकार रागों की साधना ने कालांतर में मेघराग द्वारा विदग्ध वसुधा को जल-प्लावित किया, दीपक और मालकोश द्वारा ऊष्मा पैदा करके दीप ही नहीं जलाये वरन् पत्थरों तक को पिघला कर अशिव का संहार करके शिव की रक्षा कर विश्व को शंकरत्व दिया एवं तोड़ी द्वारा हरिण सदृश जड़ पशुओं को भी किंकर्त्तव्यविमूढ़ करके अपनी ओर प्रबल आकर्षण के जाल से खींच लिया। साहित्य में काव्य ने जब संगीत से परिणय किया तो वह अनजाने ही जगमगा उठा तथा उसमें विवेचित भाव एक अज्ञात परन्तु समर्थ शक्ति से समन्वित होकर श्रोता पर अनुकूल प्रभाव डालने में क्षम हुए। इसीसे अपने काव्य को सार्वभौमता और माधुर्य गुणों से अलंकृत करने के लिए कवि ने संगीत का आश्रय ग्रहण किया। अनुभूति की तन्मयता में कलाओं का स्वरूप विभिन्न नहीं रहता। कवि संगीतज्ञ बन जाता है। प्रत्येक शब्द में ध्वनि गूँजने लगती है अक्षर-अक्षर गुनगुनाने लगते हैं। यही कला का सुन्दरतम स्वरूप है जहाँ सौंदर्य अपने श्रेष्ठतम् रूप में प्रस्फुटित होता है। मधुरिमा उसका गुण नहीं वरन् अनिवार्य तत्व बन जाती है। काव्य और संगीत मौन होकर परस्पर एक दूसरे का आलिंगन करते हैं। सौंदर्य की इस सम्मिलित द्विगुणित नूतन छवि में दोनों एक दूसरे को पहचान भी नहीं पाते। वस्तुतः काव्य स्वतः संगीत बन जाता है। इसी को लक्ष्य कर कहा जाता है कि 'कविता शब्दों के रूप में संगीत और संगीत स्वर के रूप में कविता है' तथा 'संगीत साहित्य का प्रतिरूप है।' अतः संगीत को कविता से विलग करना अथवा कविता का संगीतमय रूप नष्ट कर देना उसकी दिव्य शक्ति, आह्लादकारी प्रभाव और अपूर्व महत्व को न्यून कर देना है।

भारतीय संगीत कला प्रारम्भ से ही धर्म का आधार लेकर उसी की छत्रछाया में विकसित हुई है। उसके अंग प्रत्यंग पर अध्यात्मिकता की अमिट छाप अंकित है। हमारी संगीत कला का प्रधान लक्ष्य तथा चरम आदर्श कभी भी पार्थिव आनंद की तृप्ति, कोई वैषयिक ऐश्वर्य लाभ मात्र, शृंगारिकता को उद्दीप्त करना और विषयोपभोग में प्रवृत्त कराना नहीं रहा है वरन् उसका उच्चतम ध्येय आत्मा की मुक्ति, आत्मा का परमात्मा से मिलन, परम

शांति तथा मोक्ष का प्रदान करना माना गया है । संगीत में ईश्वर से साक्षात्कार कराने की असीम शक्ति निहित है । संगीत के स्वर मन को एकाग्र करके इतना अधिक लीन, तन्मय और स्थिर कर देते हैं कि हृदय की समस्त चंचल वृत्तियाँ केन्द्रीभूत हो कर अन्तर्मुख हो जाती है और इधर-उधर भाग नहीं पाती । अतः चंचल चित्तवृत्ति के निरोध, साध्य के साथ एकीकरण और भक्ति में तन्मयता लाने के लिए संगीत के स्वरों में तल्लीन होना अनिवार्य है ।

भारत में पूर्व पाषाण-काल का गाना स्वरों पर आधारित था । उत्तर पाषाण-काल में सामूहिक संगीत की उत्पत्ति हुई । भाषा ने आँखें खोली तथा ऊँची सभ्यता और संस्कृति वाले ताम्रकाल में संगीत को धार्मिक चेतना मिली और लौहकाल में आर्यों ने द्रविड़ों से संगीत की अलभ्य धरोहर पाई ।

वैदिक-युग में प्रत्येक परिवार में संगीत का उत्कृष्ट स्थान था । समन सदृश आयोजन इसके विकास में साधक बने । इसी युग में संगीत के गर्भ से नाटक प्रादुर्भूत हुआ । अपूर्व पवित्रता ही इस युग के संगीत की विशेषता थी । यहाँ भक्ति और संगीत घनिष्ट रूप से सम्बद्ध ही नहीं हुए वरन् संगीत पूर्ण रूपेण धर्म का प्राण बन गया । स्वर-साधना के गुण से अभिषिक्त होकर संगीत जीवन को विकास पथ पर ले जाने का प्रमुख साधन बनकर यज्ञों के रूप में प्रस्फुटित हुआ ।

पौराणिक-युग में वैदिक-समन समज्जा के रूप में परिणत हुआ जिसमें संगीत प्रतिभा की होड़ दर्शनीय थी । कंठ-संगीत ने त्वरित गति से विकास की ओर चरण बढ़ाये । समाज में नाटक आदृत हुए । पुरुष और नारी के प्रेम की आधार शिला बनकर तथा बाह्य उपादानों पर अधिक ध्यान देने वाला संगीत विधान पूर्ण होकर आत्मोत्थान का आधार मनोनीत हुआ ।

रामायण-काल में सार्वजनिकता की प्रतिष्ठा उपलब्ध करके संगीत की चारित्रिक मर्यादा की रक्षा का प्रशस्त संबल स्वीकृत हुआ ।

महाभारत-काल में अनेक प्रकार के नृत्यों का सृजन हुआ, संगीत और धर्म और अधिक समीप हुए, संगीत प्रतिभा-युक्त नारी आदरणीया बनी और संगीत अपने विशद-निर्मल रूप में कृष्ण की मोहक वेणु निनादित करता अपने उच्चतम रूप को प्राप्त हुआ ।

पाणिनि-युग में संगीतिक क्रीडाओं की प्रधानता के साथ लोक संगीत भी पनपा । संगीत ने भारतीय नारी की आत्मा को मात्र जगाया ही नहीं वरन् उसे निर्भीक, शीलवान और दृढ़प्रतिज्ञ भी बना दिया ।

जनपद-काल में संगीत के बाह्य सौंदर्य पर अधिक बल दिया गया जिसके फलस्वरूप

वह विलासिता का उपकरण बनने की ओर उन्मुख हुआ। इसी युग में सर्वाधिक लोकनृत्य निर्मित हुए और भारतीय संगीत विदेशों में पहुँचा।

जैन-युग में संगीत की पृष्ठभूमि क्रांतिपूर्ण लहरों से तरंगायमान हुई। ब्राह्मणों का एकाधिपत्य समाप्त होकर संगीत के द्वार मानव मात्र के लिए उन्मुक्त हो गये। सत्य, पवित्रता, सौंदर्य, अहिंसा और अस्तेय—मानव जीवन के ये पाँच आधार ही संगीत के स्तम्भ बने और पंचशील कहलाये। सर्वसाधारण का सामान्य संगीत भी संपुष्ट संगीत के मेल में आया।

बौद्ध-काल में संगीत मानव मात्र के कल्याणार्थ अग्रसर हुआ। इस युग ने अनेक सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ नारियों को प्रसूत किया। दिव्य संगीत इस युग की अपरिमेय शक्ति बना। बुद्ध के पावन सिद्धान्तों पर आधारित संगीत नैतिकता से पूर्ण होकर, अपने बाह्य और आन्तरिक शक्तिशाली रूपों से समन्वित होकर कला के क्षेत्र में अपना एक चिह्न विशेष छोड़ गया।

मौर्य-युग में संगीत अपनी नैतिक मर्यादा से किंचित च्युत होने लगा। लोक संगीत ने अधिक प्रसार पाया। यूनानी भारतीय कला के प्रशंसक बने। संगीत के आध्यात्मिक सौंदर्य का पुनरुत्थान हुआ और उसका आदर्श पूर्ण संदेश विदेशों में ध्वनित हुआ।

शुंग-काल में ब्राह्मण पुनः संगीत पर अपना एकाधिकार करने को सचेष्ट हुए। गरबा-नृत्य इसी युग का वरदान है परन्तु कोई विशेष प्रगति न होने के कारण इस युग को संगीत की दृष्टि से अवरुद्ध काल की संज्ञा मिली।

कनिष्क-युग में संगीत की सार्वभौमिकता पुनः प्रतिष्ठित हुई और विश्व बंधुत्व की भावना का उल्लेखनीय विकास हुआ। यहाँ का संगीत रोम, मध्य एशिया और चीन में पहुँचा और इस क्षेत्र में भारत गौरवान्वित हुआ। अश्वघोष ने संगीत को दार्शनिक मोड़ दिया। इस युग में प्रथम बार संगीत का वैज्ञानिक विवेचन हुआ और यह भारतीय संगीत का नवीन प्रभात था।

नृत्य प्रवीण अनन्य सुन्दरी नाग कन्याओं ने नाग-युग में विधानपूर्ण संगीत की अभिवृद्धि की।

हिन्दू संस्कृति के जागरण वाले गुप्त-काल में शास्त्रीय संगीत विहित हुआ। एक शासन सूत्र में आबद्ध भारत के संगीत प्रेमी गुप्त सम्राटों के समय कालिदास और भास की चतुर्मुखी प्रतिभाओं ने संगीत को गौरव प्रदान करके इस काल को संगीत का स्वर्ण-युग बना दिया।

हर्ष-युग में मतंग और बाणभट्ट सरीखे कलाकार उद्भूत हुए और संगीत ने जनवादी दृष्टिकोण अपनाया।

राजपूत युग में संगीत के बाह्य रूप पर अधिक ध्यान दिया गया। राजपूत रमणियाँ संगीत कला में परम निपुण थी। इस युग में घरानो की नीव पड़ने से ईर्ष्या जगी और संगीत के आत्मिक सौंदय का प्रसार न हो सका। भवभूति और जयदेव सदृश नाटयकार तथा संगीतज्ञ अवतरित हुए परन्तु इस युग में जनवादी दृष्टिकोण लुप्त हो गया यद्यपि नृत्य इस काल में पर्याप्त विकास को प्राप्त हुए।

मुस्लिम युगारभ मे संगीत की भारतीयता अक्षुण्ण न रह सकी। विजेताओ की सकीर्ण मनोवृत्ति उसकी प्रगति में बाधक हुई। भारतीय संगीत की पवित्रता और उसके आत्मिक सौंदर्य को नष्ट करने के प्रयत्न हुए परन्तु उसने इस चुनौती को स्वीकार कर लिया। गोपाल नायक और शार्ङ्गधर ने काय अमर किया। भारतीय नारियो का संगीत-विकास रुक गया तथा नगर और ग्राम संगीत क्रमश पृथक होने लगे। संगीतज्ञ अथवा संगीत प्रेमी मुगल शासक अपेक्षाकृत सहिष्णु थे। इसी युग मे उत्तरी भारत में भक्ति आन्दोलन वेग से बढा। कबीर, चैतन्य महाप्रभु, ग्वालियर नरेश मानसिंह, बैजू बावरा, स्वामी हरिदास, तानसेन, स्वामी वल्लभाचार्य, सूरदास प्रभृति सतो और संगीतज्ञो ने संगीत की वह लोक पावन शाश्वत मदाकिनी प्रवाहित की जिसमें योगदान देकर अगणित सत भक्त अमर हो गए और आज भी वह अपनी तारण-तरण शक्ति से पाप-ताप मोचन करती चली जा रही है।

हिंदी साहित्य के निर्माण तथा सरक्षण मे संगीत की जो अमूल्य देन है। उसकी उपेक्षा नही की जा सकती।

हिन्दी साहित्य के अनेक महान कवि उच्चकोटि के भक्त थे। उनके जीवन का ध्येय काव्य-साधना नही वरन् अपने आराध्य की उपासना में पूर्णत लीन होकर उसका शाश्वत समीप्य प्राप्त करना था। अस्तु सासारिक बधन, प्रलोभन और मायामोह का विस्मृत कर अपने आराध्य देवता के साथ वाछित तादात्म प्राप्त करने के लिए उन्होने संगीत की शरण ली।

अपने इष्टदेव को रिझाने, उसकी पूजा व अर्चना करने तथा भक्ति की तन्मयता में की गई अनुभूति को प्रकट करने के लिए इन भक्तो ने सुन्दर सुन्दर पदो का गायन किया और दास्य, सखा, रति प्रभृति मनोभूमिकाओ में भावावेश में गाये गए ये ही पद अपने दिव्य साहित्यिक गुणो के कारण 'काव्य' की सज्ञा से विभूषित हुए। अत यदि यह कहा जाय कि भक्ति भावना की अनुभूति का प्रतिफल होने के फलस्वरूप हिंदी साहित्य के एक प्रमुख अग के निर्माण में संगीत अपनी धार्मिक प्रवृत्ति और विश्वव्यापी महत्ता के कारण न केवल प्रमुख माध्यम, आधार तथा उपादान ही बना वरन् उसी के परिणामस्वरूप उस विशिष्ट साहित्य की सृष्टि हुई तो अत्युक्ति न होगी।

यही नही नाद सौंदर्य से हमारी कविता की आयु बढी है। तालपत्र, भोजपत्र आदि का आश्रय न ग्रहण करने पर भी कवियो की बहुत सी रचनायें अपनी संगीतिक क्षमता के कारण जनसाधारण की जिव्हा पर नाचती हुई आज तक जीवित रह सकी है।

किंतु खेद का विषय है कि साहित्य के इस महत्वपूर्ण अंग तथा संगीत की अमर देन की ओर हमारे आलोचकों, साहित्यकारों और संगीतज्ञों का ध्यान अभी तक आकर्षित नहीं हुआ है। उन्होंने इस ओर उपेक्षा सी ही दिखाई है। परन्तु इस उपेक्षा के पीछे संगीत के प्रति अवहेलनात्मक दृष्टिकोण और अंशतः उसके फलस्वरूप इन विचारकों की संगीत ज्ञान विषयक अल्पज्ञता भी कम विचारणीय नही है। यों तो कौन नही जानता कि साहित्य की यह विधा स्वयं एक स्वतंत्र जीवंत साधना है जिसमें पूर्णता प्राप्त करने के लिये एक निश्चित और नियोजित काल की अपेक्षा है। संगीत के दृष्टिकोण से हिंदी साहित्य के विवेचनात्मक अध्ययन के लिये अभी तक तनिक भी प्रयास नही किया गया। इसी महती आवश्यकता का अनुभव करके लेखिका ने आदरणीय गुरुदेव डॉ० दीनदयालु जी गुप्त के आदेशानुसार उन्हीं से प्रेरणा पाकर उन्हीं के निरीक्षण में सन् १९५३ में अपने एम० ए० की थीसिस की लिये 'हिंदी साहित्य में संगीत (ई० १६ वी शताब्दी के अन्त तक)' विषय चुन कर साहित्य और संगीत के समन्वित स्वरूप पर प्रकाश डालने का बाल प्रयास किया था। और आदरणीय डॉ० विपिनबिहारी जी त्रिवेदी के उत्साहपूर्ण निर्देशन में पीएच० डी० के लिये प्रस्तुत अध्ययन द्वारा आज पुनः इस महत्वपूर्ण न्यूनता की पूर्ति का किंचित् प्रयास किया जा रहा है।

१७ वी शताब्दी तक का समय उत्तरी भारतीय संगीत का वह उच्च शिखर है जहाँ तक उसकी उत्तरोत्तर उन्नति होती रही। पूर्ण विकास को प्राप्त करने के उपरान्त उसका क्षय होना प्रारम्भ हुआ। औरंगज़ेब के शासनकाल में शहंशाह की धार्मिक कट्टरता, संकीर्ण रूढ़िवादिता और निरंकुश दमन नीति ने संगीत पर कठोर प्रहार किया तथा वह पददलित कर दिया गया। किंवदन्ती है कि संगीत की दुर्दशा पर व्यथित हो कर संगीतज्ञों ने शहंशाह आलमगीर के महल के सामने से संगीत की अर्थी निकाली। जिज्ञासा पर जब उसे ज्ञात हुआ कि ये लोग संगीत का शव अन्त्येष्टि हेतु लिये जा रहे हैं तो उसने तत्काल कहा कि क़ब्र अत्यधिक गहरी खोदना जिससे उसकी आवाज़ की गूंज कभी भी बाहर न आ सके। इस प्रकार १७ वीं शताब्दी के उपरान्त संगीत की रूपरेखा विकृत, परिवर्तित तथा क्षीण होती गई और उसकी धारा दूसरी ओर को मुड़ गई। अतः १७ वीं शताब्दी तक के साहित्य को ही मैंने संगीत की समीक्षा का विषय चुना है।

यह बात अप्रिय होते हुए भी स्वीकार करनी पड़ेगी कि राष्ट्र के भावी कर्णधार हमारे आज के नवयुवती तथा नवयुवक समाज के हृदय पर शास्त्रीय संगीत की दृष्टि से अधकचरे आधुनिक सिने गीतों का अत्यधिक प्रभाव है और भारतीय काव्य तथा संगीत की स्वयं सम्पूर्णता, उत्कृष्टता और पवित्रता के बावजूद भी 'हालीवुड' की अश्लीलता हमारे आधुनिक गीतों को आच्छादित करती जा रही है। किंतु भारत अब एक स्वतंत्र राष्ट्र है। उसे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अग्रसर होकर अग्रगण्य बनना है। साढ़े सात सौ वर्षों की गुलामी भुगतने के कारण हमारी हीनावस्था को सुधारने और शक्ति को जागृत करने के लिये भारत की अतीत सभ्यता ही सबसे अधिक उपयुक्त आदर्श है। अतः विदेशी छाया से

भाराक्रान्त साक्षर भारतीय जीवन के अंग प्रत्यंग को पुन अतीत के स्वर्ग की ओर प्रेरित करना हमारा कर्तव्य हो जाता है। इस विचार से भी हिंदी साहित्य के स्वर्णिम युग अर्थात् भक्ति काल के संगीतमय काव्य पर विचार किया गया है।

यो तो हिंदी साहित्य में संगीत का सामंजस्य उसकी उत्पत्ति से ही है। हिंदी साहित्य अपने शैशव से ही संगीत की क्रोड में पला है। विक्रम की नवी शताब्दी के लगभग होने वाले सिद्ध तथा नाथपंथी कवियो ने अपने पदो का गायन संगीत की राग-रागिनियो में किया है। जयदेव तथा विद्यापति ने भी अपने पदो में राग-रागिनियो को आश्रय दिया है किंतु हिंदी साहित्य में संगीत की राग-रागिनियो में बद्ध पदो की गायन-प्रणाली की कड़ियाँ क्रमबद्ध नही मिलती। यह नितांत सत्य है कि वीर गाथा कालीन मात्रा वृत्त काव्य गाये जाने के लिये ही लिखा गया था। "मात्रिक छंदो को जन्म देने वाले प्राकृत और अपभ्रंश काल के शैलूष, मागध, चारण, भट्ट आदि जनता के गायक थे जिन्होने जनरजनार्थ एक डफली पर गाये जा सकने वाले छंद रचे थे। मात्राओ का निदान होने के कारण ताल लगने ही छंदो में गेय गुण समाविष्ट हो जाता है। विद्वानो से छिपा नही है कि घत्ता और मदन-गृह इस प्रकार के छंद है जिनका प्रयोग नृत्य में भी होता है।" किंतु वीरगाथा कालीन काव्य में राग रागिनियो का विधान नही पाया जाता। सूफी-काव्य में भी संगीत का समावेश भाषा और दोहा-चौपाई शैली के कारण सहज रूप में तो अवश्य है किंतु इन कवियो ने भी अपने काव्याशो की अवतारणा विशिष्ट राग-रागिनियो के अन्तर्गत नही की है। राम काव्य के अन्तर्गत केवल तुलसी ही ने राग रागिनियो में अपने कुछ पदो की सृष्टि की है। अत सूफी तथा राम-भक्ति काव्य की संगीत संबंधी विवेचना का प्रयास नही किया गया है। हाँ निर्गुण नामधारी संत काव्य में अवश्य राग-रागिनियो की व्यवस्था है।

यद्यपि पदो की संगीतमय रचना अर्थात् पदो को राग विशेष में गाने का प्रचलन सिद्ध, नाथपंथी तथा संत कवियो में भी था किंतु इस प्रणाली का सफलीभूत विकास कृष्ण भक्तिकालीन साहित्य में हुआ। सिद्ध, नाथपंथी तथा संत कवियो ने जनसाधारण को आकर्षित करने तथा अपने धार्मिक सिद्धातों के प्रतिपादन और जनता में उन्हें प्रचलित करने के लिए अपने काव्य में संगीत का पुट दिया किंतु इन कवियो ने जितना प्रयास अपने धार्मिक भावो की अभिव्यक्ति के लिए किया है उतनी दूर तक वे गेयत्व के लिए नही गये है। प्रेम के पुजारी भक्तिकालीन कृष्णभक्त कवियो का चरम उद्देश्य अपने आराध्यदेव की लीला और छवि का गान करना था। आध्यात्मिक विरह-बाण से बिंधे इनके व्यथित हृदय से गाये बिना भी रहा नही जाता था। अत प्रिय मिलन की आशा में ये जीवन पर्यन्त अपनी हृतत्री के स्वर वाद्य वाद्यो के स्वरो में घुला मिलाकर उसके माध्यम से उस अव्यक्त को रिझाने की चेष्टा में लीन रहे। अपने इष्ट की पूजा तथा अर्चना के लिए भक्ति की तन्मयता में गान के रूप में प्रकट होने वाले पद ही कृष्णभक्तिकालीन साहित्य की प्राय अधिकाश निधि है। इस प्रकार अपने प्रेमाधिक्य से हृदयगत अनुभूति को 'संगीत और काव्यमय नव स्वर' में 'अंकित कर' कृष्ण-

भक्तिकालीन कवियों ने संगीत और साहित्य के समन्वय की धारा को परम वेगवती कर दिया। विश्व के साहित्य में काव्य और संगीत का इतना सुन्दर मेल विरल है। बाइबिल के ओल्ड टेस्टामेंट (Old Testament) के साम गान (Psalms) अवश्य ही इस नैसर्गिक समन्वय के श्रेष्ठ निदर्शन हैं। परन्तु हिंदी के भक्तिकाल की प्रायः आद्योपान्त सामग्री चिरतन तक इस अनुपम अनुपात पूर्ण मेल की स्मृति स्वरूप स्मरण की जाती रहेगी। हिंदी के तत्कालीन कृष्णभक्त कवि प्रथमतः भक्त होकर एक बहुत ऊँचे कोटि के संगीत कला मर्मज्ञ और काव्य शास्त्र के पारखी थे। यही कारण है कि संगीत के ठाठ में बँधा हुआ उनका काव्य आज भी हमें आत्मविभोर और आमविस्मृत कर आत्मिक आनंद की अनुभूति कराने की पूरी क्षमता रखता है। इन कवियों के अपने जीवन में दैन्य और निराशा के क्षणों में अविरल प्रवाहित करुण अवसाद और आशा को गर्भ में धारण किये मर्मस्पर्शी विषाद एवं अपने आराध्य से सामीप-सायुज्य आदि मनोभूमिकाओं में प्रसूत अक्षर मधुर हास्य के समन्वित रूपों में निनादित नैसर्गिक संगीत की झनकार आज भी भग्न हृदयों में आशा के प्राण फूंकती है और तुष्ट अन्तःकरणों में आह्लाद और प्रेरणा का एक नवीन संदेश भरती है।

आज शताब्दियाँ बीत चुकी हैं तथा आगे और भी अनेकों बीत जावेंगी परन्तु मानव के निराशा और उत्पीड़न के क्षणों में इन कृष्णभक्तिकालीन कवियों के प्रभावोत्पादक वर्ण संयुजन वाली पद-योजनाओं की मधुर स्मित और दैन्य तथा आत्मनिवेदन के झिलमिलाते अश्रुकणों से सिंचित स्वर्गीय संगीत की झनकार सदा की भाँति उसे आशा का सम्बल और हर्ष तथा सन्तोष का पाथेय प्रदान करती रहेगी। ताल और लय से वेष्ठित, मूर्च्छना लेती, बल खाती हुई ये स्वर लहरियाँ जब श्रोता के मनोदेश, बुद्धिक्षेत्र और आत्मा को एक साथ उत्तरोत्तर महाकाश में ऊपर उठाती हुई ले चलती है तब नाद ब्रह्म का स्वरूप अपनी अनुभूति कराता हुआ उसे अखिल विश्व के प्रति सौहार्द्र, प्रेम, करुणा, दया और अपनत्व के भावों से तरंगित करके 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' की प्रतीति कराता एकोऽहं की परम आलोकमयी और फलतः आनंदमयी भावना से आपूर कर देता है।

गायन और वादन का उल्लेख तो भक्तिकालीन सभी धाराओं के साहित्य के अन्तर्गत मिलता है किंतु नृत्य का समावेश कृष्ण-काव्य की अपनी विशेषता है। सूफी कवि आलम ने अवश्य नृत्य कला के लालित्यपूर्ण उच्चकोटि के चित्रण प्रस्तुत किये हैं किंतु उनके अतिरिक्त भक्तिकालीन अन्य सूफी, संत तथा रामभक्त कवियों के काव्य में प्रायः नृत्य-वर्णन का अभाव सा ही है। इसके विपरीत कृष्णभक्तिकालीन कवियों के आराध्य नटनागर नंदकिशोर नृत्य के भी आचार्य हैं। अतः नटवर वेशधारी कन्हैया की नृत्य-क्रीड़ायें इन कवियों के आकर्षण का प्रमुख केन्द्र बन गई और इन गायक कवि साधकों की गहरी अनुभूति के मध्य साध्य की मनोहारिणी नृत्यमूर्ति साकार हो उठी। साथ ही क्रियात्मक नृत्य की अमर साधिका कृष्ण-भक्तिकालीन कवयित्री मीरा ने निरंतर नृत्य के माध्यम से कृष्ण को रिझाने का प्रयास किया जिसके कारण नृत्य-मुद्राओं का सफल अंकन उनके काव्य में हुआ है।

इस प्रकार भक्ति कालीन कृष्णभक्त कवियो ने अपने काव्य में गायन, वादन एव नृत्य तीनो के सफल सयोग के द्वारा सगीत की परिभाषा सार्थक कर दी है। इन विशेषताओ और गुणो से युक्त होने के कारण ही प्रस्तुत ग्रथ मे समीक्षा के लिए मात्र 'कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में सगीत' विषय को स्वीकार किया गया है।

प्रस्तुत ग्रथ आठ अध्यायो में विभक्त है। प्रथम अध्याय में प्रवेश के रूप में भूमिका है। इसमें सर्वप्रथम 'भक्तिकालीन हिंदी साहित्य में कृष्णभक्ति शाखा की स्थापना और उसका क्षेत्र' शीर्षक प्रकरण के द्वारा विषय के समय, सीमा तथा स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है। तत्पश्चात् कृष्णभक्तिकालीन साहित्य के अन्तर्गत आनेवाले विभिन्न सम्प्रदायो, उनकी प्रवृत्तियो तथा कृष्णभक्तिकालीन कवियो का सक्षिप्त परिचय मात्र है। यो तो सगीत की दृष्टि से कृष्णभक्तिकालीन कवियो में अभी तक किसी भी कवि का गभीर विवेचनात्मक अध्ययन नही हुआ है किंतु साहित्य के दृष्टिकोण से सूरदास, परमानददास, कुभनदास, कृष्णदास, नददास, चतुर्भुजदास, गोविंदस्वामी, छीतस्वामी, हरिराम व्यास तथा मीरा हिंदी जगत में विशेष प्रतिष्ठित एव प्रसिद्ध है। इनके अतिरिक्त सूरदास मदनमोहन हितहरिवश, हरिदास स्वामी, राजा आसकरण का पूर्ण रूपेण अध्ययन नही किया गया है। गदाधर भट्ट, विट्ठलविपुल, बिहारिनदास, श्री भट्ट, परशुराम और नागरीदास प्राय उपेक्षित से ही रहे है। प्रस्तुत ग्रथ में ऊपर कहे गये समस्त कवियो तथा उनकी रचनाओं का सगीत की दृष्टि से अध्ययन किया गया है। कुछ लेखक तथा आलोचक कृष्णभक्तिकालीन कवियो के अन्तर्गत बैजूबावरे और तानसेन को भी स्थान देते है। किंतु प्रथमत बैजू बावरे के स्थितिकाल के विषय में निश्चयात्मक रूप से अभी तक कुछ भी नही कहा जा सका है साथ ही बैजू तथा तानसेन प्रमुख रूप में सगीतज्ञ और गौण रूप में भक्त थे। कृष्णभक्तिकालीन सभी कवियो ने साध्य कृष्ण की अर्चना करने के लिए सगीत को प्रमुख साधन बनाया किंतु बैजू और तानसेन ने सगीत की साधना की। उनके जीवन का साध्य ही सगीत की आराधना करना था। सगीत विद्या की प्राप्ति के लिए ही उन्होने ईश्वर के प्राय सभी अवतार रूपो से याचना की है। यह बात दूसरी है कि उनके उपलब्ध काव्य में कृष्ण लीला से सम्बद्ध पद अधिक है। किंतु अन्य विश्वसनीय सूत्रो के अभाव में उनकी सगीत विद्वत्ता की उपेक्षा कर उनके भक्त रूप को प्रधानता नही दी जा सकती। इसी कारण कृष्णभक्तिकालीन कवियो के साथ बैजू तथा तानसेन की समीक्षा नही की गई है।

प्रथम अध्याय में कृष्णभक्तिकालीन कवियो की प्रकाशित तथा हस्तलिखित रूप में अवलोकन की गई रचनाओ का उल्लेख मात्र किया गया है। उनका विस्तृत वर्णन तथा परिचय पचम अध्याय में है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि पदो का सगीत से विशेष सबध है। यो तो दोहा चौपाई आदि छद भी गाये जा सकते है और गाये जाते है किंतु छदो को बिना यति भग किए रागानुसार गाना, लय के अनुसार मनमानी खीचना तथा ताल में बद्ध रखना सभव नहीं है। इसके विपरीत पदावली विशुद्ध सगीत के ढाचे पर बँधी होती है। उसमें मात्रा तथा यति सबधी कोई विशिष्ट अपरिवर्तनशील बधन नही है अत छद तथा

पद में निहित संगीत के दृष्टिकोण से इस मूल तथा महत्वपूर्ण पार्थक्य के कारण प्रस्तुत प्रबंध में केवल पदावली-साहित्य की ही समीक्षा की गई है।

प्रथम अध्याय के अंत में प्राचीन उपलब्ध सामग्री और प्रचलित किंवदन्तियों के आधार पर कृष्णभक्तिकालीन कवियों के संगीत ज्ञान, निपुणता तथा कुशलता को प्रमाणित करने और उनकी संगीत-शिक्षा तथा संगीत से सम्बद्ध विशेष घटनाओं का क्रमबद्ध परिचय देने का प्रयास किया गया है।

द्वितीय अध्याय 'संगीत और साहित्य' शीर्षक के अन्तर्गत संगीत क्या है, संगीत के आधार, संगीत की व्यापकता, संगीत की महत्ता, साहित्य मे संगीत का स्थान, संगीत एवं काव्य में पारस्परिक संबंध, संगीत कला एवं काव्य कला में समानतायें, कलाओ मे संगीत कला की श्रेष्ठता, संगीत एवं काव्य के पारस्परिक संबंध के उपादान, साहित्य में संगीत का औचित्य–इन अंगों पर स्वतंत्र रूप से मौलिक विचार प्रकट किये गये हैं। संगीत के आधार नाद, श्रुति, स्वर, ग्राम, मूर्च्छना, तान, सप्तक, वर्ण, अलंकार, पकड़, जाति और राग से साहित्यिकों को परिचित कराने के लिए संगीत के इन पारिभाषिक शब्दों की विशद व्याख्या की गई है। कृष्णभक्तिकालीन कवियों के समय में आधुनिक रूप में ठाट या मेल का प्रचलन न होने के कारण उसका उल्लेख मात्र ही किया गया है।

ललित कलाओं में काव्य-कला की श्रेष्ठता पर समालोचकगण अपनी-अपनी सम्मति रखते हैं। संगीत अभी तक इतना उपेक्षित रहा है कि संभवतः अधिकांश समालोचकों को इतना अवकाश ही नहीं रहा कि उसकी विस्तृत विवेचना करते। किंतु संगीत भी कम महत्वपूर्ण स्थान नही रखता है। 'कलाओं में संगीत कला की श्रेष्ठता' शीर्षक प्रकरण में विविध दृष्टिकोणों से गवेषणात्मक, निष्पक्ष तथा मौलिक समीक्षा द्वारा संगीत की महत्ता सिद्ध करने की चेष्टा की गयी है।

तृतीय अध्याय में 'कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य में संगीत प्रेरणा के उपादान' शीर्षक के अन्तर्गत आध्यात्मिक महत्ता तथा कवि रूप, परम्परा, कवियों के आराध्य विषय तथा दृष्टिकोण, पुष्टिमार्गीय सेवाविधि पर विचार किया गया है। कृष्णभक्तिकालीन साहित्य के निर्माण में संगीत अपनी धार्मिक प्रवृत्ति तथा विश्वव्यापी महत्ता के कारण प्रमुख माध्यम, आधार तथा उपादान बना। संगीत में चंचल वृत्तियों को केन्द्रीभूत करने, साध्य के साथ एकीकरण तथा आत्मा-परमात्मा का मिलन कराने, भक्ति में तन्मयता लाने और परम शांति को प्रदान करने की असीम शक्ति है—यह वैज्ञानिक तथा विवेचनात्मक रूप से सिद्ध किया गया है जो लेखिका की मौलिक कृति है। इसके अतिरिक्त विशिष्ट परिस्थितियाँ, वातावरण तथा विशेषतायें जो कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में संगीत की प्रेरणा के लिए विशेष रूप से सहायक तथा उद्दीपक हुई उनका भी वर्णन किया गया है। हिंदी साहित्य में संगीत की परंपरा के विकास का दिग्दर्शन कराते हुए विभिन्न सम्प्रदायों के

संगीत के आधार में जो विभिन्नता थी उसको भी दिखाने का नूतन प्रयास किया गया है। कृष्णभक्तिकालीन कवियों के आराध्य, विषय और दृष्टिकोण तथा पुष्टिमार्गीय सेवाविधि के विधान में एक निश्चित क्रम और व्यवस्थित रूप में निर्धारित अष्टप्रहर की नित्य कीर्तन प्रणाली तथा उत्सव आदि नैमित्तिक आचार साहित्य और संगीत के अपूर्व समन्वय में विशेष रूप से सहायक हुए इस पर भी प्रकाश डाला गया है। अन्त में दिखाया गया है कि स्वर साधना अपनाने के कारण कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में संगीत-सौंदर्य—(१) संगीत तथा उससे सम्बद्ध सामग्री का उल्लेख, (२) संगीत की विभिन्न राग रागिनियों का प्रयोग तथा (३) कृष्णभक्तिकालीन कवियों की भाषा तथा शैली में संगीत का समावेश — इन तीन रूपों में प्रस्फुटित हुआ है। इन्हीं रूपों के दृष्टिकोण से अग्रिम अध्यायों में 'कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में संगीत' विषय की समीक्षा की गई है।

'कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में संगीत तथा उससे सम्बद्ध सामग्री का उल्लेख और विवरण' शीर्षक चतुर्थ अध्याय में निर्दिष्ट विषय की विवेचना की गई है। सम्पूर्ण अध्याय के दो खंड हैं। प्रथम खंड में संगीत संबंधी ग्रंथों की रचना तथा उनका विस्तृत विश्लेषण किया गया है। हिंदी-संग्रहालय, हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग तथा प्रयाग-संग्रहालय में सुरक्षित हिन्दी में रचित संगीत संबंधी हस्तलिखित प्राचीनतम ग्रंथों का आधार लेकर इस दृष्टिकोण से कृष्णभक्तिकालीन कवि हरिराम व्यास के अतुलनीय महत्व की ओर भी संकेत किया गया है। द्वितीय खंड में भारतीय साहित्य में प्राप्त संगीत संबंधी उल्लेखों का परिचय देते हुए कृष्णभक्तिकालीन साहित्य संबंधी उल्लेख तथा वर्णन विषय की विशद व्याख्या की गई है। संगीत के भेद प्रभेदों, अंग उपांगों, पारिभाषिक शब्दों, राग रागिनी शब्द उनकी संख्या तथा नामों, गायन के ध्रुपद तथा धमार इन दो प्रकारों, वाद्ययंत्रों, तानों, नृत्य संगीत की महत्ता, कीर्तन भजन गायन की महिमा तथा उसमें मन को लीन रखने के लिए दी गई चेतावनी आदि से सम्बद्ध और संगीत संबंधी जो आत्मविषयात्मक उल्लेख कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में यत्र तत्र बिखरे हुए रूप में मिलते हैं, उनका वर्णन तथा पुष्टि कृष्णभक्तिकालीन प्रत्येक कवि की हस्तलिखित तथा प्रकाशित रचनाओं से उद्धरण देकर किया गया है। नृत्य के प्रसंग में पहले परिभाषा देकर नृत्य के ताडव तथा लास्य प्रकारों का वर्णन किया है तत्पश्चात् कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में अंकित नृत्य की विधियों — बाल नृत्य, ताडव नृत्य और रास नृत्य की विशद समीक्षा की गई है। नृत्य से सम्बद्ध रूपक व उत्प्रेक्षा तथा नृत्य के दोनों की ओर भी इंगित किया गया है। बाल नृत्य को मंजुल स्वाभाविक हृदयग्राही छवि का अंकन तथा कालियनागनाथन के मिस रौद्र मुद्रा में किये गये कृष्ण के ताडव नृत्य की आध्यात्मिक भावना का प्रदर्शन लेखिका का मौलिक प्रयास है। हिंदी साहित्य के विद्वानों द्वारा संगीत के गायन तथा वादन इन दो अंगों का तो यदा-कदा प्रसंगवश उल्लेख मात्र कहीं-कहीं हो भी गया है किंतु नृत्य संबंधी समीक्षा का पूर्णतया अभाव है।

रास लीला की आध्यात्मिक विवेचना तो हिंदी साहित्य में पर्याप्त हुई है किंतु

उसके संगीत पक्ष की उपेक्षा ही की गई है। विशेष रूप से प्रस्तुत निबंध का संगीत से संबंध होने के कारण राम लीला के संगीत-अंग पर ही प्रकाश डाला गया है। आध्यात्मिक महत्ता की ओर केवल संकेत मात्र कर दिया गया है। इस प्रकार सम्पूर्ण अध्याय में तो नवीनता का समावेश हुआ ही है, नृत्य-प्रसंग विशेष रूप से अध्ययन का मौलिक अंग है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि संगीत की महत्ता के अन्तर्गत मुरली से सम्बद्ध पदों की विवेचना कर दी गई है किंतु उसके आध्यात्मिक पक्ष की व्याख्या नहीं की गई है। 'संगीत संबंधी आत्मविषयात्मक उल्लेख' के अन्तर्गत गायन तथा नृत्य दोनों प्रकार के आत्मविषयात्मक उल्लेखों का वर्णन है। नृत्य की क्रियात्मक साधिका मीरा के नृत्य संबंधी आत्मविषयात्मक उल्लेखों का व्यापक चित्रण किया गया है।

पंचम अध्याय 'कृष्णभक्तिकालीन साहित्य मे प्रयुक्त राग रागिनियों' पर है। इसमें सर्व प्रथम हस्तलिखित तथा प्रकाशित रूप में उपलब्ध संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी, मराठी और गुजराती ग्रंथों की सहायता से राग की उत्पत्ति तथा विकास का क्रमबद्ध इतिहास प्रस्तुत किया गया है। कृष्णभक्तिकालीन कवियों के समय में कौन-कौन सी राग-रागिनियाँ प्रचलित थीं इसका दिग्दर्शन कराने के लिए उस समय मे प्रचलित प्रायः सभी मतो के राग-रागिनी वर्गीकरण संलग्न कर दिए है। वर्गीकरणों के प्रस्तुत करने के लिए लेखिका को हस्तलिखित तथा प्रकाशित होती हुई भी दुष्प्राप्य दोनों प्रकार की सामग्री पर्याप्त शोध करके जुटानी पड़ी है। संगीत ग्रंथों तथा उनके रचयिताओं की निश्चित तिथि के विषय में प्रायः मतभेद है अतः उनकी निश्चित तिथि का उल्लेख नही किया गया है।

कृष्णभक्तिकालीन कवियों ने अपने पदो मे कौन कौन सी राग-रागिनियों तथा कितनी संख्या में किन-किन राग-रागिनियों का प्रयोग किया है इस पर आज तक हिंदी के किसी भी लेखक, इतिहासकार, आलोचक तथा संगीतज्ञ ने प्रकाश नहीं डाला है। प्रायः विद्वानों ने कुछ रागों के नाम गिना कर तथा उसके साथ यह कह कर कि इनके अतिरिक्त अन्य भी बहुत से राग गाये गये हैं सन्तोष कर लिया है। इन कवियों ने कुछ विशेष रागों का अधिक प्रयोग किया है। अलोचकों द्वारा इस ओर भी संकेत किया गया है किंतु उसे सिद्ध करने की चेष्टा नहीं की गई है। प्रस्तुत अध्याय में कृष्णभक्तिकालीन प्रत्येक कवि के काव्य में प्रयुक्त राग रागिनियों का संख्यानुसार विवरण दिया गया है। कृष्णभक्तिकालीन कवियों में केवल सूरदास मदनमोहन, व्यास, मीरा तथा राजा आसकरण के ही पद प्रकाशित रूप में प्राप्त है। इनके अतिरिक्त परमानंददास, कुंभनदास, कृष्णदास, नंददास, चतुर्भुजदास, गोविंदस्वामी, छीतस्वामी, गदाधर भट्ट, हितहरिवंश, हरिदास स्वामी, विट्ठलविपुल, विहारिनदास, श्री भट्ट, परशुराम और गंग ग्वाल कवियो की सम्पूर्ण पदावली अभी तक प्रकाश में नहीं आई है। अतः इस विषय को अंकित करने के लिए अधिकतर हस्तलिखित ग्रंथों का ही आश्रय लेना पड़ा है। इन हस्तलिखित संग्रहों तथा रचनाओं का अध्ययन लेखिका ने लखनऊ में रह कर तथा काशी, प्रयाग, कलकत्ता और दिल्ली आदि वाह्य स्थानों पर स्वतः जा कर वहाँ के

माननीय साहित्यिकों तथा विद्वानों के निजी संग्रहालयों, साहित्यिक संस्थाओं, पुस्तकालयों और विभिन्न संग्रहालयों में किया है। सूरदास, मदनमोहन तथा राजा आसकरण की छपी सामग्री भी इधर-उधर बिखरे हुए रूप में छिपी पड़ी है अतः लेखिका ने उसे ढूँढ कर जुटाया है। केवल सूरदास, व्यास तथा मीरा के ही प्रामाणिक प्रकाशित संस्करण प्राप्त हुए हैं। इनके अतिरिक्त अन्य सभी कृष्णभक्तिकालीन कवियों के विभिन्न संग्रहों में प्राप्त पदों में अत्यधिक विषमता है। प्रायः प्रत्येक पद-संग्रह में प्रत्येक कवि के पद विभिन्न राग-रागिनियों तथा विभिन्न संख्या में मिलते हैं। अतः ऐसी परिस्थिति में प्रत्येक कवि की रचनाओं की जितनी अधिक से अधिक हस्तलिखित प्रतियाँ तथा प्रकाशित पद-संग्रह उपलब्ध हो सके हैं उन सभी में प्रयुक्त राग-रागिनियों तथा उनकी संख्या का विवरण दिया गया है। प्रायः सभी कवियों के हस्तलिखित तथा प्रकाशित अधिकांश पद-संग्रहों में पदों का विभाजन रागानुसार नहीं है। साथ ही कुछ कवियों के पद एक ही संग्रह में मिले-जुले रूप में लिखे हुए हैं। अतः प्रत्येक हस्तलिखित तथा प्रकाशित ग्रंथ में विभिन्न कवियों के पदों में प्रयुक्त संख्यानुसार राग-रागिनियों की गणना करने के लिए लेखिका को प्रत्येक पद खोज-खोज कर निकालना पड़ा है। संख्यानुसार राग-रागिनियों का विवरण देने के उपरान्त कृष्णभक्तिकालीन कवियों के द्वारा प्रस्तुत की गई सम्पूर्ण पदावली साहित्य की शास्त्रोक्त समीक्षा की गई है। समस्त संगीतमय काव्य को (१) प्रचलित सामयिक संगीत रूपों में अभिव्यक्त राग-रागिनियों, (२) प्राचीन परिपाटी के अनुसार पूर्व स्वीकृत किंतु अप्रचलित राग-रागिनियों और (३) नवीन प्रयोग, इन कोटियों में विभक्त कर उसकी विवेचना की गई है। कृष्ण-भक्तिकालीन साहित्य में प्रयुक्त राग रागिनियों तथा उनकी संख्या के अध्ययन से प्राप्त विशेषताओं का दिग्दर्शन कराते हुए (१) विशिष्ट राग-रागिनियों का अधिक अथवा न्यून प्रयोग, (२) कवि विशेष द्वारा प्रयुक्त राग-रागिनियों, (३) फारसी तथा भारतीय रागों के समन्वय से आविष्कृत राग रागिनियों का प्रयोग, (४) राग विशेष के नाम के अनेक लोचयुक्त रूपों का प्रयोग, (५) राग की श्रेणी में न आ सकने वाले नामों का उल्लेख—इन प्रसंगों पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है।

षष्ठ अध्याय में संगीत के सिद्धांतों की कसौटी पर कृष्णभक्तिकालीन साहित्य की वैज्ञानिक रूप से गवेषणात्मक समीक्षा की गई है। सर्व प्रथम रस और राग सिद्धान्त, राग ऋतु और समय सिद्धान्त तथा राग की प्रकृति गुण और प्रभाव इन सिद्धांतों तथा विषयों की विस्तृत व्याख्या तथा उनकी महत्ता का आलोचनात्मक ढंग से प्रतिपादन किया गया है। तत्पश्चात् संगीत के इन तीनों दृष्टिकोणों से बाह्य *(वार्ता साहित्य)* और आन्तरिक *(कवियों के पद-संग्रहों)* आधारों द्वारा कृष्णभक्तिकालीन प्रत्येक कवि के पदों की अलग-अलग विस्तृत विवेचनात्मक गंभीर समीक्षा की गई है। संगीत के सिद्धांतों की कसौटी पर कृष्णभक्तिकालीन साहित्य की समीक्षा करने के लिए संगीत के ग्रंथों तथा रागमाला चित्रों का आश्रय लिया गया है।

प्रत्येक कला अपने चरम विकास के क्षणों में एक दूसरे का आश्रय ग्रहण करती है।

मध्यकाल भारतीय कलाओं के विकास का स्वर्णयुग रहा है। कलाओं के अपूर्व समन्वय द्वारा भावों की जैसी सूक्ष्म तीव्रतम अभिव्यंजना भारत में उस समय हुई, विभिन्न कलाओं का वैसा मणिकांचन संयोग विश्व के इतिहास में अन्यत्र प्राय: देखने को नहीं मिलता है। संगीत और साहित्य के इस अपूर्व समन्वय के फलस्वरूप जहाँ एक ओर विपुल पदावली साहित्य तथा 'ध्यान रूपो' की सृष्टि हुई वही चित्र कला के अन्तर्गत संगीत की विभिन्न स्वरलहरियों के मनोवैज्ञानिक संकेत 'रागमाला' चित्रो के द्वारा प्रदर्शित किए गये। रागमाला चित्रों में राग-रागिनियों से सम्बद्ध वातावरण, दृश्य, विषय, रस, समय तथा भाव आदि का चित्रण होता है। जिसके द्वारा चित्र के देखने मात्र से ही राग अथवा रागिनी के स्वरूप, प्रकृति, रस, समय आदि का पूर्ण ज्ञान हो जाता है। यहाँ यह संकेत कर देना अनिवार्य है कि अब रागमाला चित्रों में विभिन्न शैलियों (राजपूत शैली, मुगलकालीन शैली) के अनुसार भेद भी देख पड़ते है। इसमें भी संदेह नही कि बहुत से चित्र ऐसे भी प्राप्त होते है जिनमें राग-रागिनी के रूप आकार तथा वातावरण का उचित अंकन नही है। लेखिका ने प्रयाग संग्रहालय, भारत कला भवन बनारस, विक्टोरिया मेमोरियल कलकत्ता तथा सेठ गोपी कृष्ण जी के संग्रहालय में स्वत: जा कर प्राचीनतम मूल चित्रों (Original paintings) का निरीक्षण किया है और उनके फोटो ले कर प्रस्तुत अध्याय में उनका उपयोग किया है।

सप्तम अध्याय मे 'कृष्णभक्तिकालीन संगीत की भाषागत विशेषतायें' विषय पर विचार किया गया है। यों तो हिंदी साहित्य के कुछ लेखको तथा आलोचकों ने कृष्णभक्तिकालीन कुछ कवियों की भाषागत विशेषताओ का विवेचन प्रस्तुत किया है किंतु विशेष रूप से संगीत के दृष्टिकोण से सभी कृष्णभक्तिकालीन कवियों की भाषा का अध्ययन लेखिका का मौलिक प्रयास है। ब्रजभाषा के प्रयोग के अन्तर्गत स्वरध्वनि की बहुलता, विभक्तियाँ, क्रियाओं के रूप, शब्दो के लोचयुक्त रूप, कोमल शब्द विन्यास, संयुक्तवर्णो का अभाव, री, अरी, एरी आदि शब्दों और अनुस्वारयुक्त दीर्घ स्वरों का प्रयोग तथा शब्दो की ध्वनि शक्ति के अन्तर्गत भाषा में भावात्मकता और अनुप्रास शब्दालंकार के प्रयोग द्वारा कृष्णभक्तिकालीन भाषा के संगीत-माधुर्य में जो अभिवृद्धि हुई है उसका चित्रण किया गया है। शब्दों के विकार के संबंध में लोचयुक्त रूप के प्रसंग में लेखिका ने स्वतंत्र रूप से नवीन मौलिक विचार प्रकट किए है। अंत में कृष्णभक्तिकालीन साहित्य की संगीतमय भाषा पर एक सामान्य दृष्टि डालते हुए पूर्ववर्ती कवियों की भाषा से किंचित् तुलना कर उनकी भाषा के विशेष माधुर्य का वर्णन किया गया है।

अष्टम अध्याय में कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में प्रयुक्त पदों की समीक्षा लय, ताल और गायन प्रणाली के आधार पर की गई है। जैसा कि जनभारती (वर्ष ३ अंक १ सं० २०१२) पत्रिका में आचार्य ललिता प्रसाद जी सुकुल ने छंद तथा पद के अन्तर की ओर संकेत किया है उसी के अनुसार प्रस्तुत अध्याय में पहले छंद तथा पद के अन्तर को संक्षेप में दिखलाया है तत्पश्चात् लिपिबद्ध रूप में प्राप्त पदों के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है।

समान मात्रा, टेक तथा असमान मात्रा वाले पदो की न्यूनता, अधिकता तथा विभिन्नता के कारणो को भी प्रत्यक्ष करने की चेष्टा की गई है। भावानुकूल विलम्बित, द्रुत तथा मध्य लय और तुक अथवा अन्त्यानुप्रास के प्रयोग द्वारा कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में सगीत-माधुर्य जिस प्रकार प्रस्फुटित हुआ है उसको उदाहरणो के सयोग तथा व्याख्या से समझाने का प्रयास किया गया है। कृष्णभक्ति सबधित पदो में प्रयुक्त तालो की समीक्षा के लिए कुछ पदो को तालबद्ध रूप में प्रस्तुत करके भी दिखाया गया है।

कृष्णभक्तिकालीन कवियो द्वारा उनके काव्य में अपनाई गई गायन-प्रणालियों को निश्चित रूप से प्रमाणित किया गया है। सगीत ग्रथो तथा प्राचीन बाह्य आधारो की कसौटी पर कृष्णभक्तिकालीन कवियो के काव्य में प्राप्त उल्लेखो तथा पदो के स्वरूप और गति के निर्धारण द्वारा यह सिद्ध करने की चेष्टा की गई है कि कृष्णभक्तिकालीन कवियो ने ध्रुवपद, धमार, भजन-कीतन और विष्णुपद-सगीत की इन गायन प्रणालियो को क्यो अपनाया है। इनके पद धमार शैली में गाये जा सकते हैं अथवा नही इसको सिद्ध करने के लिये कुछ पदो को तालबद्ध रूप में बाँध कर दिखाया गया हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रस्तुत अध्याय हिंदी साहित्य के शोध क्षेत्र में एक नितात नवीन, मौलिक और गवेषणात्मक रूप में प्रकट हो रहा है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि प्रस्तुत ग्रथ के अन्तर्गत हस्तलिखित प्रतियो से जो पद उद्धृत किये गये हैं वे अपने मूल हस्तलेख में प्राप्त अपरिष्कृत रूप में ही है जिनमें कही कही गति, यति भग आदि दोष स्पष्ट है। शब्द के अपरिष्कृत रूप भी पर्याप्त मात्रा में आये है। कीडो के द्वारा विनष्ट किये जाने अथवा जीर्ण अवस्था में होने के कारण कही-कही मूल प्रति से पूर्ण शब्द का भास नही होता। ऐसे शब्दो के स्थानो को रिक्त छोड दिया गया है। मूल हस्तलिखित प्रतियो में कही-कही पृष्ठो तथा पदो की सख्या का उल्लेख नही किया गया है अत ऐसे प्रसगो में केवल मूलप्रति की सख्या के नाम का उल्लेख मात्र ही किया गया है, पृष्ठ अथवा पद सख्या का उल्लेख नही किया जा सका है।

सभव है ग्रथ में आई हुई कुछ पुनरावृत्तियाँ खटकने वाली प्रतीत हो। उनके विषय में लेखिका का विनम्र निवेदन है कि प्रस्तुत अध्ययन में कृष्णभक्तिकालीन साहित्य के सभी कवियो की सगीत के समस्त अगो के दृष्टिकोण से अलग-अलग रूप में अथवा प्रत्येक कवि के उदाहरण प्रस्तुत करके काव्य-समीक्षा की गई है। अत प्रत्येक प्रसग में कवि तथा रचनाओ के नामो, पदो के उदाहरणो, सगीत के उपागो, भेद प्रभेदो तथा पारिभाषिक शब्दो, प्रसगो के शीर्षको तथा कुछ विषयो की पुनरावृत्ति हो गई है। प्रथम, द्वितीय और तृतीय अध्याय में प्रस्तुत निबध के समय, सीमा, क्षेत्र, स्वरूप विषय से सम्बद्ध उपकरणो, काव्य आलोचना के सिद्धातो तथा दृष्टिकोणो से परिचित कराने का प्रयास किया गया है और उन्ही के आधार पर आगे के अध्यायो में विस्तृत समीक्षा की गई है। अत इन सब की पुनरुक्ति हो जाना अनिवार्य हो गया है।

इस विवेचन के विभिन्न प्रसंगों में जिन विद्वानों की कृतियों अथवा विचारधारा की आलोचना हुई है उनके प्रति लेखिका के हृदय में अत्यधिक सम्मान है। साथ ही विद्वानों की जिन कृतियों से सहायता ली गई है उनके प्रति लेखिका अत्यधिक कृतज्ञ है।

आदरणीय डा० दीनदयालु जी गुप्त, श्री ब्रजरत्नदास जी और श्री बालकृष्णदास जी के सौजन्य से लेखिका को जो हस्तलिखित पद-संग्रह देखने के लिए प्राप्त हुए हैं उनके लिए वह अत्यधिक आभारी है। श्री सतीश चन्द्र काला (अध्यक्ष प्रयाग-संग्रहालय), श्री रायकृष्णदास जी (अध्यक्ष कलाभवन बनारस), सेठ गोपीकृष्ण कनोडिया, हिंदी-संग्रहालय हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, काशीनागरी प्रचारिणी सभा, एशियाटिक सोसाइटी कलकत्ता के अधिकारियों तथा बंगीय हिंदी परिषद के अभिभावक आचार्य ललिताप्रसाद जी सुकुल के प्रति लेखिका हृदय से कृतज्ञ है जिनके उदार सौजन्य से उसे हस्तलिखित तथा दुष्प्राप्य हिंदी तथा अंग्रेजी के संगीत संबंधी ग्रंथों के अवलोकन और अध्ययन तथा रागमाला चित्रों के निरीक्षण और प्राप्ति में अमूल्य सहायता प्राप्त हुई है। लेखिका स्व० आचार्य पं० ललिता प्रसाद जी सुकुल, ठाकुर जयदेव सिंह, पं० ओंकारनाथ ठाकुर, श्री राजबली पांडे, श्री ब्रजरत्नदास जी, श्री कुमुद चन्द जी, श्री सीतासरन सिंह जी की अत्यधिक आभारी है जिनके ममत्वपूर्ण व्यवहार, महत्वपूर्ण सुझावों सम्मतियों, विवेचनों और विचारों के अभाव में प्रस्तुत ग्रंथ का भली प्रकार से सम्पन्न हो सकना दुष्कर था।

इसके अतिरिक्त लेखिका नेशनल लाइब्रेरी कलकत्ता, पब्लिक लाइब्रेरी प्रयाग, प्रयाग विश्वविद्यालय पुस्तकालय, काशी विश्वविद्यालय पुस्तकालय, टैगोर लाइब्रेरी, लखनऊ विश्वविद्यालय, एसेम्बली लाइब्रेरी, पब्लिक लाइब्रेरी तथा मैरिस कालेज पुस्तकालय के अधिकारियों के प्रति अनुगृहीत है जिनके सहयोग तथा विशेष सुविधाओं के प्रदान करने के कारण प्रस्तुत ग्रंथ के पूर्ण होने में अत्यधिक सहायता मिली।

लखनऊ विश्वविद्यालय के अधिकारियों के प्रति लेखिका बहुत विनीत है जिन्होंने 'फेलोशिप' प्रदान कर इस ग्रंथ को दो वर्ष (सन् १९५३-५५ ई०) में ही सम्पूर्ण करने में विशेष सहायता दी।

अंत में लेखिका का विनम्र कथन है कि वह अपने आदरणीय गुरुवर डा० विपिनविहारी जी त्रिवेदी को किन शब्दों में धन्यवाद दे और किस रूप में कृतज्ञता प्रकट करे जिनके पथ-प्रदर्शन, प्रोत्साहन और उत्साहपूर्ण निरीक्षण के अभाव में प्रस्तुत ग्रंथ का इतने शीघ्र तथा इस रूप में पूर्ण होना दुष्कर ही नहीं वरन् नितांत असंभव ही था। उनसे कभी उऋण नहीं हो सकती और होना भी नहीं चाहती। उनकी ज्ञान-गरिमा की शीतल सुखद छाया मुझे आजीवन प्रेरणा देती रहे यही कामना है।

सबसे अंत में कविवर धनपाल के शब्दों में विद्वज्जनों एवं कला-मर्मज्ञों से मेरी विनती है कि देवी भारती के मंदिर में की हुई साधना प्रस्तुत ग्रंथ के रूप में उनके सामने है, इसमें आई हुई त्रुटियों का प्रक्षालन कर वे इसे सम्हाल लें—

'बुधजन संभालमि तुम्ह तेत्थु'।

—उषा गुप्ता

विशेष चिह्न

> यह चिह्न पूर्वरूप से पररूप के परिवर्तन को बताता है।

जैसे – श्री हर्ष > सीहड

< यह चिह्न पररूप से पूर्वरूप के परिवर्तन को बताता है।

जैसे – सीहड < श्री हर्ष

× यह चिह्न ताल की सम दिखाता है।

० यह चिह्न ताल का खाली स्थान दिखाता है।

जिस स्वर के नीचे यह चिह्न हो वह मन्द्र सप्तक का स्वर होता है।

जैसे – ऩि, ध़, प़

जिस स्वर के ऊपर यह चिह्न हो वह तार सप्तक का स्वर होता है।

जैसे – सां, रें, गं

– जिस स्वर के नीचे यह चिह्न हो उसे कोमल समझना चाहिए।

जैसे – <u>रे</u>, <u>ग</u>, <u>ध</u>, <u>नि</u>

'म॑' के ऊपर यदि यह चिह्न हो तो उसे तीव्र स्वर समझना चाहिए।

इस चिह्न के अन्तर्गत जितने स्वर और बोल हों उन्हें एक मात्रा का समझना चाहिए।

जैसे – सरेगम, धागे, तिरकिट।

प्रथम अध्याय

मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में कृष्णभक्तिशाखा की स्थापना और उसका क्षेत्र

"यो तो भक्ति का इतिहास तथा उसकी मीमासा बहुत लम्बी है। भक्तिमार्ग केवल मध्य युग की ही उपज नही। 'नारदीय पचरात्र' और 'शाण्डिल्य सूत्र' के द्वारा निर्धारित आध्यात्म का यह मार्ग अपनी प्राचीनता का दावा पुष्ट आधारो पर उस समय से करता है जब ईसाई और इस्लाम धर्म अपनी शैशवावस्था में शायद पालनो में ही क्रीडा कर रहे थे।"[1] किन्तु कृष्ण का इतिहास भी कम प्राचीन नही है। "कृष्ण का इतिहास स्वय ही एक बहुत उलझी हुई गुत्थी है। यो तो कृष्ण-नाम 'ऋग्वेद सहिता' मे भी पाया जाता है। ब्राह्मण और उपनिषद् भी कृष्ण के नाम को अपने वक्ष पर आदरपूर्वक अकित किये देखे जाते हैं विष्णुपुराण, ब्रह्मवैवर्त्त पुराण और भागवत् पुराण वैष्णव धर्म के सर्वविदित आधार है। इनमें विष्णु ही प्रधान देवता माने गये है और ब्रह्मवैवर्त्त और भागवत पुराण में तो विष्णु के अवतार कृष्ण के चरित्र का ही सबसे अधिक महत्व है। • • महाभारत और उपर्युक्त तीनो पुराण कृष्ण-चर्चा से आद्योपान्त भरे पडे है।"[2] इस प्रकार कृष्ण-चरित्र की महत्ता भक्त जनो की कृतियो में प्राचीन युग से ही निरन्तर प्रतिपादित होती आई है।

हिन्दी में विक्रम की १५ वी शताब्दी के अन्तिम भाग से लेकर १७ वी शताब्दी के अन्त तक सगुण और निर्गुण नाम से भक्ति-काव्य की दो धाराओ के अन्तर्गत (१) कृष्ण

---

१ मीरा-स्मृति ग्रथ, कृष्णभक्ति परपरा और मीरा, आचार्य ललिताप्रसाद सुकुल, पृ० १६६ तथा १८४

२ मीरा-स्मृति-ग्रथ, कृष्णभक्ति परपरा और मीरा, आचार्य ललिताप्रसाद सुकुल, पृ० २०३

भक्ति शाखा, (२) रामभक्ति शाखा, (३) ज्ञानाश्रयी शाखा तथा (४) प्रेममार्गी सूफी शाखा—ये चार शाखायें स्पष्ट रूप से प्रचलित लक्षित होती हैं।[1]

कृष्णभक्ति शाखा के भक्तों ने ब्रह्म के 'सत्' और 'आनन्द' स्वरूप का साक्षात्कार कृष्ण के रूप में इस वाह्य जगत के व्यक्त क्षेत्र में किया। अपनी माधुर्य भावना से परिपूर्ण अथवा प्रेम-लक्षणा-भक्ति के लिए उन्होंने कृष्ण के मधुर रूप तथा भागवत् में वर्णित कृष्ण की ब्रज-लीला को स्वीकार किया।

कृष्ण भक्तों के आराधना-क्षेत्र में यद्यपि साध्य की एकता थी अर्थात् सभी ने कृष्ण को अपने आराध्य के रूप में ग्रहण किया था किन्तु उनकी सेवा-विधि तथा कृष्ण के विभिन्न रूपों सम्बन्धी मान्यताओं में थोड़ा बहुत अन्तर था जिसके कारण निम्नलिखित प्रमुख सम्प्रदायों की स्थापना हुई—

(१) वल्लभ सम्प्रदाय,
(२) गौड़ीय सम्प्रदाय,
(३) राधावल्लभीय सम्प्रदाय,
(४) हरिदासी अथवा सखी सम्प्रदाय और
(५) निम्बार्क सम्प्रदाय।

इन्हीं सम्प्रदायों के अन्तर्गत अनेक प्रतिभावान कवियों का उदय हुआ जिन्होंने हिन्दी के कृष्णभक्तिकालीन साहित्य को श्री-सम्पन्न किया। प्रस्तुत निबंध में हम १५ वीं शताब्दी के अन्त से लेकर १७ वी शताब्दी के अन्त तक के उन्हीं कृष्णभक्त कवियों का विवेचन करेंगे, जिन्होंने या तो एकमात्र पदावली साहित्य ही लिखा है अथवा छंदों के साथ पदों में भी थोड़ी बहुत रचना अवश्य की है। कृष्णभक्ति कालीन साहित्य के अन्तर्गत केवल पदावली साहित्य की ही विस्तृत समीक्षा की जायेगी।

कृष्णभक्तिकालीन कवि और उनकी काव्य-कृतियों का उल्लेख

वल्लभ-सम्प्रदाय

"विक्रम की १६ वीं शताब्दी में विष्णु स्वामी सम्प्रदाय की उच्छिन्न गद्दी पर श्री वल्लभाचार्य जी बैठे और उन्होंने श्री विष्णु स्वामी के सिद्धान्तों से प्रेरणा लेकर शुद्धाद्वैत सिद्धान्त तथा भगवद् अनुग्रह अथवा पुष्टि द्वारा प्राप्त प्रेम-भक्ति के मार्ग की स्थापना की।"[2]

वल्लभाचार्य जी ने प्रेम-लक्षणा-भक्ति को अत्यधिक महत्ता प्रदान की और उसको

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ७०
२. अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, डा० दीनदयालु गुप्त, भाग १, पृ० ७०

प्राप्त करने के लिए नवधाभक्ति-श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवा, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन का प्रतिपादन किया। इस सम्प्रदाय में कृष्णभक्ति प्रमुख है। यद्यपि इस सम्प्रदाय के कवियों ने युगल स्वरूप की लीलाओं का चित्रण भी किया है किन्तु वल्लभ सम्प्रदाय में राधा भगवान की आह्लादिनी शक्ति अथवा रस शक्ति के रूप में ही मान्य हैं। अतः जहाँ कहीं भी वल्लभ सम्प्रदायी कवियों ने राधा की स्तुति की है वहाँ उनसे कृष्ण की भक्ति ही मांगी है।

वल्लभ-सम्प्रदाय में अष्टछाप के कवि विशेष प्रसिद्ध हैं। अष्टछाप के अन्तर्गत सूरदास, परमानन्ददास, कुम्भनदास, कृष्णदास अधिकारी, नन्ददास, चतुर्भुजदास, गोविन्दस्वामी तथा छीतस्वामी ये आठ कवि आते हैं।[1] इनमें से प्रथम चार श्री वल्लभाचार्य जी के शिष्य थे और अन्तिम चार श्री विट्ठलनाथ जी के।

सूरदास–सूरदास का जन्म समय सं० १५३५ वैसाख सुदी पंचमी[2] और गोलोकवास लगभग सं० १६३८ अथवा १६३९ वि० है।[3]

सूरदास की तीन रचनायें–(१) सूरसागर (२) सूर-सारावली तथा (३) साहित्य-लहरी प्रामाणिक मानी जाती हैं।[4] सूरसागर सूर द्वारा राग-रागिनियों में गाये गये पदों का विशाल संग्रह है। सूर-सारावली काफी राग में गाई गई है। वंदना के बाद इसमें सरसी और सार छंदों में ११०६ द्विपद छन्द दिये हुए है। साहित्य लहरी कवि के दृष्टकूट पदों का संग्रह है। इसमें राग-रागिनियों का उल्लेख नहीं है।

परमानन्ददास–परमानन्ददास की जन्मतिथि सं० १५५० वि० अगहन सुदी ७ सोमवार है।[5] और उनकी मृत्यु लगभग सं० १६४० वि० में हुई।[6]

परमानन्ददास की प्रामाणिक रचना 'परमानन्दसागर' है।[7] उसी के पद पृथक्-पृथक् रूप से छपे तथा हस्तलिखित कीर्तन-संग्रहों में मिलते हैं। डा० दीनदयालु गुप्त जी ने कांकरौली तथा नाथद्वारा के पद-संग्रहों से लगभग ४८६ पद छांट कर परमानन्ददास के पदों का एक हस्तलिखित प्रामाणिक पद-संग्रह तैयार किया है।

---

१ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, डा० दीनदयालु गुप्त, (भाग १), पृ० १–२
२ वही, पृ० २१२
३ वही, पृ० २१६
४ वही, पृ० २६८
५ वही, पृ० २२६
६ वही, पृ० २३०
७ वही, पृ० ३११

कुंभनदास—कुंभनदास का जन्म सं० १५२५ वि०[1] और गोलोकवास लगभग संवत् १६३९ वि० है।[2] कुंभनदास का कोई ग्रंथ उपलब्ध नहीं है। छपे रूप में इनके कुछ पद वल्लभ सम्प्रदायी कीर्तन-संग्रह भाग १, २ तथा ३ मे मिलते हैं। इसके अतिरिक्त कुंभनदास जी के दो हस्तलिखित पद-संग्रह कांकरोली-विद्या-विभाग तथा नाथद्वारा के निजी पुस्तकालय में सुरक्षित है।[3] उक्त हस्तलिखित संग्रहों के लगभग ९४ पद डा० दीनदयालु गुप्त जी के पास हैं।

कृष्णदास अधिकारी—कृष्णदास का जन्म लगभग सं० १५५२ वि०[4] तथा निधन सं० १६३२ से १६३८ वि० के मध्य[5] मे हुआ। कवि की प्रामाणिक रचना केवल वल्लभ सम्प्रदायी केन्द्रों में हस्तलिखित तथा छपे कीर्तन रूप में पाये जानेवाले पद-संग्रह हैं।[6] डा० दीनदयालु गुप्त ने हस्तलिखित तथा छपे कीर्तन-संग्रहों मे से कृष्णदास अधिकारी के लगभग २०० पद छाँट कर एकत्र किये हैं।

नंददास—नंददास का जन्म लगभग सं० १५९० वि०[7] तथा निधन सं० १६३९ वि० के लगभग[8] हुआ। नंददास के निम्नलिखित १४ ग्रंथ उनकी प्रामाणिक रचना माने गये हैं—[9]

(१) रस मंजरी (२) मान मंजरी अथवा नाममाला (३) अनेकार्थ मंजरी
(४) दशमस्कंध भाषा (५) श्याम सगाई (६) गोवर्द्धन लीला
(७) सुदामा चरित (८) विरह मंजरी (९) रूप मंजरी
(१०) रुक्मिणी मंगल (११) रासपंचाध्यायी (१२) भँवर गीत
(१३) सिद्धांत पंचाध्यायी (१४) पदावली।

नंददास जी ने पदावली को ही राग-रागिनियों में बद्ध पदों में गाया है। नंददास जी की सम्पूर्ण पदावली का अभी तक कोई प्रामाणिक संस्करण प्रकाशित नहीं हुआ। श्री उमाशंकर शुक्ल जी ने अपने 'नंददास' नामक ग्रंथ में २८३ पद प्रकाशित किये हैं जो प्रामा-

---

१. अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, डा० दीनदयालु गुप्त, (भाग १), पृ० २४२
२. वही, पृ० २४४
३. वही, पृ० ३११
४. वही, पृ० २५४
५. वही, पृ० २५५
६. वही, पृ० ३२४
७. वही, पृ० २६१
८. वही, पृ० २६२
९. वही, पृ० २७२

णिक रूप से नंददास द्वारा लिखित मान्य हैं।[1] किंतु उसमें अधिकांश पदों के ऊपर राग-रागिनियों के नामों का उल्लेख नहीं किया गया है। नंददास जी के कुछ पद वल्लभ सम्प्रदाय के प्रकाशित ग्रंथ 'नित्य कीर्तन, वर्षोत्सव कीर्तन', 'वसन्तधमार कीर्तन', 'राग-रत्नाकर', तथा 'राग कल्पद्रुम' में मिलते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ स्फुट पद पुष्टिमार्गीय कीर्तनिओं के पास भी हैं। उपर्युक्त छपे ग्रंथों के आधार पर तथा फुटकर रूप से मिलने वाले पदों को लेकर श्री जवाहरलाल चतुर्वेदी जी ने नंददास के पदों का एक प्रामाणिक संग्रह तैयार किया है।[2] इसके लगभग १६० पद श्रीयुत डा० दीनदयालु गुप्त जी के पास हैं। इस पद-संग्रह में लगभग १५० पदों के ऊपर राग-रागिनियों के नामों का उल्लेख किया गया है।

चतुर्भुजदास–चतुर्भुजदास का जन्म सं० १५६७ वि०[3] तथा निधन सं० १६४२ वि०[4] में हुआ।

कवि की प्रामाणिक रचना काँकरौली तथा नाथद्वारा में प्राप्त होने वाले पद-संग्रह तथा वल्लभ सम्प्रदायी छपे कीर्तन-संग्रहों में प्राप्त पद हैं।[5] उक्त संग्रहों से डा० दीनदयालु जी गुप्त ने चतुर्भुजदास जी के लगभग १२६ पद छाँट कर एकत्र किए हैं।

गोविंदस्वामी–गोविंदस्वामी का जन्म लगभग सं० १५६२ वि० तथा गोलोकवास सं० १६४२ वि० में हुआ।[6]

गोविंदस्वामी की प्रामाणिक रचना उनके २५२ पद हैं।[7] लेखिका ने गोविंदस्वामी के २५२ पदों का एक हस्तलिखित पद-संग्रह डा० दीनदयालु गुप्त जी के पास देखा है।

छीतस्वामी–छीतस्वामी का जन्म लगभग सं० १५६७ वि० तथा निधन तिथि सं० १६४२ वि० फाल्गुन कृष्ण ८ है।[8]

कवि की प्रामाणिक रचना वल्लभ सम्प्रदायी कीर्तन-संग्रहों में छपे पद तथा डा० दीनदयालु गुप्त जी का हस्तलिखित पद-संग्रह है।[9]

---

१ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, डा० दीनदयालु गुप्त, (भाग १), पृ० ३७१
२ वही, पृ० २७२
३ वही, पृ० २६५
४ वही, पृ० २६६
५ वही, पृ० ३८५
६ वही, पृ० २७२
७ वही, पृ० ३८६
८ वही, पृ० २७८
९ वही, पृ० ३९१

गौड़ीय सम्प्रदाय

गौड़ीय सम्प्रदाय के प्रचारक श्री चैतन्य महाप्रभु थे। इस सम्प्रदाय में राधा-कृष्ण-युगल रूप के चरणों की उपासना मान्य थी। इसमें सत्संग, नाम तथा लीला-कीर्तन, व्रज-वृन्दावनवास, कृष्णमूर्ति की सेवा-पूजा आदि भक्ति के साधनों को विशेष महत्व दिया गया है। इस सम्प्रदाय के अन्तर्गत निम्नलिखित कवि हुए हैं –

गदाधर भट्ट–शिवसिंह-सरोज में गदाधर भट्ट का समय सं० १५८० वि० दिया हुआ है।[1] शुक्ल जी ने इनका रचनाकाल सं० १५८० वि० से सं० १६०० वि० के पीछे तक माना है।[2] शिवसिंह जी ने इनके एक पद (सखी हौं श्याम के रंग रँगी) का उल्लेख किया है और कहा है कि 'इनके पद राग-सागरोद्भव मे है।'[3] शुक्ल जी ने गदाधर भट्ट की काव्य-रचना का विवरण देते हुए लिखा है–"गोस्वामी तुलसीदास जी के समान इन्होंने संस्कृत पदों के अतिरिक्त संस्कृत गर्भित भाषा-कविता भी की है।[4] डा० रामकुमार वर्मा जी ने इनके स्फुट पदों का उल्लेख किया है।[5] बनारस के बालकृष्णदास जी के पास लेखिका ने गदाधर भट्ट कृत 'श्री गदाधर भट्ट जी महाराज की बानी' नामक हस्तलिखित प्रति देखी है जिसका विस्तृत वर्णन पंचम अध्याय मे किया गया है।

सूरदास मदनमोहन–मिश्रबंधुओं ने इनका रचनाकाल सं० १५९५ वि० के लगभग माना है।[6] शुक्ल जी ने इनका आविर्भाव काल सं० १६०० माना है।[7]

सूरदास मदनमोहन कृत कोई काव्य-ग्रंथ उपलब्ध नही है। हिंदी साहित्य के इतिहास-कारों तथा लेखकों ने इनके स्फुट पदों का उल्लेख किया है।[8] विभिन्न हस्तलिखित तथा छपे पद-संग्रहो में कवि के जो पद लेखिका के देखने में आये है उनका वर्णन पंचम अध्याय में किया गया है।

राधावल्लभीय सम्प्रदाय

राधा वल्लभीय सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक श्री स्वामी हितहरिवंश जी थे। इस सम्प्रदाय

---

१. शिवसिंह-सरोज, शिवसिंह सेंगर, पृ० ४०३
२. हिंदी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृ० १८२
३. शिवसिंह-सरोज, शिवसिंह सेंगर, पृ० ४०३
४. हिंदी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृ० १८३
५. हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, रामकुमार वर्मा, पृ० ७११
६. मिश्रबंधु विनोद, (प्रथम भाग), कवि संख्या ९४, पृ० ३५४
७. हिंदी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृ० १८७
८. मिश्रबंधु-विनोद, (भाग १), पृ० ३५४; हिंदी साहित्य का इतिहास, शुक्ल, पृ० १८०; हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, वर्मा, पृ० ७१२; अकबरी दरबार के हिंदी कवि, सरयूप्रसाद अग्रवाल, पृ० ४७

में राधा और कृष्ण की युगल उपासना की गई किंतु राधा की पूजा और भक्ति प्रधान रही। राधावल्लभीय सम्प्रदाय में राधाकृष्ण की कुंजलीला तथा शृंगारिक केलि को प्रधानता देने के कारण रति-क्रीडा का ही एक मात्र अवलम्ब लिया गया है। उसमें शृंगार के वियोग पक्ष का पूर्णतया अभाव है।

हितहरिवंश जी—हितहरिवंश जी का जन्म सं० १५८४ वि० में हुआ था।[१] शिवसिंह जी ने हिंदी में हितहरिवंश विरचित 'हित चौरासी धाम' ग्रंथ का उल्लेख किया है।[२] 'हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों के संक्षिप्त विवरण' में कविकृत दो ग्रंथ (१) हरिवंश चौरासी तथा (२) फुटकर वानी कहे गए हैं।[३] मिश्रबंधुओं ने भाषा में विरचित इनके ग्रंथ का नाम "चौरासी पद" लिखा है। मिश्रबंधु-विनोद के वर्णन से विदित होता है कि बाबू राधाकृष्ण दास जी ने ८४ पदों के अतिरिक्त कुछ और भी हितहरिवंश जी के पद देखे हैं।[४] हिन्दी साहित्य के अन्य इतिहासकारों तथा लेखकों ने हिन्दी में हितहरिवंश कृत 'हित चौरासी' ग्रंथ का उल्लेख किया है।[५] पं० रामचन्द्र शुक्ल ने हित चौरासी के अतिरिक्त इनकी फुटकर बानी का वर्णन भी किया है जिसमें सिद्धांत संबंधी पद हैं।[६] हस्तलिखित रूप में प्राप्त हितहरिवंश जी के ८४ पदों के जो संग्रह तथा स्फुट पद लेखिका के देखने में आये हैं उनका वर्णन पंचम अध्याय में किया गया है।

हरिराम व्यास—ओरछानरेश श्री मधुकरशाह के राजगुरु श्री हरिराम व्यास का कविताकाल मिश्रबंधुओं ने सं० १६१५ वि०[७] तथा रामचन्द्र शुक्ल ने उनका समय सं० १६२० वि० के आसपास[८] माना है। वासुदेव गोस्वामी ने व्यास जी का जन्म सं० १५६७ वि०

---

१ शिवसिंह-सरोज, पृ० ५१४, कवि संख्या १०, मिश्रबंधु-विनोद, पृ० २८५, कवि संख्या ६०, हिंदी साहित्य का इतिहास, शुक्ल, पृ० १८०, अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, डा० दीनदयालु गुप्त, (भाग १), पृ० ६६

२ शिवसिंह-सरोज, पृ० ५१४, संख्या १२

३ हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, पृ० १६७

४ मिश्रबंधु-विनोद, (प्रथम भाग), पृ० २८५

५ हिंदी भाषा और साहित्य, श्यामसुन्दरदास, पृ० ४२०, हिंदी साहित्य का इतिहास, शुक्ल, पृ० १८०, हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, वर्मा, पृ० ७१५, अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, डा० दीनदयालु गुप्त, (भाग १), पृ० ६६

६ हिंदी साहित्य का इतिहास, पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० १८१ में आये फुटकर पदों में से एक पद उद्धृत भी किया गया है किन्तु उसमें राग का नाम नहीं दिया।

७ मिश्रबंधु-विनोद, (भाग १), पृ० ३३८, कवि संख्या ७८

८ हिंदी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृ० २११

तथा कविताकाल सं० १५९० वि० से सं० १६६९ वि० तक सिद्ध किया है।[1]

मिश्रबंधुओं ने व्यास जी कृत ५ ग्रंथों का उल्लेख किया है—(१) बानी (२) रास के पद (३) ब्रह्मज्ञान (४) मंगलाचार पद (५) पद (३०० पृष्ठ छोटे)।[2] शुक्ल जी ने व्यासजी कृत रासपंचाध्यायी, पद और साखियों का वर्णन किया है।[3] वर्मा जी ने इनका एक प्रसिद्ध ग्रंथ 'व्यास की बानी' बताया है जिसमें भक्ति के पदों के साथ रासपंचाध्यायी भी है।[4] डा० दीनदयालु गुप्त जी का कथन है कि ब्रजभाषा में इनके पद बहुत प्रसिद्ध हैं।[5] वासुदेव गोस्वामी ने हिंदी में व्यास जी के दो ग्रंथ प्रामाणिक माने हैं—(१) रागमाला जिसमें ६०४ दोहे हैं तथा (२) व्यासवाणी जिसमें विविध प्रतियों के आधार पर ७५८ पद और १४८ दोहे उपलब्ध हैं।[6] व्यास जी के काव्य की समीक्षा व्यासवाणी में संग्रहीत पदों के द्वारा ही की गई है।

हरिदासी सम्प्रदाय

हरिदास स्वामी—हरिदासी सम्प्रदाय के प्रथम गुरू अलीगढ़ निवासी आसधीर जी हुए। उनके बाद इस भक्ति-पद्धति को एक स्वतंत्र सम्प्रदाय का रूप देने वाले गुरू अलीगढ़ के निकट स्थित हरिदासपुर स्थान के निवासी अष्टछाप कवियों के समकालीन स्वामी हरिदास जी हुए।[7] हरिदासी सम्प्रदाय में राधाकृष्ण की युगल उपासना सखी-भाव से मान्य थी।

हरिदास स्वामी ने दो ग्रंथों की रचना की थी (१) साधारण सिद्धांत और (२) रास के पद।[8] हरिदासी सम्प्रदाय में निम्नलिखित कवि और हुए हैं—

विट्ठलविपुल—शिवसिंह-सरोज तथा 'हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण' में विट्ठलविपुल का जन्म सं० १५८० वि० दिया है।[9] मिश्रबंधुओं ने इनका रचनाकाल सं० १६१५ वि० माना है।[10]

---

१. भक्त कवि व्यास जी, वासुदेव गोस्वामी, पृ० ४१
२. मिश्रबंधु-विनोद, पृ० ३३७
३. हिंदी साहित्य का इतिहास, पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० २१३
४. हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, राम कुमार वर्मा, पृ० ७१८
५. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, डा० दीनदयालु गुप्त, (भाग १), पृ० ६७
६. भक्त कवि व्यास जी, वासुदेव गोस्वामी, पृ० १४६
७. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, डा० गुप्त, (भाग १), पृ० ६८
८. वही, पृ० ६९
९. शिवसिंह-सरोज, पृ० ४५६ ; हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण पृ० १००
१०. मिश्रबंधु-विनोद, पृ० ३३८, कवि संख्या ७९

खोज रिपोर्ट तथा मिश्रबंधुविनोद में विट्ठलविपुल कृत 'विट्ठलविपुल जी की बानी' ग्रंथ का उल्लेख है।[४] 'विट्ठलविपुल जी की बानी' नामक ग्रंथ की जो हस्तलिखित प्रतियाँ लेखिका के देखने में आई हैं उनका वर्णन पंचम अध्याय में किया गया है।

बिहारिनदास—'हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण' में बिहारिनदास को १७ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में माना है।[२] किंतु १९०९–१०–११ की खोज रिपोर्ट में इन्हें १६ वीं शताब्दी में बताया गया है।[३] मिश्रबंधुओं ने इनका कविताकाल सं० १६३० वि० माना है।[४] हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों के संक्षिप्त विवरण में विट्ठलविपुल कृत दो ग्रंथों का उल्लेख है—(१) समय प्रबंध-इसमें ४४८० श्लोक हैं और छप्पै दोहा आदि दिए हुए हैं, (२) श्री बिहारिनदास की बानी।[५] मिश्रबंधुओं ने इनके दो ग्रंथों (१) साखी, जिसमें ६५० छंद हैं तथा (२) ११६ पदों के ग्रंथ का वर्णन किया है।[६] 'श्री बिहारिनदास जी की बानी' नामक हस्तलिखित रचना का वर्णन पंचम अध्याय में किया गया है।

निम्बार्क सम्प्रदाय

निम्बार्क सम्प्रदाय के प्रचारक श्री निम्बार्काचार्य जी थे। वल्लभ और चैतन्य सम्प्रदायों की भाँति इसमें भी मधुर भाव को उत्कृष्टता प्रदान की गई है। निम्बार्क सम्प्रदाय के उपास्यदेव व्रजकृष्ण हैं जो अपनी प्रेम और माधुर्य की अधिष्ठात्री शक्ति राधा तथा अन्य आह्लादिनी गोपी स्वरूपा शक्तियों से परिवेष्टित रहते हैं। निम्बार्काचार्य जी ने युगल उपासना के साथ राधा की उपासना पर विशेष महत्व दिया है।

श्री भट्ट – 'शिवसिंह सरोज' तथा 'हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण' में श्री भट्ट का समय सं० १६०१ वि० माना गया है।[७] मिश्रबंधुओं ने भट्ट जी का कविताकाल सं० १६३० वि० के लगभग दिया है।[८] पं० रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास में श्री भट्ट का जन्म सं० १५९५ वि० तथा कविताकाल सं० १६२५ वि० के लगभग स्वीकार किया है।[९]

---

१ हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, पृ० १००, मिश्रबंधु-विनोद, पृ० ३३८
२ वही, पृ० १००
३ खोज रिपोर्ट, सन् १९०९–१०–११, पृ० ५८
४ मिश्रबंधु विनोद, पृ० ३५२, कवि संख्या ८८
५ हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, पृ० १००
६ मिश्रबंधु-विनोद, पृ० ३५२
७ शिवसिंह सरोज पृ० ५००, हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, पृ० १०१
८ मिश्रबंधु विनोद, पृ० ३५०, कवि संख्या ८७
९ हिंदी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृ० २१०

श्री भट्ट जी ने 'युगलशतक' ग्रंथ की रचना की ।[1] युगलशतक ग्रंथ की जिन हस्तलिखित प्रतियों का लेखिका ने निरीक्षण किया है उनका विवरण पंचम अध्याय में है । मिश्रबंधुओं तथा शुक्ल जी ने कवि कृत 'आदि वाणी' नामक ग्रंथ का भी उल्लेख किया है ।[2] किंतु वह ग्रंथ लेखिका के देखने में नही आया ।

परशुराम—'शिवसिंह सरोज' तथा 'हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण' में परशुराम का जन्म समय सं० १६६० वि० दिया है ।[3] शिवसिंह जी ने परशुराम कृत स्फुट पदो का उल्लेख किया है ।[4] 'हस्तलिखित हिंदी पुस्तको का संक्षिप्त विवरण' में इनके 'वैराग्य निर्णय' ग्रंथ का उल्लेख है ।[5]

सन् १९१२–१३–१४ की खोज रिपोर्ट मे परशुराम कृत 'परशुरामसागर' ग्रंथ का वर्णन किया गया है ।[6] सन् १९३४–३५–३६ की खोज रिपोर्ट में इनके निम्नलिखित १३ ग्रंथ कहे गए है –

(१) तिथिलीला (२) वारलीला (३) बावनीलीला (४) प्रियबतीसी
(५) नाथलीला (६) रोगरथनामलीला (७) मावनिषेधलीला (८) हरिलीला
(९) लीलाममभनी (१०) नक्षत्रलीला (११) निजरूपलीला (१२) अमरबोध
(१३) पदावली ।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा में सुरक्षित परशुराम कृत 'रामसागर' ग्रंथ की हस्तलिखित प्रति लेखिका के देखने में आयी है । प्रति से ग्रंथ के निर्माणकाल, लिपिकार तथा लिपिकाल का कोई पता नही चलता । 'रामसागर' में विभिन्न शीर्षकों तथा प्रकरणों के अन्तर्गत बहुत सी लीलायें दी हुई है उसमें ऊपर लिखे सभी ग्रंथ आ गए हैं । इन लीलाओं के अतिरिक्त 'रामसागर' में विभिन्न राग-रागिनियों में कुछ पद भी दिए हुए है जिनका वर्णन पंचम अध्याय में किया गया है ।

सम्प्रदाय मुक्त कवि

इस काल के कृष्ण-साहित्य के अध्ययन में हमें ऐसी विपुल पदावली-सामग्री भी

---

१. हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, पृ० १७१; हिंदी साहित्य का इतिहास शुक्ल, पृ० २१०; हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, रामकुमार वर्मा, पृ० ५९७

२. मिश्रबंधु-विनोद, पृ० ३१५; हिंदी साहित्य का इतिहास, शुक्ल, पृ० २१०

३. शिवसिंह-सरोज, शिवसिंह सेंगर, पृ० ४५१; हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, पृ० ८५

४, शिवसिंह-सरोज, शिवसिंह सेंगर, पृ० ४५१

५. हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, पृ० ८५

६. खोज-रिपोर्ट सन् १९१२–१३–१४

मिलती हैं जो अपने तत्व विवेचन में कृष्ण लीलाओं से ही सम्बद्ध हैं किंतु उनके गायक किसी सम्प्रदाय विशेष के अन्तर्गत परिगणित नहीं किये गये हैं। और न जिनके विषय में कोई ऐसा आधार ही प्राप्त है जिसके अनुसार उन्हें किसी विशेष सम्प्रदाय से सम्बद्ध किया जाये। किंतु इस कोटि की सामग्री अपना काव्यगत महत्व तो रखती ही है और साथ ही साथ उसमें संगीततत्व भी प्रचुर मात्रा में है इसलिए इस सामग्री का अध्ययन भी आवश्यक माना गया है। इस कोटि के प्रधान कवि निम्नलिखित हैं—

मीराबाई—मीरा का जन्म सं० १४९८ से १५०३ वि० के भीतर माना जाता है।[1] मीरा कृत तीन रचनायें प्रसिद्ध हैं—(१) गीत गोविंद की टीका, (२) नरसी जी रो मायरो और (३) राग गोविंद। किंतु इन ग्रंथों की प्रामाणिकता में संदेह है।[2] मीरा के स्फुट पदों की रचना ही उनकी प्रामाणिक कृति मानी गई है। मीरा के प्रचलित पदों के अनेक संग्रह हिंदी तथा भारत की अन्य विविध भाषाओं में प्राचीन काल से लेकर आज तक उपलब्ध हुए हैं किंतु उनमें से अधिकांश प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर संगृहीत न होने के कारण प्रामाणिकता की कसौटी पर खरे नहीं उतरते।[3] मीरा-स्मृति-ग्रंथ में 'मीरा पदावली' नामक प्रकरण में प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर मीरा के १०३ पदों का संग्रह प्रकाशित किया गया है। यही मीराकृत पदों का प्रामाणिक संग्रह माना जा सकता है। मीरा के काव्य की समीक्षा प्रायः इसी संग्रह के आधार पर की गई है।

राजा आसकरण—आइने अकबरी में अबुलफज़ल ने प्रभावशाली सामन्तों तथा राजाओं की सूची में राजा आसकरण का उल्लेख किया है।[4] शिवसिंह-सरोज में इनका जन्म सं० १६१५ वि० दिया है।[5] मिश्रबन्धुओं ने इनका रचनाकाल सं० १६०६ वि० माना है।[6]

राजा आसकरण विरचित कोई ग्रंथ उपलब्ध नहीं है। हिंदी साहित्य के इतिहासकारों ने इनके स्फुट पदों का ही उल्लेख किया है।[7] हस्तलिखित तथा छपे रूप में इनके जो पद उपलब्ध हुए हैं उनका वर्णन पंचम अध्याय में है।

गग ग्वाल—तासी, शिवसिंह सेंगर, श्यामसुंदरदास, रामचन्द्र शुक्ल किसी ने भी अपने इतिहास ग्रंथ में गग ग्वाल का उल्लेख नहीं किया। मिश्रबंधु विनोद में गग उपनाम

---

१ मीरा-स्मृति ग्रंथ, मीरा—'निरुक्त', आचार्य ललिताप्रसाद सुकुल, पृ० ४३
२ वही, पदावली परिचय, पृ० ८०
३ वही, " " " पृ० ख०
४ आइने अकबरी, (भाग १), पृ० ५३१
५ शिवसिंह सरोज, शिवसिंह सेंगर, पृ० ३०६
६ मिश्रबंधु विनोद, (भाग १), पृ० ३५६, कवि संख्या १०२
७ शिवसिंह-सरोज, शिवसिंह सेंगर, पृ० ३७९, मिश्रबंधु विनोद, पृ० ३/५

गंग ग्वाल का वर्णन है और उनका कविता काल सं० १६३५ वि० के लगभग माना है।[1] किंतु मिश्रबंधुओं ने गंग ग्वाल के किसी काव्य-ग्रंथ, पदसंग्रह अथवा स्फुट पदों का उल्लेख नहीं किया है।

गंग ग्वाल कृत दान-लीला, राधा जी की जन्म-लीला, मोती-लीला तथा स्फुट पद लेखिका के देखने में आये हैं। (१) दानलीला (२) राधा जी की जन्म लीला तथा (३) मोती-लीला, इन तीनों ग्रंथों की हस्तलिखित प्रतियाँ ब्रजरत्नदास जी के पास हैं। ग्रंथों के लिपिकाल का समय तथा लिपिकार का नाम ज्ञात नहीं होता। दान-लीला के अंत में लिखा है– "इ.........लीला गंग ग्वाल कृत संपूर्ण। मीती आसा ·......" यहाँ से कीड़ों ने काट दिया है अतः आगे पढ़ा नही जाता। ब्रजरत्नदास जी ने अपने नोट में इसका लिपिकाल आपाढ़ व० ५ सं० १८२४ वि० लिख रखा है। उनका कहना है कि उनके देखने के बाद ही इस ग्रंथ को किसी तरह कीड़ों ने काट दिया है अतः अब लिपिकाल नही पढ़ा जाता।

ये तीनों रचनायें छंदों में हैं। इनमें राग-रागिनियो का उल्लेख नही है। हस्तलिखित तथा छपे पद-संग्रहो मे गंग ग्वाल का एक स्फुट पद प्राप्त होता है उसका वर्णन पंचम अध्याय में किया गया है।

कृष्णभक्तिकालीन कवियों के संगीत-ज्ञान का परिचय

किसी भी कवि के संगीत-ज्ञान तथा संगीत संबंधी घटनाओं की जानकारी अंतःसाक्ष्य अर्थात् उनकी रचनाओं में उपलब्ध आत्मविषयात्मक उल्लेखों तथा प्राचीन बहिःसाक्ष्य इन दो आधारों पर होती है।[2] जहाँ तक अंतःसाक्ष्यों[3] का प्रश्न है उनके द्वारा कहीं-कहीं यह संकेत तो अवश्य मिलता है कि कृष्णभक्तिकालीन कवि अपने पदों को गाया करते थे किन्तु इसके अतिरिक्त अन्य संगीत सम्बन्धी घटनाओं तथा इन कवियों के संगीत गुरु कौन थे, इन्होंने संगीत की शिक्षा कहाँ पाई आदि प्रश्नों से सम्बद्ध विवरण इन कवियों के आत्मविषयात्मक उल्लेखों मे नहीं मिलते। बाह्य आधारभूत ग्रंथों[4] में अवश्य कुछ कृष्णभक्तिकालीन कवियो के संगीत-ज्ञान पर कहीं-कहीं प्रकाश डाला गया है। इनमें जिन कवियों के सम्बन्ध में जो वृतांत उपलब्ध होते हैं उन्हीं के आधार पर आगे की पंक्तियों मे उन कृष्णभक्तिकालीन कवियो के संगीत-ज्ञान की रूपरेखा प्रस्तुत की जायेगी।

---

१. मिश्रबंधु-विनोद, (भाग १), पृ० ३८५
२. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, डा० दीनदयालु गुप्त, भाग १, पृ० ८१
३. कृष्णभक्तिकालीन कवियों के संगीत संबन्धी आत्मविषयात्मक उल्लेख प्रस्तुत निबंध के चतुर्थ अध्याय में दिए गए हैं।
४. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, डा० दीनदयालु गुप्त, भाग १, पृ० १०८

सूरदास

यों तो अष्टछाप के आठों कवि उच्चकोटि के भक्त, कवि तथा गवैये थे किन्तु इनमें सर्वश्रेष्ठ स्थान सूरदास का ही है। "आचार्यों की छाप लगी हुई जो आठ वीणायें श्री कृष्ण की प्रेम-लीला कीतन करने उठीं उनमें सबसे ऊँची, सुरीली और मधुर झकार अंधे कवि सूरदास की वीणा की थी।"[१] नाभादास जी ने सूरदास के काव्य की प्रशंसा करते हुए लिखा है –

> उक्ति चोज अनुप्रास बरन अस्थिति अति भारी।
> बचन प्रीति निर्वाह अर्थ अद्भुत तुक धारी॥
> प्रतिबिंबित दिवि दृष्टि हृदय हरिलीला भासी।
> जन्म कर्म गुण रूप सबै रसना जु प्रकासी॥
> विमल बुद्धि गुनि और की, जो वह गुण श्रवणनि धरै।
> सूर कवित सुनि कौन कवि, जो नहिं सिर चालन करै॥[२]

"*ऐसा कौन व्यक्ति है जो सूरदास जी के कवित्त को सुनकर प्रशंसा में सिर न हिला* दे। उनकी कविता में अनोखी उक्तियाँ, चोज, अनूठे अनुप्रास और सुन्दर शब्द-चयन हैं। कविता में आदि से अन्त तक प्रेम के भाव का निर्वाह किया गया है। उनकी कविता में अद्भुत अर्थ-गाम्भीर्य और मुग्धकारी तुक है। ईश्वर ने उनको दिव्यदृष्टि दी है। और इनके हृदय में हरि की लीला प्रतिभासित होती है। इन्होंने कृष्ण के जन्म, कर्म, गुण और रूप सबको अपनी दिव्य दृष्टि से देखा और अपनी रसना से उन्हें प्रकाशित किया। जो कोई सूर के गाये हुए भगवद् गुणों को सुनेगा उसकी बुद्धि विमल हो जायगी।"

नाभादास जी के उक्त कथन से यद्यपि स्पष्ट रूप से यह नहीं ज्ञात होता कि सूरदास को संगीत का ज्ञान कितना था, कहाँ उन्होंने संगीत की शिक्षा प्राप्त की किन्तु सांकेतिक रूप से यह ध्वनि अवश्य निकलती है कि सूरदास संगीत में अत्यधिक कुशल थे और उन्होंने सुन्दर पद बनाकर गाए क्योंकि नाभादास जी ने सूर के काव्य में जिन गुणों (अनुप्रास, सुन्दर शब्द चयन, तुक आदि) का समावेश किया है वे सब संगीत के उपादान हैं। इनके संयोग से काव्य में संगीत की मधुरता तथा झंकार आ जाती है। इससे यह निष्कर्ष *निकलता है कि सूरदास कुशल गायक* थे और इसी कारण अपने काव्य में उन्होंने संगीत के समस्त गुणों का समावेश कर दिया। सूर की प्रतिभा को लक्ष्य कर नाभादास ने कहा है –

> सूर कवित सुन कौन कवि जो नहिं सिर चालन करै।

इससे भी विदित होता है कि सूर के पदों में इतना अधिक संगीत निहित

---

१ भ्रमरगीत-सार, आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल, प्रथम संस्करण, भूमिका, पृ० २

२ भक्तमाल, भक्ति रस बोधिनी, प्रियादास, छप्पय स० ७३, पृ० ८३

हैं कि उनको सुनकर सहृदय मात्र आनंद विभोर हो जाते हैं और श्रोताओं का सिर स्वतः ताल तथा सम के साथ हिल जाता है।

ध्रुवदास जी ने भी सूरदास के पद-गायन का उल्लेख किया है –

परमानंद अरु सूर मिलि गाई सब ब्रज रीति,
भूलि जात विधि भजन की सुनि गोपिन की प्रीति।[1]

वार्ता साहित्य से इनके संगीत ज्ञान पर विशेष प्रकाश पड़ता है। ८४ वैष्णवन की वार्ता से पता चलता है कि सूरदास जिस समय गऊघाट पर रहते थे उस समय बहुत सुन्दर पद बना कर गाते थे। उनसे गान विद्या सीखने के लिये बहुत से लोग उनके सेवक भी बन गए थे –

"सो गऊघाट ऊपर सूरदास जी को स्थल हुतो। सो सूरदास जी स्वामी है आप सेवक करते। सूरदास जी भगवदीय हैं। गान बहुत आछो करते ताते बहुत लोग सूरदास जी के सेवक भये हुते।"[2]

हरिराय जी के वर्णन से भी इस बात की पुष्टि होती है कि सूरदास जी गन्धर्व-विद्या में निपुण थे। उनकी स्वर-लहरी इतनी मधुर थी कि उनके अनेक सेवक हो गए थे और अपने गान के कारण वे जगत में विख्यात हो गए थे –

"सूरदास को कंठ बहोत सुन्दर हुतो। सो गान विद्या में चतुर और सगुन बतायवे में चतुर। सो उहां हूं बहोत लोग सूरदास जी के पास आवते। उहां हूं सेवक बहोत भये। सो सूरदास जगत मे प्रसिद्ध भये।"[3]

सन्तदास ने भी सूरदास के गान, कीर्तन तथा ख्याति की प्रशंसा की है –

सूर के समान और भक्त नाहीं पाइये।
सेवक श्री वल्लभ के तिहूं लोक गाइये।
× × ×
गुनी तान गाननि परिपूरन अवलोक को।[4]

सूरदास को गुणी संगीतज्ञ प्रमाणित करने का सबसे बड़ा आधार ऐतिहासिक है। सूरदास की गान विद्या की प्रशंसा अकबर तक पहुँची और वह इनसे मिलने के लिए

---

१. भक्तनामावली, छन्द सं० ६५
२. ८४ वैष्णवन की वार्ता, हरिराय, पृ० ६
३. ८४ वैष्णवन की वार्ता, हरिराय पृ० ६
४. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, डा० दीनदयालु गुप्त, भाग १, पृ० १५२

लालायित हो गया। तानसेन के साथ अकबर का सूर से मिलना इतिहास प्रसिद्ध घटना है। श्री महाराज रघुराज सिंह, मुंशी देवीप्रसाद, डा॰ दीनदयालु गुप्त आदि ने अकबर और सूर की भेंट को प्रामाणिक माना है।[1] हरिराय जी वाली भाव प्रकाश वार्ता में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि तानसेन के द्वारा सूरदास का एक पद सुनकर अकबर इतना प्रभावित हुआ कि उसने कवि को सादर मथुरा बुला कर उसका गाना सुना–

"पाछे उनके पद जहां तहां लोग सीखि के गावन लागे। सो तब (एक समय) तानसेन ने एक पद सूरदास को सीखि के अकबर बादशाह के आगे गायो। सो पद। राग नट–'यह सब जानो भक्त के लच्छन'। यह सुनि देसाधिपति अकबर ने कह्यो जो ऐसे लच्छन वारे भक्तन सों मिलाप होय तो कहा कहिये ? सो तानसेन ने कही जो–जिनने यह कीर्तन कियो है सो व्रज में रहत हैं। और सूरदास जी उनको नाम है। यह सुनि देसाधिपति के मन में आई जो कोई उपाय करि के सूरदास सों मिलिये। पाछे देसाधिपति दिल्ली तें आगरा आयो। तब अपने हलकारन सों कह्यो जो व्रज में सूरदास जी श्री नाथ जी के पद गावत हैं सो तिनकी ठीक पारिके मो को श्री मथुराजी में खबरि दीजियो और (जो) यह बात सूरदास जाने नाही।

तब उन हलकारन ने श्री नाथ जी द्वार में आय के खबरि काढी। तब सुनी जो सूरदास जी तो मथुरा जी गये हैं। सो तब वे हलकारा श्री मथुरा में आय के सूरदास को नजरि में राखे जो या समय यहां बैठे है। तब उन हलकारन ने देसाधिपति को खबरि करी जो–अजी साहब ! सूरदास जी तो मथुरा जी में हैं।

तब सूरदास कू अकबर बादशाह ने दस पाँच मनुष्य बुलायवे को पठाये। सो सूरदास जी देसाधिपति के पास आये। तब देसाधिपति ने उनको बहोत आदर सन्मान कियो। पाछे सूरदास जी सो देसाधिपति ने कह्यो जो–सूरदास जी ! तुमने विष्णुपद बहोत किये है सो तुम मोको कछु सुनावो।

तब सूरदास ने अकबर बादशाह के आगे यह पद गाया। सो पद। राग बिलावल– "मनारे तू करि माधो सो प्रीत"[2]

८४ वैष्णवन की वार्ता से भी अकबर और सूरदास के मिलन के इस प्रसंग की पुष्टि होती है।[3]

---

१ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, डा॰ दीनदयालु गुप्त, भाग १, पृ॰ २१४-१७

२ ८४ वैष्णवन की वार्ता, हरिराय, अष्टसखान की वार्ता, पृ॰ १४

३ "और सूरदास जी ने सहस्त्रविधि पद कीये हैं ताको सागर कहिये सो सब जगत में प्रसिद्ध भये। सो सूरदास जी के पद देसाधिपति नें सुने सो सुनि के यह विचारी जो सूरदास जी काहू विधि सों मिलें तो भलो। तो भगवदिच्छा ते सूरदास जी मिले। सो

वार्ता से यह भी विदित होता है कि सूरदास का गाना सुनने के अनंतर अकबर इतना मोहित हुआ कि उसने सूरदास के पदों का संकलन भी करवाया।[1]

सूरदास के संगीत गुरु कौन थे तथा उन्होंने संगीत की प्रारम्भिक शिक्षा कहाँ ग्रहण की इस विषय में किसी ग्रंथ में कोई उल्लेख नहीं है। वार्ता से विदित होता है कि जिस समय सूरदास जी अपने गाँव से चार कोस दूर स्थान पर रहते थे उस समय भी उन्हें संगीत का थोड़ा ज्ञान था। वहाँ पर उन्होंने गान विद्या का सब साज एकत्रित कर लिया था और वहाँ पर वे पद बना कर गाया करते थे।[2] जिस समय सूर गऊघाट पर रहते थे उस समय उनकी संगीत की ख्याति बहुत फैल गई थी। संगीत सीखने के लिए उनके बहुत से सेवक बन गए थे और वे स्वामी कहे जाने लगे थे। वल्लभ सम्प्रदाय में प्रवेश करने से पूर्व ही सूरदास गन्धर्व विद्या में पारंगत हो गए थे। क्योंकि वल्लभाचार्य जी से प्रथम भेंट होने पर सूरदास ने उन्हें विनय के पद गा कर सुनाये थे।[3]

पुष्टिसम्प्रदाय में दीक्षित होने के उपरान्त सूरदास वल्लभाचार्य जी के साथ गोकुल चले गए। कुछ दिनों के अनंतर वे गोवर्द्धन चले गए और वहाँ श्री नाथजी की कीर्तन सेवा आपको सौंप दी गई।

"तब श्री महाप्रभु जी अपने मन में बिचारे जो श्री नाथजी यहाँ और तो सब सेवा को मंडान भयो और कीर्तन को मंडान नाहीं कीयो है ताते अब सूरदास जी को दीजिये। तब आप श्री जी द्वार पधारे सो सूरदास जी को साथ लीये ही सो श्रीनाथ जी द्वार जाय पहुँचे।[4]

गोवर्द्धन में रहकर सूरदास श्रीनाथ जी के भजन कीर्तन तथा गान में अपने दिन व्यतीत करने लगे। हाँ बीच-बीच में वह मथुरा, गोकुल आदि स्थानों पर भी आते जाते रहते थे।

सूरदास जी सों कह्यो देसाधिपति ने जो सूरदास जी मैं सुन्यो है जो तुमने बिसन पद बहुत कीये हैं। जो मोकों परमेश्वर ने राज्य दीयो है सो सब गुनीजन मेरो जस गावत हैं तातें तुमहूँ कछू गावो। तब सूरदास ने देसाधिपति के आगे कीर्तन गायो। सो पद राग बिलावल। "मना रे तू करि माधो सों प्रीति।" यह पद देसाधिपति के आगे संपूर्ण करिके सूरदास जी ने गायो।"

८४ वैष्णवन् की वार्ता, पृ० २७६–८०

१. ८४ वैष्णवन की वार्ता, हरिराय, अष्टसखान की वार्ता, पृ० १६
२. अष्टछाप, कांकरौली, पृ० ६
३. ८४ वैष्णवन की वार्ता, पृ० २७२–७३
४. वही, पृ० २७८

परमानददास

नाभादास जी ने परमानददास जी के कीर्तन तथा गान की प्रशसा करते हुए लिखा है –

ब्रजवधू रीति कलियुग विषें, परमानद भयो प्रेमकेत ।
पौगंड बाल कैसोर गोप लीला सब गाई ।
अचरज कहा यह बात हुतो पहिलो जु सखाई ।
नैननि नीर प्रवाह, रहत रोमाच रैन दिन ।
गद्-गद् गिरा उदार स्याम शोभा भीज्यौ तन ।
सारग छाप ताकी भई, स्रवण सुनत आवेस देत ।
ब्रजवधू रीति कलियुग विषें, परमानद भयो प्रेमकेत ।[1]

परमानददास जी कृष्ण की बाल, पौगड तथा किशोर अवस्था के कीर्तन इतने सुन्दर गाया करते थे कि सुनने वाले भावमग्न हो जाते थे ।

ध्रुवदास जी ने भी परमानददास जी की गान-कला के लिए कहा है –

परमानद अरु सूर मिलि गाई सब ब्रज रीति ।
भूलि जात विधि भजन की सुनि गोपिन की प्रीति ।।[2]

यद्यपि सगीत के दृष्टिकोण से परमानददास सूरदास की भाँति विख्यात नही है किन्तु ध्रुवदास जी के उपर्युक्त कथन से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि परमानददास भी एक उच्चकोटि के गायक थे । गान विद्या में आप सूरदास से किसी प्रकार हीन नही थे ।

'भाव प्रकाश' वार्ता में भी इन्हे सगीत में निपुण कहा गया है । "और परमानददास ने अपने घर कीर्तन को समाज कियो । सो गाम-गाम में प्रसिद्ध भये । और परमानददास गान विद्या में परम चतुर हते ।"[3]

८४ वैष्णवन की वार्ता में लिखा है– "सो वे परमानददास जी बहुत योग्य भये और कवि भये । भगवत कृपा के पात्र भये । कीर्तन बहुत आछो गावते । ताते परमानद जी के सग समाज बहुत रहतो । आप स्वामी कहावते आप सेवक करते ।"[4]

वार्ता साहित्य के इन प्रसगो से यही ज्ञात होता है कि परमानन्ददास सगीत में बहुत चतुर थे । शीघ्र ही वे कीर्तनकार के रूप में विख्यात हो गए थे । सगीत गुण के कारण ये

१ भक्तमाल, भक्तिरस बोधिनी, छप्पय स० ७४, पृ० ८३
२ भक्तनामावली, पृ० ६
३ ८४ वैष्णवन की वार्ता, हरिराय (अष्टसखान की वार्ता), पृ० ३४
४ वही, पृ० २६१

स्वामी कहलाने लगे और अनेक व्यक्ति इनके शिष्य हो गए थे। सन्तदास ने परमानन्ददास के कीर्तन की प्रशंसा तथा प्रभाव का वर्णन किया है –

स्वामी परमानन्द बड़े महापुरुष हैं।

× × ×

आपु करें कीर्तन सुन्दर सु गावहीं।
जो कोउ सुने हिये हरि तोक आवहीं।
एक दिन विरहा अनुभवे बहुते महा।
वैसे ही सुर गावत अनभै वरनों कहा।

× × ×

नाम समर्पन करत भये धर परमानंद नाम।
तुम्ह कृत पद जो गाइहैं पाइये आनंद धाम।
श्री भगवत अनुक्रम कह्यो समुझाइ के।
ताही छन पद गायो एक बनाय के।[1]

इससे भी यही विदित होता है कि परमानन्ददास जी कीर्तन में अत्यन्त प्रवीण थे। उनके गाये हुए कीर्तन को जो कोई सुनता था अथवा गाता था उसको परम तुष्टि प्राप्त होती थी। इससे यह पता भी चलता है कि भगवान के प्रेम में व्याकुल होकर जब आप विरह के पद गाते थे तो भाव मग्न होकर आत्मविस्मृत हो जाते थे।

व्यास जी ने भी परमानन्ददास जी की गान-कला तथा कीर्तन-भजन का स्मरण करते हुए कहा है –

परमानंददास बिनु को अब लीला गाय सुनावै।[2]

वार्ता से ज्ञात होता है कि परमानन्ददास को नृत्य का भी ज्ञान था। गाते-गाते भावावेग में आकर वे नृत्य करने लगते थे –

"पाछे श्री नंदराय जी और गोपी ग्वाल वैष्णवन् के जूथ अपने लाल जी सब को लेके दधिकांदो किये। तब परमानंददास को चित्त आनंद में विक्षिप्त होय गयो। ता समय परमानंददास नाचन लागे और यह पद गायो।"[3]

---

१. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, डा० दीनदयालु गुप्त, भाग १, पृ० १५२
२. व्यास वाणी, प्रकाशक आचार्य श्री राधाकिशोर गोस्वामी, पृ० १४
३. ८४ वैष्णवन की वार्ता, हरिराय, सं० द्वारिकादास परीख, पृ० ५४

परमानन्ददास जी ने गान तथा नृत्य की शिक्षा कहाँ पाई तथा आपके संगीत-गुरू कौन थे इसका कुछ पता नहीं चलता। 'चौरासी वार्ता' तथा 'भाव प्रकाश' दोनों के कथनों से यह ज्ञात होता है कि वल्लभ-सम्प्रदाय में प्रवेश करने से पूर्व ही परमानन्ददास संगीत-विद्या में प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे। उनके कीर्तन की ख्याति से आकर्षित होकर मनुष्य दूर-दूर से उनका संगीत श्रवण करने के लिए आते थे। वार्ता के निम्नलिखित प्रसंग से पता चलता है कि श्री आचार्य जी महाप्रभु के सेवक जलघरिया कपूर स्वयं उनकी गान-विद्या की प्रशंसा सुन कर उनका कीर्तन सुनने के लिए गये थे और अन्त में उनके गान की प्रशंसा करते हुए लौटे थे—

"सो भगवदिच्छाते एक समय परमानन्ददास जी कन्नौज ते आए प्रयाग को आये सो प्रयाग में उतरे सो वहाँ कीर्तन बहुत आछे गावते ताते बहुत लोग कीर्तन सुनिवे को आवते और अडेल ते कार्यार्थ लोग बहुत आवते सो इनके कीर्तन सुनिके पार अडेल में जाय कहते जो परमानन्ददास जी इहां प्रयाग में आये हैं सो कीर्तन बहुत आछे गावत हैं सो श्री आचार्य जी महाप्रभून के सेवक जलघरिया कपूर छत्री सो उनके रागउ पर बहुत आसक्ति परि वे अवकाश नाहीं पावें जो परमानन्ददास जी के कीर्तन सुनिवे कूँ आवें। सेवा में अवकाश नाहीं पावें जो प्राग जाय सकें। सो एक दिन एक वैष्णव प्राग ते अडेल में आयौ सो वाने कह्यौ जो आज एकादशी है सो परमानददास जी आज जागरन करेंगे। सो या सुनिके वा जलघरिया ने अपने मन में विचारयो जो आज परमानन्ददास जी के कीर्तन सुनिवे को चलनो सो वे छत्री कपूर जलघरिया अपनी सेवा सों पहुँच के रात्रि को अपने घर आये सो घर आय के अपने मन में विचार कीयौ जो या बेर नाव तौ मिलेगी नहीं ताते कहा कर्तव्य। परि वे पेरवे में भले निपुन हुते सो मन में बिचारी जो पैरि के पार जैये। पाछे अपने घर ते चले सो श्री यमुना जी के तीर ऊपर आए ठाडे भये। तब पहनी पहर के वस्त्र सब माथे सों बांधि के श्री यमुना जी में पैर के प्रयाग आये। पाछे वस्त्र पहर के जा ठौर परमानन्ददास उतरे हुते तहाँ आये • ॥ जहाँ और सब जनें बैठे हुते तहाँ एऊ जाय बैठे। ता पाछे परमानन्ददास ने कीर्तन को प्रारम्भ कीयो। सो परमानन्द स्वामी ने विरह के ऐसे पद गाये। • विरह के ऐसे पद परमानन्द स्वामी ने सगरी रात गाये। पाछिली घडी चारि रात्रि रही तब जो जा जागरन में आये हुते सो सब अपने घर को गये। तैसेई श्री आचार्य जी महाप्रभून के सेवक एक जलघरिया कपूर हैं परमानन्द स्वामी सों 'जै सो कृष्ण स्मरण' कहि के चले और परमानंद स्वामी सों कह्यो जो जैसे हमने सुने हुते ताते अधिक देखे।"[१]

जिस समय वल्लभाचार्य जी प्रयाग के निकट अडेल नामक स्थान पर रहते थे परमानन्ददास जी संगीत में बहुत प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे। अडेल के लोगों ने उनके गीतों पर मुग्ध हो कर स्वयं वल्लभाचार्य जी से उनकी गान-कला की प्रशंसा की थी—

'सो एक समय परमानन्ददास कन्नौज तें मकर स्नान को प्रयाग में आये सो तहां रहे।

१ ८४ वैष्णवन की वार्ता, हरिराय, पृ० २९४-९५

और कीर्तन को समाज नित्य करैं, सो वहोत लोग इनके कीर्तन सुनिवे को आवते । सो पार अडेल मे श्री आचार्य जी विराजत हते । अडेल ते लोग कछू कार्यार्थ ग्राम मे आवते सो परमानंददास के कीर्तन सुनि के अडेल मे जाय के श्री आचार्य जी सों कहते जो एक परमानंद-दास कन्नौज ते आयो है सो कीर्तन वहोत आछे गावत है ।''[1]

इन प्रसंगों से इस वात की पुष्टि होती है कि वल्लभ सम्प्रदाय के सम्पर्क मे आने से पूर्व ही परमानंददास संगीत मे प्रवीण हो चुके थे ।

डा० दीनदयालु गुप्त जी ने भी परमानंददास को वल्लभ-सम्प्रदाय में प्रवेश करने से पूर्व ही संगीत-विद्या मे पारंगत माना है –

"हाँ कीर्तन करने वालों का समाज वल्लभ-सम्प्रदाय मे आने से पहले ही इनके साथ वहुत था और उस समाज मे ये स्वामी कहलाते थे ।...वार्ता से ज्ञात होता है कि कविता करने और गाने का शौक इन्हें वचपन ही से था । वल्लभ-सम्प्रदाय मे आने से पहले ही यह एक योग्य व्यक्ति, कवीश्वर, उच्चकोटि के गवैये और कीर्तनियाँ प्रसिद्ध हो गए थे । उस समय इनके कीर्तन का समाज वहुत वड़ा था । उस समाज मे परमानंददास 'स्वामी' की पदवी से सुशोभित थे......। कविता और गान विद्या सीखने के लिये इनके अनेक शिष्य हो गए थे तथा हमेशा गुणीजनों का ही इनका संग रहता था ।"[2]

इनकी ऐसी ख्याति देख कर ही आचार्य वल्लभ ने इन्हें अपने सम्प्रदाय में दीक्षित कर लिया होगा । वल्लभ-सम्प्रदाय में प्रवेश करने के उपरान्त कुछ दिन तक परमानंददास जी अडेल मे आचार्य जी के पास रह कर नवनीत प्रिय के सम्मुख कीर्तन करते रहे ।

"ता पाछे परमानंददास अडेल मे श्री आचार्य जी के पास रहे । तव श्री आचार्य जी परमानंददास सो कहें जो–अव समय समय के पद नित्य नवनीत प्रिय जी को सुनायो करो, सो यह सेवा तुमको दीनी । तव परमानंददास नित्य नये पद करिके समय-समय के श्री नवनीत प्रिय जी को सुनावते ।"[3]

तत्पश्चात वे गोकुल गये और कुछ दिन गोकुल की वाललीला के पद गाते हुए विताये । इसके उपरान्त वे आचार्य जी के साथ गोवर्द्धन चले गए । जहाँ पर आचार्य जी ने उन्हे कीर्तन की सेवा सौंप दी और ये जीवन पर्यन्त वहाँ श्रीनाथजी के कीर्तन में लीन रहे । श्रीनाथजी के कीर्तन स्वरूप ही इन्होंने सहस्रों पदों की रचना की ।

---

१. ८४ वैष्णवन की वार्ता, हरिराय, अष्टसखान की वार्ता, पृ० ३८
२. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, डा० दीनदयालु गुप्त, पृ० २२०-२१
३. ८४ वैष्णवन की वार्ता, हरिराय, पृ० ८३

"ता पाछे श्री आचार्य जी ने परमानददास को श्री गोवर्द्धन नाथ जी के कीर्तन की सेवा दीनी। सो नित्य नये पद करिके परमानददास श्रीनाथजी को सुनावते।"[१]

वल्लभाचार्य जी के शिष्य होने से पहले परमानददास जी केवल विरह के पद बना बना कर गाते थे। प्रयाग में एकादशी की रात्रि को जलघरिया कपूर के सम्मुख उन्होंने विरह के पद ही गाये थे।[२]

वल्लभाचार्य जी से भेंट होने पर इन्होंने जो भगवत्-लीला के पद गाए वे भी विरह से ही सम्बद्ध हैं –

"सो यह विचार मन में करिके परमानद स्वामी तत्काल उठि के अडेल को चले। सो परमानद स्वामी को श्री आचार्य जी के दरसन अत्यद्भुत अलौकिक साक्षात श्री कृष्ण के स्वरूप सो भये। इतने में श्री आचार्य जी आप श्री मुखते परमानद स्वामी सो आज्ञा किये जो परमानददास। कछु भगवल्लीला गावो। तब परमानददास जी ने श्री आचार्य जी को साष्टाग दडवत करिके ये पद गाये –

राग सारग

(१) कौन बेर भई चले री गोपालें।
(२) जिय की साध जिय ही रही री।
(३) यह बात कमल दल नैन की।
(४) सुधि करत कमल दल नैन की।

या भाति सो परमानददास ने विरह के पद श्री आचार्य जी के आगे गाये।"[३]

वल्लभाचार्य जी की शरण में जाने के उपरान्त परमानददास बाल-लीला के पद भी गाने लगे। वार्ता में कवि के बाल-लीला संबधी पद गाने का एक प्रसग दिया हुआ है। जिस समय परमानददास जी की आचार्य जी से भेंट हुई कवि ने उन्हें विरह के पद गा कर सुनाए। तब आचार्य जी ने उनसे बाल-लीला के पद गाने को कहा। उस समय कवि ने कहा कि उसे बाल-लीला का बोध नहीं है। तब आचार्य जी ने परमानददास को अपनी शरण में लिया और बाल-लीला के दर्शन कराए। उस समय से परमानददास बाल-लीला के पद भी गाने लगे –

"या भाति सो परमानददास ने विरह के पद श्री आचार्य जी के आगे गाये। सो सुनि के श्री आचार्य जी श्री मुख सों कहे जो परमानददास कछु बाललीला के पद गावो। तब

१ ८४ वष्णवन की वार्ता, हरिराय, पृ० ४६
२ वही, पृ० २६४-६५
३ वही, पृ० ४०

परमानंददास ने हाथ जोरि के श्री आचार्य जी सो विनती कीनी जो महाराज ! मैं बाल-लीला मे कछु समझत नाही हौं।

पाछे श्री आचार्य जी आपु पधारि भोग सराय के परमानंददास को बुलाय के श्री नवनीत प्रिय जी सन्निधान कृपा करिके नाम सुनायो ता पाछे ब्रह्मसंबंध करवायो। पाछे श्री भागवत दशमस्कंध की अनुक्रमणिका सुनाये तब परमानददास ने श्री आचार्य जी के आगे बाल-लीला के पद गाये।[१]

वार्ता से विदित होता है कि कवि आचार्य जी से सुने हुए प्रसगो के कीर्तन बना कर गाया करता था। परमानददास ने कृष्ण की बाल, पौगंड और किशोर लीला के अत्यधिक मनोरम पद गाये थे। उनके गाये हुए अधिकाश पद बाल-भाव[२], कान्ता-भाव और दास-भाव[३] की भक्ति से परिपूर्ण हैं।

कुंभनदास

भक्तमाल तथा भक्तमाल की टीकाओ मे कुंभनदास के सगीत-ज्ञान पर कुछ भी विवरण प्राप्त नही होता। ध्रुवदास जी ने इनके भक्ति रस के गान की प्रशंसा करते हुए कहा है –

कुंभन कृष्णदास गिरधर सों कीनी साँची प्रीति।
कर्म धर्म पथ छाँड़ि के गाई निज रस रीति॥[४]

कुंभनदास जी के जीवन की संगीत संबधी घटनाये ८४ वैष्णवन की वार्ता, हरिराय जी कृत भाव प्रकाश वाली ८४ वार्ता तथा श्री गोवर्द्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता में विस्तार के साथ दी हुई है। चौरासी-वार्ता में इस बात का उल्लेख है कि कुंभनदास जी गान बहुत अच्छा करते थे और स्वयं पद बना कर गाते थे –

"सो कुंभनदास कीर्तन बहुत नीके गावते जो श्री आचार्य जी महाप्रभून ने कुंभनदास जी को नाम सुनायो और ब्रह्म संबंध करवायो तब कुंभनदास जी नित्य नये पद करिके श्री नाथजी को सुनावते और श्रीनाथ जी कुंभनदास जी के घर पधारते।"[५]

१. ८४ वैष्णवन की वार्ता, हरिराय, पृ० ४०–४२
२. "या प्रकार सहस्रविधि कीर्तन परमानंददास ने किये, तासों परमानंददास के पद में बाल लीला भाव और रहस्य हू झलकत है। सो जा लीला को अनुभव परमानंददास को भयो ताही लीला के पद परमानंददास गाये।" अष्टछाप, कांकरौली, पृ० ८६.
३. "सो ऐसे कीर्तन परमानंददास ने प्रार्थना के गाये", अष्टछाप कांकरौली, पृ० ८३
४. भक्तनामावली, छंद सं० ९३, पृ० ९
५. ८४ वैष्णवन की वार्ता, पृ० ३१८

हरिराय जी ने कुम्भनदास के गान की बहुत प्रशंसा की है। उनके वर्णन से ज्ञात होता है कि पुष्टि-सम्प्रदाय में दीक्षित होने से पूर्व ही कुम्भनदास संगीत में प्रवीण थे। उनका कंठ मधुर था और वे कीर्तन बहुत सुन्दर करते थे। इसीलिए आचार्य जी ने कुम्भनदास को कीर्तन की सेवा सौंप दी थी।

"सो कुम्भनदास कीर्तन बहुत सुन्दर गावते। कण्ठ इनको बहोत सुन्दर हतो। तासों कुम्भनदास सों श्री आचार्य जी आपु कहें जो तुम समय-समय के कीर्तन नित्य श्री गोवर्द्धन नाथ जी को सुनाइयो।" [१]

श्री गोवर्द्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता में भी यही विदित होता है कि जब श्री वल्लभाचार्य जी महाप्रभु ने श्रीनाथ जी की सेवा पधराई थी तब इन्हें कीर्तनियाँ नियुक्त किया था —

"तब श्री आचार्य जी ने श्रीनाथ जी की सेवा में बंगाली ब्राह्मण हते तिनको राखे सेवा की रीत बनाई माधवेन्द्र पुरी कूं मुखिया किये और उनके शिष्यन कूं सेवा में राख दियो, कृष्णदास जी कूं अधिकार की सेवा दियें, कुम्भनदास कूं कीर्तन की सेवा दिये और श्री आचार्य जी महाप्रभून ने नित्य को नेम बांध्यो ।" [२]

वार्ता से विदित होता है कि कुम्भनदास एक विख्यात गायक थे। कुम्भनदास के पद उनके जीवन काल में ही दूर-दूर तक प्रसिद्ध हो गए थे। इनके पदों में संगीत-माधुर्य की इतनी प्रचुरता थी कि अन्य मनुष्य इनके पदों को सीखने के लिए लालायित रहते थे और सीख कर गाया करते थे। गान-विद्या के कारण कुम्भनदास की ख्याति इतनी फैल गई थी कि स्वयं अकबर ने इनके गाने की प्रशंसा सुन कर इनसे गाना सुना था —

"तब कुम्भनदास जी के पद सब जगत में प्रसिद्ध भये सो सब लोग इनके पद गावने तब इनको पद काहू कलावत ने सीख्यो सो फतेपुर सीकरी में देशाधिपति के आगे कुम्भनदास जी को कीनो भयो पद वा कलावत ने गायो सो सुन के देशाधिपति को चित्त वा पद में गड़ गयो और माथो धुनो जो ऐसे हू महापुरुष ह्वै गये हैं जिनको ऐसे दर्शन परमेश्वर के होत हैं तब वा कलावत ने कह्यो जो अबी साहब अब हू हैं सो सुनि के देशाधिपति बहुत प्रसन्न भयो और वा कलावत सो कह्यो जो वे कहां हैं तब वा कलावत ने कह्यो जो श्री गोवर्द्धन के पास जमुनावतो गांव है तहाँ वे रहत हैं तब देशाधिपति ने कह्यो जो यहां बुलावो हम उनसों मिलेंगे तब देशाधिपति ने प्यादा और असवारी कुम्भनदास के बुलायबे को भेजे।

तब कुम्भनदास मन में विचार कीयो जो बिना जाने तो निर्वाह न होयगो सो कुम्भन-

---

१ ८४ वैष्णवन की वार्ता, हरिराय, पृ० ६१
२ श्री गोवर्द्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता, हरिराय जी कृत, पृ० २०

दास जी तत्काल उहाँ ते पनहीं पहिर के चले........ सो फतहपुर सीकरी आय पहुँचे। सो देशाधिपति के डेरा हुते तहाँ गये। तब मनुष्यन ने देशाधिपति सो कह्यो जो कुंभनदास जी आये हैं तब देशाधिपति ने कुंभनदास सों कही जो कुंभनदास जी आवो बैठो .. तब इतने में देशाधिपति बोल्यो जो कुंभनदास जी तुमने विसन पद बहुत कीये हैं सो मैंने तुमको बुलायो है ताते तुम कछु विसन पद गावो। तब कुंभनदास जी तो मन में कुढ़े हुते जो विचारें कहा गाऊं। मेरी वाणी के **भोक्ता** तो श्री गोवर्द्धनधर हैं और कछू गाये बिना मेरो काम चलेगो नाही ताते ऐसो गाऊं जो कबहूं मेरो नाम न लेय काहे ते जो याके संग ते मेरे प्रभू छूटे है ताते कछू कठोर वचन कहूं जो बुरो मानेगो तो कहा करेगो। तब यह मन मे आई—**जाकों मनमोहन अंगीकार करें। एको केस खसै नहीं सिरतें जो जग बैर परें।**" यह विचारि के ता समय कुंभनदास जी ने एक नयो पद करि के गायो। सो पद—राग सारंग—**'भक्तन को कहा सीकरी सों काम'**। यह पद गायो सो देशाधिपति अपने मन में बहुत कुढ्यो और कह्यो जो इनको काहू बात को लालच होय तो मेरो जस गावें। इनको तो अपने परमेस्वर सों साँचो सनेह है। इतनो कहिके देशाधिपति ने कुंभनदास को सीख दीनी तब कुंभनदास जी उहाँ ते चले।" [1]

वार्ता से विदित होता है कि राजा मानसिंह भी कुंभनदास के गान पर मुग्ध हो गए थे। एक बार राजा मानसिंह दिग्विजय करके आगरे लौट रहे थे, रास्ते में वह मथुरा में केशवराय जी के दर्शन करते हुए गोवर्द्धन आये, वहाँ उन्होंने गोवर्द्धननाथ जी के दर्शन किये। मंदिर मे कुंभनदास जी भोग-दर्शनों के कीर्तन कर रहे थे। जैसा कोटि कन्दर्प लावण्य युक्त श्रीनाथ जी का रूप था वैसे ही सुन्दर कुंभनदास जी के कीर्तन थे। राजा मानसिंह कुंभनदास के कीर्तन से ऐसे प्रभावित हुए कि दूसरे दिन वे स्वयं चंद्रसरोवर पर कुंभनदास से मिलने गए—

"सो वे प्रभू विराजे है। आगे ताल मृदंग बाजत है। कीर्तन होत है। सो कुंभनदास जी ठाड़े-ठाड़े मणिकोठा मे दर्शन करत है और कीर्तन गावत हैं। सो राजा मानसिंह को मन वा पद में गड़ गयो हुतो। तेसोई कोटिकंदर्पलावण्यस्वरूप और तेसोई कीर्तन कुंभनदास जी करत हुते। ..... ऐसे पद कुंभनदास जी गावत है।

इतने में राजभोग के दर्शन होय चुके तब राजा मानसिंह दंडौत करिके अपने डेरा में गयो। तब कुंभनदास जी संध्या आरती के दर्शन करिके अपनी सेवा सो पहुंच के अपने घर को गये तब राजा मानसिंह अपने डेरा में आय के अपने पास के मनुष्य हुते तिनमें श्री गोवर्द्धननाथ जी के सिंगार की वार्ता करन लागे और कह्यो जो यह श्री गोवर्द्धननाथ जी के आगे कौन गावत हुतो। इनने ऐसे विसन पद गाये है जो कछू कहिवे में नाहीं आवत। तब काहू ने कही जो महाराज एक ब्रजवासी है कुंभनदास नाम है सो आपने सुने ही होयगे।

१. ८४ वैष्णवन की वार्ता, हरिराय, पृ० ३२४

देशाधिपति सो मिले हुते सो हैं । तब राजा मानसिंह ने कही जो हमहू इनसा मिलें तो आओ । तब राजा मानसिंह सवारे उठे सो श्री गिरिराज की परिक्रमा को निकसे जो परासोली आये सो परासोली में कुभनदास जी न्हाय के बैठे । इतने में श्री गोवर्द्धननाथ जी पधारे । श्रीमुख सो कहे जो कुभनदास जी हो तो एक बात कहूंगो । तब इतने में राजा मानसिंह आयो सो कुभनदास जी को प्रणाम करिके बैठो । " १

वार्ता से ज्ञात होता है कि श्री हितहरिवंश, स्वामी हरिदास आदि कुभनदास के उत्कृष्ट गायन की प्रशसा सुन कर उनसे मिलने आए थे और उन्होने उनका गान सुन कर प्रसन्न हो उनके गाने की भूरि-भूरि प्रशसा की थी --

"और एक समय कुभनदास जी को मिलबे को वृन्दावन के महत हरिवंश भृत आये सो यह जानि के आये सो महापुरुष हैं इनसो श्री ठाकुर जी बोलत हैं । बातें करत है और काव्य इनकी सुनी सो कीर्तन बहुत सुन्दर कीयें ताते ऐसे पद श्री ठाकुर जी के साक्षात्कार बिना न होय यह जानि के कुभनदास सो मिलबे आये सो कुभनदास सो मिलिके बहुत प्रसन्न भये और कह्यौ जो कुभनदास जी तुमने बिसन पद बहुत कीये- सो हमने आय के सुने है और आपको पद श्री स्वामिनी जी को नाही सुयौ ताते आप कोई स्वामिनी जी कौ पद सुनावो तब कुभनदास जी ने श्री स्वामिनी जी कौ पद करिके गायौ सो सुनि के महत बहुत ही रीझे ।" २

इन प्रसगो से कुभनदास जी के गान की उत्कृष्टता का परिचय मिलता है और यह निश्चित हो जाता है कि कुभनदास एक ख्याति प्राप्त तथा कुशल गायक थे ।

जैसा कि पूर्व भी कहा जा चुका है वार्ता से पता चलता है कि पुष्टि-सम्प्रदाय में दीक्षित होने से पूर्व ही कुभनदास को सगीत का ज्ञान था । यह ज्ञान उनको किस प्रकार प्राप्त हुआ इसका कही उल्लेख नही मिलता । पुष्टि-सम्प्रदाय में दीक्षित होने के अनन्तर वे गान द्वारा श्रीनाथ जी का कीर्तन किया करते थे । सूरदास के आगमन से पहले कुभनदास ही श्रीनाथ जी की कीर्तन सेवा करते थे और कुभनदास की भेंट वाले प्रसग से इस बात का परिचय मिलता है कि वे सासारिक प्रलोभन तथा लौकिक ख्याति से दूर रह कर एकमात्र अपने इष्टदेव को रिझाने के लिए कीर्तन किया करते थे । कुभनदास ने केवल भगवान की प्रशसा के ही गीत गाए है । राजाओ तक को उन्होने अपने गाने में फटकार दिया है । कुभनदास ने केवल युगल स्वरूप के ही पद गाए है अन्य किसी विषय का गान नही किया है ।[3]

---

१ ८४ वैष्णवन की वार्ता, पृ० ३२६

२ वही, पृ० ३३१ – ३२

३ "सो कुभनदास सगरे कीर्तन युगल स्वरूप सबधी कीये । सो बधाई, पालना, बाल लीला गाई नाही ।" ८४ वैष्णवन की वार्ता, अष्टसखान की वार्ता, पृ० ६१

कृष्णदास

भक्तमाल में कृष्णदास के विषय में कहा गया है –

श्री वल्लभ गुरुदत्त, भजन-सागर गुन आगर।
कवित नोख निरदोष, नाथ सेवा में नागर ॥
बानी वंदित विदुष, सुजस गोपाल अलंकृत।
व्रज रज अति आराध्य, वहै धारी सर्वस चित ॥
सांनिध्य सदा हरिदासवर्य, गौरस्याम दृढ़ व्रत लियौ।
गिरिधरन रीझि कृष्णदास को, नाम मांझ साझौ कियौ ॥[1]

इससे विदित होता है कि कुंभनदास भगवान के भजन-कीर्तन बहुत सुन्दर किया करते थे। श्री राधाकृष्ण के भजन का ही एकमात्र इनका दृढ़ व्रत था। ध्रुवदास जी ने भी इनके कीर्तन-गान की प्रशंसा करते हुए कहा है –

कुंभन, कृष्णदास गिरधर सों कीनी सांची प्रीति।
कर्म_धर्म पथ छाँड़ि कै गाई निज रस रीति ॥[2]

वार्ता में कृष्णदास के कीर्तन को अद्भुत और अनुपम बताया गया है –

"श्री गुसाईं जी कहै जो कृष्णदास ने तीन बात आछी करी। एक तो अधिकार कीयो सो ऐसो कियो जो फेरि ऐसो न करो। दूसरे कीर्तन किये सो अद्भुत कीये और तीसरे श्री आचार्य जी महाप्रभन के सेवक होय कें सेवाहू ऐसी करी जो कोऊ न करेगो।"[3]

"सो या प्रकार बहोत कीर्तन कृष्णदास जी ने गाये ·····तासों गुसाईं जी कहे जो कृष्णदास रासादिक कीर्तन ऐसे अद्भुत किये सो कोई दूसरे सों न होय।"[4]

उपर्युक्त कथनों से यह नहीं ज्ञात होता कि कृष्णदास, सूरदास तथा गोविंदस्वामी की तरह संगीताचार्य थे किन्तु इतना अवश्य निश्चित हो जाता है कि ये बहुत सुन्दर कीर्तन किया करते थे और आपको भजनों से अत्यधिक प्रेम था।

कृष्णदास की संगीत में विशेष रुचि थी। आप संगीत-कला के पारखी तथा उपासक थे। कृष्णदास की संगीत प्रियता के उदाहरणस्वरूप एक घटना का वर्णन मिलता है। वार्ता

---

१. भक्तमाल, भक्तिरस बोधिनी, छप्पय सं० ८१, पृ० ५८१
२. भक्तनामावली, छंद सं० ६३, पृ० ६
३. ८४ वैष्णवन की वार्ता, पृ० ३६८
४. अष्टछाप कांकरौली, पृ० २०५ तथा २४६

में लिखा है कि वे एक बार मंदिर के कार्यवश आगरा गये थे । वहाँ उन्होंने एक सुन्दरी वेश्या को गायन और नृत्य करते हुए देखा । वे उसके संगीत पर इतने मोहित हुए कि उसे श्रीनाथ जी के सन्मुख नृत्य-गान करने के लिए अपने साथ गोवर्द्धन ले गए । वह वेश्या ख्याल-टप्पा[1] गाती थी जो कृष्णदास को पसंद नहीं थे । अत उन्होंने अपने रचे हुए कुछ पद उसे सिखा दिये और श्रीनाथ जी के सन्मुख उन्हीं को गाने का आदेश दिया –

"और एक समय श्रीनाथ जी के भंडार में कछू सामग्री चाहियत हुती । सो कृष्णदास गाडा लेकें आगरे कौ आये । सो आगरे के बाजार में एक वेश्या नृत्य करत हुती । ख्याल टप्पा गावत हुती और भीर हुती । सब लोग तमासो देखत हुते । सो कृष्णदास बाजार में तमासे में जाय ठाडे भये । तब भीर सरक गई तब वह वेश्या कृष्णदास के आगें नृत्य करन लागी । सो वह वेश्या बहुत सुन्दर, और गावैं बहुत आछो, नृत्य तैंसोई करे । सो कृष्णदास वा वेश्या के ऊपर रीझे और मन में कहें जो यह तो श्रीनाथजी के लायक है ता पाछें वा वेश्या को दश मुद्रा तो उहां ही दीयें और कही जो रात्रि को समाज सहित आइयो । ता पाछें कृष्णदास उहां हवेली में उतरे । सो सामग्री चहियत हुती सो सब लेकै गाडा लदाय सिद्धि करवायौ । ता पाछे रात्रि पहर गई । तब वेश्या समाज सहित आई । ता पाछें नृत्य भयौ वापै कृष्णदास बहुत रीझें सो रुपैया सन एक दियें । तब वा वेश्या सो कह्यौ जो तेरौ गान हू आछौ और नृत्य हू आछौ परि हमारो सेठ है सो तेरे ख्याल टप्पा ऊपर रीझेगो नाहीं तातें हो कहों सो गाइयौ । ता पाछे कृष्णदास ने एक पूरबी राग में पद करिकें सिखायौ । ता पाछें दूसरे दिन वा वेश्या को साथ लेके चले सो आगरे ते आये तीसरे दिन श्रीनाथ जी द्वार आये । सामग्री सब भंडार में धराई । ता पाछें जब उत्थापन को समय भयौ तब कीर्तनियाँ काहू को आगे न दीयें । तब ता वेश्या का समाज सहित ले गये । श्री गुसाईं जी मंदिर में ठाडे श्री नाथजी की मुद्रा करत है और मणिकोठा में वेश्या नृत्य करन लागी और यह पद गायो । सो पद राग पूरबी–मो मन गिरधर छबि पर अटक्यो ।"[2]

इस कथा से ज्ञात होता है कि कृष्णदास को संगीत का ज्ञान था । वे रागों में पदों को बद्ध करके गाते थे । कृष्णदास इतने संगीत प्रिय थे कि कला के क्षेत्र में वे धार्मिक संकीर्णता अथवा ऊँच-नीच के भेदभाव को स्थान नहीं देते थे ।

कृष्णदास को संगीत का ज्ञान किस प्रकार हुआ इसका उल्लेख वार्ता तथा हरिराय जी कृत भावप्रकाश में भी नहीं है । हरिराय जी की वार्ता से ज्ञात होता है कि कृष्णदास जब गुजरात से व्रज में आकर वल्लभाचार्य जी के शिष्य हुए थे उस समय आपकी आयु तेरह वर्ष

१ टप्पा शैली के प्रचलन का समय विवादग्रस्त तथा संदिग्ध है । अष्टछाप के कवियों के समय टप्पा गायन प्रचलित था अथवा नहीं इस विषय पर आलोचकों में मतभेद है ।

२ ८४ वैष्णवन की वार्ता, पृ० ३४३

की थी। आचार्य जी से दीक्षा ग्रहण करने के उपरान्त कृष्णदास को संपूर्ण लीला का अनुभव हो गया और आचार्य जी की स्तुति में उन्होंने पद गाया।[1]

संभवत: उस समय कृष्णदास को संगीत का थोड़ा ज्ञान रहा होगा। शरणागति के समय कृष्णदास गान-विद्या में प्रवीण नही थे इसीलिए आचार्य जी ने उन्हे कीर्तन का कार्य नही सौंपा वरन् भेटिया[2] का कार्य दिया। पुष्टि-सम्प्रदाय मे दीक्षित होने के अनन्तर उनका समस्त जीवन पुष्टि-सम्प्रदाय के आचार्यो, विद्वानो, कवियों और कीर्तनकारों की सगति में व्यतीत हुआ। अत: नियमित शिक्षा प्राप्त होने का साधन न होने पर भी वे सत्सग से आवश्यक ज्ञान प्राप्त कर सके होंगे और सूरदास जैसे परम भक्तो के संसर्ग से संगीत मे प्रवीण हो गए होगे। अपनी किशोरावस्था में ही पुष्टि-सम्प्रदाय मे सम्मिलित हो जाने के कारण उनके संगीत विषयक ज्ञान-वृद्धि का कारण साम्प्रदायिक विद्वानों का सत्संग ही कहा जा सकता है।

नंददास

नाभादास जी ने नंददास तथा उनके काव्य का वर्णन करते हुए कहा है –

लीला पद रस-रीति ग्रंथ-रचना में नागर।
सरस उक्ति जुत जुक्ति भक्ति रस गान उजागर॥[3]

'भक्ति रस गान उजागर' से प्रकट है कि नंददास भक्ति रस के गाने मे प्रसिद्ध थे। भक्तमाल की इन पंक्तियों से यह ज्ञात होता है कि नंददास उच्चकोटि के कवि होने के साथ साथ कुशल गायक भी थे।

ध्रुवदास ने भी नंददास के काव्य की आलोचना करते हुए कहा है –

नंददास जो कुछ कह्यो रास रंग सौं पागि।
अच्छर सरस सनेहमय, सुनत स्रवन उठ जागि।

---

१. "पाछे कृष्णदास श्री आचार्य जी के पास मदिर में आये। तब आचार्य जी आपु कृष्णदास को श्री गोवर्द्धननाथ जी के सन्निधान बैठाय के नाम समर्पन करायो। सो कृष्णदास को श्री देवीजीव है, सो तत्काल सगरी लीला को अनुभव भयो। सो ताही समय कृष्णदास ने यह कीर्तन गायो 'सो।" पद–राग सारंग 'वल्लभपतित उद्धारन जानो'। सो यह पद कृष्णदास ने गायो। सो सुनि के श्री आचार्यजी आपु वहोत प्रसन्न भये।

८४ वैष्णवन की वार्ता, हरिराय, पृ० १०२

२. वही, पृ० १०२

३. भक्तमाल, भक्तिरस बोधिनी, छप्पय सं० ११०, पृ० ११५–१६

रसिक दशा अद्भुत हुती कर कवित्त सुढार।
सत प्रेम की सुनत ही छुटत मोह जलधार।
बावरो सो रस में फिरै खोजत नेह को बात।
आछे रस के वचन सुनि बेगि बिबस हो जात ॥[1]

इसमें भी कवि के काव्य के संगीत-माधुर्य तथा गायन-कुशलता की ओर संकेत किया गया है।

नंददास जी की बाल्यकाल से ही संगीत की ओर रुचि थी। "सो तिनकू नाच तमासा देखवे को तथा गान सुनवे को शौक बहुत हतो।"[2] अष्टसखान की वार्ता से विदित है कि वल्लभ-सम्प्रदाय में प्रवेश करने से पूर्व ही नंददास गाया करते थे। जिस समय नंददास क्षत्राणी का अनुसरण करते हुए गोकुल से एक कोस दूर गांव में पहुँचे थे वहां यमुना पड़ी। वह क्षत्रिय अपनी पत्नी के साथ स्वयं तो पार उतर गया किन्तु मल्लाहों को कुछ द्रव्य देकर उन्हें नंददास को पार उतारने से रोक दिया। वे लोग गोकुल में श्री गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के दर्शन को गए और लौकिक प्रेम में मुग्ध नंददास यमुना के किनारे बैठ कर यमुना-स्तुति के पद गाने लगे। यह प्रसंग वल्लभ-सम्प्रदाय में प्रवेश करने से पहले ही नंददास के गायक होने का परिचय देता है।[3]

गोस्वामी विट्ठलनाथ जी से प्रथम साक्षात्कार होने पर भी नंददास ने उन्हें पद गा कर सुनाए थे –

"जब श्री गुसाईं जी ने एक मनुष्य पठाय कै वा ब्राह्मण कू पार सों बुलाय लीनो। जब वा नंददास जी नें आय के श्री गुसाईं जी के दर्शन करे। ... पाछे श्री गुसाईं जी भोजन करके सब वैष्णवन कु पातर धराई। तब नंददास जी महाप्रसाद लेवे बैठे। तब महाप्रसाद लेत ही नंददास जी कु देहानुसंधान रह्यो नहीं। जब पातर पर बैठेई रहे। भगवल्लीला में मग्न होय गयो। अनेक लीलान को अनुभव होवै लाग्यो। भरे घर के चोर की सी नाई माहित भये। ऐसें करते सवारो होय गयो। कछु सुद्धि रही नहीं। तब श्री गुसाईं जी पधार के नंददास जी के कान में कही के नंददास जी उठो दर्शन करो। जब नंददास जी उठ के ठाढ़े भये। तब नंददास जी ने उठ के श्री गुसाईं जी के दर्शन करके ये पद गायो। 'प्रात समय श्री वल्लभ सुत को उठतहि रसना लीजिये नाम।' इत्यादिक पद गाय के श्री नवनीतप्रिया जी के दर्शन करे।"[4]

---

१ भक्तनामावली, पृ० ८

२ २५२ वैष्णवन की वार्ता, पृ० २८

३ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, डा० दीनदयालु गुप्त, भाग १, पृ० १४१–४३

४ २५२ वैष्णवन की वार्ता, पृ० २६ – ३०

इससे भी यही ज्ञात होता है कि नंददास जी वल्लभ-सम्प्रदाय में आने से पहले ही गाते थे। पुष्टि-सम्प्रदाय में दीक्षित होने के अनन्तर इनके जीवन का क्रम पूर्णतया परिवर्तित हो गया। लौकिक बंधनों को तोड़ कर वे भगवद्भक्त हो गए। संगीत में स्वाभाविक रुचि होने, पुष्टि-सम्प्रदाय के विद्वानों के सत्संग तथा ठाकुर जी के कीर्तन में सम्मिलित होने के सुअवसर मिलने के कारण नंददास सुन्दर पदों की रचना कर शास्त्रोक्त विधि से उनका गायन करने लगे। संगीत और काव्य में उनकी प्रतिभा का इस प्रकार विकास हुआ कि शीघ्र ही वे पुष्टि-सम्प्रदाय के प्रमुख कीर्तनियों तथा कवियों में गिने जाने लगे। पुष्टि-सम्प्रदाय में स्थायी रूप से आने के बाद उनकी दिनचर्या केवल पद और छंद रचना कर भगवान के समक्ष गाने में थी।

नंददास उच्चकोटि के संगीतज्ञ थे और पुष्टि-सम्प्रदाय में दीक्षित होने के उपरान्त इनकी संगीत की ख्याति अत्यधिक फैल गई थी क्योंकि स्वयं अकबर ने नंददास का पद सुनकर इन्हें मिलने के लिए बुलाया था।[1]

चतुर्भुजदास

अष्टछाप के चतुर्भुजदास के विषय में भक्तमाल तथा भक्तमाल की टीकाओं में कोई वृत्तांत नहीं दिया है। ध्रुवदास जी के वर्णन से यह ज्ञात होता है कि चतुर्भुजदास जी ने भगवान की भक्ति का गान वात्सल्य भाव से किया है—

परम भागवत अति भए भजन मांहि दृढ़ धीर,
चतुर्भुज वैष्णवदास की वानी अति गंभीर।
सकल देस पावन कियो भगवत जसहि बढ़ाई,
जहां तहां निज एक रस गाई भक्ति लड़ाई।[2]

२५२ वैष्णवन की वार्ता से विदित है कि चतुर्भुजदास के पिता कुंभनदास अष्टछाप के प्रसिद्ध कवि तथा गायक थे। अस्तु चतुर्भुजदास को संगीत की विधिवत् शिक्षा बाल्यकाल से ही अपने पिता के द्वारा प्राप्त हुई थी।

---

१. "एक दिन पृथ्वीपति के आगे कोई मनुष्य नें पद गायो ···· या पद की शैली तुक में आवे है नंददास गावे तहां निपट । सो ये पद पृथ्वीपती ने सुन्यो। ···· तब पृथ्वीपती सहकुटंब व्रज में आये······और नंददास जी पास बीरवल कूं पठाये। ·· ··· तब नंददास जी ने कही हम परसूं के दिन मानसी गंगास्नान करवे कूं आवेंगे। सो उहां पादशाह कूं मिलेंगे। ······ फिर दूसरे दिन मानसी गंगा नहायवे कूं गये उहां पृथ्वीपती कूं मिले।" दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, श्री गुसांई जी के सेवक रूपमंजरी की वार्ता, पृ० ३८६ – ८३

२. भक्तनामावली, छंद सं० ४८ – ४९, पृ० ५

वार्ता में चतुर्भुजदास के बाल्यकाल से ही संगीत में निपुण होने तथा सुन्दर पद गाने के कई प्रसंग दिए हुए हैं। "वा दिन तें चतुर्भुजदास में श्रीनाथ जी ने इतनी सामर्थ्य धरी जब इच्छा आवे तब मुग्ध बालक होय जाय और इच्छा आवे तो बोलवे चालवे सब अलौकिक बातें करवे लग जाय। जब कुंभनदास जी एकांत में बैठे तब चतुर्भुजदास कुंभनदास सों भगवद्वार्ता करें और पूछें और पद गावें और जब लौकिक मनुष्य आय जाय तब चतुर्भुजदास मुग्ध बालक बन जाय।"[१]

चतुर्भुजदास की प्रारम्भिक संगीत तथा काव्य-रचना का वर्णन करते हुए वार्ताकार कहते हैं –

"और जा दिन चतुर्भुजदास जी कुं प्रथम लीला को अनुभव भयो वा दिन तें सर्वव्यापी बैकुंठ संबंधी लीला सबन दर्शवे लगी। सो ये सामर्थ्य इनके भीतर श्री गोवर्धन-नाथ जी नें कृपा करिके धरी जब कुंभनदास जी कूं पोढ़वे के दर्शन होते हते। तब कुंभनदास जी कीर्तन गायवे लगे। सो पद। 'वे देखो वरत झरोखन दीपक, हरि पोढ़े ऊँची चित्रसारी'। सो इतनी तुक जब कुंभनदास जी नें गाई तब चतुर्भुजदास जी गाय उठे 'सुंदर वदन निहारन-कारन, बहुत यतन राखे कर प्यारी।' ये सुनि कें कुंभनदास जी ने निश्चय कर्यो जो इनकुं श्री गुसाईं जी की कृपा सो संपूर्ण अनुभव भयो।"[२]

इन प्रसंगों से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि चतुर्भुजदास में दैवी प्रतिभा थी। इसी कारण प्रारम्भ से ही वे भगवान की वन्दना अपने पिता का अनुकरण करते हुए गा गाकर करते थे। अपने पिता के सम्पर्क में रहने से समय के साथ-साथ उनकी संगीत संबंधी प्रतिभा प्रस्फुटित होती गई। वार्ता में कई स्थलों पर उनके कीर्तन करने तथा गाने का उल्लेख किया गया है।[३]

हरिराय प्रणीत भाव प्रकाश वाली वार्ता में कुंभनदास जी के प्रसंग में कहा गया है –

"और एक समय श्री गुसाईं जी के पास कुंभनदास बैठे हुते और सगरे वैष्णव हू बैठे हुते। सो श्री गुसाईं जी आपु हँसि के कुंभनदास जी सों पूछे जो–कुंभनदास! तिहारे बेटा कितने हैं? तब कुंभनदास जी ने श्री गुसाईं जी सों कह्यो जो महाराज! बेटा तो मेरे डेढ़ हैं।

तब श्रीगुसाईं जी कहे जो–हमने तो सात बेटा सुने हैं और तुम डेढ़ बेटा कहे, ताको कारन कहा? तब कुंभनदास जी ने कह्यो जो महाराज। यो तो सात बेटा हैं तामें

१ २५२ वैष्णवन की वार्ता, पृ० २०–२१
२ वही, पृ० २१–२२
३. वही, पृ० २५–२७.

पांच तो लौकिकासक्त है जो वेटा काहे के है ? और पूरो एक वेटा तो चतुर्भुजदास है और आधो वेटा कृष्णदास है। सो श्रीगोवर्द्धन नाथजी की गायन की सेवा करत है।

सो तहाँ संदेह होय–गायन की सेवा तो सर्वोपरि है और गायन की सेवा किये ते वहोत वैष्णव श्री ठाकुरजी को पाये है और कुभनदास जी कृष्णदास कों आधो वेटा क्यों कहे ? तहां कहत हैं जो–श्री आचार्यजी आपु यह पुष्टि मार्ग प्रकट किये हैं। सो पुष्टि मार्ग व्रजजन को भावरूप मार्ग है सो भगवदीय गाये है जो–'सेवा रीति प्रीति व्रजजन की जनहित जग प्रगटाई।' सो व्रजभक्तन की कहा रीति है ? जो श्री ठाकुर जी के सन्निधान में तो सेवा करे सो स्वरूपानंद को अनुभव करि संयोग रस में मग्न रहे और श्री ठाकुर जी गोचारन अर्थ व्रज में पधारे तव व्रजभक्त विरह रस को अनुभव करि गान करे। सो या प्रकार संयोग रस और विप्रयोग रस को अनुभव जाको होइ सो पूरो वैष्णव होय और (जामें) एक न होय सो आधो वैष्णव है। सो कृष्णदास तो गायन की सेवा करत है। और श्री गोवर्द्धननाथ जी को दरसनहू होत है। परंतु व्रजभक्तन की रहस्य लीला को अनुभव नाही है। तामों ये आधो है और चतुर्भुजदास संयोग और विप्रयोग दोऊ रस के अनुभवयुक्त सेवा करत है सो लीला संवंधी कीर्तन हू गान करत है तामो कुंभनदास जी चतुर्भुजदास को पूरा वेटा कहे।"[1]

इस प्रसंग से यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि चतुर्भुजदास संगीत में कुशल थे और भगवान की लीलाओं का अनुभव कर उनका गान किया करते थे।

चतुर्भुजदास श्रीनाथजी को रिझाने के लिए ही पद गाया करते थे। वे सदैव श्रीनाथजी की कीर्तन-सेवा में संलग्न रहा करते थे और उनके प्रेम में गाते-गाते मग्न हो जाते थे–

"एक दिन श्रीगुसांईजी श्रीगोकुल विराजते और श्रीगिरिधरजी सों लेके सव वालक श्रीजी द्वार विराजते हते। तव उहां रामधारी आये। तव श्रीगोकुलनाथजी ने श्री-गिरिधरजी सों पूंछ के परासोली में राम करायो। और राम में खूब गान भयो। जव चतुर्भुजदासजी सु श्रीगोकुलनाथजी ने आज्ञा करी जो तुम कछु गावो। तव चतुर्भुजदास जी ने कही जो मेरे सुनवे वारे श्रीनाथ जी नहीं पधारे है जासूं में कैसे गाऊं।...... श्रीनाथजी जाग के और श्रीगिरिधर जी कुं जगाय के श्रीनाथजी परासोली पधारे और श्री गिरिधर जी पधारे और चतुर्भुजदास कूं और श्री गोकुलनाथ जी कूं दर्शन भये। और कोई कुं दर्शन भये नहीं। तव श्रीनाथ जी के दर्शन करकें चतुर्भुजदास जी गावे लगे। .....वे चतुर्भुजदास जी ऐसे कृपापात्र हते के श्रीनाथजी के विना दूसरे ठिकानें गान नहीं करत हते।"[2]

---

१. ८४ वैष्णवन की वार्ता, हरिराय, पृ० ७९–८०
२. २५२ वैष्णवन की वार्ता, पृ० २३–२४

गृहस्थ होते हुए भी चतुर्भुजदास सदैव श्री नाथजी के कीर्तन में ही लीन रहे और उन्होंने कृष्ण की बाल लीला,[1] विनय[2] तथा विरह[3] के पद गाये।

गोविन्दस्वामी

भक्तमाल तथा भक्तमाल की टीकाओं में गोविन्दस्वामी के संगीत-ज्ञान पर कोई प्रकाश नहीं डाला गया है। ध्रुवदास जी ने इनके कीर्तन की प्रशंसा करते हुए कहा है– "गोविन्दस्वामी, गंग और विष्णु ने प्रिय-प्यारी (कृष्ण और राधा) का यश विचित्र राग और रंग से संयुक्त कर गाया है–

गोविन्द स्वामी गंग अरु विष्णु विचित्र बनाइ।
प्रिय प्यारी को जस कह्यो राग रंग सो गाइ॥[4]

२५२ वैष्णवन की वार्ता में इनके संगीत-ज्ञान पर विस्तार से लिखा है। वार्ताकार के कथन से ज्ञात होता है कि गोविन्दस्वामी पद बनाकर गाते थे। "प्रथम गोविन्ददास आंतरी गाम में रहते। तहां गोविन्दस्वामी कहावते और आप सेवक करते।"[5]

डा० गुप्त ने कहा है कि "वार्ता से यह स्पष्ट नहीं है कि सेवक गान-विद्या और काव्य-विद्या सीखने के लिए हुए थे अथवा गोविन्दस्वामी किसी सम्प्रदाय के आचार्य बनकर लोगों को दीक्षा देते थे। अनुमान है कि लोग उनके पास गान और कविता करने की शिक्षा लेने ही आते थे।"[6]

वार्ता से ज्ञात होता है कि गोविन्दस्वामी गायन-विद्या के आचार्य, परमोच्च श्रेणी के गायक और सुकवि थे। संगीत-शास्त्र का उन्होंने विधिपूर्वक अभ्यास किया था। वे प्रायः महावन के ऊँचे टीलों पर बैठकर संगीत शास्त्रोक्त विधि से सस्वर गायन किया करते थे। पुष्टिसम्प्रदाय में सम्मिलित होने से पूर्व ही वे कवि और गायक के रूप में प्रसिद्ध हो गये थे। अपनी गानविद्या के कारण वे महावन में विख्यात थे और उनके अनेक शिष्य हो गए थे। इनके सिखाये हुये पदों को कुछ लोग गोकुल में जा कर गोस्वामी विट्ठलनाथ जी को सुनाया करते थे–

१ अष्टछाप कांकरोली, पृ० ३१८–१९

२ "ऐसे प्रार्थना के चतुर्भुजदास ने बहुत कीर्तन करिके सूतक के दिन बितीत किये।"–
अष्टछाप कांकरोली, पृ० ३०९

३ चतुर्भुजदास के मन में बहुत विरह भयो, तब श्री गिरिराज के ऊपर बैठि के विरह के कीर्तन करन लागे।" –अष्टछाप कांकरोली, पृ० ३१२

४ भक्तनामावली, पृ० १०

५ २५२ वैष्णवन की वार्ता, पृ० १

६ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, डा० दीनदयालु गुप्त, भाग १, पृ० २६७–६८

"एक समय गोविन्ददास आंतरी गांम ते व्रज को आये और महावन में आय के रहे। और गोविन्ददास कवि हते। सो आप पद कर्ते। सो जो कोऊ इनके पद सीख के श्री गुसाईंजी के आगे आय के गावे तिनके ऊपर श्री गुसाई जी प्रसन्न होते।"[1]

"सो गोविंददास महावन के टेकरा पर रहते हते और नये कीर्तन करके गावते हते।"[2]

वार्ताकार ने कई स्थलो पर इनकी गान-विद्या की प्रशंसा की है– "सो गोविन्ददास भैरव राग आलाप्यो, सो गोविन्ददास को गरो वहोत आछो हतो और आप गावत ही वहोत आछे हते, सो भैरव राग ऐसे जाम्यो जो कछू कहिवे मे नाही आवे।"[3]

वल्लभ-सम्प्रदाय मे प्रवेश करने के उपरान्त इनके गाने की ख्याति दूर-दूर तक फैल गई थी। वार्ता के प्रसंग से यह स्पष्ट है कि गोविन्दस्वामी के गायन-कला की ख्याति अकवर वादशाह के पास तक पहुँची थी और और स्वयं अकवर उनका गाना सुनने गया था। वार्ता मे दिया है कि एक दिन प्रातः गोविन्द स्वामी गोकुल के यशोदा घाट पर वैठ कर भैरव राग का अलाप कर रहे थे। प्रातः काल के शात और सुखद वातावरण मे राग का ऐसा समा वँधा कि आने जाने वाले राहगीर भी मंत्र मुग्ध से हो गए। उन्ही राहगीरों में अकवर वादशाह भी वेप वदल कर गाना सुन रहे थे। उनके गान पर मोहित हो कर अकवर के मुख से 'वाह वाह' निकल पड़ा। गोविन्दस्वामी ने यह कह कर कि उनका राग यवन के स्पर्श से भ्रष्ट (छी गया) हो गया जीवन पर्यन्त उस राग को नही गाया।[4]

किसी भी सूत्र से यह पता नहीं चलता कि आपके संगीत गुरु कौन थे और आपने

---

१. २५२ वैष्णवन की वार्ता, पृ० १
२. वही, पृ० ३
३. अष्टछाप कांकरौली, पृ० २८५
४. "एक दिन आगरे में अकवर पातशाह ने सुन्यो जो गोविन्दस्वामी वहुत आछे गावत हैं और निरपेक्ष है और निशंक हैं। अव इनके मुख को राग कैसे सुन्यो जाय। विचार करके पातशाही वेष पलट के श्री गोकुल में इकेले आये। जव गोविन्ददास घाट पर भैरव राग अलापत हते तव वा पातशाह ने वाहवा वाहवा करी। जव गोविन्ददास ने कही ये राग छी गये। जव वाने कही जो में पातशाह हूं जव विन ने कही जो तुम पातशाह हो तो पातशाही करो। परंतु ये राग तो तुमारे सुनवेमूं छिवाय गयो तव पातशाह ने विचार कर्‌यो एक देश को मैं राजा हुँ और इनको तो तिलोकी को वैभव फोको लगे हैं। जासूं ये काहे कूं आपने हुकुम में रहेंगे। ये विचारि के पातशाह चले गये। और गोविन्दस्वामी ने वा दिन सूं भैरव राग गायो नहीं। वे गोविन्दस्वामी ऐसे टेकी भगवदीय हते।"
२५२ वैष्णवन की वार्ता, पृ० ११

संगीत की शिक्षा कहाँ प्राप्त की थी किन्तु वार्ता से यह पता चलता है कि गान-कला में आप तानसेन से भी अधिक कुशल थे । तानसेन स्वयं गोविन्दस्वामी से संगीत सीखने आते थे । *तानसेन की वार्ता में कहा गया है –*

"एक दिन तानसेन श्रीगुसाई जी के पास गायवे कु आये । सो गायें तब तानसेन कु श्री गुसाई जी ने दसहजार रुपैया इनाम के दिये । और एक कौडी दीनी । तब तानसेन ने पूछ्यो जो दसहजार रुपैया तो ठीक परंतु कौडी कैसी हैं । तब श्री गुसाई जी ने आज्ञा करी जो तुम पादशाह के कलावन्त हो जाके दस हजार रुपैया हैं और तुमारे गावे की कीमत हमारे गवैयन के आगे कौडी है । तब तानसेन ने कही जो ये बात मैं कैसे मानू तब श्री गुसाई जी ने गोविन्दस्वामी कू आपके पास बुलाये और आज्ञा करी एक पद गावो । तब गोविन्दस्वामी ने एक पद सारंग राग में गायो । सो पद । 'श्री वल्लभनंद रूप अनूप स्वरूप कह्यो नांहि जाई ।' सो ये पद सुन के तानसेन चकित होय गये । और गोविन्दस्वामी को गान सुनके विचार कर्यो जो मेरो गान इनके आगे ऐसे हैं जैसे मलमल के आगे टाट हैं ऐसे हैं । सो ये कौडी की इनाम खरी । तब गोविन्दस्वामी सू तानसेन ने कही जो बाबा साहेब मोकू गान सिखावो । तब तानसेन श्री गुसाई जी के सेवक भये और पचीस हजार रुपैया भेंट करे । और गोविन्दस्वामी के पास गायन विद्या सीखे ।" [१]

उक्त प्रसंग से यह ज्ञात होता है कि तानसेन का संगीत सुनने के उपरान्त स्वामी विट्ठलनाथ ने तानसेन को दस हजार रुपये इसलिए दिए कि वह दरबारी गायक थे और कौडी इसलिए दी कि अष्टछाप के कवियों के समक्ष उनका संगीत बिल्कुल मूल्यहीन था । यद्यपि यह कथन अतिशयोक्तिपूर्ण है किन्तु इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि गोविन्दस्वामी अवश्य संगीत के आचार्य रहे होंगे । वार्ता से विदित है कि गोविन्दस्वामी का गाना सुनने के उपरान्त तानसेन का भी इस बात का दृढ विश्वास हो गया था और तभी तानसेन ने गोविन्दस्वामी के सेवक बन कर उनसे संगीत की शिक्षा ग्रहण की ।

राजा आसकरण की वार्ता में यह प्रसंग दिया हुआ है जिसमें स्वयं तानसेन ने गोविन्दस्वामी को अपना संगीत-गुरू माना है । एक बार तानसेन ने राजा आसकरण को *गोविन्दस्वामी से सीखा हुआ एक पद सुनाया । राजा आसकरण के पूछने पर कि यह पद* कहा से सीखा तानसेन ने कहा कि गोसाई जी के सेवक होने के उपरान्त उन्होंने गोविन्दस्वामी से संगीत की शिक्षा पाई –

"तब तानसेन जी बोले श्री गोकुल में श्री विट्ठलनाथ जी श्री गुसाई जी हैं विनके सेवक गोविन्दस्वामी हैं विनने ऐसे सहस्त्रावधी पद किये हैं परंतु श्री गुसाई जी के सेवक बिना वे और कू सिखावते नाही हैं । मैं हू विनके संग ते श्री गुसाई जी को सेवक भयो हू ।" [२]

---

१ २५२ वष्णवन की वार्ता, पृ० ३६७ – ६८

२ वही, पृ० १५८

वार्ता में यह भी लिखा है कि तानसेन से गोविन्दस्वामी के गान की प्रशंसा सुन कर राजा आसकरण भी उनके शिष्य हुए और उनसे संगीत विद्या सीखी ।[१]

गोविन्दस्वामी सगीत के आचार्य थे । वार्ता में दिया है – " सो गोविन्दस्वामी नित्य जसोदा घाट पर जाय बैठते । सो उहा एक दिन एक बैरागी गायवे लग्यो । सो राग ताल स्वर हीन हतो । जब गोविन्दस्वामी ने कही जो तू मत गावै या गायिवे सों कहा होत है । तब वा बैरागी ने कही मैं तो मेरे राम को रिझावत हों । जब गोविन्दस्वामी ने कही राम तो चतुर शिरोमणी है सो कैसे रीझेगे ।"[२]

इससे यही पता चलता है कि गोविन्दस्वामी स्वर, राग, ताल और लय की शुद्धता के समर्थक थे । संगीत के विविध अंगो का उन्हें पूर्ण ज्ञान था । सगीत-शास्त्र का उन्होंने विधि-पूर्वक अध्ययन तथा अभ्यास किया था । वास्तव मे गोविन्दस्वामी शास्त्रीय सगीत के आचार्य थे ।

वल्लभ-सम्प्रदाय में प्रवेश करने के उपरान्त गोविन्दस्वामी कुछ दिन महावन तथा गोकुल मे रहे । फिर वे गोवर्द्धन चले गए । वहाँ पर श्रीनाथ जी के मंदिर मे कीर्तन की सेवा आपको दी गई । वहां रह कर गोविन्दस्वामी जीवन पर्यन्त अपने इष्ट श्रीनाथ जी के समक्ष गानकीर्तन मे लीन रहे ।

छीतस्वामी

भक्तमाल तथा भक्तमाल की टीकाओं मे छीतस्वामी के संगीत-ज्ञान पर कुछ भी नहीं दिया है । ध्रुवदास ने भी भक्तमाल के रचयिता का ही अनुकरण किया है । 'भक्त नामावली' से भी उनकी गायन-कला पर कोई प्रकाश नही पड़ता । २५२ वैष्णवन की वार्ता तथा नागर-समुच्चय मे कवि का संगीत संबंधी थोड़ा सा विवरण प्राप्त होता है ।

सगीत की ओर छीतस्वामी की रुचि बाल्यकाल से ही प्रतीत होती है । गोस्वामी विट्ठलनाथ से प्रथम भेट होने पर ही उन्होने पद बना कर गाये थे । इससे ज्ञात होता है कि वल्लभ सम्प्रदाय मे प्रवेश करने से पूर्व ही वे गान विद्या जानते थे । वार्ता मे इस घटना का उल्लेख किया गया है–

"जब छीतस्वामी ने कही जो महाराज मोकु शरण लेओ । .....तब छीतस्वामी ने बाहर आयके चारो चौबान से कही मोकु टोना लग गयो है तुम भाग जावो नाहि तो तुमको लग

१. २५२ वैष्णवन की वार्ता, पृ० १५८ – ५९, (यह वार्ता इसी अध्याय में आगे राजा आसकरण के प्रसंग में दी गई है)

२. वही, पृ० १०

जायगो । ये सुन के चारा चौबे भाग गये । छीतस्वामी ने एक पद करिके गायो । राग नट– भई अब गिरिधर सो पहचान । ये पद सुन के गुसाईं जी प्रसन्न भए ।"[१]

नागरीदास जी ने भी छीतस्वामी की झगडालू प्रकृति का वर्णन करते हुए कहा है कि एक दिन छीतस्वामी थोथे नारियल में राख भरकर गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के सम्मुख ले गए और उन्हें भेंट किया किंतु गोस्वामी जी के तुडवाने पर उनके सामने ही उसमें से गरी निकली । यह चमत्कार देखकर छीतस्वामी बहुत लज्जित हुए और उसी समय उन्होंने यह पद गाया–राग सारंग–जे बसुदेव किये पूरन तप तेई फल फलित श्री वल्लभदेव ।[२]

उपर्युक्त प्रसंग से भी इसी बात की पुष्टि होती है कि ये वल्लभ-सम्प्रदाय में आने से पहले कवि थे और पद गाया करते थे । आचार्य जी के सम्पर्क में आने से पूर्व ही आपको संगीत का ज्ञान था । तभी तो छीतस्वामी ने गोस्वामी जी के समक्ष तत्काल पद बनाकर गाया था ।

छीतस्वामी के किसी सम्प्रदाय की दीक्षा देने वाले स्वामी होने का कोई प्रमाण नहीं मिलता । किंतु गोसाईं जी की शरण में जाने से पहले ही छीतस्वामी भी गोविन्दस्वामी की तरह 'स्वामी' कहलाते थे । अत संभव है कि गान विद्या तथा कविता सीखने के लिए इनके पास आनेवाले शिष्यों ने इनको स्वामी की उपाधि दे दी हो ।

वार्ता अथवा अन्य किसी भी आधार से यह नहीं ज्ञात होता कि इन्होंने संगीत की शिक्षा कब और कहाँ पाई । ऐसा ज्ञात होता है कि वल्लभ-सम्प्रदाय में आने से पूर्व आपको संगीत का थोड़ा ज्ञान था । किंतु गोस्वामी विट्ठलनाथ जी की शरण में आने के उपरान्त उनकी शिक्षा तथा अष्टछाप के अन्य कवियों के सम्पर्क से छीतस्वामी की संगीत विषयक प्रतिभा का और भी विकास तथा पूर्ण प्रस्फुटन हुआ । वार्ता में लिखा है कि श्री गुसाईं जी की कृपा से छीतस्वामी भगवदीय कवीश्वर और कीर्तनकार हुए ।[३] वार्ता से ज्ञात होता है कि अकबर बादशाह ने भी उनका कीर्तन सुना था ।

"और एक दिन बीरबल देशाधिपति सो रजा लेके श्री गोकुल में जन्माष्टमी के दर्शन् आया । पाछे वेष पलटाय के देशाधिपतिहू छाने छाने आयो । तब जन्माष्टमी के पालना के दर्शन करे । मनुष्यन की भीड में । तब देशाधिपति कु श्री गुसाईं जी बिना और कोई नें पहिचा यो नहीं । तब छीतस्वामी कीर्तन करत हत । और श्री गुसाईं जी श्री नवनीतप्रिया जी कु पालना झुलावत हते तब छीतस्वामी नें ये पद गायो ।"[४]

---

१ २५२ वैष्णवन की वार्ता, पृ० १६–१७

२ नागर समुच्चय, पद प्रसंग माला, सिंगार सागर, शिवलाल, पृ० २०७

३ 'सो वे गुसाईं जी की कृपा ते बडे कवीश्वर भये, सो बहुत कीर्तन किये ।'
अष्टछाप कांकरोली, पृ० २५६

४ २५२ वैष्णवन की वार्ता, पृ० १६

पुष्टि-सम्प्रदाय में दीक्षा लेने के अनन्तर वे स्थायी रूप से गोवर्द्धन पर श्रीनाथ जी के मंदिर में भजन-कीर्तन करने लगे और भक्ति में लीन होकर उन्होंने बहुत से पद बना कर गाए।

गदाधर भट्ट

भक्तमाल में जो छप्पय दिया हुआ है उसमें गदाधर भट्ट के संगीत ज्ञान पर कुछ भी प्रकाश नहीं पड़ता। भक्तमाल की पंक्तियों—'भागवत सुधा बरखै बदन काहू को नाहिन दुखद, गुण निकर गदाधर भट्ट अति सबहिन को लागै सुखद।'[1] से यह अवश्य ज्ञात होता है कि गदाधर भट्ट जी भागवत सुनाया करते थे। भक्तनामावली में कहा गया है—

भट्ट गदाधर नाथ भट्ट विद्या भजन प्रवीन।
सरस कथा बानी मधुर सुनि रुचि होत नवीन॥[2]

इससे भी इस बात का समर्थन होता है कि ये भजन में प्रवीण थे और मधुर वाणी से कथा कहा करते थे। भक्तमाल की टीका में एक निम्नलिखित प्रसंग दिया हुआ है—

"स्याम रंग रंगी" पद सुनि कै—गुसांई जी व पत्र दै पढ़ाये उभै साधु बेगि धाये हैं। "रंगी बिन रंग कैसे चढ़्यो अति सोच बढ़्यो कागद में प्रेम मढ़्यो तहां लैके आये हैं। पुरढिग कूप तहाँ बैठे रस रूप लगे पूछिवे को तिन हों सो नाम ले बताये हैं। रह्यो कौन ठौर सिरमोर बृंदावन धाम नाम सुनि मुरछा ह्वै गिरे प्रान पाये है।"

काहू कही 'भट्ट श्री गदाधर जू एई जानों' मानों उही पाती चाह फेरि कै जिवाये हैं।
दियौ पत्र हाथ लियो, सीस सो लगाय चाय बाचत ही, चले बेगि वृन्दावन आये हैं।
मिले श्री गुसाई जू सो आंखे भरि आईं नीर सुधि न शरीर धरि धीर बही गाये हैं।
पढ़े सब ग्रंथ संग नाना कृष्ण कथा रंग रस की उमंग अंग-अंग भाव छाये हैं।"[3]

इस प्रसंग से ज्ञात होता है कि जीवगुसांई जी के सम्पर्क में आने से पूर्व ही गदाधर भट्ट जी पद गाया करते थे और उनके पदों की ख्याति दूर-दूर तक फैल गई थी।

गदाधर जी ने गायन-कला की विधिवत शिक्षा पाई थी अथवा नहीं तथा उनके जीवन से संबंधित अन्य किसी संगीत संबंधी घटना का कोई विवरण नहीं प्राप्त होता।

---

१ भक्तमाल, सुधा स्वाद तिलक, पृ० ७६३, छं० १३८
२. भक्तनामावली, पृ० ४
३. भक्तमाल, भक्ति सुधास्वाद तिलक, पृ० ७६४–७६५

सूरदास मदनमोहन

सूरदास मदनमोहन जी गान-विद्या और काव्य-कला में अति प्रवीण और चतुर थे। नाभादास ने आपके गायन तथा काव्य की प्रशंसा करते हुए कहा है —

गान काव्य गुणराशि सुहृद सहचरि अवतारी।
राधाकृष्ण उपास्य रहसि सुख के अधिकारी॥
नव रस मुख्य शृंगार विविध भातिन करि गायो।
वदन उचारत बेर सहस पायनि ह्वै धायो॥
अंगीकार की अवधि यह ज्यों आख्या भ्राता जमल।
श्री मदनमोहन सूरदास की नाम शृंखला जुरी अटल॥ [1]

इससे ज्ञान होता है कि ये राधाकृष्ण के उपासक तथा रासरस के अधिकारी थे। ये गान-विद्या तथा काव्य-रचना में अत्यंत प्रवीण थे। आपने शृंगार रस के पदों को विशेष कर गाया। संगीत के कारण ही इनकी कविता बहुत अधिक प्रसिद्धि हो गई थी।

आइने अकबरी में अकबर के दरबार के गवैयों का उल्लेख किया गया है। उसमें ग्वालियर निवासी रामदास नामक एक गवैये का वर्णन है। आइने अकबरी के वर्णन से ज्ञात होता है कि अकबर के दरबार में सूरदास नामक गवैया था जोकि रामदास का पुत्र था और अपने पिता के साथ दरबार में आया करता था। [2]

अलबदाउनी द्वारा लिखे गये मुन्तखिबउत्तवारीख ग्रंथ में भी सूरदास के पिता रामदास का उल्लेख है।[3] इसमें रामदास के विषय में कहा गया है —

"खानखाना के पास उस समय अधिक द्रव्य नहीं था फिर भी उन्होंने रामदास लखनवी को जो सलीमशाही कलावन्तों में से एक था और जो गाने की कला में मियाँ तानसेन के समान था एक लाख सिक्के बख्शिश दिये।"

अलबदाउनी ने रामदास को तानसेन के सदृश उच्चकोटि का गायक कहा है।

---

१ भक्तमाल, भक्तिसुधा स्वाद तिलक, छंद सं० १२६, पृ० ७५६ – ५७

२ आइने अकबरी, एच ब्लोकमैन, पृ० ६१२

३ "व खाना खाना हमीं तौर बावजूद आँकि दरस्वजीना हेच न दाश्त एकलक तनका ब रामदास लखनवी क अज कलावन्तान असलीम शाही दरबादी सरोद औरा सानी मियाँ तानसेन तवान गुफ्त व दर खिलवात व जलवात व खान हमदम व मुर्हरिम बूद य अज हुस्न सौत ओ पेवस्ता आबदरदीदा मेगरदानीद हर एक मजलिस अजनगरो जिन्स बखशीदा।"

अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, डॉ० दीनदयालु गुप्त, भाग १, पृ० ६६१

मुन्तखिबउत्तवारीख़ और आइने अकबरी दोनों के वर्णनों से यह निश्चित हो जाता है कि रामदास भी अकबर के दरबार से संबंधित एक उत्कृष्ट गायक था। अतः यह कहा जा सकता है कि सूरदास मदनमोहन ने संगीत की विधिवत शिक्षा बाल्यकाल से ही अपने पिता के द्वारा प्राप्त की होगी। अपने पिता के सम्पर्क में रह कर सूरदास भी संगीत में पारंगत हो गये होंगे। नाभादास जी के वृतान्त से इस बात की पुष्टि हो जाती है कि सूरदास मदनमोहन संगीत में अत्यधिक प्रवीण थे और अपने गायन तथा काव्य-कुशलता के कारण बहुत विख्यात हो गए थे।

हितहरिवंश

राधा-वल्लभीय सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्री स्वामी हितहरिवंश जी राधा-कृष्ण की सखी भाव से उपासना करते हुए भजन-कीर्तन में मग्न रहा करते थे। नाभादास जी ने भक्तमाल में इनकी कृष्णोपासना-विधि का वर्णन करते हुए कहा है –

श्री हरिवंश गुसांई भजन की रीति सुकृत कोउ जानि है।[1]

इस पंक्ति से स्पष्ट होता है कि हितहरिवंश जी भजन गाया करते थे। प्रियादास जी ने इस पर विवेचना करते हुए लिखा है –

विधि औ निषेध छेद डारे प्राण प्यारे हिये।
जिये निज दास निशि दिन वहै गाइये ॥ ६४॥

× × ×

निशि दिन गान रसमाधुरी को पान।
उर अंतर सिद्दांत एक काम श्यामा श्याम को ॥ ६६ ॥[2]

इस वर्णन से भी यही ज्ञात होता है कि राधा-कृष्ण के भजन में मग्न रहना तथा उनके गुणों का गान ही हितहरिवंश जी का कार्य था। ये दम्पति-केलि का गान किया करते थे और रात दिन युगल रूप के यश गाते थे। श्री ध्रुवदास जी ने बहुत अधिक हितहरिवंश जी की प्रशंसा की है किन्तु उनके वर्णन में हितहरिवंश जी के संगीत-ज्ञान पर कोई विशेष प्रकाश नहीं पड़ता क्योंकि ध्रुवदास जी ने भी केवल उनके भजन-कीर्तन का ही वर्णन किया है –

धन चंद चरन अंबुज भजहि मन क्रम वचन प्रतीति।
वृन्दावन निज प्रेम की तब पावै रस रीति।
कृष्णचंद के कहत ही मन को भ्रम मिटि जाइ।
विमल भजन सुख सिंधु में रहै चित्त ठहराइ।[3]

---

१. भक्तमाल, भक्ति रस बोधिनी, छप्पय सं० ९०, पृ० ६३
२. वही, पृ० ६३.
३. भक्तनामावली, ध्रुवदास, स० राधाकृष्ण दास जी, पृ० १.

अन्य बाह्य आधारों से हितहरिवंश जी के संगीत-ज्ञान के विषय में कोई विशेष विवरण प्राप्त नहीं होता।

हरिदास स्वामी

भक्तमाल में नाभादास जी हरिदास स्वामी का वर्णन करते हुए कहते हैं –

युगल नाम सो नेम जपत नित कुंजबिहारी।
अवलोकत रहे केलि सखी सुख को अधिकारी॥
गान कला गंधर्व श्याम श्यामा को तोषै।
उत्तम भोग लगाय मोर मर्कट तिन पोषै।
नृपति द्वार ठाढे रहे दर्शन आशा जास की।
आसधीर उद्योत कर रसिक छाप हरिदास की॥ [१]

उक्त छप्पय में हरिदास स्वामी की गान-कला की अत्यधिक प्रशंसा की गई है। इससे ज्ञात होता है कि हरिदास जी के कीर्तन और गान-विद्या के सम्मुख गंधर्व भी लज्जित थे और अपनी गान-कला से सखी की भाँति सेवा करते हुए श्याम और श्यामा को संतुष्ट करना ही आप का ध्येय था।

श्री व्यास जी ने हरिदास जी की गायन कला की प्रशंसा करते हुए कहा है –

अनन्य नृपरते श्री स्वामी हरिदास।
श्री कुंजबिहारी सेये बिन छिन न करी काहू की आस।
सेवा सावधान अतिजान सुघर गावत दिन रात।
ऐसौ रसिक भयो नहि ह्वै है भुव मंडल आकास।
देह विदेह भये जीवित ही बिसरे विश्व बिलास।
श्री वृंदावन रे तन मन भजि तजि लोक वेद की आस।
प्रीति रीति कीनी सबहिन सो किये खास खवास।
अपनौ व्रत इहि औरनि चाह्यौ जौ लौं कंठ उसास।
सुरपति भूपति कंचन कामिनि जिनिके भाये घास।
अबके साधु व्यास हमहू से करत जगत उपहास। [२]

भक्तनामावली में ध्रुवदास जी ने भी हरिदास स्वामी की संगीत-कला की ओर संकेत करते हुए कहा है कि *वह श्यामा श्याम के विहार का गान किया करते थे।*

उपर्युक्त सभी वृत्तान्तों से यह निश्चित हो जाता है कि संगीत के क्षेत्र में हरिदास

---

१ भक्तमाल, भक्तिसुधास्वादतिलक, छप्पय सं० ६१, पृ० ६०७
२ पद संग्रह, हस्तलिखित प्रति सं० १६२०/३१७०, हिंदी संग्रहालय प्रयाग, पृ० ३५

स्वामी का महत्व अतुलनीय है। यह भी ज्ञात होता है कि वे एकमात्र भगवान को रिझाने के लिए गाते थे और उनकी गान-कला की इतनी अधिक कीर्ति व्याप्त हो गई थी कि दूर-दूर से स्वयं नृपति गण उनसे भेंट करने आते थे। किंतु इन वर्णनों से यह नहीं पता चलता कि कहाँ कहाँ के राजा उनका संगीत सुनने के लिए आए थे।

भक्तमालहरिभक्तिप्रकाशिका,[1] भक्तमालभक्तिसुधास्वाद[2] और भक्त-कल्पद्रुम[3] में उल्लेख किया गया है कि शहंशाह अकबर हरिदास स्वामी का गाना सुनने के लिए आये थे। इनके वर्णन से ज्ञात होता है कि एक बार तानसेन की गायन-कला पर मुग्ध हो कर अकबर ने तानसेन से पूछा कि क्या इस विश्व मे उसके समान निपुण गायक अन्य कोई भी है। तानसेन ने कहा कि हरिदास स्वामी न केवल उसके समान निपुण ही है वरन् वे गान-विद्या में उसे पराजित भी कर सकते हैं। यह जान कर कि हरिदास स्वामी दरबार में नहीं आयेंगे अकबर तानसेन के साथ साधु वेष में वृन्दावन उनका गाना सुनने गए। तानसेन के अत्यधिक आग्रह करने पर भी हरिदास जी ने गाना सुनाना स्वीकार नहीं किया। तब तानसेन ने अपने गुरू के सम्मुख एक राग जान बूझ कर अशुद्ध रूप में गाया। गुरु हरिदास स्वामी ने तत्काल तानसेन का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया और स्वयं गा कर बताने लगे कि इस राग को किस प्रकार से गाना चाहिए। हरिदास स्वामी भावावेश मे गाते रहे और अकबर आनन्दातिरेक में वहीं मूर्छित हो गया। चेतना आने पर अकबर ने तानसेन से पूछा कि तानसेन तुम इतना सुन्दर क्यों नहीं गाते। प्रत्युत्तर मे तानसेन ने कहा कि महाराज, मै पृथ्वी-सम्राट की आज्ञा पर गाता हूँ किंतु गुरुदेव अपनी आत्मा की आज्ञा पर गाते है।

डा० दीनदयालु गुप्त ने भी इस घटना का संकेत किया है।[4] श्री राधाकृष्णदास जी ने लिखा है कि तानसेन के साथ अकबर का नौकर के वेष में जाकर स्वामी हरिदास से गाना सुनने का चित्र अब तक श्री वृन्दावन में वर्तमान है।[5]

भक्तमालहरिभक्तिप्रकाशिका,[6] भक्तमालभक्तिसुधास्वाद[7] तथा भक्तकल्पद्रुम[8] के

---

१. भक्तमालहरिभक्तिप्रकाशिका, पृ० ५४१
२. भक्तमालभक्तिसुधास्वाद, पृ० ६०६
३. भक्तकल्पद्रुम, प्रताप सिंह, पृ० ३८०
४. "अकबर भी इनकी भक्ति, इनके संगीत शास्त्र तथा कला के गुणों की प्रशंसा सुनकर इनसे मिलने गया था।"
अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय, डा० दीनदयालु गुप्त, भाग १, पृ० ६८
५. भक्तनामावली, प्रकाशक राधाकृष्णदास, पृ० १८
६. भक्तमालहरिभक्तिप्रकाशिका, पृ० ५४१
७. भक्तिसुधास्वाद, रूपकला जी, पृ० ६०६
८. भक्तकल्पद्रुम, प्रताप सिंह, पृ० ३८०

वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि तानसेन ने एक बार अकबर से हरिदास स्वामी को अपना संगीत-गुरू बनाया था। श्याम सुंदरदास,[1] रामचन्द्र शुक्ल,[2] रामकुमार वर्मा[4] तथा डा० दीनदयालु गुप्त[5] ने हरिदास स्वामी को तानसेन का संगीत गुरू माना है। स्वयं *तानसेन के पदों से स्पष्ट होता है कि स्वामी हरिदास इनके संगीत-गुरू थे।*

तानसेन ने संगीत की शिक्षा हरिदास स्वामी से पाई इस संबंध में कई किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। कहा जाता है कि एक बार जब तन्ना छोटे थे तो शेर के गर्जन की नकल करते हुए अपने बाग की रखवाली एक कोने में बैठे कर रहे थे। इतने में स्वामी हरिदास उधर से निकले और उनकी मधुर ध्वनि से अत्यधिक प्रभावित हुए। उन्होंने तन्ना को उसके पिता से माँग लिया और वृन्दावन में तन्ना को संगीत की दीक्षा दी। तन्ना का नाम परिवर्तित करके तानसेन रख दिया। दूसरी किंवदन्ती के अनुसार स्वामी हरिदास का तन्ना के पिता मकरन्द पाँडे से घनिष्ट परिचय था और मकरन्द पाँडे भी हरिदास के परम भक्त थे। तभी *हरिदास ने तानसेन को संगीत में पूर्ण निपुण कर दिया था। यह भी कहा जाता है कि* तानसेन पहले गौस मुहम्मद के शिष्य थे और फिर गौस मोहम्मद ने स्वतः इन्हें हरिदास स्वामी के पास दीक्षित होने के लिए भेज दिया था।

उक्त प्रसंगों से यह ज्ञात होता है कि स्वामी हरिदास संगीत शास्त्र के प्रकांड आचार्य तथा महान गायक थे और अकबरी दरबार के विख्यात गायक तानसेन इन्हीं के शिष्य थे। खेद का विषय है कि उस संगीतज्ञ कवि के विषय में जिसने तानसेन के सदृश्य गायक को उत्पन्न किया बहुत ही संक्षिप्त विवरण प्राप्त होता है। इतने महान संगीतज्ञ के जीवन की संगीत संबंधी घटनायें आज भी संदेहात्मक बनी हुई हैं। विश्वस्त सूत्रों के अभाव में इनकी संगीत संबंधी घटनाओं के कुछ तथ्यों के निर्धारण के लिए अनेक प्रचलित जनश्रुतियों पर ही आश्रित रहना पड़ता है।

मीराबाई

भारतीय संगीत और साहित्य के इतिहास में किसी भी युग में पुरुष गायकों एवं

---

१ 'अकबरी दरबार के प्रख्यात गायक तानसेन के और स्वयं अकबर के ये (हरिदास स्वामी) संगीत गुरु कहे जाते हैं।' हिन्दी भाषा और साहित्य, श्यामसुंदरदास, पृ० ४२०

२ 'प्रसिद्ध गायनाचार्य तानसेन इन (स्वामी हरिदास) का गुरुवत सम्मान करते थे'
हिन्दी साहित्य का इतिहास, प० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० १८५

४ 'ये प्रसिद्ध गायक भक्त थे। कहा जाता है कि ये तानसेन के गुरु थे।'
हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डा० रामकुमार वर्मा, पृ० ७१४

५ 'अकबर के दरबार का प्रसिद्ध गवैया तानसेन इन्हीं स्वामी हरिदास जी का शिष्य था और इन्हीं से उसने गान-विद्या सीखी थी।'
अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, डा० दीनदयालु गुप्त, पृ० ६८

कवियों की कोई न्यूनता नही रही। भरत, नारद, मतंग, जयदेव, विद्यापति, हरिदास, बैजू, तानसेन, सूरदास आदि अनेक प्राचीन तथा मध्यकालीन कलाकारों के नाम लिये जा सकते हैं। किंतु यह एक आश्चर्यजनक बात है कि इन शताब्दियों के मध्य हमें स्त्री संगीतज्ञों तथा कवयित्रियों के गिने चुने नाम ही मिलते हैं। संभव है स्त्रियों में काव्य और संगीत की उच्चतम साधना होती रही हो किंतु उनके नामो के उल्लेख करने की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट न हुआ हो। इतने बड़े समय के मध्य हमे विशेष प्रसिद्ध मीरा का ही नाम मिलता है जो काव्य और संगीत-कला दोनों मे सिद्धहस्त थी। भक्ति-भाव के उल्लास में रस की धारा उमड़ाने वाली कृष्ण की अनन्य पुजारिन मीराबाई एक विशुद्ध कवयित्री गायिका थीं। नाभादास के भक्तमाल मे मीरा पर यह छप्पय मिलता है—

लोक लाज कुल शृंखला तजि मीरा गिरिधर भजी।
सदृश गोपिका प्रेम प्रकट कलियुगहि दिखायो।
निर अंकुश अति निडर रसिक जस रसना गायो।
दुष्टन दोष विचारि मृत्यु को उद्यम कीयो।
वार न बांको भयो गरल अमृत ज्यों पीयो।
भक्ति निशान बजाय के काहू ते नाहिन लजी।
लोक लाज कुल शृंखला तजि मीरा गिरिधर भजी॥[1]

इससे यह ज्ञात होता है कि मीरा लोक लज्जा का उल्लंघन करके गिरिधर का गुण-गान किया करती थी। ध्रुवदास ने अपनी 'भक्तनामावली' में मीरा के संगीत को विशेष महत्व देते हुए कहा है—

नृत्यत नूपुर बांध के गावत लै करतार।
विमल हियो भक्तनि मिली तृन सम गन्यो संसार॥[2]

इस पद की प्रथम पंक्ति से स्पष्ट है कि मीरा संगीतज्ञ तथा नृत्य-कुशल थीं। वे करों मे करताल लेकर नृत्य करते हुए अपने पदों को गिरिधर लाल छबीले के सम्मुख गाती थी।

बीकानेर निवासी प्रो० नरोत्तमदास स्वामी ने भक्त हरिदास का एक पद प्रकाशित कराया है—

राणी चित्तौड़ की

× × ×

सब गुण छाड़ि छनक में चाली लाली लगायी रणछोड़ की

१. भक्तमाल—भक्ति सुधा स्वाद तिलक, पृ० ७१८, छं० सं० ११५
२. भक्तनामावली, पृ० ६

ताल बजावे गोविंद गुण गावे लाज तजी बड ल्होडा की ।
निरतति करं नीकां होइ नाचे भगति कुमावें बाई चौंडा की ।
× × ×
हरिदास मीरा बड भागणे सब राण्या सिरमोडा की।'

इस पद से भी यही ज्ञात होता है कि मीरा सगीत-विद्या में प्रवीण थीं । वे भगवान कृष्ण की आराधना मे बेसुध होकर ताल-लय में नाचा तथा गाया करती थी ।

प्रश्न उठता है कि मीरा को सगीत की विधिवत् शिक्षा कहाँ प्राप्त हुई । अनुमान किया जाता है कि अन्य आवश्यक बातो के साथ मीरा को समयानुसार सगीत के अभ्यास का भी अवसर मिला था । मीरा के समय में सगीत विशेषकर नृत्य तथा गान का अधिक प्रचार था । स्त्रियों का सगीत तथा नृत्य का ज्ञान होना आवश्यक समझा जाता था । राजकुल में राजकुमारियो को सगीत की शिक्षा दी जाती जाती थी।[1] मीरा का जन्म राजकुल में हुआ था । फिर मातृविहीना मीरा तो अपने बाबा की अत्यधिक लाडली पौत्री थीं । अत मीरा की सगीत शिक्षा के प्रति उनके अभिभावकों की उदासीनता सभव नही । मीरा का पालन-पोषण उनके बाबा राव दूदा जी ने किया था । राव दूदा जी वैष्णव थे । उनके यहाँ साधु-सतो का समागम तथा सत्सग होता रहता था । सत्सग के अन्तर्गत भजन तथा कीर्तन भी आवश्यक अग है । भजन-कीर्तन में सगीत का भी आयोजन रहता है । अत मीरा को सगीत के सम्पर्क में आने का सयोग मिला और सगीत के साथ उनका परिचय बहुत स्वाभाविक रूप से हुआ । विवाहोपरान्त अपने श्वसुर-गृह में मीरा को यथासभव अपनी सगीत प्रतिभा के विकास के लिए अनुकूल वातावरण प्राप्त हुआ । मीरा का विवाह मेवाड के सीसौदिया राजवश में हुआ था । सीसौदिया राजवश उन दिनो सगीत के अनन्य प्रेमी महाराणा कुम्भा के कारण पूर्ण विख्यात हो चुका था । महाराणा कुभा सगीत की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती की वीणा के बहुत बडे उपासक थे । उन्होंने सगीत का गहरा अध्ययन और अभ्यास किया था । सगीत पर महाराणा कुभा ने 'सगीत प्रदीपिका', 'सगीत सुधा' तथा 'सगीत राज ग्रथ लिखे थे । इसके अतिरिक्त सगीत रत्नाकर तथा जयदेव के गीत-गोविंद की टीका 'रसिक प्रिया' नाम से भी की थी (यह ग्रथ निर्णय सागर मुद्रणालय बबई से प्रकाशित हुआ है) । राणा कुभा की पुत्री रमाबाई सगीत पटुता के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध थी ।

अत जिस राजवश में सगीत का इतना प्रचार हो, जहाँ जयदेव की अष्टपदी सगीत की नवीन स्वरलहरियो से मिलकर वायुमडल को गुजायमान कर रही हो, उस घर में बाल्यकाल से आई कृष्ण प्रेम की मतवाली मीरा सगीत के प्रभाव से कैसे अछूती रह सकती थी । मीरा के काव्य में उनके ससुरालवालो की जो कथा सुनी हुई है वह सगीत और नृत्य-

---

१ राजस्थानी, जनवरी १९३९, पृ० ३८
२ मीरा-स्मृति ग्रथ, मीरा के पदों में सास्कृतिक चित्र, पृ० १६१–६२

निषेध के विषय मे नही है वरन् समाज में निम्न समझे जाने वाले समुदायों के मध्य जाकर नाचने-गाने के निषेध विषयक ही है। मीरा के समय मे स्त्रियाँ घर में गाती थी। मंदिर आदि वाह्य स्थानो पर वेश्याओ का ही संगीत प्रदर्शन होता था। अतः मीरा के ससुराल वाले यह कब देख सकते थे कि उनकी पुत्रवधू वाहर जाकर नाचे-गाये। जब मीरा के संगीत के साथ संतों का भी संगीत आ मिला तथा वे अपनी सुधवुध भूलकर वाहर मंदिर और संत-मंडली में नृत्य करने लगी तभी राज परिवार के लोगो ने उन्हे ऐसा करने से रोका होगा। किंतु न मानने पर ससुराल वालों के क्रोधित होने के कारण मीरा गृह छोड़ने के लिए विवश हुई होंगी।

ससुराल छोड़ने के उपरान्त मीरा वृन्दावन मे निवास करने लगी। वहाँ उनकी संगीत-प्रतिभा को प्रस्फुटित होने का और भी सुयोग प्राप्त हुआ। वृन्दावन उस युग मे संगीत का प्रधान केन्द्र था। अतः यह स्वाभाविक है कि संगीत के केन्द्रस्थल वृन्दावन के संगीतमय वातावरण में मीरा का संगीत-ज्ञान और भी अधिक विकसित हो गया होगा। इस प्रकार अनुकूल वातावरण पाकर मीरा अपने युग की सर्वश्रेष्ठ कवयित्री गायिका हो गई।

राजा असकरण

भक्तमाल तथा आइने अकवरी दोनों में राजा आसकरण का वृत्तांत मिलता है। किंतु किसी के भी वर्णन से उनके संगीत-ज्ञान पर कोई प्रकाश नही पड़ता। राजा आसकारण के संगीत-ज्ञान को जानने के लिए हमें एकमात्र २५२ वैष्णवन की वार्ता पर निर्भर रहना पड़ता है जिसमें निम्न प्रसंग दिया गया है –

"सो वे आसकरण जी नरवरगढ़ मे रहते विनकूं राग सुनवे को व्यसन वहुत हतो सो गान सुनायवे के लीये देश-देश के कलावंत गवैया उहां आवते हते और सबकूं आदर पूर्वक सन्मान करते हते और राग की परीक्षा वहुत आछी हती।"[1]

इस प्रसंग से यह ज्ञात होता है कि राजा आसकरण संगीत के अत्यन्त प्रेमी थे। उनको राग सुनने का व्यसन था और साथ ही वे संगीत के पारखी थे। इसी कारण दूर-दूर से गायक कलावंत उनके यहाँ आते थे। उनकी गान प्रियता की ख्याति सुन कर स्वयं तानसेन भी उनके यहाँ आया था। "ये वात तानसेन जी ने सुनी तव तानसेन जी आसकरण जी के पास आए सो आसकरण जी के पास विष्णु पद गाये।"[2]

राजा आसकरण यह पद सुनकर मोहित हो गए और स्वयं भी वैसा ही पद सीखने का आग्रह करने लगे। गोविंद स्वामी को तानसेन का गुरू जान कर आसकरण गोविंदस्वामी के सेवक हुए और उनसे संगीत की शिक्षा ग्रहण की।

१. २५२ वैष्णवन की वार्ता, पृ० १५७
२. वही, पृ० १५७

"ये पद सुनके राजा आसकरण बहुत प्रसन्न भये और तानसेन सु कही जो मैंने बहुत पद सुने हैं परन्तु ऐसो विष्णुपद कोई दिन सुन्यो नहीं है सो तुमने ऐसे पद कहाँ ते सीखे हैं सो हम कु सिखाओ। जब तानसेन जी बोले श्री गोकुल में श्री विट्ठलनाथ जी, श्री गुसाईं जी हैं तिनके सेवक गोविंदस्वामी हैं तिनने ऐसे सहस्रावधी पद किये हैं तब तानसेन जी ¨ थोड़े दिन पीछे राजा आसकरण जी कु संग लेके श्री गोकुल गए तब श्री गुसाईं जी ने कही न्हाय के मंदिर में आओ जब आसकरन जी न्हाय आये जब श्री गुसाईं जी ने कृपा करके आसकरन जी कु नाम निवेदन करवायो "तब तानसेन ने कही ये गोविंद स्वामी हैं जब राजा आसकरन जी नित्य गोविंद स्वामी जी के पास जाने रमणरेती में हु संग फिर्यो करते।"[१]

वार्ता से यह तो ज्ञात होता है कि गोविंदस्वामी के सम्पर्क में आने से पूर्व ही आसकरण जी संगीत के प्रेमी तथा सच्चे पारखी थे। किंतु वार्ता अथवा अन्य किसी भी आधार से इस बात का कुछ पता नहीं चलता कि आसकरण जी गोविंदस्वामी के सेवक होने से पूर्व स्वयं भी पद बना कर गाया करते थे अथवा नहीं। संभव है कि संगीत में अभिरुचि होने के कारण वे कलावंतों को बुला कर गाना सुनते रहे हों और सच्चे कलाकार की परख भी जानते हों किंतु स्वयं न गाते रहे हों। तानसेन के सम्पर्क से उन्हें संगीत सीखने की प्रेरणा मिली और तब गोविंदस्वामी से उन्होंने संगीत की विधिवत शिक्षा ग्रहण की। प्रारंभ से ही संगीत में अभिरुचि होने कारण गोविंदस्वामी से संगीत सीख कर वे शीघ्र ही प्रसिद्ध हो गए।[२] वार्ता में स्पष्ट रूप से उल्लेख है कि गोविंदस्वामी के सम्पर्क में आने के उपरान्त आसकरण जी स्वयं भी भजन-कीर्तन करने लगे थे।

संगीत तथा सेवा की विधि सीख कर आसकरन जी अपने देश लौट आए और वहाँ राज्य दीवान को सौंप कर स्वयं भगवान के भजन-कीर्तन में लीन रहने लगे।[३]

"श्री मदनमोहन जी को स्वरूप राजा आसकरण ने श्री गुसाईं जी के सुवर्ने सुत के श्री मदनमोहन जी कु पधराय कें और तानसेन जी कु संग लेके राजा आसकरन अपने देश में आये और व्रज भक्तन के भाव से सेवा करने लगे राजकाज सब दिवान कु सौंप दीये और श्री मदनमोहन जी की सेवा तथा कीर्तन करन लगे।"[४]

कुछ दिन पर्यन्त आसकरन जी नरवरगढ़ में रह कर ही भजन-कीर्तन करते रहे। तत्पश्चात् राज्य-पाट से वैराग्य ले कर वे गोकुल में आ बसे। वार्ता से ज्ञात होता है कि इसके बाद से समय-समय पर आसकरण जी व्रज के विभिन्न स्थानों परासोली, [५] दानघाटी, [५]

१ २५२ वैष्णवन की वार्ता, पृ० १५७-५६
२ वही, पृ० १६६
३ वही पृ० १७२
४ वही, पृ० १७३
५ वही, पृ० १७२

गोकुल, श्रीजी द्वार[१], आदि में जाकर भगवान की लीला का गान करते थे और जैसी-जैसी लीला का अनुभव होता उसी के अनुरूप पद बना कर गाते थे –

"अब मानसी सेवा श्री गुसाईं जी की कृपा ते सिद्ध भई जब राज और घर कहा काम को है। ये विचार के भतीजे को राज्य दे दियो और श्री ठाकुर जी वस्त्र-आभूपण सब तथा पात्र श्री गुसाईं जी के इहाँ पठाय दिये और आप श्री गोकुल में जाय के रहे। सब लीला के दर्शन साक्षात होवे लगे। जैसे लीला के दर्शन होवै तैसे पद करके गावन लगे।"[२]

गंग ग्वाल

भक्तमाल तथा भक्तमाल की टीकाओं मे गंगग्वाल की बहुत अधिक प्रशंसा की गई है जिनका वर्णन करते हुए नाभादास जी कहते है –

सखा श्याम मनभावती 'गंग ग्वाल' गंभीर मति।
श्यामा जाकी सखी नाम आगम विधि पायौ।
ग्वाल गाय व्रज गांव पृथक नीके करि गायौ।।
कृष्ण केलि सुख सिंधु अघट उर अंतर धरई।
ता रस में नित मगन असद आलापन करई।।
व्रसबास आस 'व्रजनाथ' गुरु भक्त चरण रज अननि गति
सखा श्याम मनभावती गंग ग्वाल गंभीर मति।।[३]

ध्रुवदास ने भी गोविंदस्वामी के साथ इनका वर्णन करते हुए कहा है –

गोविंदस्वामी गंग अरु विष्णु विचित्र बनाइ।
पिय प्यारी को जस कह्यौ राग रंग सो गाइ।।[४]

भक्तमाल की टीकाओं, भक्तिसुधास्वाद,[५] भक्तकल्पद्रुम,[६] भक्तमाल-हरिभक्ति प्रकाशिका[७] के वृत्तांत से यह ज्ञात होता है कि व्रजनाथ जी के शिष्य गंगग्वाल जी श्यामसुंदर के सखा-भाव के उपासक थे। कृष्ण भगवान की क्रीड़ा के आनंद-रस में लीन रहते थे। व्रज-भूमि से आप को अत्यधिक प्रेम था। भगवत् कीर्तन अर्थात् गन्धर्व-विद्या में आप बहुत विख्यात

---

१. २५२ वैष्णवन की वार्ता, पृ० १७४
२. वही, पृ० १७४
३. भक्तमाल-भक्तिसुधास्वाद, पृ० ८६५, छप्पय सं० १६२
४. भक्तनामावली, पृ० ३
५. भक्तमाल-भक्तिसुधास्वाद, पृ० ८६५ छं० सं० १६२,
६. भक्तमाल-भक्तकल्पद्रुम, पृ० ३५२
७. भक्तमाल-हरिभक्तिप्रकाशिका, पृ० ६५९

थे। राधाकृष्णदास ने आप को महान कवि माना है। ऊपर लिखे ग्रंथों से इस प्रसंग की पुष्टि होती है कि इनकी गान-कला की ख्याति सुन कर अवनीश ने वृन्दावन में इन्हें गाना सुनने के लिए बुलाया। एक वल्लभ नामक गुणी गायक भी साथ में आया। दोनों के स्वर भरते ही अतिशय रंग छा गया और सबके नेत्रों से प्रेमाश्रु बहने लगे। मोहित हो कर अवनीश ने इन्हें अपने साथ ले जाने का आग्रह किया किन्तु मना करने पर बलात् इन्हें अपने साथ दिल्ली ले गया। पाटम नगर के राजा हरीदास तोमर जी राजपूत को जब यह वृत्तान्त ज्ञात हुआ तो उन्होंने अवनीश से प्रार्थना कर उन्हें बंधन मुक्त कराया। तत्पश्चात् गंग ग्वाल पुनः वृन्दावन में आकर भजन-कीर्तन में लीन रहने लगे।

द्वितीय अध्याय

संगीत और साहित्य

संगीत क्या है ?

संगीत शब्द से भारतीय संगीत में गायन[1], वादन तथा नर्तन तीन कलाओं का बोध होता है। इन तीनों के सम्मिलित रूप को संगीत कहते हैं अथवा संगीत के ये तीनों अंग माने गए हैं –

'गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीतमुच्यते'।[2]
'गीतं वाद्यं नर्तनं च त्रयं संगीतमुच्यते'।[3]
'गीत वादित्र नृत्यानां त्रयं संगीतमुच्यते'।[4]

अंग्रेजी भाषा में संगीत शब्द का अनुवाद करने में म्यूजिक शब्द का व्यवहार होता है। किंतु यूरोपीय देशों में म्यूज़िक शब्द प्रायः कंठ-संगीत (Vocal Music) अथवा वाद्य-संगीत (Instrumental Music) के लिए ही व्यवहृत होता है। नृत्य, लास्य, हावभाव तथा ताल (Gesticulation) का अर्थ म्यूजिक शब्द से नहीं निकलता।

अब प्रश्न उठता है कि जब भारतीय संगीत-कला में गायन, वादन तथा नर्तन तीनों ही अंगों का समावेश है तो उसका नाम संगीत ही क्यों पड़ा। संगीत में गायन कला का

---

१. संस्कृत साहित्य में गायन तथा गान शब्द में सूक्ष्म भेद माना जाता है। वहाँ गायन शब्द प्रशंसा के लिए तथा गान शब्द संगीत के अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है।

२. संगीत-रत्नाकर, शार्ंगदेव, (प्रथम भाग), प्रथम प्रकरणम्, पृ० ६, छं० सं० २१

३. संगीत-दर्पण, पृ० ५, छं० सं० ३

४. संगीत-पारिजात, पृ० ६, छं० सं० २०

संबंध नाभि एवं कंठ से है, वादन का उसकी तन्त्रकारी से और नृत्य का शरीर की मुद्रण-कला से। स्वभावसिद्ध और निरावलम्ब होने के कारण कंठ-संगीत को पूर्ण तथा सर्वप्रधान *और यन्त्र-संगीत तथा नृत्य को वाद्य-यन्त्र की अधीनता से सम्पादित होने के कारण* मध्यम माना गया है। अतः संगीत में गाने की क्रिया को सबसे अधिक महत्व दिया जाता है तत्पश्चात् वादन और नृत्य को। गायन की प्रधानता होने के कारण तीनों को संगीत कहा गया है –

'गानस्याऽत्र प्रधानत्वात्तत्संगीतमितीरितम्।'[1]

श्री भातखंडे जी का कथन है –

"संगीत समुदाय वाचक नाम है। इस नाम से तीन कलाओं का बोध होता है। ये कलाएं गीत, वाद्य एवं नृत्य हैं। इन तीन कलाओं में गीत का प्राधान्य है। अतः केवल संगीत नाम ही चुन लिया गया है।"[2] किंतु जिस प्रकार साहित्य 'सत्यं-शिवं-सुन्दरम्' के सहयोग से निखर उठता है उसी प्रकार संगीत गायन, वादन एवं नृत्य के समन्वय द्वारा।"

संगीत के आधार

नाद–

संगीत का आधार नाद है। 'सब गीत नादात्मक' (अर्थात् नाद पर अवलम्बित) है। वाद्यनाद उत्पन्नकर्ता होने से प्रशस्त है। नृत्य, गीत तथा वाद्य के आधार से होता है। अतः ये तीनों कलाएं 'नादाधीन' मानी गई हैं –

गीतं नादात्मकं वाद्यं नादव्यक्त्या प्रशस्यते।
तद्द्वयानुगतं नृत्यं नादाधीनमतस्त्रयम् ॥१॥[3]

नाभि के ऊपर हृदयस्थान से ब्रह्मरन्ध्र-स्थित प्राणवायु में एक प्रकार का शब्द होता है उसी को नाद कहते हैं –

नाभेरूर्ध्वं हृदिस्थानान्मारुतः प्राणसंज्ञकः।
नदति ब्रह्मरन्ध्रान्ते तेन नादः प्रकीर्तितः ॥[4]

ब्रह्माण्ड की चराचर वस्तुओं में नाद व्याप्त है। अतएव इस नाद को नाद-ब्रह्म

---

१ संगीत-पारिजात, पृ० ६, छ० सं० २०
२ संगीत शास्त्र, पं० विष्णु नारायण भातखंडे, (प्रथम भाग), पृ० २
३ संगीत रत्नाकर, शार्ङ्गदेव, (प्रथम भाग), द्वितीय प्रकरण, पृ० ११,
संगीत दर्पण, दामोदर, पृ० ८, श्लो० १३
४ संगीत-पारिजात, अहोबल पृ० ६

ऐसी संज्ञा दी गई है। मूलभूत नाद-ब्रह्म ऊंकारवाचक है और इसी नादब्रह्म से संगीत की उत्पत्ति है।

नाद के प्रकार –

नाद दो प्रकार का होता है–(१) अनाहत तथा (२) आहत –

'आहतोऽनाहतश्चेति द्विधानादोनिगद्यते।"[1]

तथा–

'नादस्तु सद्विधः प्रोक्तः पूर्वानांदस्त्वनाहतः।

× × ×

आहतस्तु द्वितीयो सो वाद्येष्वाघातकर्म्मणा॥'[2]

अनाहत नाद –

अनाहत नाद वह होता है जो कान के छेदों में उँगली लगाने पर सुनाई देता है।[3] अनाहत नाद बिना किसी आधार के उत्पन्न होता है। प्राचीन आचार्यों की कही हुई रीति के अनुसार मुनिजन अनाहत नाद की उपासना करते हैं। यह नाद मुक्तिदायक तो है परन्तु रंजक नही है –

तत्राऽनाहतनादं तु मुनयः समुपासते।
गुरूपदिष्टमार्गेण मुक्तिदं न तु रंजकम॥१६॥[4]

संगीत का प्रधान गुण रंजन प्रदान करना है अतः वह अनाहत नाद से असम्वद्ध है। हठयोगी मोक्ष प्राप्त करने के लिए अनाहत नाद की उपासना करते हैं।

आहत नाद –

शास्त्रोक्त संगीत में जिस नाद का विवेचन है वह आहत नाद है। आघात स्पर्श या संघर्ष से अर्थात् दो वस्तुओं की रगड़ से अथवा टकराने से तथा वाद्ययंत्रों पर आघात करने से जो शब्द निकलता है उसे आहत नाद कहते हैं। नारद-संहिता में कहा गया है कि इसी (आहत नाद) से संगीत के स्वरों की उत्पत्ति होती है अतः पृथ्वी पर ऐसे नाद की सदा जय बनी रहे –

---

१. संगीत-दर्पण, दामोदर, पृ० ६
२. संगीत-पारिजात, अहोवल, पृ० ११
३. नादस्तु सद्विधः प्रोक्तः पूर्वानादस्त्वनाहतः
कर्णरन्ध्रे तथा नद्यां निर्झरोऽपि भवेत्त्वयः॥
संगीत पारिजात, अहोवल, पृ० ११
४. संगीत-दर्पण, दामोदर, पृ० ६

आहतस्तु द्वितीयो सौ वाद्येष्वाघातकर्म्मणा ।
तेन गीतस्वरोत्पत्ति स नादो जयते भुवि ॥[1]

आहत नाद व्यवहार मे रजक बन कर भव मजक भी बन जाता है –

॥ नादस्त्वाहतो लोके रजको भवभजक ॥ १७ ॥[2]

नाद का ग्रहण ध्वनि से होता है। काव्यशास्त्रवेत्ताओ ने ध्वनि के चौदह सहस्र भेद किए है। किन्तु सगीतोपयोगी नाद का कुछ ही ध्वनिया से सबध है। सभी पदार्थों के टकराने या सघर्ष होने से उत्पन्न हुई ध्वनि को सगीतपयोगी नाद नही कहा जा सकता। पत्थर पर चोट करने से, रेलगाडी की घडघडाहट से तथा चपला की चमक से जो ध्वनि उत्पन्न होती है वह सगीतोपयोगी नाद नही कहला सकती क्योकि उस ध्वनि मे ठहराव एव माधुर्य नही है। जिस ध्वनि मे ठहराव एव मधुरता हो जो श्रवणेन्द्रिय को प्रिय लगे उसे ही सगीतोपयोगी नाद कहा जाता है।

श्रुति –

'श्रु' धातु जो सुनने के अर्थ मे है उसमे 'ति' प्रत्यय लगाने से श्रुति शब्द बनता है –

इदानीं तु प्रवक्ष्यामि श्रुतीना च विनिश्चयम् ।
श्रु श्रवणे चास्यधातो क्तिप्रत्ययसमुद्भव ॥ २६ ॥[3]

श्रुतियो का कारण श्रावणत्व कहा गया है। अर्थात् जो कान से सुनाई द तथा जिसको श्रवणेन्द्रिय या कान का परदा ग्रहण कर सके या पकड सके उसे श्रुति कहते है।[4]

सगीतदर्पणकार का कथन है कि प्रथमाघात से अनुरणन हुए बिना (अर्थात् बिना प्रतिध्वनित हुए) जो ह्रस्व (टकोर) नाद उत्पन्न होता है उसे श्रुति समझना चाहिये –

स्वरूपमात्रश्रवणान्नादोऽनुरणन विना ।
श्रुतिरित्युच्यते भेदास्तस्या द्वाविंशतिर्मता ॥ ५१ ॥[5]

---

१ सगीत पारिजात, पृ० ११
२ सगीत-दर्पण, पृ० १०
३ बृहद्देशी, मतग, पृ० ४
४ "श्रुतय स्यु स्वराभिन्ना श्रावणत्वेन हेतुना ॥ ३८ ॥,
'श्रवणेन्द्रियग्राह्यत्वाद् ध्वनिरेव श्रुतिर्भवेत् । (विश्वावसु)", सगीत पारिजात, अहोबल पृ० १२-१३
५ सगीत-दर्पण, दामोदर, पृ० १७

कल्लिनाथ[1] ने भी कहा है–प्रथम सुनने से जो शब्द ह्रस्व-मात्रिक (सूक्ष्म) सुनाई देता है उसी स्वर को अवयवस्वरूप वाली श्रुति समझना चाहिये –

प्रथमश्रवणाच्छब्दः श्रूयते ह्रस्वमात्रकः ।
सा श्रुतिः सम्परिज्ञेया स्वराऽवयवलक्षणा ॥[2]

अभिनवरागमंजरी में श्रुति की परिभाषा निम्नलिखित प्रकार से की गई है –

नित्यं गीतोपयोगित्वमीभज्ञेयत्वमप्युत् ।
लक्ष्ये प्रोक्तं सुपर्याप्तं संगीत श्रुतिलक्षणम् ॥[3]

वह ध्वनि जो गीत में प्रयोग की जा सके और जो एक दूसरे से अलग तथा स्पष्ट पहचानी जा सके उसे श्रुति कहते हैं। श्रुति की परिभाषा समझने के लिए तीन बातों का ध्यान रखना अनिवार्य है—(१) आवाज संगीतोपयोगी हो, (२) ध्वनि साफ-साफ सुनाई दे और (३) ध्वनि एक दूसरे से अलग तथा स्पष्ट पहचानी जा सके। अतः श्रुति की परिभाषा इस प्रकार होगी——वह संगीतोपयोगी ध्वनि जो कानों को साफ सुनाई दे और जो एक दूसरे से अलग तथा स्पष्ट पहचानी जा सके उसे श्रुति कहते हैं।

यदि किसी वीणा पर स्वरों के पर्दों को देखें तो प्रतीत होगा कि वे सटे हुए नहीं हैं वरन् विभिन्न दूरी पर हैं। यदि और पर्दों को हटाकर केवल सात शुद्ध स्वरों को रखें तो देखेंगे कि सरे, मप, पध, पध के पर्दों के बीच में जो जगह खाली है उसमें दो तीन जगह तार पर उंगली रखकर छेड़ने से वहाँ भी सुमधुर ध्वनियाँ होती हैं। इन्हीं अंतः स्थानों की ध्वनियों को श्रुति कहते हैं। श्रुतियों को अंग्रेजी में प्रायः (Quarter tone) कहते हैं।

श्रुतियाँ २२ मानी गई है। (१) तीव्रा (२) कुमुद्वती (३) मन्दा (४) छन्दोवती (५) दयावती (६) रंजनी (७) रक्तिका (८) रौद्री (९) क्रोधी (१०) वज्रिका (११) प्रसारिणी (१२) प्रीति (१३) मार्जनी (१४) क्षिति (१५) रक्ता (१६) सन्दीपिनी (१७) आलापिनी (१८) मदन्ती (१९) रोहणी (२०) रम्या (२१) उग्रा और (२२) क्षोभिणी।[4]

---

१. "१५ वीं शताब्दि के प्रथम चतुर्थांश में (सन् १४२५ के लगभग) विजयनगर के राजा देवराज के दरबार में लक्ष्मीधर पंडित के पुत्र प्रसिद्ध संगीतज्ञ और विद्वान कल्लिनाथ रहते थे। कल्लिनाथ ने शार्ंगदेव के 'संगीतरत्नाकर' पर एक बड़ी टीका लिखी है।" उत्तर भारतीय संगीत का संक्षिप्त इतिहास, भातखंडे, पृ० १३

२. संगीत-पारिजात, अहोबल, पृ० १४

३. अभिनवरागमंजरी, पं० विष्णुशर्मा विरचित, पृ० ३, छं० २९

४. संगीत-दर्पण, दामोदर, पृ० १७, श्लोक ५३-५६; संगीत पारिजात, अहोबल, पृ० १३-१४

स्वर –

जो नाद श्रुति उत्पन्न होने के पश्चात् तुरन्त निकलता है, जो प्रतिध्वनित रूप प्राप्त करके मधुर तथा रंजन करने वाला होता है, जिसे अन्य किसी नाद की अपेक्षा नहीं होती तथा जो स्वतः स्वाभाविक रूप से श्रोताओं के मन को आकर्षित कर ले उसे स्वर कहते है –

श्रुत्यनन्तरभावी यः स्निग्धोऽनुरणनात्मकः ।
स्वतोर रंजयति श्रोतृचित्त स स्वर उच्यते ॥२६॥[1]
श्रुत्यनन्तरभावित्व यस्यानुरणनात्मकः ।
स्निग्धश्च रंजकश्चासौ स्वर इत्यभिधीयते ॥५७॥
स्वयं यो राजते नादः स स्वरः परिकीर्तितः ॥५८॥[2]
रंजयन्ति स्वतः स्वान्तं श्रोतृणामिति ते स्वराः ॥६३॥[3]

ध्वनि मे निरंतर झनक या गुनगुनाहट से कोई ध्वनि किसी ऊँचाई पर पहुँच कर वहां स्थापित रहे उसे संगीत में स्वर कहते हैं। स्वरों का परस्पर स्थान निश्चित होता है। वे प्रत्येक अपने-अपने स्थान पर निरंतर बोलते रहते हैं तथा सुनने में रंजक और मधुर प्रतीत होते हैं।

स्वरों की संज्ञा तथा सूक्ष्म नाम –

स्वर सात होते हैं—(१) षड्ज (२) ऋषभ (३) गान्धार (४) मध्यम (५) पंचम (६) धैवत (७) निषाद।[4] इन स्वरों की दूसरी संज्ञा अथवा संक्षिप्त नाम क्रमशः स, रे, ग, म, प, ध, नि हैं।[5]

अंग्रेजी में इन्हें Do, Re, Mi, Fa, Sol, La, Se कहते हैं और इनके सांकेतिक चिन्ह निम्नलिखित प्रकार से हैं –

स	रे	ग	म	प	ध	नि
C	D	E	F	G	A	B

---

१ संगीत-रत्नाकर, शार्ङ्गदेव, (प्रथम भाग), तृतीय प्रकरण, पृ० ४०
२ संगीत-दर्पण, दामोदर, पृ० १८
३ संगीत-पारिजात, अहोबल, पृ० १८
४ षड्जर्षभौ च गान्धारस्तथा मध्यमपंचमौ।
धैवतश्च निषादोऽयमिति नामभिरीरिताः ॥ संगीत-पारिजात, अहोबल, पृ० १८, छं० सं० ६३-६४
५. तेषां संज्ञा सरिगमपधनीत्यपराभता, संगीत रत्नाकर, शार्ङ्गदेव, (प्रथम भाग), तृतीय प्रकरण, पृ० ४०, श्लो० २५
सरी, गमौ, पधौ, निश्चस्वरा इत्यपि संज्ञिता ॥६६॥ संगीत-पारिजात, पृ० १८

स्वर और श्रुति में अन्तर –

स्वर और श्रुति अलग-अलग नाम अवश्य है किंतु वास्तव में हैं दोनों एक ही। स्वर श्रुति की समष्टि है और श्रुति स्वर का अंश है। श्रुतियों से ही स्वर की उत्पति होती है। षड्ज में ४, ऋषभ में ३, गान्धार में २, मध्यम में ४, पंचम में ४, धैवत में ३, और निषाद में २ श्रुतियां रहती है।[1] वे सुरीली ध्वनियां जिनका अन्तर (Interval) बड़ा और ठहराव अधिक होता है तथा जो एक दूसरे से अलग और स्पष्ट होती है स्वर कहलाती है किंतु जिनका अन्तर सूक्ष्म तथा ठहराव कम होता है वे ही श्रुति कहलाती है। श्रुतियां को तो स्पर्श मात्र ही ठहराते है परन्तु स्वरों का ठहराव अधिक होता है।

अहोबल पंडित के मतानुसार श्रुतियां स्वरों से पृथक नही हैं। स्वर तथा श्रुति में उतना ही भेद है जितना साँप और उसकी कुंडली में –

श्रुतयः स्युः स्वराभिन्ना श्रावणत्वेन हेतुना।
अहि कुण्डलावत्तत्र भेदोक्तिः शास्त्रसम्मता॥३८॥[2]

संगीत-दामोदर में कहा गया है कि जैसे पक्षियों की गति है ठीक उसी प्रकार स्वर में श्रुति की गति कहलाती है। श्रुति नाद के वश में तथा उसके आश्रित कला बताई गई है जो सूक्ष्म रूपेण स्वर में स्थित है –

गगने पक्षिणां यद्वत्तद्वच्छ्वगता श्रुतिः।
श्रुतिर्नादवशा प्रोक्ता तथाढ्या च कला मता॥[3]

तथा जिस प्रकार तेल में चिकनाहट और लकड़ी में अग्नि रहती है, आकाश में वायु बहती है और विद्युत में प्रकाश रहता है उसी प्रकार स्वर में श्रुति है –

यथा तैलगता सर्पिर्यथा काष्ठगतोऽनलः।
श्रुतिः स्वरगता तद्वक्ता च को वा वदिष्यति॥
व्योम्नि वायुर्यथा वाति प्रकाशश्चैव विद्युति।
ज्ञायतेऽत्रोपदेशेन तथा स्वरगता श्रुतिः॥[4]

कुछ लोग श्रुति को अनुरणन विहीन ध्वनि भी मानते है। अर्थात् जब कोई नाद

---

१. चतुः श्रुति समायुक्ताः स्वराः स्युः स-म-पाभिधाः॥६६॥
गनौ श्रुतिद्वयोपेतौ रि-धौ त्रिश्रुति कौ मतौ॥६७॥ संगीत-पारिजात, अहोबल, पृ० १८-१९

२. वही, पृ० १२

३. संगीत-पारिजात, अहोबल, पृ० १७

४. वही, पृ० १७

उत्पन्न होता है तो उसकी आँस निकलने से पूर्व उसका जो रूप ध्वनित होता है वही श्रुति है और आँस अथवा अनुरणन युक्त जो नाद उत्पन्न होता है उसे स्वर की संज्ञा दी गयी है।

स्वरों के भेद –

स्वर के दो भेद होते हैं– (१) शुद्ध और (२) विकृत। शुद्ध स्वर ७ होते हैं और विकृत २२ –

शुद्धत्वविकृतत्वाभ्यास्वराद्वेधा प्रकीर्तिता ॥ ६४ ॥
शुद्धा सप्त विकारास्त्याद्द्वयधिका विंशतिर्मता ॥ ६५ ॥[1]

शुद्ध स्वर– २२ श्रुतियों में से १, ५, १०, १४, १८ और २१ पर जो स्वर होते हैं उन्हें शुद्ध स्वर कहते हैं। यथा –

स, रे, ग, म, प, ध, नि

किंतु शुद्ध मध्यम को कोमल मध्यम कहते हैं।

विकृत स्वर–विकृत स्वर दो प्रकार के होते हैं (१) कोमल और (२) तीव्र।

कोमल स्वर– शुद्ध स्वर से नीचे उतरने पर वह कोमल स्वर हो जाता है।

यथा– रे, ग, ध, नि

तीव्र स्वर– शुद्ध स्वर से ऊपर चढने को तीव्र कहते हैं। यथा – म

स्वर प्रकार –

स्वर चार प्रकार के माने जाते हैं –वादी, सवादी, विवादी और अनुवादी –

चतुर्विधा स्वरावादी सवादी च विवाद्यपि।
अनुवादी च वादी तु प्रयोगे बहुलस्वर ॥ ४६ ॥[2]
वाद्यादिभेभिन्नास्चतुर्विधास्ते स्वरा कथिता ॥ ६८ ॥[3]

वादी स्वर– राग में जो स्वर अन्य-अन्य स्वरों की अपेक्षा अधिक महत्व का हो, राग के स्पष्टीकरण तथा उसकी सुन्दरता की वृद्धि करने में जिस स्वर का अत्यधिक प्रयोग हो और जिसमें राग का स्वरूप प्रकट हो उसे वादी स्वर कहते हैं। राग में वादी स्वर को राजा की उपाधि दी जाती है।[4] इसी स्वर से राग के नाम तथा गाने का समय निश्चित किया जाता है।

---

१ वही, पृ० १८
२ संगीत रत्नाकर, शार्ङ्गदेव, (प्रथम भाग), तृतीय प्रकरण, पृ० ४३
३ संगीत-दर्पण, दामोदर, पृ० २६
४ रागोत्पादनशक्तेर्वदन तद्योगनोवादी ॥ ६८ ॥

संवादी स्वर—राग में जिस स्वर का प्रयोग वादी स्वर से न्यून तथा अन्य स्वरों की अपेक्षा अधिक हो उसे संवादी स्वर कहते हैं। इसको राग का प्रधान मंत्री कहा जाता है।[1]

विवादी स्वर—जिस स्वर के प्रयोग से राग के रूप में अंतर पड़ता है अथवा जिससे हानि होने की संभावना होती है उसे विवादी स्वर कहते हैं। विवादी स्वर का अधिक प्रयोग राग की रंजकता, एकरूपता तथा उसके रस को भंग करता है अतः इसे वैरी के सदृश्य कहते हैं। साधारणतः ऐसे स्वर को वर्ज स्वर मानते हैं। कभी कभी रंजकता बढ़ाने के लिए विवादी स्वर का तनिक सा पुट दे दिया जाता है।

अनुवादी स्वर—शेष स्वरों को अनुवादी स्वर कहते हैं। ये अनुयायियों के सदृश्य हैं जिनको प्रजा की उपाधि दी जाती है।

'भृत्य तुल्या अनुवादी'[2]

अचल स्वर—जो स्वर अपने निश्चित स्थान को नही त्यागते एक ही स्थल पर स्थिर रहते हैं और कभी विकृत नहीं होते वे अचल स्वर कहे जाते हैं। संगीत शास्त्र में स और प अचल स्वर कहे गये हैं।

ग्राम—

स्वरों के समुदाय को ग्राम कहते हैं। ग्राम मूर्च्छना के आधारभूत होते है—

ग्रामः स्वरसमूहः स्यान्मूर्च्छनादेः समाश्रयः ॥ १ ॥[3]
ग्रामः स्वरसमूहः स्यात्मूर्च्छनादेः समाश्रयः ॥ ७५ ॥[4]
अथग्रामास्त्रयः प्रोक्ताः स्वरसन्दोहरूपिणः ॥ ६८ ॥
मूर्च्छनाधारभूतास्ते षड्जग्रामस्त्रिपूत्तमः ॥ ६८ ॥[5]

ग्राम तीन होते है—षड्ज, मध्यम तथा गांधार—

षड्जमध्यमगांधारसंज्ञाभिस्ते समन्विताः ॥ ८० ॥[6]

वहुलस्वरः प्रयोगे भवातीहि राजा च सर्वेषाम् ॥ ६६ । संगीत-दर्पण, दामोदर, पृ० २८;
प्रयोगो वहुधा यस्य वादिनं तं स्वरं जगु ॥ ७६ ॥
राजत्वमपितस्येति मनुयः संगिरन्तिहि ॥ ८० ॥ संगीत-पारिजात, अहोवल, पृ० २१

१. तस्यामात्यस्तु संवादीवादिनो राजसंज्ञिनः ॥ ८३ ॥ संगीत पारिजात, अहोवल, पृ० २४
२. वही, पृ० २४, श्लो० ४८
३. संगीत-रत्नाकर, शार्ङ्गदेव, (प्रथम भाग), चतुर्थप्रकरण, पृ० ४५
४. संगीत दर्पण, दामोदर, पृ० २३
५. संगीत-पारिजात, अहोवल, पृ० २८
६. वही, पृ० २८

गांधार ग्राम देवलोक में है।[1] इस लोक में दो ग्राम हैं—पहला षड्ज तथा दूसरा मध्यम।[2]

मूर्च्छना –

सात स्वरों के क्रमान्वित आरोहण-अवरोहण को मूर्च्छना कहते हैं। मूर्च्छना ग्राम के आश्रित होती हैं। ग्राम को नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे तक बजाना ही मूर्च्छना कहलाता है।

दर्पणकार का कथन है कि सात स्वरों का क्रम से आरोह तथा अवरोह करना मूर्च्छना कहलाता है, तीन ग्राम होते हैं और उनमें से प्रत्येक में सात-सात मूर्च्छनाएं होती हैं –

क्रमात्स्वराणां सप्तानामारोहश्चावरोहणम्।
मूर्च्छनेत्युच्यते ग्रामत्रये ताः सप्तसप्त च॥ ६२॥[3]

अहोबल पण्डित मूर्च्छना का लक्षण निर्धारित करते हुए कहते हैं –

'जब स्वरों का अवरोहण (षड्ज से निषाद तक चढ़ना) और अवरोहण (उसी भांति ऊपर से नीचे उतरना) होता है तब लोक में उसे पण्डितजन मूर्च्छना कहते हैं और वह ग्राम पर आश्रित होती है –

आरोहश्चावरोहश्च स्वराणां जायते यदा।
तां मूर्च्छनां तदा लोके प्राहुर्ग्रामाश्रयां बुधाः॥ १०३॥[4]

तान –

रागों के स्वरूप स्वरूप को तानने, विस्तृत करने तथा फैलाने को तान कहते हैं। तान दो प्रकार की होती है—(१) शुद्ध तान और (२) कूटतान।

शुद्ध तान –

जब शुद्ध मूर्च्छनाओं को षाडव (षट्स्वरोपेत) एवं औडव (पंचस्वरोपेत) किया जाता है तब उन्हें शुद्ध तान कहते हैं –

---

१ संगीत-पारिजात, अहोबल, पृ० २६ तथा संगीत-दर्पण, दामोदर, पृ० ३०, श्लोक ८०

२ तौ द्वौ धरातले तत्र स्यात्षड्ज ग्राम आदिमः॥ १॥
द्वितीयो मध्यमग्रामस्तयोर्लक्षणमुच्यते॥ २॥
संगीत-रत्नाकर, शार्ङ्गदेव, चतुर्थ प्रकरण, पृ० ८४

३ संगीत-दर्पण, दामोदर, पृ० ३२

४ संगीत-पारिजात, अहोबल, पृ० ३३

अलंकार –

नियमित वर्ण समुदाय को अलंकार कहते है। अलंकार मे क्रमानुसार स्वरों के सगुम्फन से राग की शोभा में वृद्धि की जाती है –

> **विशिष्टवर्ण संदर्भमलंकारं प्रचक्षते ॥ १६४ ॥**[1]
> **क्रमेण स्वरसन्दर्भमलंकारं प्रचक्षते ॥ २२१ ॥**[2]

पकड़ –

जिस स्वर समुदाय से किसी राग का वोध होता है उसे पकड़ कहते है। उदाहरण-स्वरूप –

> **राग यमन में– ग, रेसा, निरेग, रेसा।**
> **राग आसावरी में– रे, म, प, निध, प।**

जाति –

स्वरों के नाम वाली सात शुद्ध जातियाँ होती हैं। जिनके नाम है–(१) षड्जा (२) ऋषभी (३) गान्धारी (४) मध्यमा (५) पंचमी (६) धैवती और (७) नैषादी।[3]

मेल या ठाट –

किसी भी प्रकार के स्वरों का एक समूह मेल (ठाट) कहलाता है। मेल राग को प्रकट करने की शक्ति रखता है –

> **मेल स्वरसमूहः स्याद्रागव्यञ्जनशक्तिमान ।३२६।**[4]

राग –

राग शब्द की उत्पत्ति रञ्ज धातु से हुई है जिसका अर्थ है प्रसन्न करना। मतंग मुनि ने अपने संगीत ग्रंथ 'वृहद्देशी' में राग का लक्षण इस प्रकार दिया है –

---

१. वही, पृ० ६६
२. संगीत-पारिजात, अहोवल, पृ० ५७
३. शुद्धाः स्युजतियः सप्तताः षड्जादिस्वराभिधाः।
आद्या षड्जा तु विज्ञेया द्वितीया चर्षभी स्मृता ॥ २६७ ॥
गान्धारी तु तृतीया सा चतुर्थी मध्यमा परा।
पंचमी पंचमी ज्ञेयो षष्ठी तु धैवती पुनः ॥ २६८ ॥
सप्तमी स्यात्तु नैषादीतासां लक्ष्म च कथ्यते ॥ २६९॥ संगीत-पारिजात, अहोवल, पृ० ८५
४. संगीत पारिजात, अहोवल, पृ० ८६

स्ववर्ण विशेषेण ध्वनिभेदेन या पुन ।
रज्यते येन य कश्चित् स राग समत सताम् ॥[1]

अर्थात्–वह ध्वनि जो स्वर और वर्ण द्वारा शोभित हो और जिसमें रजकता हो उसे राग कहते हैं।

सगीत-रत्नाकर मे राग की परिभाषा इस प्रकार की गई है –

योऽसौ ध्वनिविशेषस्तु स्वरवर्णविभूषित ।
रजको जनचित्ताना स राग कथितो बुधैं ॥[2]

अर्थात्– ध्वनि की वह विशिष्ट रचना जिसे स्वर तथा वर्ण द्वारा सौंदर्य प्राप्त हुआ हो और जो सुनने वालो के चित्त को प्रसन्न करे उसे राग कहते हैं।

सगीत पारिजात मे कहा गया है –

रजक स्वरसदर्भो राग इत्यभिधीयते ॥३३९॥[3]

अर्थात्– स्वरो का एक रजक-सदर्भ (सुसगठित समूह) राग कहलाता है।

राधागोविंद-सगीत-सार ग्रथ के सातवें रागाध्याय में राग का लक्षण इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है –

"तहा प्रथम राग को लक्षन लिख्यते। जो धुनि वीणानि ते अथवा कंठतें उत्पन्न होय और सातो स्वर वै जुक्त होय अरु स्थायी आदि च्यारो स्वर के च्यारो वर्ण अलकार जामे युक्त होय। या रीति सौं श्रोतान को चित्त को अनुरजन करे सो राग जानिये।

× × ×

अथ मतग मुनि के मत सो राग को लक्षन कहत है। जो स्वर ध्वनिनियुक्त अपने भेदन सो मन को अनुरजन करे ताको राग कहत है।

× × ×

ऐसोई सोमनाथ मुनि सकल कला प्रवीण है सो राग लक्षन कहत है। इहा प्रसिद्ध स्वर ताल सो मिल्यो धुनि होय सो राग जानिये। या राग को सुनि के कोई प्रसन्न होत हैं अरु कोई ऐसे कहत हैं कि ऐ राग हमको रुचत नाही। यातें अनुरजन ता आप अपनी

---

१ वृहद्देशी, मतग, पृ० ८१, छ० स० २८०
२ सगीत-रत्नाकर, (भाग २), पृ० २
३ सगीत-पारिजात, अहोबल, पृ० ६१

इच्छा सो होय है । यासो राग को स्वर तालयुक्त धुनि है । अपनी रुचि सो अनुरंजन है ।"[1] संगीत-दर्पण के रचयिता भर्त्त बिहारी लाल ने राग का वर्णन करते हुए कहा है—"राग कहैं जाके गान करे सैं मन की अत्यन्त प्रसन्नता होवै और दुष्मन को सुननै सौ हट जावै सो राग ।"[2]

श्री सोरीन्द्र मोहन टैगोर ने राग की परिभाषा बतलाते हुए कहा है—"जो ध्वनि विशेष स्वरवर्ण विभूषित होकर बराबर लय में गमक, मूर्च्छनादि जोग से वादी, विवादी सम्वादी और अनुवादी के हिसाब से कण्ठ अथवा यंत्र में पयदा होता, उसको राग कहते हैं । राग और रागिनी इन दोनों को अकसर राग कहते हैं ।"[3]

राग उस गाने या बजाने को कहते हैं जो अपने माधुर्य से प्राणिमात्र के हृदय को आकर्षित कर ले चाहे वह कण्ठ से गाया जाय या किसी वाद्ययंत्र पर बजाया जाय । किंतु सौंदर्य और आकर्षणरहित गायन अथवा वादन को राग नहीं कह सकते । स्वरों के कुछ मेल को जो माधुर्य उत्पन्न कर सके राग कहते हैं । राग की परिभाषा भलीभाँति हृदयंगम करने के लिए तीन विशेषताओं का ध्यान रखना चाहिए –

१. ध्वनि अर्थात् आवाज़ की विशिष्ट रचना,
२. स्वर और वर्ण (गायन क्रिया) का होना तथा
३. रंजकता का होना ।

अतः राग की परिभाषा इस प्रकार होगी –

"ध्वनि अर्थात् आवाज की वह विशिष्ट रचना जिसे स्वर तथा वर्ण (गायन क्रिया) द्वारा सौंदर्य प्राप्त हुआ हो और जो रचना सुनने वालों के चित्त को प्रसन्न करे उसे राग कहते हैं ।"[4]

संगीत की व्यापकता

किसी ने एक रमणी से कहा—'God's rarest blessing is after all a good woman' (ईश्वर का सबसे बड़ा आशीर्वाद है सुशीला स्त्री) । उस स्त्री ने तत्काल उत्तर दिया—'Rather than that is good music' (उससे भी अधिक सुन्दर संगीत) ।

---

१. राजस्थान में रचित हिंदी का सबसे बड़ा संगीत ग्रंथ-लेख, अगरचन्द नाहटा, संगीत, फरवरी–५३, पृ० १८२
२. संगीत-दर्पण, भर्त्त बिहारीलाल, हिंदी संग्रहालय, हिंदी-साहित्य-सम्मेलन में सुरक्षित हस्तलिखित प्रति
३. गीतावली, सोरीन्द्र मोहन टैगोर, पृ० १०
४. संगीत-कौमुदी, (प्रथम भाग), विक्रमादित्य सिंह निगम, पृ० ४२

अखिल विश्व ही सगीतमय है। सगीत का प्राण-बीज नाद है। यह उस अखिल ब्रह्माण्ड के प्रत्येक कण में जिससे इसका निर्माण हुआ है उसी प्रकार व्याप्त है जिस प्रकार अग्नि में उष्णता निहित है। वाक्यप्रदीप के प्रणेता भर्तृहरि ने सृष्टि को नाद का विवर्त माना है।[1] तान्त्रिको का कथन है कि नाद से परे सृष्टि का निर्माण ही असभव है। समस्त विश्व-ब्रह्माण्ड नाद और विन्दु (Vibration and rotation) का परिणाम है। इस नाद में ताल युक्त गति (Rhythmic movement) भी है। इस दृष्टि से देखने पर सगीत की व्यापकता का महत्व अनायास ही प्रकट हो जाता है।

विश्व की उत्पत्ति के विषय में इस प्रकार का सिद्धात केवल तान्त्रिक मत सम्मत ही नही है वरन् भारतीय षट् दर्शनों में भी विविध स्थलो पर विश्वसृष्टि का विवेचन किया गया है और वह भी नामभेद को छोडकर प्राय कुछ ऐसे ही सिद्धान्तो को स्वीकार करता है। वैशेषिक दर्शन इस सबध मे विशेष रूप से उल्लेखनीय है जिसमें माना गया है कि पचतत्वो का अग्नितत्व जो व्यजन शक्ति का प्रादुर्भूत रूप है वही आदिनाद का मूल है और वही सृष्टि का भी मूल है।

सगीत की इसी व्यापकता को लक्ष्य कर प० ओंकारनाथ ठाकुर ने कहा है—"सगीत पृथ्वी का विषय नही है। शब्द आकाश का गुण है। जितना आकाश विशाल है नाद (सगीत) भी उतना ही विश्वव्यापी है। नाद की लहरें ही अमरीका से भी फैलती हुई हमारे कानो तक जाती है। भगवान कृष्ण के आदेश और उपदेश आज भी अनत आकाश में गूँज रहे है।"[2]

सगीत सृष्टि का सृजन-कर्ता है और प्रलय के उपरान्त सृष्टि के विनष्ट हो जाने पर सगीत का अस्तित्व रहता है। सन् १९५४ के अन्तर्राष्ट्रीय सगीत पुरस्कार मे सर्वश्रेष्ठ घोषित की जानेवाली कुमारी ह्वील्स योम का विश्वास है कि "सगीत अनादि है, इसका जन्म स्वर्ग के नाद प्राङ्गण मे हुआ है। इसीलिए इसमें स्वर्गीय तत्व है। जब सृष्टि की प्रलय होती है उस वक्त भी सगीत की मधुर ध्वनि समाप्त नही होती। सगीत के विशाल गर्भ मे ही पुन नवीन सृष्टि का सृजन होता है।"[3] मिल्टन ने "पैराडाइज लास्ट" में सगीत से विश्व सृजन की अनुभूति की है। स्टीवेंसन अपने "पेनमपाद्प" नामक लेख में सगीत से ससार की स्थिति स्वीकार करते है। ड्राइडन ने सेंट अमीलिया में सृजन और लय दोनो का सगीत द्वारा होना बताया है।

न केवल चेतन सृष्टि ही प्रत्युत जड सृष्टि भी सगीतमय है। जड-जगम जगत में जहाँ-जहाँ दृष्टि डालिए सगीत के सप्त स्वरो का समा-सा बँधा दिखाई देता है। कलियो

१ विश्वस्मृति ग्रथ, भारतीय सगीत का विकास, ठाकुर जयदेव सिंह पृ० ७७७

२ सगीत, मार्च १९५३, पृ० २५६

३ सगीत, फरवरी १९५५, 'सगीत की स्वरलहरियो पर मुर्दे भी बोल उठते हैं', उमेश जोशी, पृ० ३०

की चिटकान, मलयानिल की सुकुमार गति, सरिताओं की कलकल ध्वनि, वायु के झोंकों से आंदोलित वृक्षावली के पत्तो की खड़खड़ाहट, चंचल समीर की सनसनाहट, अमावस्या की गहन निशा, समुद्र-गर्जन तथा विशाल आकाश के तारों की झिलमिलाहट में दिव्य संगीत का अनुभव कर किसे आनंद प्राप्त नही होता । "प्रकृति जब तरंग में आती है तब वह गान करती है । उसके गीतों मे हृदय का इतिहास इस प्रकार व्याप्त रहता है जैसे प्रेम में आकर्षण, श्रद्धा मे विश्वास और करुणा मे कोमलता ।······प्रकृति संगीतमय है । ग्रह-गण एक नियत कक्ष मे फिरकर उस संगीत का कोई स्वर सिद्ध कर रहे है । झरनों का अविराम नाद पत्तों की मर्मर ध्वनि, चंचल जल का कलकल, मेघ का गरजना, पानी का छमाछम बरसना, आँधी का हाहाकार, कलियों का चिटकना, विक्षुब्ध समुद्र का महारव, मनुष्य की भिन्न-भिन्न भाषाये और विचित्र उच्चारण, खग, पशु, कीट-पतग आदि की बोलियां ये सब प्रकृति के उस संगीत के सहायक मन्द्र और तार स्वर तथा लय हैं, वज्रपात थाप है और नदियों का प्रवाह मूर्च्छना है ।"[1]

पशु-पक्षी जब आनंदविभोर हो जाते है तब उनका स्वर संगीतमय हो जाता है । भौंरों की गुजार, बुलबुल की श्रुति-मधुर चहचहाहट, पक्षियो के साध्यगीत, कोयल की मधुर पंचम तान और मोर की मादक गति में कितना सगीत निहित है । नारद-संहिता मे कहा गया है कि – 'चिड़ियाँ, भौंरे, पतंगे, हरिण आदि सभी जीव गाते है अतः संगीत सर्व दिशाओं में व्याप्त है ।[2] संगीत-दर्पणकार के मतानुसार मयूर, चातक, बकरा, क्रौंच, कोकिल, मेढ़क और हाथी ये क्रम से षड्जादिक सप्त स्वरों का उच्चारण करते है । अर्थात् मोर षड्ज का, चातक ऋषभ का, बकरा गांधार का, क्रौंच मध्यम का, कोकिला पंचम का, मेढ़क धैवत का और हाथी निषाद स्वर का उच्चारण करते है ।[3]

पशु-पक्षियों में ही नहीं प्रत्युत मानव समाज पर दृष्टिपात करें तो विदित हो जायगा कि प्रकृति की सुरम्य गोद में क्रीड़ा करते हुए अरण्यवासियों से लेकर सुसंस्कृति तथा सभ्यता की गोद में पले मानवों तक में संगीत का अस्तित्व मिलता है । "मानव जीवन के तो प्रत्येक

---

१. कविता-कौमुदी, (तीसरा भाग), ग्रामगीत, रामनरेश त्रिपाठी, पृ० ६६

२. खगाः भृंगाः पतंगाश्च कु[?]ाद्योऽपिजन्तवः
सर्व एव प्रगीयन्ते गीतव्याप्तिर्दिगन्तरे ॥ संगीत-पारिजात, अहोबल, पृ० २

३. मयूरश्चातकश्छागः क्रौंचकोकिलदर्दराः ।
गजश्च सप्त षड्जादीन् स्वरानुच्चारयत्यमी ॥
षड्ज वदति मयूरः पुनः स्वरमृषभं चातको ब्रूते ।
गांधाराख्यं छागो निगदति च मध्यम क्रौंचः ॥
गदति पंचममचितवाक् पिको रटति धैवतमुन्मददर्दरः
श्रृणिसमाहृतमस्तककुन्जरो गदतिनासिकया स्वरमंतिमम् ॥
संगीत-दर्पण, दामोदर पंडित, पृ० ७०, श्लो० सं० १६६-७१

क्षण में संगीत भरा पटा है। शिशु के रोदन में स्वरो का चढाव-उतार है। उसके हावभाव में नृत्य की असंख्य मुद्रायें भरी पडी हैं। लोरिया के स्वरो में शिशु को सुलाने की शक्ति है। बालपन मे खेलकूद के गीत, कवायद के गीत, राष्ट्रीय के गान और इसी श्रेणी के अन्य अनेक क्रियाशील गीतो का महत्व रहता है। युवावस्था में सूक्ष्म भावो की अभिव्यक्ति के लिए संगीत के बराबर किसी वस्तु में भी शक्ति नही है। थके हुए किसानो व मजदूरो को संगीत से ही सान्त्वना और नवोत्साह प्राप्त होता है। भारी बोझ उठाने या ढोने में लय और स्वर के प्रभावशाली प्रयोग कितनी सहायता पहुँचाते हैं। लोकगीतो ने तो लोकजीवन का निर्माण किया है। गाव वालो का तो भोजन और प्राण ही संगीत है। नागरिक जीवन में संगीत के शास्त्रीय रूप की साधना भी होती है। मनोरंजन का विषय तो वह है ही साथ ही कितने ही प्राणी उसके द्वारा जीविकोपार्जन भी कर रहे हैं।'[1] संगीत मानव-जीवन के रग-रग में इतना व्याप्त है कि जब प्राणी हर्षातिरेक से प्रफुल्लित हो जाते हैं तब तो उनकी वाणी में संगीत मुखरित हो ही जाता है वरन् करुणा के आवेश में अपने प्राणप्रिय पति तथा अपने आत्मज के वियोग में भी स्त्रियाँ संगीतमय विलाप करती हैं। नतमस्तक दीनो की करुण आह में, वीरो के सिंहनाद तथा रणघोष में संगीत निहित है। यही नहीं रजनी के नीरव अंधकार में नागरिको की जनसम्पत्ति की रक्षा करने वाले प्रहरी जब यह कहते हैं – 'सोने वाले जागते रहो' तब उनके इन शब्दो में भी संगीत की ध्वनि का स्पष्ट अनुभव होता है।

जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त हिन्दुओ का समस्त सामाजिक जीवन संगीतमय है। भारतीय जीवन के प्रत्येक मंगलकार्य से संगीत की लडियाँ गुथी हुई हैं। नवोदित शिशु के रोने की प्रथम ध्वनि के साथ ही ढोल-मजीरे की तान पर उठते हुए संगीत के सामूहिक स्वर सुनाई देने लगते हैं और आगन के बाहर से शहनाई की मंगल ध्वनि गुंजरित होने लगती है। माँ की लोरियो की गुनगुन सम्पूर्ण घर में व्याप्त होजाती है। जीवन के विकास के साथ साथ संगीत की झंकार भी आगे बढती जाती है। नामकरण, अन्नप्राशन, मुडन, यज्ञोपवीत, पाणिग्रहण आदि संस्कारो तथा उपसंस्कारो के मध्य संगीत के स्वर गूंजते रहते हैं।

मांगलिक पर्वो तथा उत्सवो में मनोरंजन के लिए तो संगीत प्रमुख है ही, प्रत्येक परिश्रम के काम के साथ भी गीत लगा हुआ है। राही पथिक संगीत के स्वरो में लीन हो कर अपनी थकान भूल जाते हैं। दुलहिन को पिया के देश पहुँचाने के लिए पालकी ले जाते हुए कहार गीत गा-गाकर राह काटते हैं, चरवाहा अपनी गौओ को चराते हुए सुनसान जगल में अपने गीतो से पेड पत्तो तक को जगाता रहता है।

मानव ही क्यो स्वयं जो मंगलमय रूप में पूजित हैं, ऐसे मनुष्य के देवी-देवता भी संगीत-रस-सृष्टा, संगीत रस परिपोषक, संगीत-रस पिपासु तथा संगीत-प्रेमी हैं। देवर्षि की

---

१ संगीत, जनवरी १९५५, संगीत और जीवन, श्री महेश नारायण सक्सेना, पृ॰ ७४

वीणा की झंकार और देव-महिमा-संकीर्तन देवताओं के मनोरंजन का एक अपरिहार्य अंग है। शिव जी का डमरू तांडव-नृत्य की आत्मा है, देवी सरस्वती अपनी मधुर वीणा के साथ सुशोभित हैं। व्रजेश्वर श्रीकृष्ण की भुवन-मोहिनी मुरली तो सुविख्यात है ही। यह अकारण ही नहीं है। इसका यही तात्पर्य है कि मानवीय शिक्षा की कसौटी एकमात्र पुस्तकीय ज्ञान ही नहीं है। वरन् यह भी अनिवार्य है कि उसकी मानसिक वृत्तियों का ऐसा परिमार्जन हो गया हो कि उसे वैराग की कोई भी बात अच्छी न लगे, उसकी हृदयतंत्री के तार सर्वदा ही मधुर राग से रंजित रहें।

संगीत की महत्ता

संगीत की महत्ता किसी से छिपी हुई नहीं है। 'संगीत 'कं न मोहयेत्' संगीत किस को मोहित नहीं करता। अन्तर की सत्य भावना तथा अनुराग सहित यथार्थ स्वरूप में गायन अथवा वादन द्वारा प्रस्तुत किया हुआ संगीत जड़ और चेतन दोनों पर समान रूप से प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकता। भागवत् में कहा गया है कि श्रीकृष्ण के मुरली-वादन से यमुना का चंचल जल भी शांत और स्थिर हो जाता था –

नद्यस्तदा तदुपधार्य मुकुन्दगीतमावर्त लक्षित मनोभवमग्न वेगाः।
आलिंगनस्थगितमूर्मि भुजैर्मुरारेर्गृह्णन्ति पादयुगलं कमलोपहाराः॥[1]

(भगवान श्रीकृष्ण की वंशी का स्वर सुनकर अचेतन नदियाँ भँवर के रूप में अपना कामोच्छ्वास प्रकट कर रही हैं। इसीलिए उनका वेग रुक गया है और वे आलिंगन के लिए तरंग रूपी भुजाओं में कमल के उपहार लेकर भगवान के चरण छू रही हैं।) इसमें चाहे काव्यकला का अतिरेक ही क्यों न हो किंतु वनस्पति-विज्ञान के आचार्य सर जगदीशचन्द्र वसु ने अपनी प्रयोगशाला में ऐसे यंत्र बनाये हैं जिनसे भली-भाँति परीक्षा की जा सकती है कि संगीत सुनकर वृक्ष भी प्रफुल्लित होते हैं। इस प्रकार का एक प्रयोग श्री वसु की प्रयोगशाला में संगीत मार्तंड श्री ओंकारनाथ ठाकुर द्वारा हुआ था। श्री वसु ने ओंकारनाथ जी से एक मुरझाये हुए पौधे के सम्मुख भैरवी गाने को कहा। भैरवी की ध्वनि को सुनकर पौधे में इस प्रकार के चिन्ह दिखलायी दिये मानों उसे अपूर्व सांत्वना मिली हो। ठाकुर जी ने वृक्षों पर किए गए संगीत के प्रयोगों की सफलता का वृत्तांत बताते हुए लेखिका को यह भी बताया कि भैरवी राग गाते समय उन्होंने देखा कि पौधों की कोपलों पर नवीन चमक आ गई थी। ठाकुर जी की यह सफलता कोई कपोल कल्पना मात्र ही नहीं है। हमारे भारतीय समाज में तो संगीत की कसौटी ही यह है कि जड़दीप तक उससे प्रदीप्त हो उठें।

सुन्दर स्वरों से बँधा हुआ तंत्री का नाद जब रंजक-राग बनकर प्रादुर्भूत होता है

---

१. श्रीमद्भागवत् महापुराण, महर्षि वेदव्यास प्रणीत, अनुवादक मुनिलाल, द्वितीय खण्ड, दशम स्कंध, इक्कीसवां अध्याय, पृ० ३११, श्लोक सं० १५

उस समय उमके स्वरो में हृदय को आकृष्ट करने की इतनी शक्ति होती है कि पशु पक्षी भी उस पर मोहित हो जाते हैं। पशु मनुष्य की भाषा समझने में असमर्थ हैं किंतु सगीत के स्वर-समुदायो का उन पर गहन प्रभाव पडता है। नाद के माधुर्य से ही तो रीझकर मृग बहेलियों का लक्ष्य बनता है।[२] क्रोध से फुफकारता हुआ सर्प महुअर की मधुर ध्वनि सुनकर आनद से फण निकाल कर डोलने लगता है। कहा जाता है कि श्रीकृष्ण ने मुरली की ध्वनि तथा नृत्य-सगीत के माध्यम से ही कालिय नाग को वश में किया। उदयन ने अपनी वीणा के स्वरो से हाथियो को वशीभूत किया। बैजूबावरे ने तोडी राग गाकर मृगछौने वश में किए। आधुनिक युग में प्रसिद्ध हैं कि खान साहब बन्देअली खा ने रुद्रवीणा (बीन) के वादन द्वारा उद्दण्ड बारहसिंगे को वश में किया। बडौदा में मृदगाचार्य खान साहब नासिरखान ने मृदगवादन से मदमत्त गजराज को वशीभूत किया। बन्देअली खा के शिष्य चुन्नाजी ने गौरी राग से पक्षियो को मोहित कर लिया। धरमपुर राज्य के स्व० श्री विजयदेव महाराज के काका स्व० श्री प्रभातदेव जी ने अपने बीन-वादन द्वारा शिवालय के चौक में एक घटे तक विशालकाय विषधर नागराज को मस्ती में डुबाये रखा। प० ओंकारनाथ ठाकुर जी का कहना है कि काफी राग के कोमल स्वरो का प्रभाव जानवरो पर खूब पडता है।[१]

प्रयाग में नैनी की पशुशाला में यह प्रयोग किया गया था कि गायों का दूध दुहते समय गीतयत्र बजाया गया। उसका परिणाम यह हुआ कि गायो ने मत्रमुग्ध होकर दुहाना प्रारभ किया जिससे उनके दूध में भी वृद्धि हुई। आस्ट्रेलिया की श्रीमती डियाना गोल्ड जगली घोडो को अपने सगीत द्वारा मोहित कर लेती हैं। उनका कहना है कि घोडो को सगीत से प्रेम होता है और वे उनका सगीत सुनना पसद करते हैं। हालीवुड की प्रसिद्ध फिल्म स्टार, प्रिंस अली खा की भूतपूर्व पत्नी श्रीमती रीता हेवर्थ के पास गिल्डा नामक एक अत्यन्त सुदर कुत्ता है जो भोजन करने के पश्चात् रेडियो पर सगीत का आनद लेता है। सगीत सुनते-सुनते वह इतना मस्त हो जाता है कि झूमने लगता है। प्रतिदिन सगीत सुनने का उसका नियम हो गया है। कभी-कभी वह अपनी स्वामिनी रीता से भी गाना सुनता है। उसको सगीत के स्वरो का इतना ज्ञान है कि यदि कभी रीता बेसुरा गाने लगती है तो वह उसके मुँह पर अपना मुह रखकर तुरन्त रोक देता है। वायलिन की ध्वनि से वह विशेष आनदित हो उठता है।

सगीत वह कला है जो विकलित हृदय में आनद का उद्रेक कर देती है। सगीत की स्वर लहरियां सुनते ही पाषाण हृदय भी सहसा झूम उठता है। सगीत में वह नैसर्गिक शक्ति है जो मानव हृदय की कोमलतम भावनाओं को स्पर्श कर उसकी सुप्त आशाओ को जगा

---

२ वनेचरस्तृणाहारश्चित्र मृगशिशु पशु।
लुब्धो लुब्धकसगीते गीते त्यजति जीवितम्॥ सगीत-रत्नाकर, शार्ङ्गदेव, पृ० ७, श्लोक० स० २६

१ सगीत मार्तण्ड प० ओंकारनाथ ठाकुर सगीत कार्यालय में, सगीत, मार्च, १९५३, पृ० २५६

देती है और हृदय के किसी नीरव कोने में डूबी स्मृतियों को हरा-भरा कर देती है। कुमारी ह्वील्स योम का कथन है –

"संगीत हमारे जीवन को अनुप्राणित करता है। हमारे जीवन की निर्जीव शक्तियों को विनष्ट करके एक ऐसी अभिनव पृष्ठभूमि निर्माण करता है कि जिसमें सजीवन उत्साह के स्फुरण दीप्त होने लगते हैं और होने लगती है स्फूर्ति की उल्कायें, जो जीवन को मंगलमय एवं स्वर्णिम बना देती है।"[1] हृदय को हिला देने वाले गान मृतप्राय हृदय में संजीवन, नैराश्य में आशा, चिंता की प्रज्वलित ज्वाला में शांति तथा दुखमय क्षणों में आनंद प्रदान कर सकते हैं। संगीत की ध्वनि के शीतल स्पर्श से व्यथित हृदय की कलुषित वेदनायें क्षण भर मे लुप्त हो जाती हैं। मोक्ष को प्रदान करने वाली संगीत-कला मनुष्य के भौतिक दुखों का अंत भी करती है। यही कारण है कि आज के युग में डाक्टर तथा मनोवैज्ञानिक भी संगीत मे छिपे हुए स्वास्थ्यदायक तत्वों की खोज करने में प्रयत्नशील हैं। उनको गुलाबी और अल्ट्रावायलेट किरणों के समान संगीत में भी आरोग्यदायक गुण मिल रहे हैं। संगीत चिकित्सा अब अधिक दुर्लभ नहीं कही जा सकती क्योंकि रोग निवारणार्थ इसके बहुत से सफल प्रयोग हो चुके हैं। मनहट्टन अस्पताल के संख्या संकलन द्वारा संगीत-चिकित्सा का आश्चर्यजनक परिणाम प्रस्तुत हुआ है। संगीत के प्रयोग से ३८ प्रतिशत रोगी पूर्णरूपेण स्वस्थ हो गए, ३३ प्रतिशत आंशिक सुधर गए और २८ प्रतिशत प्रभावहीन रह गए। ओंकारनाथ ठाकुर जी का विचार है कि मारफ़िया के बजाय संगीत से पीड़ा कहीं शीघ्र कम हो सकती है। ठाकुर जी ने बतलाया कि उन्होंने इसका सफल प्रयोग भी करके देखा है। एक बीमार व्यक्ति को मारफ़िया का इन्जेक्शन देने के बाद भी जब नींद नहीं आई तो ठाकुर जी के गाने से उन्हें कुछ मिनट के अन्दर ही कुछ समय के लिए निद्रा आ गई। अपने गाने से मुसोलिनी को सुला देना तो ठाकुर जी के जीवन की एक सत्य तथा प्रसिद्ध घटना बन गई है। कुमारी ह्वीलस योम ने भी इस प्रकार के सफल प्रयोग किए हैं। उन्होंने स्पेन के 'रेवीनर' पत्र के प्रतिनिधि को बतलाया कि "इटली के 'केरीगिस्टी' नगर में एक धनाढ्य व्यक्ति को नींद न आने का रोग था। वह रात को बिल्कुल सोता नहीं था, इसलिए उसका स्वास्थ्य दिन-ब-दिन क्षीण पड़ता जा रहा था। कोई भी औषधि उस पर कारगर न हो रही थी। जब मैंने सुना और उसको देखा तो उसकी बड़ी बुरी दशा पाई। उसने मुझे बतलाया कि मैंने अपने इलाज में धन को पानी की तरह बहाया है किन्तु फिर भी मैं स्वस्थ न हो सका और अब मैं मौत की घड़ियाँ गिन रहा हूँ। ऐसे जीवन से तो मर जाना लाख दर्जे श्रेष्ठ है। उसकी इन बातों को सुनकर मैंने उस पर संगीत का प्रयोग किया। मैं आपसे सच कहती हूँ कि इस प्रयोग ने उस पर जादू-सा काम किया और तीन चार दिन में वह पूर्ण स्वस्थ हो गया और इतनी गहरी नींद सोने लगा कि इटली के सब

---

१. संगीत की स्वर लहरी पर मुर्दे भी बोल उठते हैं, संगीत, फरवरी १९५५, पृ० २८

चिकित्सक भी विस्मय-सागर में डूब गये। अब वह रोजाना सोने से पूर्व संगीत सुनता है तब उसको नींद आती है।"[1]

सन् १९४४ में एक बार महात्मा गांधी के रोग पर श्री मनहर बर्वे ने संगीत द्वारा आशातीत सफलता प्राप्त की थी। "सन् ४४ की बात है। गांधी जी उन दिनों अस्वस्थ थे। *चिकित्सक अपना कार्य पूर्ण मुस्तैदी से कर रहे थे। श्री मनहर बर्वे ने भी अपनी सेवायें* प्रस्तुत की। दूसरे दिन डाक्टरी रिपोर्ट सारे पत्रों में बैनर लाइन में छपी। गांधी जी पर संगीत का आशातीत प्रभाव पड़ा था। गांधी जी का 'मौनव्रत' था पास पड़े पुर्जे को उठाकर लिखा 'आप का यह संगीत तो मेरे लिए औषधि है।'"[2]

संसार के प्रथम श्रेणी के सर्जन डा० जॉ डब्ल्यू विल का कहना है कि अनेक उत्तेजक रोग विशुद्ध संगीत द्वारा ठीक किए जा सकते हैं। संगीत के द्वारा पाचक ग्रन्थियों को बल मिलता है। कुछ तार स्वर श्वासों की गति बढ़ाते हैं, इकहरे स्वर हृदय की गति बढ़ाते हैं। एक रूसी प्रोफेसर ने बतलाया है कि संगीत से २५ प्रतिशत नेत्र शक्ति बढ़ सकती है। एक प्यानोवादक को एक मस्तिष्क चिकित्सालय में कुछ प्रयोग करने भेजा गया तो ज्ञात हुआ कि संगीत से जिद्दी प्रकृति सरल की जा सकती है, स्मरणशक्ति वापस लाई जा सकती है और जीवन से पुनः लगाव स्थापित किया जा सकता है। प० ओंकारनाथ ठाकुर जी का दृढ़ *विश्वास है कि संगीत के द्वारा रोग दूर किये जा सकते हैं।* ३० जनवरी १९५३ को संगीत-कार्यालय, हाथरस में भाषण देते हुए संगीत मार्तण्ड प० ओंकारनाथ ठाकुर ने संगीत के द्वारा रोगों को दूर करने के विषय में कहा था—"शरीर में सात धातु हैं जिनके सात रंग हैं वही सात रंग स्वरों के हैं। वही रंग सूर्य की किरणों में हैं। सप्त रश्मी सूर्य के सात घोड़े होते हैं। जब सूर्य की सप्तरंगी किरणों से प्रभावित पानी से ही रोग दूर हो जाते हैं तो क्या सप्त-स्वरों से ऐसा नहीं हो सकता? हमें जानना होगा कि कौन धातु रोगी के शरीर में कम हो गई, उसका क्या रंग है, उसी रंग के स्वर का संगीत रोगी को सुनाया जाय तो वह स्वस्थ हो सकता है।"[3]

मानसिक चिकित्साओं के लिए संगीत सर्वश्रेष्ठ औषधि है। मानसिक व्यथाओं से पीड़ित रोगियों पर संगीत के अनुपम प्रभाव का समर्थन तथा पुष्टि करती हुई ह्वीलस् योम कहती हैं—"आज अधिकतर मानव मानसिक चिन्ताओं के असहनीय बोझ से ग्रस्त है। ये मानसिक चिन्तायें ही मनुष्य को रोग ग्रस्त बना देती हैं। जवान व्यक्ति को एक दम बूढ़ा बना कर उसके सम्पूर्ण शरीर को खोखला कर देती हैं। जो मानव मानसिक चिन्ताओं की पीड़ा से बीमार पड़ता है फिर उसकी औषधि से स्वस्थ होने की कम आशा रहती है। और

---

१ संगीत की स्वर लहरियों पर मुर्दे भी बोल उठते हैं, संगीत, फरवरी १९५५, पृ० ३१

२ संगीत, फरवरी १९५४, श्री मनहर बर्वे सत्य, पृ० २२२

३ संगीत, मार्च १९५३, पृ० २९६

अगर औषधि से स्वस्थ हो भी जाये तो फिर वह अधिक जीवन मार्ग पर चलने के योग्य नहीं रहता। चिन्ताओं के बोझ से उसका कचूमर निकल जाता है। प्रायः ऐसे लोग विक्षिप्त अथवा अर्ध-विक्षिप्त हो जाते हैं या उनमें ऐसी निर्जीविता आ जाती है कि वे मुर्दे के समान और असाध्य बन जाते हैं, चिकित्सकों के पास ऐसे रोगियों के लिए कोई उपचार नहीं रहता। मेरा यह व्यक्तिगत अनुभव है कि जिन रोगियो पर औषधि असफल हुई है उनको संगीत से द्वारा ठीक कर लिया गया है।

इटली के 'सेवोला' नगर का एक रोगी मानसिक पीडाओं के असहनीय बोझ से गतिशून्य हो गया। उसकी नाड़ी की धड़कन भी अवरुद्ध हो गई। लोग उसको मरा हुआ समझ कर दफनाने जा रहे थे, चिकित्सकों ने जवाब दे दिया था। मैंने उसको देखा, उसकी चेष्टा की परीक्षा की। मुझे विश्वास हो गया कि इस पर मानसिक झंझावात का प्रबल धक्का लगा है जिससे यह चेतना शून्य हो गया है। मैंने तत्काल ही संगीत का प्रबंध कराया और उसके सामने दो घंटे तक 'लेविसहोरा' स्वर-लहरी झंकृत की। इस स्वरलहरी के बजते ही उसके अन्दर शनैः शनैः गति आने लगी और दो घंटे के पश्चात् वह पूर्ण स्वस्थ हो गया। उसके आनन पर हर्ष एवं आल्हाद की मंजुल रश्मियाँ क्रीड़ा कर रही थी। वह अब पहिले से कहीं अधिक शक्तिमय एवं स्फूर्तिमय महसूस कर रहा था। मेरे इस प्रयोग को देखकर सब लोग चकित रह गए। वास्तव मे हम लोग संगीत की महान शक्ति को भूले हुए है। संगीत के द्वारा आप अपनी सुपुप्त वृत्तियो को जाग्रत कर सकते हैं और कर सकते है 'अस्वस्थ वातावरण' को दूर। 'अस्वस्थ वातावरण' ही मनुष्य को मुर्दा तक बना डालता है। यह दम घुटने वाला वातावरण ही मनुष्य की सम्पूर्ण शक्तियों को एक दम पंगु बना देता है। संगीत के द्वारा आप अपने जीवन को स्वस्थ और सुन्दर बनाइये। आपको मेरी बातों पर आश्चर्य तो अवश्य हो रहा होगा कि क्या संगीत के अन्दर विटामिन शक्ति है कि जिसके द्वारा शरीर स्वस्थ एवं सुन्दर बन सके लेकिन जनाब इसमें आश्चर्य की बात नहीं। यह संगीत की सत्यता की पृष्ठभूमि है। आप विश्वास करिये। संगीत के गर्भ में आपको विटामिन चाहे भले ही न मिले किन्तु आपको ऐसे सजीव तत्व अवश्य मिलेंगे जो आपके मानसिक असन्तुलन को सन्तुलित करके आपके अन्दर उत्साह का प्रपात बहा देंगे। यह सजीव तत्व जिसको 'डीसोल' और 'ओसल' कहते हैं, इसका महत्व विटामिन से भी अधिक मानव शरीर के लिए प्रमाणित हुआ है। संगीत की लहरियों से मानव के मस्तिष्क में 'डीसोल' और 'ओसल' तत्वों का स्पन्दन होना प्रारम्भ हो जाता है जो मानव की चेतनाशून्य स्थिति को चेतनापूर्ण बनाता है। निकट भविष्य में वह दिन शीघ्र आने वाला है जब हम संगीत के उपचार से समस्त प्रकार के मुर्दों को प्राणदान दे सकेंगे और संगीत प्राणदान देने का महत्वपूर्ण अवलम्ब बन जायेगा। विश्व में संगीत की यह महान विजय होगी। चूंकि हमने संगीत के मौलिक आधारों को भुला दिया है अतएव हम उसके 'चमत्कारिक सत्य' को मान्यता देने में आज हिचकचाते हैं। लेकिन एक न एक दिन अवश्य ही विश्व को संगीत के सामने नतमस्तक होना पड़ेगा।"[1]

१. संगीत, फरवरी १९५५, संगीत की स्वरलहरियों पर मुर्दे भी बोल उठते हैं, उमेश जोशी, पृ० २८-२९

चार्ल्स डारविन ने भी अपने जीवन के अंतिम क्षणो में कहा था—"यदि मुझे यह जीवन दुबारा जीवित रहने को मिलता तो मैं कम से कम सप्ताह में एक बार कुछ कविता पढ़ने और कुछ संगीत सुनने का एक नियम बना लेता। यह इसलिए कि शायद मेरे मस्तिष्क के हिस्से जो स्फूर्तिशून्य हैं काम में आते रहने से वे स्फूर्तिमय रखे जा सकते थे। इन इच्छाओं का अभाव सुखी जीवन को हानि पहुँचाता है और यह मस्तिष्क की वृद्धि को भी चोट पहुँचा सकता है और इससे भी अधिक हमारी भावुक प्रवृत्तियों को सन्तुष्ट न कर हमारे आदर्श चरित्र को भी हानि पहुँचा सकता है।"[१]

बेवरिज (Beveridge) का कहना है कि संगीत की स्वरलहरियाँ उनकी निर्जीव शक्तियों को विनष्ट कर हृदय को पवित्र और सुन्दर भावों से भर देती हैं।[2] ए० हंट (A Hunt) का विचार है कि निराश हृदय के लिए संगीत औषधि के सदृश्य है।[3] जार्ज इलियट का कथन है कि संगीत के माध्यम से प्राय सभी प्रकार की भावनाओं का निराकरण किया जा सकता है।[4]

संगीत का सम्मोहन जनसमुदाय को आत्मविभोर कर देने की अपूर्व क्षमता रखता है। उसकी हृदयग्राही सौम्यता में मनुष्य तन्मय एवं आनंदविभोर हो कर मग्न हो जाता है। गाधी जी के जीवन की एक सत्य घटना से संगीत की शक्ति का अनुभव किया जा सकता है—

"१६२१ ई० में अहमदाबाद में काग्रेस होने वाली थी। गाधी जी को उसमें शामिल होना था और वह उसके लिए चल पड़े। पर पड़ गए भयकर कठिनाई में। लाखो की जनता चारों ओर से उन्हें घेर कर जय बोल रही थी और सारे मार्ग को बद किए हुए थी। सब गाधी जी के पवित्र दर्शन को उत्सुक थे और उनकी मोटर को आगे नही बढ़ने दे रहे थे।

गाधी जी के लिए समय पर पहुँचना अतीव आवश्यक होता था। यह उनका विशेष गुण था। पर भीड़ उनकी सुनती ही न थी और हर तरह से कहने सुनने, चिरौरी

---

१ संगीत, जुलाई १६५०, शास्त्रीय संगीत और फिल्म संगीत पर एक दृष्टि, पुरुषोत्तम-देव आर्य, पृ० ५१६

2 "It calls in my spirit, composes my thoughts, delights my ear, recreates my mind and so not only fits me for after business but fills my heart, at the present with pure and useful thoughts, so that when the music sounds sweetest in my ears *truth commonly flows the clearest into my mind*"
The New Dictionary of Thoughts, Page 413

3 "Music is the medicine of the breaking heart
The New Dictionary of Thoughts, Page 414

4 "There is no feeling, except the extremes of fear and grief that does not find relief in music"
The New Dictionary of Thoughts Page 415

करने पर भी रास्ता नहीं दे रही थी। गांधी जी ने प्रार्थना की, डाटा, फटकारा पर कोई असर न हुआ। गांधी जी निराश-से हो गए, पर तुरन्त ही उन्होंने अपने पास के एक नवयुवक के कान में कुछ कहा। वह नवयुवक कांग्रेस पंडाल में गया और थोड़ी देर में अपने साथ एक भारी-भरकम शरीर और बड़ी मूँछोंवाले आदमी को साथ लेकर लौटा।

'यदि सचमुच तुम्हारे संगीत में जादू है' गांधी जी ने उक्त सज्जन से कहा –'तो इस असंगठित एवं अनुशासनहीन भीड़ को प्रदर्शन से शांत करो यही तुम्हारी परीक्षा है।' संगीत ज्ञाता वह सज्जन मान गए और उस असंख्य भीड़ के सामने उन्होंने अपना राग छेड़ा। अपनी मधुर वाणी से उन्होंने भीड़ को शांत और स्तब्ध कर दिया। भीड़ सब कुछ भूलकर संगीत में मग्न हो गई। इस बीच में गांधी जी चुपके से खिसक गए। और वाद्य-गायन खत्म होने पर ही भीड़ को अपनी भूल मालूम पड़ी।

दो दिन बाद गांधी जी ने संगीत सम्मेलन के अध्यक्ष पद से भाषण देते हुए कहा – 'संगीत लोगों को संकट से मुक्त करेगा' और उन्होंने उपर्युक्त घटना का वर्णन किया। और वह महान् संगीतज्ञ विष्णु दिगम्बर जी थे।"[१] यह है संगीत का आश्चर्यजनक प्रभाव।

इसी प्रकार की संगीत के महान् प्रभाव की अमिट सत्य घटना ग्वालियर के प्रसिद्ध गायक उस्ताद निसार हुसेन खाँ के जीवन में भी घटित हुई थी –

"टिकट ?

खो गया।

तो नीचे उतरो–

अच्छी बात है–कहकर मुसाफिर निरुद्विग्न भाव से बिस्तर और तम्बूरा बगल में दबा अपने दो साथियों के साथ नीचे उतरा फिर वहीं प्लेटफार्म पर आसन जमाकर बैठ गया और तम्बूरे की तारें छेड़ खड़ी आवाज में एक गीत गाने लगा। उस सुरीले गीत की मधुर ध्वनियाँ कानों पर पड़ते ही गाड़ी के और मुसाफिर भी नीचे उतर पड़े और उन्होंने गाने वाले मुसाफिर को चारों ओर से घेर लिया।

इधर गाड़ी छूटने का समय हो गया तथा गार्ड और इंजन ने बारबार सीटियाँ बजाईं, किन्तु नीचे उतरे हुए अधिकांश मुसाफिर मधुर और मादक संगीत ध्वनियों की धारा में इतना बह गए थे कि उन्हें गाड़ी छूटने की कोई फिक्र ही नहीं रही। यदि दो-चार मुसाफिर नीचे उतरे होते तो शायद गाड़ी छोड़ भी दी जाती पर वहाँ तो सैकड़ों की संख्या में मुसाफिर उतरे हुए थे।

माजरा क्या है यह देखने के लिए जब गार्ड, स्टेशनमास्टर तथा अन्य रेलवे-अधिकारी

---

१. संगीत, जनवरी १९५०, संगीत से सब संकट टलेंगे, टी० एम० राव, पृ० १०३

भीड के पास आए तब उन्होने देखा कि एक खाँ साहब तम्बूरे पर गा रहे हैं और उनकी सुरीली ध्वनि में मुसाफिर मदहोश हैं। जिस टिकट कलेक्टर ने खाँ साहब को नीचे उतारा था वह भी इतने में वहाँ आ पहुँचा। और उसने उन्हें पहचान कर अन्य रेलवे अधिकारियो को सारी बात समझाई। रेलवे अधिकारियों ने देखा कि खाँ साहब को बिना गाडी में बैठाए, मुसाफिर गाडी में नहीं बैठेंगे, फिर उन्हें मनाया गया और तब कहीं गाडी आगे चल सकी।

यह कहानी नहीं, प्रत्यक्ष घटना है और उक्त खाँ साहब और कोई नहीं, ग्वालियर के प्रसिद्ध गायन कलानिधि खाँ साहेब निसार हुसेन ही थे।"[१]

सगीत मे मानव-हृदय को निकट से स्पर्श करने की गहन शक्ति है। मनुष्य को आकर्षित करने के लिए सगीत की झकार अनिवार्य है। सगीत के इसी महान् प्रभाव को लक्ष्य कर 'स्कदगुप्त' की देवसेना के मुख से प्रसाद जी कहलाते हैं—"नये ढग के आभूषण, सुन्दर वसन, भरा हुआ यौवन, यह सब तो चाहिये ही। परन्तु एक वस्तु और चाहिये। सत्पुरुष को वशीभूत करने के पहिले चाहिए एक धोखे की टट्टी। मेरा तात्पर्य है—एक वेदना अनुभव करने का—एक विह्वलता का अभिनय उसके मुख पर रहे—जिसमे कुछ आडी तिरछी रेखायें उसके मुख पर पडें और मूर्ख मनुष्य उन्ही को लेने के लिए व्याकुल हो जाय। और फिर दो बूँद गरम-गरम आँसू और इसके बाद वागेश्वरी की करुण कोमल तान। बिना इसके सब रग फीका।"[२]

गाधी जी ने भी सगीत की आकर्षण शक्ति का उल्लेख करते हुए कहा है कि सगीत द्वारा उन्हें क्रोध पर नियन्त्रण करने की शक्ति तथा अपूर्व शान्ति प्राप्त हुई है। उनका विचार है कि सुदर गायन हृदय पर अपनी अमिट छाप लगा देता है।[३]

---

१ सगीत, मई १९५३, उस्ताद निसार हुसेन, श्रीमती 'सजीवनी', पृ० ३९६

२ स्कदगुप्त विक्रमादित्य, प्रसाद, पृ० ५२-५३

3 Music has given me peace I can remember occasions when Music Instantly tranquillized my mind when I was greatly agitated over some thing Music has helped me to overcome anger I can recall occasions when a hymn sank deep into me, though the same thing expressed in prose had failed to touch me I also found that the meaning of hymns discordantly sung has failed to come home to me and that it burns itself on my mind when they have been properly sung When I hear Gita verres melodiously recited, I never grow weary of hearing and the more I hear, the deeper sinks the meaning into my heart Melodious recitations of the Ramayan which I' heard in my child hood left on me an impression which have not obliterated or weakened

I distinctly remember how when once the once the hymn, 'The

संगीत से सभी मनुष्य प्रभावित होते हैं । औरंगजेब के विषय में यह कहा गया है कि संगीत की दुर्दशा पर व्यथित हो मानवों ने वादशाह के महल के नीचे से संगीत की अर्थी निकाली । पूछने पर जब औरंगजेब को यह ज्ञात हुआ कि ये लोग संगीत के शव की अन्त्येष्टि क्रिया के लिये जा रहे हैं तो उसने तत्काल यही कहा बहुत अच्छा—कब्र अत्यधिक गहरी खोदना जिससे उसकी आवाज़ की गूँज कभी भी वाहर निकल कर न आ सके । किंतु इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि औरंगजेव को संगीत के प्रति रुचि नहीं थी । उसकी धार्मिक कट्टरता ने, उसकी धार्मिक नीति ने अवश्य संगीत को कुचला किन्तु उसका हृदय संगीत के आकर्षण से मुक्त न रह सका । अपनी धार्मिक रूढ़िवादिता के फलस्वरूप संगीत का कट्टर विरोध करने वाला औरंगजेव स्वयं जैनावादी के संगीत से मोहित हो गया था । जैनाबादी के संगीत की कोमल तानों ने उसके हृदय को भी बाँध लिया था ।'

संगीत की इस व्यापक महत्ता को लक्ष्य कर ही भर्तृहरि ने संगीत को मानव जीवन का अनिवार्य अंग माना है –

साहित्य संगीत कला विहीनः ।
साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः ।।

---

path of the Lord is meant for the brave, not for the coward' was sung to me in an extra-ordinarily sweet tone, it moved me as it had never before. In 1907 while in Transval I was almost fatally assaulted the pain of the wounds was relieved when at my instance Olive Doke gently sang to me 'Lead kindly light'.

The Krishna Pushkaram Souvenir, 'Influence of Music'. M. K. Gandhi, Page 100

1. "Besides the above four, there was another woman whose supple grace, musical skill and mastery of blandishments, made her the heroine of the only romance in the puritan Emperor's life. Hirabai surnamed Zainabadi was a young slave girl in the keeping of Mir Khalil who had married a sister of Aurangzib's mother. During the viceroyalty of the Deccan the prince paid a visit to his aunt at Burhanpur. There while strolling in the park of Zainabad on the other side of Tapti he beheld Hirabai unveiled among his aunt's train.........Hirabai was standing under a tree, holding a branch with her right hand and singing in a low tone. Immediately, after seeing her the prince hopelessly sat down there and then stretched himself at full length on the ground in a swoon."

History of Auranzib. J. N. Sarkar, Vol. I, Page 65

तृण न खादन्नपि जीवमान ।
तद्भागधेयं, परम पशूनाम् ॥ [1]

शेखसादी ने कहा है—"संगीत के पीछे-पीछे खुदा चलता है, जिस दिल के दरिया को संगीत की बयार तरंगित नहीं कर देती समझो कि उस दिल से शैतान भी डरता है।"[2]

महाकवि शेक्सपियर ने तो यहां तक कह दिया है कि वह मनुष्य जो न तो संगीत कला जानता है और न जिसके ऊपर संगीत का प्रभाव पड़ता है, राजद्रोह तथा अपकार के लिये उपयुक्त पात्र है।[3]

फ्रेडरिक ने जीवन की सार्थकता संगीत के ही कारण मानी है।[4]

स्काट का कहना है कि—"जिस मनुष्य का हृदय संगीत के मधुर स्वर से नहीं धड़कता वह अपनी आत्मा के साथ मृत्यु की अंतिम साँसें भरता है।"[5]

बोवी (Bovee) ने संगीत को जीवन के लिए अनिवार्य चार पदार्थों में स्थान दिया है।[6]

प्रसिद्ध कवि पोप का कथन है कि "संगीत के कारण मनुष्य का स्वभाव न तो बहुत ऊँचा बन जाता है और न बहुत नीचा। संगीत से मनुष्य के स्वभाव में समता आ जाती है।

---

१ नीतिशतकम्, भर्तृहरि, श्लो० ११
२ नवनीत, जुलाई १९५२, पृ० १०
3 The man that hath no music in himself,
And is not moved with concord of sweet sound,
Is fit for treasons, stratagems and spoils,
The motions of his spirit are dull as night,
And his affections dark as Erebus
Let no such man be trusted —
The Merchant of Venice Shakespeare, Act V, Sec 1, Page 83 lines 83-88
4 Without Music life would be a mistake
The Shorter Bartlett's Familiar Quotations, Page 273
5 "Breathes there the man with soul so dead,
Whose heart has not throbbed at a sweet note of music"
The Shorter Bartlett's Familiar Quotations, Page 328
6 "Music is the fourth great material want of our nature—first food, then raiment, then shelter, then music"
The New Dictionary of Thoughts Page 413

योद्धाओं के हृदय में यह नवजीवन का संचार करता है और दुखी प्रेमियों के घावों में औषधि का काम करता है।"[1]

लूथर ने कहा है कि संगीत मनुष्य को दयालु, नीतिशील और बुद्धिमान बनाता है। संगीत खुदा की दी हुई कला है जो मनुष्य के कष्टों को दूर कर उन्हें शांति पहुँचाती है।"[2]

हेनरीडेविड थोरो ने अपनी डायरी में लिखा है—"...... तब संगीत इतनी गहराई में उतर जाता है कि वह कर्णगोचर ही नहीं रहता। वह तो तत्वतः समस्त जीवन और आत्मा से एकरूपता कर लेता है। वह कठिन समय में भी कभी गलत कदम नहीं उठाने देता क्योंकि वह अपनी मधुरता और शक्ति से उसका मार्ग आलोकित करता रहता है और उसकी गतिविधियों को प्रेरित करता है।"[3]

कुमारी ह्वील्स योम का विश्वास है—"संगीत हमें जीवन देता है, लेता नहीं। संगीत विनाश का साधन नहीं हो सकता। वह मुर्दों में जीवन फूंक सकता है लेकिन जीवन में मुर्दनिगी नहीं फूँकता।"[4]

कविवर बिहारी ने तो संगीत के अनुपम माधुर्य पर रीझ कर यहाँ तक कह दिया है—

तंत्री नाद कवित्त रस, सरस राग रति रंग।
अनबूड़े बूड़े तिरे, जे बूड़े सब अंग॥[5]

साहित्य में संगीत का स्थान

जब सम्पूर्ण सृष्टि और मानव के कण-कण में संगीत व्याप्त है तो साहित्य में भी संगीत का होना अनिवार्य है। साहित्य का निर्माण भी तो संगीतप्रिय मानवों ने ही किया है। साहित्य के समस्त अंगों में संगीत का किसी न किसी रूप में थोड़ा बहुत योग अवश्य रहता है। दृश्यकाव्य में संगीत उसके प्रभाव को बढ़ाने के लिए उद्दीपन का कार्य करता है।

---

1. "Music is one of the fairest and most glorious gifts of God, to which Satan is a bitter enemy for it removes from the heart the weight of sorrow and the fascination of evil thoughts."
   "Music is a discipline and a mistress of order and good manners. She makes the people milder and gentler more moral and more reasonable,"
2. "Music is the art of the prophets. The only art that can calm the most magnificient and delightful presents God has given us."
   The New Dictionary of Thoughts, Pp. 413 - 14
३. संगीत, जून १९५३, पृ० ४४३
४. संगीत, फरवरी १९५५, पृ० ३०
५. बिहारी-सतसई, सटीक श्री रामवृक्ष बेनीपुरी, पृ० २९३, दोहा ६९०

नर्तकियाँ संगीत के ताल-स्वर पर नृत्य करती हैं। अरस्तु ने अपने 'पोएटिक्स' ग्रंथ में संगीत को भी नाट्य रचना का एक आवश्यक तत्व स्वीकार किया है।

कविता को सुन्दर बनाने के लिए, उसके सुन्दर पाठ तथा रसास्वादन के लिए संगीत अपेक्षित है। जब हम कवि सम्मेलनों में कवि की कविता सुनते हैं तब हमें सुन्दर काव्य तथा संगीत के अपूर्व समन्वय के कारण ही उसमें अधिक आनंद आता है। पुस्तक की कविता पढ़ने से यद्यपि एक काव्य-मर्मज्ञ संगीत की स्पष्ट ध्वनि का अनुभव कर सकेगा तथापि सामान्य पाठक को उसमें निहित संगीत का अनुभव तभी होगा जब उसे श्रुति-मधुर स्वर में सुनेगा। अतः सभा में तो सुन्दर काव्य बनाने के साथ-साथ सुन्दर पाठ की भी अत्यधिक आवश्यकता होती है। राजशेखर ने उस कवि को ही वाग्देवी का अत्यन्त प्रिय कहा है जो कविता को इस प्रकार पढ़ सके कि रस का आस्वादन गोपालों और अनपढ़ स्त्रियों तक को हो जाय –

आगोपालकमायोषिदास्यामेतस्य लेह्यता।
इत्थं कवि पठन्काव्यं वाग्देव्या अतिवल्लभः ॥[1]

आज के इस क्रांतिकारी युग में भी प्रत्यक्ष रूप से देख सकते हैं कि कवि-सम्मेलन में कवि की सफलता का रहस्य सुन्दर कविता के साथ ही अनेक अंशों में संगीत पर भी निर्भर करता है। कवि-सम्मेलन में अच्छी कविता को जो कवि साभिनय गा सकता है तथा जिस कवि के कंठ में माधुर्य होता है प्रायः कीर्ति उसी का वरण करती है।

भावों की प्रधानता के फलस्वरूप पद्य में गद्य की अपेक्षा संगीतात्मकता प्रधान रहती है। किंतु अनेक स्थलों पर गद्य भी ताल, लय तथा अलंकार आदि सामग्री से युक्त होकर संगीतमय हो जाता है। "प्राचीन कथाओं की गद्य समझी जाने वाली भाषा में भी एक प्रकार का छंद है। वे कहानी की इस सीधी सी बात को कि 'एक था राजा' इतने सरल ढंग से न कहकर कहेंगे –"धराधर्प कदर्प सौन्दर्य-सौन्दर्य रूपो भूपो बभूव"। यह कथन छंदयुक्त है, इसमें झंकार है, लोच है, वक्रता है और है संगीत का मनोहारी प्रभाव।

Shenstone ने कहा है कि कविता तथा गद्य की वे ही पंक्तियाँ सबसे अधिक स्मरण तथा उद्धृत की जाती हैं जो संगीतमय होती हैं।[2]

A J Ravan ने संगीतमय गीता की महत्ता का उल्लेख करते हुए कहा है –

---

१ काव्य मीमांसा, राजशेखर, सप्तम अध्याय, पृ० ३३, पंक्ति २१-२२

2 "The lines of poetry, the periods of prose and even the texts of scripture most frequently recollected and quoted, are those which are felt to be *preeminently musical*"

The New Dictionary Of Thouthts, Page 414

When falls the soldier brave,
Dead at the feet of wrong,
The poet sings and guards his grave
With sentinels of song.[1]

यही नहीं किसी ने तो यहाँ तक कहा है कि –

"I have just heard a poem spoken with so delicate sense of the rhythm, with so perfect a respect for its meaning that if I were a wise man and could persuade a few people to learn the art, I would never open a book of verses again."

उपर्युक्त कथनों से साहित्य में संगीत का महत्व स्पष्ट हो जाता है।

संगीत एवं काव्य में पारस्परिक संबंध

संगीत एवं काव्य में घनिष्ट सम्बन्ध है। एडगर एलन पो कविता को सौंदर्य की संगीतमय सृष्टि कहते है।[2] कॉरलायल ने संगीतमय विचारो को ही काव्य कहा है। उसके शब्दों में कविता मनोवेगमय और संगीतमय भाषा में मानव अन्तः करण की मूर्त और कलात्मक व्यंजना करती है।[3] आलफ्रेड आस्टिन का कहना है कि कविता में और भी कितने ही गुण क्यों न हों पर यदि वह संगीत विहीन और अर्थ की रमणीयता से हीन है तो फिर वह कविता नही हो सकती।[4] लार्ड बायरन का कथन है कि जब मनुष्य के भाव और इच्छायें अंतिम सीमा पर पहुँच जाती है तब वे कविता का रूप धारण कर लेती है। वास्तव में कविता राग के सिवा कुछ नहीं है।[5] फूलर के अनुसार कविता शब्दों के रूप में संगीत और संगीत ध्वनि के रूप में कविता है।[6] इ० पो० नामक अमरीकन साहित्यकार ने संगीतमय शब्दावली को ही कविता कहा है।[7]

काव्य और संगीत के स्वाभाविक सामंजस्य को श्री मैथिलीशरण गुप्त जी ने कितने सुन्दर रूप में प्रकट किया है –

केवल भावमयी कला,
ध्वनिमय है संगीत।

---

१. The Pocket Book of Quotations, Edited by Henry David, Page 279
२. वारटलेट्स फैमीलियर कोटेशनस्, पृ० २६६ (जे)
३. वेस्ट कोटेशनस् फौर औल ओकेजन्स, पृ० १८५
४. प्रयाग संगीत समिति, प्रयाग, वार्षिक संस्करण १६५३, पृ० ११
५. माधुरी, (पौष ३१० तु० सं० १६६०), सन् १६३३, भाग १, पृ० ७३८
६. दि न्यू डिक्शनरी आफ थौट्स, पृ० ४७०
७. विशाल भारत, नवम्बर १६४६, पृ० ३८७

भाव और ध्वनिमय उभय,
जय कवित्व जय नौति ॥

कविता और संगीत का समन्वय ही काव्य का श्रेष्ठतम रूप है। श्रेष्ठ काव्य में संगीत का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। वस्तुतः काव्य स्वतः संगीत है। "संगीत आकार प्रधान काव्य है,काव्य साधक संगीत है।"[१] "संगीत, अस्फुट वेदना, लालित्य, शब्द, अर्थ, भाव, संदेश, सत्य, कल्पना, माधुर्य, प्रवाह, कला, रहस्योद्घाटन की प्रवृत्ति, चमत्कार, आकस्मिक उन्माद, हृदय की कामना एवं उल्लास तथा धुँधली स्मृतियों से विनिसृत अचानक प्रस्फुटित होनेवाली रचना कविता के नाम से पुकारी जाती है।"[२]

पं० रामचन्द्र शुक्ल ने काव्य में संगीत का योग आवश्यक माना है—"काव्य एक बहुत ही व्यापक कला है। जिस प्रकार मूर्त्त विधान के लिये कविता चित्र-विद्या की प्रणाली का अनुसरण करती है उसी प्रकार नाद सौष्ठव के लिए वह संगीत का कुछ कुछ सहारा लेती है। नाद-सौंदर्य से कविता की आयु बढ़ती है। तालपत्र, भोजपत्र, कागज आदि का आश्रय छूट जाने पर भी वह बहुत दिनों तक लोगों की जिह्वा पर नाचती रहती है। बहुत सी उक्तियों को लोग उनके अर्थ की रमणीयता इत्यादि की ओर ध्यान ले जाने का कष्ट उठाए बिना ही प्रसन्न चित्त रहने पर गुनगुनाया करते हैं। अतः नाद-सौंदर्य का योग भी कविता का पूर्ण स्वरूप खड़ा करने के लिए कुछ न कुछ आवश्यक होता है।[३]

कलाओं में काव्य-कला तथा संगीत-कला की श्रेष्ठता को स्वीकार करते हुए आचार्य ललिताप्रसाद जी सुकुल ने काव्य तथा संगीत को एक दूसरे का पर्यायवाची माना है—"कहते हैं, काव्य और संगीत कला की उत्कृष्ट सीमा है, साहित्य का सिरमौर है। आखिर काव्य और संगीत में वह कौन सा तत्व है जो इन्हें यह प्रतिष्ठा कराता है। यदि कहें सुन्दर सरस शब्दावली तो यह तो काव्येतर साहित्य के अन्य रूपों में भी संभव है। यदि कोई कहे भावनाओं का चुटीला चित्रण तो यह भी केवल काव्य का या संगीत का मुखापेक्षी नहीं। तब शायद कहना पड़ेगा कि सरस शब्दावली और भावनाओं के सजीव चित्रण जब ताल और स्वर में बँध कर या किसी अन्य ऐसे ही विधान में सजकर व्यक्त होते हैं जिनके द्वारा आन्तरिक समन्वय की प्रतिस्थापना हो जाती है और रस का प्रवाह उमड़ने लगता है तो उसे ही काव्य या संगीत कहते हैं।"[४]

---

१ सिद्धांत और अध्ययन, गुलाबराय, पृ० १११
२ समाज और साहित्य, आनंद कुमार, पृ० २३
३ चिंतामणि, (प्रथम भाग), रामचन्द्र शुक्ल, पृ० १७९–८०
४ साहित्य-जिज्ञासा, ललिता प्रसाद सुकुल, हिंदी और बंगला का साहित्यिक आदान-प्रदान, पृ० ५३

संगीतज्ञों का मत

इसी प्रकार संगीतज्ञों का कहना है कि संगीत को कविता से अलग करना मानो उसके प्रभाव तथा महत्व को बहुत न्यून कर देना है। काव्य मे निहित संगीत तत्व उसके आह्लादकारी प्रभाव और महत्व को द्विगुणित कर देता है। वह मानव-हृदय में अलौकिक आनंद का उद्रेक करता है। अत. कविता का संगीतमय रूप नष्ट कर देना उसकी दिव्य शक्ति का ह्रास कर देना है। गायनाचार्य पं० विष्णुदिगम्बर जी का मत है कि—"संगीत और काव्य का जब मेल होता है तब सोने मे सुगंध आ जाती है। सरस्वती की वीणा-पुस्तक का मेल इसी का निदर्शन है।"[1] आकाशवाणी इलाहाबाद से श्री सुमित्रानंदन पंत ने पं० ओंकारनाथ ठाकुर से प्रश्न किया था कि आपकी दृष्टि मे संगीत और काव्य का क्या संबंध है? इसके प्रत्युत्तर मे पडित जी ने कहा था—"मेरी दृष्टि में अकारादि व्यंजनों के साथ 'अ' आदि स्वर का जो संबंध है, देह के साथ आत्मा का जो संबध है वही संगीत का कविता से संबंध है। काव्य गाने के लिए होना चाहिए यह प्राचीन मान्यता है। ऐसा 'छंदो वाक्य प्रयोगेषु', 'काव्य छन्दसु गान काव्येषु', 'तान संलाघनं गानेषु उच्यते' इन उक्तियों से पता चलता है। काव्य और गान एक दूसरे से मिले हुए है। माता सरस्वती के ये दो स्तन साहित्य और संगीत है। उन्हीं का दूध पी-पीकर साहित्यकार साहित्यकार बना है और संगीतकार संगीतकार।"[2]

यही नही रणजीतराम-स्मारक-सुवर्ण-चन्द्रक के अवसर पर 'अपनी संगीत संस्कृति' पर भाषण देते हुए ठाकुर जी ने सगीत तथा साहित्य के अविच्छिन्न संबंध की पुष्टि का महत्वपूर्ण शब्दों में समर्थन किया है। मै तो साहित्य को सदैव ही सहोदर मानता आया हूँ, कारण 'संगीतमय साहित्य सरस्वत्या कुचद्वयम्।' साहित्य जिसका जीवन है और संगीत जिसके जीवन का निष्कर्ष है ऐसी 'वीणा पुस्तक धारिणी भगवती भारती माता के युगल पयोधरों का ग्रहण करके ही जिसके जीवन की गठन गढ़ी गई है। ऐसे साहित्यकार तथा संगीतकार के लिए······भाई के अतिरिक्त अन्य कौन सा संबंध योग्य गिना जाय। अपनी दो आखें जो कि साथ ही देखती है, हँसती तथा रोती है, बिल्कुल ऐसा ही संबंध साहित्य और संगीत का है।

"मै तो प्रतिपल अनुभव करता हूँ कि स्वरों के सम्वाद मे ही आनंद है, हृदय के मिलन में ही सुख है, सम्वाद उसी संगीत का जीवन-धर्म है। राग धर्म में विसंवाद सर्वथा निषिद्ध है, त्याज्य है। दो नेत्र मिले, दो जीवन मिले, दो रंग मिले, दो स्वर मिले और नया जीवन

---

१. माधुरी, दिसम्बर १९२७, गायनाचार्य पं० विष्णुदिगम्बर जी से साक्षात्कार, मुकुटधर पांडेय, पृ० ७०२

२. संगीत, मार्च १९५२, कविता और संगीत, पं० ओंकारनाथ ठाकुर, पं० सुमित्रानंदनपंत तथा डा० रामकुमार वर्मा की अंतरवार्ता, पृ० २४८

जागे। एक और एक का साम इसीलिए तो ग्यारह हैं। गंगा और यमुना के साम से ही प्रयाग को तीर्थराज का महान पद प्राप्त हुआ है यह किस से छिपा है। जहा द्वैत भाव है वही दुख है। 'प्रेमगली अति सांकरी तामें दो न समायें' यही अद्वैत है और इसी लिए अद्वैत का अर्थ है सत्य, शिव, सुन्दरम्।"

"मेरी समझ में नही आता कि साहित्य-संगीत के उस ताने-बाने को किस प्रकार अलग किया जा सकेगा। दूध में मिला पानी जब तक दूध में मिला है तब तक दूध के मूल्य ही बिकता है और बिकेगा। किंतु विकृति से दूध फट जाय तो ? दूध और पानी अलग हो जायें तो ? तो साहित्य और संगीत के ऐसे अवेध सम्बन्ध में क्यो भेद पड़वा जाय ?"[१]

आकाशवाणी दिल्ली से श्री वी० एन० भट्ट ने ब्राडकास्ट करते हुए 'संगीत का मूल्यांकन, नामक लेख में संगीत तथा काव्य को अन्योन्याश्रित तथा पूरक स्वीकार किया है — "काव्य और संगीत परस्पर इतने अन्योन्याश्रित है कि काव्य को शब्दों में संगीत और संगीत का स्वरो में काव्य कहा जा सकता है। यह ललित कलाओं का पारस्परिक आदान-प्रदान है। रसोद्रेक में यह विनिमय सहायक भी पर्याप्त होता है।"[२]

श्री विट्ठल भूषण रा० शुक्ल संगीतरत्न ने साहित्य और संगीत को सहोदर मानते हुए एक दूसरे का पर्यायवाची माना है—"साहित्य और संगीत यद्यपि एक दूसरे के भाई भाई है क्योंकि दोनों की उत्पत्ति नाद से है तथापि नाद के गुह्यतम अर्थ एवं व्यापकता का मनन किया जाय तो यह निर्विवाद सिद्ध होगा कि संगीत (नाद, ध्वनि, श्रुति, स्वर) स्वयं काव्य है जो उर्मि तन्त्री को झंकृत कर रागात्मक जीवन की पुष्टि करने की शक्तिमत्ता रखता है।"[३]

यद्यपि साहित्य और संगीत पृथक-पृथक भी सच्चे आनंद को प्रदान करने वाले है। बिना संगीत के काव्य तथा बिना काव्य के उत्कृष्ट कोटि के संगीत का सृजन भी हो सकता है। जिस समय हम किसी सुन्दर कविता को पढ़ते है तो उस समय हमारा हृदय आनंदविभोर हो जाता है। उसी प्रकार श्रवण-सुखद संगीत की सुमधुर ध्वनि कान में पड़ने से प्रसन्नता का पारावार नहीं रहता। तथापि दोनो का संयोग सोने में सुगंध उत्पन्न कर देता है। साहित्य तथा संगीत-कला अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखने हुये भी अनेक अंशो में अन्योन्याश्रित है। दोनो का पारस्परिक विरोध सर्वथा अवांछनीय है। सहयोग तथा एकता में ही दोनो की उन्नति, प्रगति और उत्कर्ष निहित है। जहां साहित्य और संगीत दोनों मिलकर स्वर्गीय आनंद प्रदान करते हैं वहा की छटा अनुपम हो जाती है। काव्य और संगीत की स्वतंत्र सत्ता होते हुए भी दोनो का चोली दामन का साथ है।

---

१ संगीत, मार्च १९४७, अपनी संस्कृति, प० ओंकारनाथ ठाकुर, पृ० १६५

२ संगीत, जून १९५०, पृ० ४०६

३ संगीत, मार्च १९५५, भारतीय संगीत, विट्ठल भूषण रा० शुक्ल, संगीत-रत्न, पृ० ९

संगीत-कला एवं काव्य-कला में समानतायें

यों तो विभिन्न कलाओं में थोड़ी बहुत समानता तथा असमानता अवश्य होती है किंतु अन्य कलाओं की अपेक्षा साहित्यकला और संगीतकला की पारस्परिक विभिन्नतायें न्यून और महत्वहीन है तथा उनकी विशेषताओं और गुणों में अत्यधिक समानताये हैं ।

क्रोचे के कथनानुसार कला एक अखण्ड अभिव्यक्ति है । अत: कलाशास्त्र अथवा दार्शनिक किसी भी दृष्टि से कला का विभाजन नहीं किया जा सकता परतु जब हम विभिन्न कला-सृष्टियों पर विचार करते हैं और कलाओं के मूर्त रूप पर दृष्टि डालते हैं तब हमें कला की भिन्नता के दर्शन होते हैं । अस्तु कलाओं का वाह्य वर्गीकरण करना अनिवार्य हो जाता है ।

साहित्यकारों ने कला का विभाजन करते हुए उसके दो रूप ठहराए हैं—एक तो उपयोगी कला और दूसरा ललित कला । उपयोगी कला में वढ़ई, सुनार, लोहार, कुम्हार, राज आदि आते हैं और ललित कला के अन्तर्गत वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीत कला एवं काव्यकला । सभी कलायें उन्नति एवं विकास की द्योतक है । अंतर केवल इतना ही है कि एक का संबंध मनुष्य की शारीरिक और आर्थिक उन्नति से है और दूसरी का उसके मानसिक एवं शारीरिक विकास से ।

ललित कला भी मुख्यत: दो भागों में विभक्त की जा सकती है—

१—जो नेत्रेन्द्रिय के सन्निकर्ष से मानसिक तृप्ति प्रदान करती है । जिसमें मूर्त आधार की आवश्यकता पड़ती है । इसमें वास्तु, मूर्ति और चित्र कलायें आती हैं ; २—जो कर्णेन्द्रिय के सन्निकर्ष से इस तृप्ति का साधन बनती है । इसमे काव्य तथा संगीत-कला आती है । इस प्रकार काव्य तथा संगीत दोनों ही कलाये ललित कला के अन्तर्गत अमूर्त कला के मनोहर अंग है जिसमे मधुरता, सुन्दरता और असीम आकर्षण है । दोनों का ग्रहण कर्णेन्द्रिय से ही होता है ।

श्री नलिनी मोहन सान्याल ने ललित कलाओ का श्रेणीविभाग करते हुए उसे प्रधानत: दो भागों मे विभक्त किया है—(१) गतिशील, (२) स्थितिशील । स्थितिशील ललितकला निरंतर एक ही स्थान पर स्थिर रहती है । स्थापत्यकला और चित्रकला इसके अन्तर्गत आती हैं । वास्तुकला पूर्णत: स्थितिशील है । भास्कर्य तथा चित्रकला में यदा कदा संचलन का संकेत रहने पर भी प्रतिकृतियाँ एक ही भाव में उत्पन्न रहती हैं । चित्र-लिपि में एक बार जिस स्थल पर जो वस्तु दिखा दी गई वह वहाँ से एक पग भी हट नहीं सकती ।

दुख-सुख-समाकुल दुरुह अनंत चिरचंचल गतिशील जीवन का चलचित्र जिस ललित-कला के अन्तर्गत प्रदर्शित होता है वह गतिशील कहलाती है । इसके अन्तर्गत नृत्य नाट्य, संगीत और काव्य आते हैं । नृत्य-कला में मनुष्य के अंग-प्रत्यंग का पूर्ण संचलन होता है । नाट्य-कला भी सचेष्ट कला है । संगीत में विविध वाद्यों के वादन में हस्त की विलंबित

अथवा द्रुत गति रहती है। गायन में वाग्यंत्र तथा स्वरयंत्र का सचरन होता है। इसमें मानसिक आवृत्ति पहले होती है तत्पश्चात् वाह्य किया। यही बात काव्य में दीख पड़ती है। रचनाकाल में काव्य मूक है। उस समय उसकी गति दृश्य नहीं होती। ध्वनियुक्त आवृत्ति के समय वाग्यंत्र की कियाय होती है। उच्चरित कविता अथवा गायन का कोई स्थायित्व नहीं। उच्चरित होने के साथ ही उनका लोप हो जाता है। इस प्रकार भी संगीत तथा काव्य दोनों ही कलायें गतिशील ललित-कला के अन्तर्गत आती है।

काव्य और संगीत दोनों कलायें स्थिर रूप में एक ही बार नहीं ग्रहण की जा सकती। प्रत्येक पंक्ति के साथ कविता का और स्वर के प्रत्येक आरोह तथा अवरोह के साथ संगीत का प्रभाव आगे बढ़ता है। 'चित्र को हम एक ओर से दूसरी ओर, दायें से बायें जिस प्रकार चाहे देख कर समान आनंद प्राप्त कर सकते हैं। पर कविता और संगीत में गति आगे की ओर बढ़ती है। इसमें पीछे से आगे और आगे से पीछे बढ़कर एकसा आनंद नहीं प्राप्त कर सकते।"[1]

गायन तथा कवि दोनों शब्दों का एक ही अर्थ है। गायक गाने वाले को कहते है। कवि शब्द का धात्वर्थ भी गानेवाला ही है। कवि शब्द "कु" धातु से सिद्ध होता है जिसका अर्थ ध्वनि करना है। ईश्वर का भी कवि नाम होने का एक कारण यह भी है कि उसने वेदमंत्र ऋषियों के हृदय में गाकर सुनाए। यही नहीं कवि और गायक दोनों दिव्यमानस-धारी असाधारण व्यक्ति होते है। पं० ओंकारनाथ ठाकुर ने कहा है "जो कवि और गायक नहीं है फिर भी कवि और गायक होने का दावा रखते हैं उन्हें कवि और गायक का सा दिव्यमानस कहाँ से प्राप्त हो सकता है जो रहस्यों को प्रकाश में लाये।[2]

संगीत-कला का आधार नाद है। नाद का मुख्य उद्गम कंठ है। इस नाद का नियम कुछ निश्चित सिद्धान्तों के अनुसार किया जाता है। संगीत के सप्तस्वर इन सिद्धान्तों के आधार है। ये ही संगीतकला के प्राणरूप है। नाद का आस्वादन कर्णेन्द्रिय की मध्यस्थता से होता है। अतः यह स्पष्ट है कि संगीतकला का संवाहक नाद है। काव्य शब्दों का एक विशेष आरोह अवरोह, संगति, सक्रम या तारतम्य है। "शब्द एक ओर जहाँ अर्थ की भाव-भूमि पर पाठक को ले जाते हैं वहाँ नाद के द्वारा श्राव्यमूर्त विधान भी करते हैं। काव्य-कला का आधार भाषा है जो नाद का ही विकसित रूप है। अस्तु काव्य और संगीत दोनों के आस्वादन का माध्यम एक ही है। केवल अन्तर इतना है कि एक का आधार नाद का स्वरव्यंजनात्मक स्वरूप है, दूसरे का आधार नाद का स्वरात्मक आरोह और अवरोह है।"[3]

काव्य और संगीत दोनों ही लय पर अवलम्बित है। काव्य की रचना छंदों में होती

---

१ साहित्य का मर्म, हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० ११

२ संगीत, जुलाई १९५०, पृ० १९१

३ साहित्य का मर्म, हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० ११

अई है और छन्द ही के आधार पर कवि अपने भावों को काव्य का रूप देता है। छंद-लय' के ही आधार पर टिका हुआ नाद-विधान है। छंद मे प्राण-प्रतिष्ठा करने वाला यही तत्व है। छन्द और लय एक दूसरे के पूरक हैं। बिना एक के दूसरे की गति संभव नहीं। हमारी छंदयोजना ही अपने मूल में लयबद्ध है। छंदों के नियम इस प्रकार हैं कि वे स्वतः लय मे उतरते आते हैं। नवीन कलाकारों के हाथ में कविता छंद के वर्णों एवं मात्राओं से नहीं बँधी हुई है वरन् यह उन्मुक्त सरिता की भाँति अपनी ताल और लय के साथ बहती है।

संगीत का आधार भी लय है। संगीत वह ललित कला है जिसमे एक व्यक्ति अपनी भावनाओं को स्वर और लय के माध्यम से अभिव्यंजित करता है। लय के सहयोग से ताल में विभाजित करने के उपरान्त ही गायक अथवा वादक के पदों या गतों को स्वरों मे बाँध कर गाया जाता है। लय-ताल' ही भारतीय संगीत का प्राण है।

प्राचीन युग मे छपाई की सुविधा तो थी नहीं। फलस्वरूप संगीतज्ञ स्वरों को लय में बाँध कर गाया करते थे और इसी लय के सहारे अपनी स्वर लिपि याद रखा करते थे।

---

१. "समय की समान चाल का नाम लय है। (लयः साम्यम्) शास्त्रकारों ने संगीत की लय तीन प्रकार की मानी है। यथा –'त्रयो लयास्तु विज्ञेया द्रुत, मध्य, विलम्बिताः' यानी लय के तीन भेद हैं द्रुत, मध्य तथा विलम्बित। इन तीनों प्रकार की लय की परिभाषा यह है –

"द्रुतो मध्यो विलम्बश्च द्रुतः शीघ्र मतो मतः।
द्विगुण द्विगणोज्ञेयो तस्मान्मदय विलिम्बितो॥"

अर्थात् –विलम्बित लय की गति अत्यन्त मन्द होती है। विलम्बित लय की दूनी गति मध्य लय की होती है, तथा द्रुत लय की गति मध्य लय से दुगनी होती है। संगीत में गाते समय इन्हीं तीनों लय का प्रयोग होता है।" संगीत-सीकर, पृ० ११४

२. ताल—तालस्तलप्रतिष्ठाया मितिधातोर्धञ्जस्मृतः।
गीतं वाद्यं तथा नृत्यं यतस्ताले प्रतिष्ठितम्॥

गाना, बजाना तथा नाचना इन तीनों का आधार ताल है। ताल शब्द तल धातु से घंज प्रत्यय से बनता है।..... संगीत का एकमात्र अवलम्ब ताल है।...... 'तालः कालक्रियामानम्' इस दृष्टि से गाने बजाने अथवा नाचने में जो समय व्यय होता है उसकी नाप को ताल कहते हैं। यह गत तबला मृदंग इत्यादि वाद्यों की सहायता से नापी जाती है।

"लयः श्रोणित रूपेण, मात्रा नाड़ी स्वरूपतः।
घाताऽवयवाश्चैव, तालो वै पुरुषा कृति॥"

ताल रूपी पुरुष का 'लय' रक्त है, मात्रा नाड़ी है और आघात ही अवयव है। इनमें से किसी एक का भी अभाव होने से इस ताल रूपी पुरुष का जीवित रहना अशक्य है।"
संगीत-सीकर, पृ० ११४

कविता भी कविगण लय के सहयोग से स्मरण कर लेते थे। लिखने की प्रथा न होने के कारण उन्हें स्मरण रखने की यही प्रणाली सरल प्रतीत हुई। लय की समानता के कारण ही छंदों में बँधी हुई कविता में जो माधुर्य तथा ओजमयी अनुभूति होती है वही रसानुभूति संगीत की तान में भी प्रस्फुटित होती है।

भारतीय संगीत तथा काव्य दोनों का विकास प्रकृति की गोद में हुआ है। प्रकृति का विराटपट ही दोनों का आश्रयदाता है। कवि वहीं से संगीत के लिए प्रेरणा पाता है और संगीतज्ञ वहीं से संगीत की धुन। प्रकृति के अणु-अणु में अव्यक्त नादाधारी नैसर्गिक सजीव संगीत व्याप्त है। अतः प्रकृति संगीतज्ञ को संगीत की प्रेरणा देती है। भ्रमरों की गुंजार, पवन का सञ्चरण, पक्षियों का कलरव, झरनों की कलकल आदि मधुर ध्वनियाँ संगीतज्ञ के संगीत की आधार-शिलायें हैं।

प्राकृतिक सौंदर्य का रहस्योद्घाटन कर उसके रस में डुबो देना ही साहित्य की सर्वोपरि विशेषता है। "काव्य मनुष्य और प्रकृति की छवि है। वह (कवि) मनुष्य और प्रकृति को मूलतः परस्पर सामञ्जस्य करते हुए मानता है और मानता है मनुष्य के मस्तिष्क को स्वभावतः प्रकृति के अत्यंत सुन्दरतम तथा रोचक तत्वों का दर्पण।"[1] प्रकृति अवगुंठनवती है। कवि कौतूहलपूर्ण है। इसी कौतूहलावृत्ति के कारण कवि प्रकृति की ओर आकर्षित होता है और उसके सौंदर्य पर रीझकर आत्मविभोर हो जाता है। कवि सुधबुध भूलकर उसी के गीत गाने लगता है। प्राकृतिक सौंदर्य से प्रभावित मनोभाव काव्य में अपने सुन्दरतम रूप में प्रगट होते हैं। प्रकृति वर्णन भावों में चार चांद लगा देते हैं। प्रकृति का आधार अनेक कवियों ने लिया है। आदिकवि वाल्मीकि, कालिदास, बाणभट्ट, सूरदास, चंडीदास, वर्ड्सवर्थ आदि सभी ने प्रकृति से प्रेरणा पाई। सब के काव्यों में प्राकृतिक सौंदर्य प्रस्फुटित हुआ है। हमारा दर्शन अरण्यों की देन है। हमारी शकुन्तला का अधिकांश जीवन हरिण शावकों तथा वनलताओं के संरक्षण ही में व्यतीत होता हुआ कवियों ने दिखाया है। हमारे राम-लक्ष्मण वशिष्ठ एवं विश्वामित्र के आश्रमों में शिक्षा प्राप्त करते दिखाए गए हैं। गोकुल में गौयें चराते हमारे कान्हा की भोली छवि पर कवि निछावर हुए हैं। सत्य तो यह है कि प्रकृति से पाए आनंद, उल्लास तथा कौतूहल को प्रकट करने के लिए ही कवि ने काव्य की एवं संगीतज्ञ ने संगीत की रचना की।

---

1 "Poetry is the image of man and nature He (poet) considers man and nature as essentially adapted to each other, and the mind of man naturally the mirror of the fairest and most interesting properties of nature."

Loci Critici, George Saintsbury, Wordsworth on Poetry and Poetic Diction, Preface to Second Edition of Lyrical Ballads, 1800, P. p 273-75

संगीत और साहित्य का संबंध मस्तिष्क से न होकर हृदय से है। साहित्यकार हृदय की उमड़ती तथा मचलती हुई भावनाओं को ही काव्य का रूप दिया करता है। कविता या किसी प्रकार का साहित्य मस्तिष्क में नहीं टकराया करता। उसका तो स्रोत हृदय है और वहीं से उमड़कर वह काव्य का रूप धारण कर लेता है। यही बात हमें संगीत में भी मिलती है। "मानव-हृदय की कोमलतम भावनाओं को जब स्वर और ताल के ढाँचे में ढाल दिया जाता है तब उसकी संज्ञा संगीत होती है।"[1] गायक अपने मस्तिष्क से नहीं खिलवाड़ करता, वह तो भावनाओं का बंदी होकर झूमता जाता है और उसी की प्रेरणा से राग-विस्तार करता है। अतः साहित्य और संगीत यद्यपि मस्तिष्क को भी प्रभावित करते हैं किन्तु दोनों ही हृदय से उत्पन्न होते हैं। दोनों ही भाव प्रधान हैं। किसी विशेष मनोवृत्ति की अनुभूति में हृदय के अन्तरतम से निकली हुई भावों की तीव्र धारा साहित्य तथा काव्य के सृजन का कारण होती है। हृदय के भावुक, सुकुमार और अंतरतम से उमड़े हुए उद्गार संगीत और काव्य की छत्रछाया में बिखर पड़ते हैं। जहाँ एक ओर भावों के सौंदर्य से संगीत खिल उठता है और संगीत के सौंदर्य से भाव, वहीं दूसरी ओर भावों को काव्य से अनुपम सौंदर्य मिलता है और भावों के सुन्दर समन्वय से काव्य जगमगा उठता है।

जब हम साहित्य और संगीत के उद्देश्यों की ओर दृष्टि डालते हैं तो हमें दोनों का ध्येय एक ही मिलता है। मनुष्य जीवन का महत्तम ध्येय आनंद प्राप्त करना है। प्राणी-रूप में मनुष्य का आनंद ऐन्द्रिय आनंद होता है जो क्षणस्थायी है। किंतु इसी आनंद के अनुसंधान में वह मानसिक और आध्यात्मिक आनंद की उपलब्धि का मार्ग भी प्रस्तुत कर लेता है। यह उसे साहित्य तथा संगीत दोनों ही कलाओं के द्वारा प्राप्त होता है। काव्य और संगीत का संबंध चेतना-लोक से होने के कारण इसका मूल अव्यक्त रूप भी चेतना की भाँति ही अनंत प्रकाशमय ब्रह्मतत्व है।

साहित्य और संगीत दोनों ही हमें रसानुभूति कराते हैं। 'रंजको जन चित्तानाम स रागः कथितो बुधैः' के अनुसार संगीत का ध्येय मनुष्य के हृदय को प्रफुल्लित तथा आनंदित करना है। जहाँ साहित्य हमें प्रकृति तथा कल्पनालोक के सुन्दर-सुन्दर आवरणों का दर्शन कराके एक लौकिक आनंद का अनुभव कराता है वहाँ संगीत के मधुर स्वर हृदयतंत्री को छेड़कर जो रसानुभूति कराते हैं वह अवर्णनीय है। अस्तु काव्य और संगीत दोनों ही सौंदर्य और रमणीयता का सृजन करते हैं।

साहित्य और संगीत दोनों ही में हँसाने-रुलाने की क्षमता है। दोनों ही शोकसागर में डुबा सकते हैं, उससे उबार सकते हैं तथा हृदय में शांति की अपूर्व धारा प्रवाहित कर सकते हैं। दोनों ही हमारे मन को इच्छानुसार चंचल-उन्मत्त कर सकते हैं। दोनों का उद्देश्य आत्मा को प्रभावित करना है। दोनों का प्रभाव अत्यन्त व्यापक है और निरंतर मनुष्य पर पड़ता चला आ रहा है।

१. संगीत, जून १९५०, संगीत का मूल्यांकन, बी० एन० भट्ट, पृ० ४०५

संगीत और साहित्य की कोमल भावनायें एकमात्र पढ़े लिखे और विद्वानवर्ग तक ही सीमित नहीं हैं। संगीत और काव्य की मार्मिक उक्तियों का प्रभाव शिक्षित तथा अनपढ़ सभी मनुष्यों पर पड़ता है।

गायक तथा गुणग्राहक भी साहित्य और संगीत में समान रूप से लागू होते हैं। साहित्य अथवा संगीत को समझने के लिए उसी प्रकार का श्रोता होना चाहिये। यदि श्रोता गायक या कवि के समान भावना प्रधान नहीं है तो उसको पूर्णतय रसानुभूति न प्राप्त हो सकेगी। कलाकार के हृदय से समरस हुए बिना श्रोता अथवा पाठक साहित्य तथा संगीत का रसास्वादन नहीं कर सकते। कवि तथा संगीतज्ञ दोनों ही आत्मानुभूत सौंदर्य को अपनी कलाकृति से प्रगट करते हैं और श्रोता अपने हृदय के सामजस्य से उसका अनुभव कर उसकी लहरों में झूमता-खेलता आत्मविभोर हो उसका रसास्वादन करता है। काव्य तथा संगीत का रसास्वादन करने के लिए पहले भावुक सहृदय बनना पड़ता है। यदि किसी अरसिक कोरे वैज्ञानिक को संगीत और साहित्य को सुनवाने के लिए बुला लें तो वह केवल उसका स्वरूप ही समझ सकेगा, *उसे उसका नैसर्गिक आनंद किसी भी दशा में प्राप्त न हो सकेगा।* दोनों ही कलायें सहृदयता सापेक्ष हैं। अतः बिना सहृदयता के न साहित्य की ओर रुचि होती है और न संगीत की ओर।

संगीत तथा साहित्य दोनों ही कलाओं में कलाकार अपनी कला की साधना में ज्यो-ज्यो वृद्धत्व को प्राप्त होता है त्यों-त्यों उसकी कला यौवनत्व को प्राप्त होती है।

कलाओं में संगीत कला की श्रेष्ठता

ललितकलाओं में काव्यकला श्रेष्ठ है अथवा अन्य कला यह एक विवादग्रस्त प्रश्न रहा है। साहित्य के विविध रूपों की श्रेष्ठता पर समालोचकों द्वारा विस्तृत विवेचना तथा समीक्षा की गई है किंतु संगीत की ओर उन्होंने प्रायः पाठकों का ध्यान आकर्षित नहीं किया। पाश्चात्य विद्वानों नैपोलियन,[1] हौग,[2] लूथर,[3] रिचर[4] (Richter), एलड्म् ब्यूरिट

1 "Music of all the liberal arts has the greatest influence over the passions and is that to which the legislator ought to give the greatest *encouragement*"

2 "Of all the arts beneath the heaven that man has found or God has given, none draws the soul so sweet away, as Music's melting, mystic lay, slight emblem of the bliss above, it soothes the spirit all to love

3 "Next to theology I give to music the highest place and honour And we see how David and all the saints have wrought their godly thoughts into verse, rhyme and song"

The New Dictionary of Thoughts, Pp 414 15

4 "Music is the only one of the fine arts in which not only man but all *other animals, have a common property—mice and elephants, spiders* and birds"

(Elihu Burritt)[1], एडिसन[2], लांगफैलो (Longfellow)[3], एच० गिल्स (H. Giles)[4], श्रीमती स्टोव (Mrs Stowe)[5] आदि ने अवश्य संगीत की महत्ता की ओर संकेत किया है किंतु संगीत अभी तक इतना उपेक्षित रहा है कि संभवत: समालोचकों को इतना अवकाश ही नही रहा कि उसकी श्रेष्ठता का विवेचनात्मक रूप से प्रतिपादन करते लेकिन मनन पूर्वक सोचें तो यह ज्ञात होगा कि संगीत-कला भी कम महत्वपूर्ण स्थान नही रखती।

यह नितांत सत्य है कि कला एक अखंड अभिव्यक्ति है किंतु विभिन्न ललित कलाओं के अभिव्यंजक माध्यम की पृथकता के फलस्वरूप उनके मूल्यांकन में पारस्परिक अन्तर उपस्थित हो जाता है। माध्यम अथवा मूर्त आधार की मात्रा तथा सूक्ष्मता के अनुसार ललित कलाओं की श्रेणियाँ उत्तम और मध्यम स्थिर की जाती हैं। जिस कला में मूर्त आधार जितना ही अधिक सूक्ष्म अथवा स्थूल होता है उनका स्तर उसी अनुपात में उच्च अथवा निम्न होता है। वास्तुकला मे मूर्त आधार निकृष्ट तथा स्थूलतम होता है। ईंट, पत्थर, लोहे आदि के द्वारा सौंदर्य उत्पन्न किया जाता है। मूर्तिकला मे मूर्तिकार, मूर्त आधार पत्थर, प्रस्तर-खंड, धातु, मिट्टी को काट-छाँट कर अथवा ढालकर छेनी तथा हथौड़ी आदि के माध्यम से अपने अभीप्ट आकार में परिणित करता है, परिणामस्वरूप मूर्ताधार अपेक्षाकृत सूक्ष्म हो जाने से मूर्तिकला वास्तुकला से कुछ श्रेप्ठ मानी जाती है। चित्रकार के पास मूर्तिकार से मूर्त आधार का आश्रय कम रहता है। रंग, तूलिका, पट और रेखाओ के द्वारा चित्र अंकित किया जाता है। अत: चित्रकला इन दोनों कलाओं से उच्च है। काव्य-कला शाब्दिक संकेत के आधार पर अपना अस्तित्व प्रदर्शित करती है। उसके अन्तर्गत भावनाओं का व्यक्तीकरण अक्षरों के सहयोग से निर्मित शब्दों के माध्यम से होता है। कवि गद्य लिखे अथवा पद्य शब्दों का आधार उसे ग्रहण करना ही होता है। इसमें संशय नही कि वर्णमाला के गिने चुने अक्षरों का मूर्ताधार अत्यधिक सूक्ष्म है। शब्द पहले की सभी सामग्री की अपेक्षा तरल और सूक्ष्म है किंतु संगीत-कला में मूर्ताधार सूक्ष्मतम स्वरूप को प्राप्त हो

---

1. "Among the instrumentalities of love and peace, surely there can be sweeter softer, more effective voice then that of gentle peace-breathing music."
2. "Music is the only sensual gratification in which mankind may indulge to excess without injury to their moral or religious feelings."
3. "Yes Music is the prophet's art, among the gifts that God hath sent, one of the most magnificent."
4. "The direct relation of Music is not to ideas but to emotions in the works of its greatest masters, it is more marvellous, more mysterious than poetry."
5. "Where painting is weakest, namely in the expression of the highest moral and spiritual ideas, there Music is sublimely strong."

The New Dictionary of Thoughts, Pp. 414-15

जाता है। संगीत में नाद का परिमाण अर्थात् आरोह या अवरोह ही उसका आधार होता है। संगीत कला के संवाहक या आधार स, रे, ग, म, प, ध, नि ये सप्त स्वर है। इन सप्त स्वरो का स्वरूप ही कितना होता है। संगीत के लिए न तो ईंट, पत्थर की आवश्यकता होती है, न छेनी हथौडी की, न रंग तूलिका आदि की और न शब्द-भंडार की। वास्तुकार जिस उल्लास भरी मुस्कान अथवा मादक यौवन की मूर्ति को ईंट-पत्थर से गढ कर प्रगट करता है, मूर्तिकार कठोर पत्थर को तराश कर रूप प्रदान करता है, चित्रकार जिसे रंग और तूलिका के माध्यम से स्पष्ट करता है और कवि जिसे शब्दो के ताने-बाने से रचकर सजोता है उसे संगीतज्ञ एकमात्र अपने स्वर के उतार-चढाव से ही मूर्तिमान कर सजीव बना देता है। अत संगीत-कला में मूर्ताधार सूक्ष्मतम् रूप को प्राप्त हो जाता है। भावनाओ के व्यक्तीकरण में जहाँ कवि शब्दो का आश्रय ग्रहण करता है वहा संगीतज्ञ को एकमात्र गिने हुए सतुलित और सधे हुए सप्त स्वरो का ही अवलम्ब होता है। कवि साधक शब्दो की सहायता से तथा उपयुक्त वातावरण का सहारा ले कर अभीष्ट रूप अथवा रस की सृष्टि करता है, जिस प्रक्रिया को काव्यशास्त्र में आलम्बन, उद्दीपन इत्यादि के विधान से स्पष्ट किया गया है, किंतु संगीतज्ञ के लिए न तो अर्थ पूर्ण शब्दो का सहारा ही सुलभ रहता है और न वातावरण की सृष्टि का अवसर ही होता है, उसे केवल स्वरो की ध्वनि से ही वातावरण, रस और वाछित अर्थ की भी अवतारणा करनी होती है। स्वरो तथा ध्वनि की उच्चारण प्रक्रिया, स्वरघात एव स्वरो के कपन मात्र से ही संगीतज्ञ कोमलतम भावनाओ के सूक्ष्मतम भेद प्रदर्शित करता है। संगीतज्ञ के सम्मुख केवल स्वरो का उतार-चढाव ही है। इन्ही सप्त स्वरो मे संगीतज्ञ को अपनी सम्पूर्ण कला का प्रदर्शन करना पडता है जब कि साहित्यकार के सम्मुख परिपूर्ण सामग्री उपस्थित रहती है। इस पक्ष को लेकर यह कहा जा सकता है कि संगीत-कला सर्वश्रेष्ठ कला है।

यो तो कवि बडा समर्थ कलाकार होता है। वह अपनी कल्पना के थिरकते पखो पर बैठा कर स्वर्णिम लोक में विचरण करता है। अन्य कलाए अपने उपकरणो के कारण बद्ध है किंतु कवि के लिए भी एक बधन है। उसका प्रभाव उसी व्यक्ति पर पड सकता है जो उसकी भाषा से परिचित हो। "कवि की सामग्री शब्द है। शब्द में जहा बडी तरलता है वहाँ एक यह दोष है कि वह उन्ही लोगो के काम का है जो उस भाषा को जानते हो जिसका वह अंग है। केवल कोष और व्याकरण से काम नही चलता क्योकि अपने सैकडो वर्षों के इतिहास में शब्द अपने साथ ऐसा बहुत सा बारीक अर्थ समेट लेते है जो न तो व्युत्पत्ति से समझ में आ सकता है न सधि-समास के नियमो से निकल सकता है। 'सती' या 'सहधर्मिणी' शब्द जो भाव हिन्दू संस्कृति में निमग्न व्यक्ति के हृदय में उत्पन्न करते है वह क्या किसी कोष में मिल सकता है? गगा, यमुना, सरस्वती नदियो के नाम नही है आर्य जाति की सहस्र-सहस्र भावनाओ के नाम है। इसीलिए काव्य का पूरा आनंद अनुवाद में नही मिलता।"[1] किंतु संगीत इस बधन से भी उन्मुक्त है। यह एक विश्वव्यापी कला है, जिसकी

१ दर्शन और जीवन, सम्पूर्णानंद, पृ० १७४

सुरम्य तान सृष्टि के एक कोने से दूसरे कोने तक प्रत्येक को मुग्ध करती है। रोते हुए भोले अबोध शिशु को चुप कराने में काव्य की सुन्दर, मधुर तथा भावुक उक्तियाँ काम ही नहीं दे सकतीं किंतु कोई भी नाद यथा बजने और झंकृत होने वाले खिलौने तथा थाली, कटोरा, चम्मच आदि की ध्वनि पूर्णतया सफल हो जाती है। संगीत की इस महत्ता को प्रकट करते हुए ही कहा गया है—

अज्ञात विषयास्वादो बालः पर्यंकिकागतः
रुदन्तगीतामृतं पीत्वा हर्षोत्कर्षं प्रपद्यते ॥[1]

अर्थात—पालने पर पड़ा हुआ रोता बच्चा जो कि अभी किसी विषय के स्वाद को नही जानता गीत के अमृत को पीकर अत्यन्त हर्ष को प्राप्त होता है। तथा—

दोलायां शायितो बालो रुदन्नास्ते यदा क्वचित्।
तदा गीतामृतं पीत्वा हर्षोत्कर्षं प्रपद्यते ॥[2]

जब कहीं झूला में लिटाया हुआ बालक रोता है तब गीतों के अमृत को पीकर ही प्रसन्न हो जाता है। संगीत की इसी विशेषता को लक्ष्य कर रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा था—"जहाँ अभिव्यंजना में काव्य असमर्थ है वहाँ से संगीत की प्रथम सीढ़ी प्रारम्भ होती है।"[3] जहाँ शब्दमयी लौकिक भाषा की गति अवरुद्ध हो जाती है वहाँ संगीत की दिव्य भाषा का प्रारम्भ होता है। संगीत के गान किसी भाषा विशेष के गान न होकर मानव हृदय के गान होते हैं जिनका प्रभाव नाद के सहारे किसी भी देश के निवासी पर सहज ही पड़ जाता है। लैंडन ने कहा है—"संगीत तो विश्व भाषा है। जहाँ वाणी मूक हो जाती है वहाँ संगीत फूट पड़ता है। संगीत हमारी भाषाओं की नैसर्गिक अभिव्यक्ति का माध्यम है। शब्दों में जिनकी प्रखरता और गहराई समा नही सकती हमारी ऐसी अनुभूतियों को संगीत स्वरों का रूप देता है।"[4] उच्च संगीत में विश्व-रंजन की अपूर्व क्षमता है। संगीत के इसी व्यापक प्रभाव की ओर इंगित करते हुए साहित्य और संगीत के श्रेष्ठ समालोचक रोम्यांरोलां (Romain Rolland) ने कहा है—"उच्चतम संगीत का प्रभाव देश, काल और व्यक्ति तक सीमित नहीं है। यह सबको अपने अक्षय भंडार से कुछ न कुछ अवश्य देगा।"[5]

माननीय डा० सम्पूर्णानंद जी का भी कहना है कि—"संगीत शब्दों से उठकर स्वरों से काम लेता है। शब्दों का प्रयोग होता भी है तो थोड़ा। ध्यान शब्दों पर कम,

---

१. संगीत-रत्नाकर, शार्ङ्गदेव, पृ० ७, छंद २८
२. संगीत-पारिजात, अहोबल, पृ० ४, छंद १२
३. संगीत, मार्च १९५५, पृ० ६
४. संगीत, जून १९५५, पृ० ५५, वर्तमान संगीत रत्न—बेगम अख्तर फैजाबादी
५. संगीत, जनवरी १९५०, राग और साम्प्रदायिकता, अरुणकुमार सेन, पृ० ५६

स्वर सचरण पर अधिक रहता है। ऊँचा सगीत चाहे वह गेय हो या वाद्य केवल स्वरो से काम लेता है। स्वरो की भाषा सार्वभौम है। इसीलिए अच्छा सगीत मनुष्यो को ही नही पशुपक्षी तक को आकर्षित करता है। भाषा के बधन से मुक्त होकर वह मनुष्य के हृदय के गभीर प्रदेशो में प्रवेश करता है और चित्त की ऊँची भूमिकाओ को स्पर्श करता है।"

गायनाचार्य प० विष्णुदिगम्बर जी भी सगीत के इस महत्वपूर्ण पक्ष का समर्थन करते हुए कहते है –"काव्य और सगीत में उतना ही अन्तर है जितना सगुण और निर्गुण में है। काव्य सगुण है और सगीत निर्गुण। काव्य केवल चेतन पर प्रभाव डाल सकता है। भाषा भेद इसमें भी प्रतिबध है। एक आग्ल भाषानभिज्ञ पर आग्ल काव्य का कुछ असर नही पड सकता। इसके विरुद्ध सगीत का प्रभाव सम्पूर्ण चेतन प्राणियो के साथ जड पदार्थ पर भी पडता है।"[1]

ठाकुर जयदेवसिंह का भी कथन है कि–"सगीत की भाषा 'स्वर' की है। हिंदी, अग्रेजी, फ्रासीसी, फारसी इत्यादि तो जन विशेष और देश विशेष की भाषायें है पर 'स्वर' मानवमात्र की मातृभाषा है।"[2]

मानव चिरकाल से आनद तथा सौंदर्य की खोज में लीन रहा है। आनद तथा सौंदय की सुदरतम अभिव्यक्ति ही कला है। हृदय पर अकित सौंदर्यमयी भावनाओ को मनुष्य विभिन्न रूपो द्वारा अभिव्यजित करता है। मूर्तिकला में प्रस्तर खड द्वारा, चित्रकला में रगो और रेखाओ के सहयोग से, काव्यकला में शब्दो के द्वारा और सगीत में नाद के माध्यम से सौंदर्य की सृष्टि होती है। इस सौंदय के प्रस्फुरण से समस्तकलाओ में आनद का उद्रेक होता है किंतु आनद की अधिकतम अनुभूति होती है सगीत में। सगीत का विषय श्रोता का अपना ही अन्त करण है। अन्य कलाओ में कला विशारद हमारे सामने जो सत्य रखता है उससे तादात्म्य प्राप्त करना अथवा उसके सम्पर्क से अन्तर्मुख होना अनिवार्य नही है क्योकि उसकी अभिव्यक्ति का आधार प्राय स्वय सवेद्य न होकर परसवेद्य होता है अत वह हमारी बुद्धि को अन्तर्मुख करने में सदैव सफल नही होता। सगीत में किसी बाह्य आधार का आश्रय ग्रहण नही करना पडता। वास्तुकला, मूर्तिकला तथा चित्रकला में किसी प्राकृतिक वस्तु के माध्यम से भावो को प्रगट किया जाता है। काव्य में शब्दो के द्वारा उसका प्रतिबिंब खींचा जाता है किंतु सगीत में अपने ही हृदय में उत्पन्न नाद द्वारा भक्ति, करुण, शृगार आदि रसात्मक भावों को प्रगट किया जाता है। अन्यान्य कलाओ के विपरीत सगीत बाह्य आधार पर नितात अवलबित न होने के कारण उसके निर्माण में मनुष्य को एकमात्र अपनी आत्मा का प्रतिबिंब सम्मुख रखना पडता है। वह हमारे भीतर की रागात्मिका वृत्ति पर आधारित

---

१ माधुरी, दिसम्बर १९२७, गायनाचार्य प० विष्णुदिगम्बर जी से साक्षात्कार, मुकुटधर पाडेय, पृ० ७०२

२ सारग, सगीत सुनने की कला, ठाकुर जयदेवसिंह, ७ दिसम्बर १९५४

होता हुआ भी इतना प्रबल संक्रामक होता है कि श्रोता के गुह्यतम अन्तर की रागात्मक चेतना को केवल उकसाता ही नहीं वरन् विकासोन्मुख भी कर देता है ।" संगीत के अन्दर ताल और लय के अनुसार चलनेवाली नियमित गतियों का आत्मा से अत्यन्त निकट संबंध है। गतियाँ आत्मिक जीवन की साक्षात् अनुकृतियाँ हैं और आत्मिक जीवन स्वयं क्रिया रूप अथवा गतिरूप है।"[१] संगीत में जो लोच और माधुर्य है वह हमें सहसा बहिर्जगत से खींचकर अन्तर्मुख कर देता है। अन्तरतम-सत्ता का दिग्दर्शन कराने में सबसे अधिक समर्थ होने के कारण संगीत में आनंद की अधिकतम अनुभूति होती है और हम चरम आनंद में लीन होकर अपने अस्तित्व को विस्मरण कर देते हैं।

संगीत स्वर-प्रधान है, काव्य शब्द-प्रधान। साहित्यिक सौंदर्य शब्द की विशेष योजना द्वारा ध्वन्यार्थ का आस्वादन है। शब्द की ध्वनि उसका विशेष अर्थ है जिसका आस्वादन रसिक कल्पना के बल से अर्थ के आनंदमय प्रकाश लोक में पहुँच कर करता है। संगीत का सौंदर्य स्वरों की विशिष्ट योजना से उत्पन्न होता है जिसमें ध्वनि, प्रवाह, ताल, लय और संतुलन आदि के कारण ही जीवन में अनुकूल प्रभाव का उदय होता है। इस दृष्टि से संगीत का सौंदर्य साहित्यिक सौंदर्य की अपेक्षा अधिक स्वाभाविक है। इसी दृष्टिकोण से श्री सम्पूर्णानन्द जी संगीत को कलाओं में सर्वश्रेष्ठ स्थान देते हुए कहते हैं—"कलाओं में संगीत का स्थान सबसे ऊँचा है। संगीत साहित्य से भी ऊपर उठता है, कवि जिन शब्दों से काम लेता है वह अपने अर्थों और ध्वनियों को नहीं छोड़ सकते इसलिए बुद्धि उनमें कुछ न कुछ उलझ ही जाती है। संगीत में स्वर और ताल से काम लिया जाता है। स्वर उस आदि शब्द स्फोट की आदि अभिव्यक्ति है जिससे इस भौतिक जगत का विकास हुआ है, इसलिए वैखरी, मुँह से निकलने वाली स्वप्न राशि का अंग होते हुए भी वह परावणी के बहुत निकट है। अच्छे गाने या बजाने वाले को भाषा में कुछ बतलाने की आवश्यकता नहीं होती। स्वरों का आरोहावरोह प्राणों को बाहर से खींचकर ऊर्ध्वमुख कर देता है, चित्त विक्षेप को छोड़कर मंत्र मुग्ध सर्प की भाँति निश्चल हो जाता है, नानात्व दब सा जाता है, शरीर के भीतर-बाहर एक सा झंकृत हो उठता है। ऐसा प्रतीत होता है कि देह का बंधन छूट गया। मैं उठता फैलता सा जाता हूँ, रस का सागर उमड़ सा आता है, अपने में एक अद्भुत आनंद छा जाता है। सामवेद के उद्गाता और वीणा के कुशल बजानेवाले अनाहतनाद के स्वर में स्वर मिलाते हैं। नटवर के पायल ब्रह्माण्डों के स्पन्दन को ताल देते हैं। क्षण भर की भी ऐसी समाधिकल्प-अनुभूति मनुष्य को पवित्र कर देती है।"[२] संगीत में प्रयुक्त भाव, शरीर-मुद्रा, मुखमुद्रा आदि भाव-प्रकाशन के ऐसे नैसर्गिक साधन हैं जिनका अर्थ लगाने के लिए किसी तद्विषयक ज्ञाता की आवश्यकता नहीं वे भाषा के सदृश्य कृत्रिम नहीं हैं।

---

१. प्रतीक, जून १९५१, कला के पांच भेद, विश्वम्भर प्रसाद शास्त्री, पृ० १४

२. भाषा की शक्ति और अन्य निबंध, सम्पूर्णानंद, सौन्दर्यानुभूति और कला शीर्षक लेख, पृ० ५२

कलाओ में सगीत-कला का प्रभाव सबसे अधिक व्यापक, विस्तृत तथा गहरा होता है। लेनिन सगीत को कला का सबसे अधिक रहस्यमय और प्रभावोत्पादक रूप मानते थे। यहाँ तक कि उसकी लहरियों से वे विचलित हो जाते थे और अपने कान मोम से बद कर लेते थे।[1] यह सत्य है कि काव्य के मार्मिक स्थलो को पढ कर नेत्रो से अश्रुकणो की अविरल झडी लग जाती है, उत्साहवर्द्धक शब्दो से पराजय जय में परिणित हो जाती है। किंवदन्ती के अनुसार यह भी है कि बिहारी के द्वारा भेजे गए एक दोहे ने नवोढा रानी के रूप-प्रेम-आकर्षण से मुक्त न हो सकने वाले राजा के हृदय को क्षणमात्र में ही परिवर्तित कर दिया किन्तु क्या काव्य के द्वारा अग्नि प्रज्वलित की जा सकती है आकाश से वृष्टि की झडी लगवायी जा सकती है, पत्थर को जल के रूप में पिघलाया जा सकता है, काव्य के कर्णतम तथा सुन्दरतम स्थलो के निरन्तर उच्चारण से भी क्या जगली हरिणो को वश में किया जा सकता है, मुरझाये वृक्षो में क्या चेतना का पुन सचार किया जा सकता है। किंतु प्रसिद्ध जनश्रुतियो के आधार पर यह मान्यता है कि सगीत के द्वारा यह सभव किया जा सकता है। कागरेव (Congreve) ने भी सगीत की इस महान शक्ति का जोरदार शब्दो में समर्थन किया है।[2]

सगीत के आस्वादन के लिए 'शब्दार्थ पूर्ण' साहित्य का प्रयोग सर्वदा अनिवार्य नही है। "इसमें सन्देह नही कि गान में हमें स्वर और काव्य दोनो का आनद मिलता है पर सगीत के लिए शब्द आवश्यक नही है। यदि ऐसा होता तो वाद्य-सगीत असभव हो जाता।"[3] सगीत अर्थपूर्ण शब्द रचना के बिना भी सिद्ध हो सकता है। सगीत चाहे नि शब्द हो, अभिधापूर्ण शब्द विहीन हो तो भी उसके गायन अथवा सुनने से भावनाजन्य आनद में कोई न्यूनता नही आयेगी। एकमात्र ताल तथा स्वर के अस्तित्व पर निर्भर वाद्ययत्र, गीत तथा शब्दो से शून्य हो कर भी भावाभिव्यजना में सफल हो जाते हैं। तराना गाते हुए 'नोम दिर दारा त न न' आदि ध्वनियो में भी जब विभिन्न रागो में गाये जाते हैं तब लय और ताल ही के द्वारा उनमें भी श्रोताओ का पूर्ण भावोद्दीपन और रसोद्रेक हो जाता है अत सगीत काव्य के अभाव में भी अपना गौरव और महत्व घटने नही देता जब कि काव्य सगीत के कुछ तत्वो के सयोग के बिना सभव ही नही है। उसका अस्तित्व सगीत के पुट का आश्रय पा कर ही पनपता है। यह सत्य है कि भाव या मानसिक चित्र ही वह सामग्री है जिसके द्वारा काव्य-कला-विशारद दूसरे के हृदय से अपना सबध स्थापित करता है किन्तु इस सबध स्थापना की वाहिका भाषा है जिसका कवि उपयोग करता है। सगीत का प्रादुर्भाव तो नाद से हो जाता है किन्तु काव्य का प्रादुर्भाव उस समय होता है जब नाद के आधार पर शब्द-रूप-भाषा बनती

---

१ विशाल भारत, अगस्त १९४२, कला और जीवन का योगसूत्र, हसकुमार तिवारी, पृ० ११३

2 "Music has charms to soothe the savage breast to soften rocks, and to bend the knotted oak"
The New Dictionary of Thoughts, Page 414

३ सगीत सुनने की कला, ठाकुर जयदेव सिंह, सारग, ७ दिसम्बर १९५४

है। अतः काव्य के लिए संगीत का सहयोग अनिवार्य हो जाता है। "संगीत को काव्य की अपेक्षा नहीं रहती पर काव्य एक प्रकार से संगीत के गुणग्रहण किए विना रह नहीं सकता। इसका कारण यह है कि संगीत को स्वर का आश्रय होता है और काव्य को वर्ण का। स्वर स्वतंत्र है पर वर्ण स्वर सापेक्ष है।"[१]

यह तो निश्चित है कि संगीत का क्षेत्र कविता की अपेक्षा कम विस्तृत है। जहाँ काव्य की पहुँच स्थूल, वाह्य और मनुष्य के आन्तरिक जीवन तक होती है वहाँ संगीत का क्षेत्र केवल मानव के आन्तरिक जगत की क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं तक ही सीमित रहता है। संगीत केवल भाव और मानसिक परिस्थितियों को ही प्रकट कर सकता है। काव्य में इसका क्षेत्र विस्तृत रहता है। काव्य वाह्य एवं आन्तरिक दोनों ही दशाओं का वर्णन कर सकता है। विषय की विविधता जैसी काव्य मे रहती है संगीत में नही होती। किंतु हमें यह भी स्मरण रखना चाहिये कि आन्तरिक जगत के अन्तर्द्वन्दों के शमन मे संगीत अपना प्रतिद्वन्दी नही रखता। आधार की सूक्ष्मता, आनंद की विपुलता और सार्वभौमता के कारण संगीत सभी कलाओं से उत्कृष्ट है। कोई भी प्रगतिशील राष्ट्र अथवा व्यक्ति संगीत की उपेक्षा नहीं कर सकता।

संगीत एवं काव्य के पारस्परिक संवंध के उपादान

काव्य मानव-एकता की प्रतिष्ठा करने की एक साधना है जिसमें भावों एवं कल्पना का प्राधान्य रहता है। भावना द्वारा कवि संगीत की सृष्टि किया करता है और कल्पना द्वारा अपने वर्णवस्तु का चित्र उपस्थित करता है। इस प्रकार कविता की अभिव्यक्ति शब्दो मे संगीत और चित्र के द्वारा होती है।

संगीत के उपादान

राग—संगीत में राग एक ऐसा विधान है जिसके द्वारा प्रत्येक रस के विशिष्ट भावों का प्रकाशन किया जाता है। विभिन्न स्वरों के सुन्दर तथा समुचित मेल से विशिष्ट रागों के गाने से विशिष्ट चित्र अंकित होते है। यथा–किसी की अटपटी अलकें और क्लान्त-भ्रांत मुद्रा, तो किसी के नयनों में उल्लास का वसंत, किसी के आनन पर उषःकालीन लालिमा, तो किसी के नेत्रों में उमड़ी हुई दुख की काली वदरी, किसी के अधरों पर विहँसती ज्योत्स्ना तो किसी के अंधकार में चमकते अश्रुकण। स्वरों के अपूर्व संयोग से रागो के माध्यम द्वारा गायक प्रत्येक प्रकार के भाव का चित्र अंकित कर देता है। अतः यदि काव्य का भाव उसी भाव को प्रकट करने वाले राग में उतारा जाय तो इससे न केवल काव्य का सौंदर्य ही द्विगुणित होता है वरन् काव्य में जीवन प्रकट हो जाता है और भाव की सरल, स्पष्ट तथा उपयुक्त

---

१. माधुरी, दिसम्बर १९२७, गायनाचार्य पं० विष्णुदिगम्बर जी से साक्षात्कार, मुकुटधर पांडेय, पृ० ७०३

व्यंजना के द्वारा उस भाव का स्वरूप मूर्तिमान होकर नेत्रो के सम्मुख अंकित हो जाता है। साहित्य के भावो में संगीत के इस उचित संयोग से शब्दो के अर्थ तीव्रतम तथा सरलतम रूप में स्पष्ट होते चले जाते है और तब उसकी अनुभूति में मानव को नैसर्गिक आनंद प्राप्त होता है। संगीत के स्वरो से किस प्रकार भावो तथा रस का सृजन किया जा सकता है इसकी विवेचना आगे की जायगी।

संगीतमय भाषा

अपने काव्य को माधुर्य और सार्वभौमता के गुण से अलंकृत करने के लिए कवि की भाषा संगीत का आश्रय ग्रहण करती है।

"भाषा संसार का नादमय चित्र है, ध्वनिमय स्वरूप है। यह विश्व की हृत्तन्त्री की झंकार है जिसके स्वर में वह अभिव्यक्ति पाता है।"[1] भाषा भावो के अभिव्यंजन का साधन है। भाषा ही वह माध्यम है जिसके सहयोग से कवि अपने अन्तरतम में निहित भावानुभूति को अभिव्यक्त करने का प्रयास करता है। भाषा की इसी विशेषता को लक्ष्य कर कोन्स्तान्तिन फेदिन ने कहा था—"लेखक की कला की बात करते समय हमे सबसे पहले भाषा की बात करनी चाहिये। भाषा वह चीज है और सदा रहेगी जिससे लेखक अपनी इमारत खडी करता है। साहित्य की कला शब्दो की कला होती है। साहित्य के रूपगठन जैसा महत्वपूर्ण तत्व भी भाषा के महत्व से गौण होता है। कोई साहित्यिक कृति कभी अच्छी हो ही नही सकती अगर उसकी भाषा दरिद्र हो।"[2] भावो के अभिव्यंजन का अनिवार्य माध्यम होने के फल-स्वरूप भाषा साहित्य में अपना विशिष्ट महत्व रखती है।

यह नितान्त सत्य है कि कविता का भाव हृदय में स्वत ही उत्पन्न होता है किन्तु अनुभूत भाव कल्पना अथवा विचार को सुन्दर शब्दो में व्यक्त कर देना ही कला का कर्म है। पर कविता का वास्तविक प्रभाव डालने के लिए जितनी आवश्यकता अपूर्व भाव की है उतनी ही अधिक सुन्दर भाषा की भी। इसी लिए अलेक्सी टाल्स्टाय ने कहा था—"भाषा विचार का साधन है। भाषा का इस्तेमाल लापरवाही से करने का मतलब है विचार में लापरवाही करना।"[3]

जैसा कि पूर्व भी कहा जा चुका है काव्य केवल भाव ही नही है और न एकमात्र भावो की अभिव्यक्ति ही श्रेष्ठ तथा उत्कृष्ट काव्य-कृति कही जा सकती है। जब तक इस अभिव्यक्ति में सौंदर्य तथा माधुर्य नही होता तब तक वह वास्तविक काव्य का रूप धारण

---

१. गद्य-पथ, सुमित्रानंदन पंत, प्रवेश, पृ० १४
२ लेखक और उसकी कला, कोन्स्तान्तिन फेदिन, (अनुवादक अमृतराय) आलोचना, अक्टूबर १९५१, पृ० ४६
३ वही, पृ० ५०

नही कर सकती । अतः सौंदर्य तथा माधुर्यमय रूप प्राप्त करने के लिए कविता की भाषा को संगीत का आश्रय ग्रहण करना पड़ता है । कवि का हृदयगत भाव कल्पना से अनुरंजित हो संगीतमयी भाषा के द्वारा ही व्यक्त होकर काव्य का रूप धारण करता है । अतः कविता की भाषा मे संगीत तत्व का समावेश अनिवार्य है । कविता की भाषा में संगीत की उपादेयता को लक्ष्य कर ही पं० रामचन्द्र शुक्ल ने कहा था—"कविता की भाषा में इसके अलावा नाद-सौंदर्य पर भी ध्यान रखना पड़ता है ।"[1] काव्य की भाषा में संगीत के महत्वपूर्ण स्थान को स्वीकार करते हुये श्री रवीन्द्रनाथ ने भी कहा है—"असीम जहाँ सीमा हीनता में अदृश्य हो जाता है वही संगीत है । असीम जहाँ सीमा के भीतर रहता है वही चित्र है । चित्र है रूपराज्य की कला और संगीत अरूप राज्य की । कविता जो उभयचर है, चित्र के भीतर फिरती और गान के भीतर उड़ती है क्योंकि कविता का उपकरण है भाषा । भाषा में एक ओर अर्थ है और दूसरी ओर स्वर । अर्थ की शक्ति से गठित होती है छवि और स्वर के योग से होता है गान ।"[2] सुकवि की भाषा में संगीत का संयोग अनजाने ही स्वतः होता जाता है । अनुभूति की तन्मयता में कलाओं का स्वरूप विभिन्न नही रहता । कवि संगीतज्ञ बन जाता है, प्रत्येक शब्द में ध्वनि गूंजने लगती है । अक्षर-अक्षर गाने लगते है । यही कला का उच्चतम स्वरूप है । जहाँ सौंदर्य अपने श्रेष्ठतम रूप में प्रस्फुटित होता है । मधुरिमा उसका गुण नहीं अनिवार्य अंग बन जाती है । काव्य और संगीत मौन होकर परस्पर एक दूसरे का आलिंगन करते है । सौंदर्य की इस सम्मिलित नूतन छटा में दोनों एक दूसरे को अलग-अलग पहचान नही पाते । वस्तुतः काव्य स्वतः संगीत बन जाता है । इसी को लक्ष्य कर कहा है—कविता शब्दों के रूप में संगीत है और संगीत स्वर के रूप में कविता है ।

काव्य की भाषा को संगीत-सौंदर्य प्रदान करने के कौन-कौन से उपादान हैं तथा शब्द-संगीत को उत्पन्न करने के लिए क्या गुण अनिवार्य हैं । इसकी विवेचना कृष्णभक्तिकालीन संगीत की भाषागत विशेषतायें शीर्षक अध्याय में की जायेगी ।

लय—कविता में लय का बंधन संगीत की महत्ता की स्वीकृति का ही लक्षण है। ताल, लय और स्वर द्वारा संगीत में हमारे मनोभावों को तरंगित करने की अद्भुत क्षमता है । अतः कविता लय के माध्यम से संगीत का आश्रय ग्रहण करके हमारे मनोवेगों को तीव्र भाव से जागृत और उत्तेजित कर देती है । लय काव्य को स्वाभाविक रूप मे संगीतात्मकता प्रदान करती है और अपनी इस किंचित् संगीतमयता के कारण माधुर्य और सरसता तो भावों के साथ लाती ही है साथ ही एक प्रवाह, शक्ति और लोच भी उत्पन्न कर देती है ।

काव्य के उपादान

शब्द—संगीत पर भी साहित्य का प्रभाव पद-पद पर देखा जाता है । संगीत का प्रधान

---

१. चिंतामणि, पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० २४४
२. माधुरी, ज्येष्ठ १९३२, ललित कला क्या है, नलिनी मोहन सान्याल, पृ० ६०९

या ध्वनि या स्वर है। दूसरे प्रधान अंगों में शब्द (गीत, बोल) और लय है। एकमात्र ध्वन्यात्मक संगीत वाद्ययंत्रों में ही होता है। कंठ-संगीत साहित्य ही की नींव पर खड़ा रहता है।

यद्यपि संगीत में स्वर प्रधान है शब्द गौण किन्तु फिर भी शब्दों की पूर्णतया उपेक्षा नहीं की जा सकती। गायन में शब्द पर्याप्त महत्व रखते हैं और रस-निष्पत्ति में अत्यधिक सहायक होते हैं। कुछ गायकों का संगीत समाप्त हो जाने पर भी यह ज्ञात नहीं हो पाता कि गायन के बोल क्या थे। यह महान त्रुटि है। शब्दों के स्पष्ट उच्चारण भाव समझने में सहायक होते हैं जिनके कारण गायन और भी मधुर, सरस और सरल प्रतीत होता है। संगीत जिस भाव को केवल स्वरों के संकेत मात्र से व्यक्त करता है, कविता उसे रूप दे कर हृदय-पटल पर अंकित कर देती है। ध्वन्यात्मक रूप में संगीत जितना उपयोगी होता है, कलात्मक काव्य का संयोग पाकर उसकी उपयोगिता और भी बढ़ जाती है। अतः संगीत में स्थायित्व उत्पन्न करने के लिए काव्य का सहारा लेना ही पड़ता है और संगीत-कला अपना अस्तित्व प्रदर्शित करने के लिए जब काव्य-कला का आश्रय ग्रहण करती है उसकी रमणीयता एवं सौंदर्य द्विगुणित हो उठता है।

सारांश में कह सकते हैं कि संगीत-कला और काव्य-कला में अन्योन्याश्रय भाव है। संगीत साहित्य के लिए उतना ही उपयोगी और आनन्ददायी है जितनी धरातल के लिए कुसुमावली और गगन तल के लिए आलोकमाला। संगीत के अनुशासन एवं संगीत की शृंखलाओं को तोड़ कर चलने वाले कवि बहुत कम हैं और उनसे भी न्यून उन गायकों की संख्या है जो शब्दविहीन तथा साहित्य रहित संगीत की अर्चना करते हैं। यों तो संगीत से हीन साहित्य भी दृष्टिगत होता है और साहित्य से हीन संगीत भी किन्तु ऐसी अवस्था में एक के बिना दूसरा अपूर्ण ज्ञात होता है। अनुमान है कि इसी संयोग के लिए देवी सरस्वती काव्य और संगीत दोनों की अधिष्ठात्री होकर पुंडरीक के सिंहासन पर एक हाथ में पुस्तक और दूसरे में वीणा के साथ सुशोभित की गई है।

साहित्य में संगीत का औचित्य

पिछले पृष्ठों पर की गई साहित्य तथा संगीत के संबंध और समानताओं की विवेचना से यह स्पष्ट हो चुका है कि वही कविता अधिक प्रभावशालिनी तथा हृदयग्राहिणी होती है जिसमें सौन्दर्यमयी चेतना और सुकुमार भाव संगीत की स्वर-लहरियों में गुंथ कर आनन्दानुभूति को तीव्र करने वाले हों। कविता को सुन्दरतम रूप में प्रकट करने के लिए संगीत एक अनिवार्य तत्व है इसमें सभी कलाकार एकमत हैं। किन्तु यह अनिवार्य रूप से स्मरणीय है कि काव्यत्व और संगीतत्व एक स्तर पर ही स्थित रहें।

साहित्यकार के सम्मुख कभी-कभी ऐसी परिस्थिति भी आ जाती है जब शब्द और स्वर (संगीत) में विरोध हो जाता है और संगीत का आधिक्य कविता की भावाभिव्यंजना

में बाधा उत्पन्न करने लगता है। ऐसे समय में कुशल कलाकार को संगीत के नियमों को तनिक शिथिल कर देना चाहिए क्योंकि काव्य का प्राथमिक आधार शब्द है स्वर गौण। काव्य में जितना महत्व शब्द को दिया जा सकता है उतना स्वर को नहीं।

मराठी संगीत के प्रख्यात साधक श्री पंडित रायनगरकर का भी विचार है कि—"कविता को संगीत में मुख्य रूप से नहीं लेना चाहिए। इसलिए कि कविता शब्द-चमत्कार पर आधारित है और संगीत राग पर। कविता एक हद तक ही संगीत में महत्व रख सकती है अन्यथा स्वर अथवा शब्द भंग का दोष बना ही रहता है।"[1]

अतः साहित्य तथा संगीत का समन्वय उस समय तथा उस सीमा तक ही करना चाहिये जहाँ तक संगीत के सम्पर्क से साहित्य में रमणीयता और सौंदर्य की वृद्धि हो।

१. संगीत, दिसम्बर १९५३, पृ० ८२३

तृतीय अध्याय

कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में संगीत प्रेरणा के उपादान

आध्यात्मिक महत्ता तथा कवि रूप

जेम्स एच० कजिन्स का कथन है कि—"धर्म को भारत अपने जीवन का केवल एक अंग ही नहीं समझता है किन्तु वही उसका जीवन है।"[1] भारतीय संस्कृति धर्म का आश्रय लेकर उसी की छत्रछाया में विकसित हुई है। भारतीय जीवन के अंगप्रत्यंग पर आध्यात्मिकता की अमिट छाप अंकित है। जीवन में निहित इस आध्यात्मिक महत्ता के कारण ही भारतीय संस्कृति में पनपने वाली प्रत्येक कला का उच्चतम-ध्येय आध्यात्मिक आनंद प्रदान करना रहा है। भारतीय कला का प्रधान लक्ष्य पार्थिव आनंद की तृप्ति अथवा कोई वैषयिक लाभ या शृंगारिकता को उद्दीप्त करना और विषयोपभोग में प्रवृत्त कराना नहीं माना गया वरन् वह भक्ति, धर्म और उपासना प्रधान रही है। अस्तु उसके अन्तर्गत लोक रंजन का दृष्टिकोण गौण रूप में ही निर्धारित होना आया है।

सभी कलाओं में अध्यात्मपक्ष की प्रधानता होने के कारण हमारी भारतीय संगीत कला भी प्रारम्भ से ही धर्म का आधार ले कर चली है। हमारे यहाँ संगीत-कला का चरम आदर्श मोक्ष प्राप्ति, आत्मा से परमात्मा का मिलन तथा परम शान्ति को प्रदान करना माना गया है। संगीतरत्नाकरकार ने कहा है—"उस गीत के माहात्म्य की कौन प्रशंसा करने में समर्थ है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त करने का यही एक साधन है।"[2]

जहाँ संगीत है वहीं ईश्वर निवास करते है। स्वयं विष्णु नारद जी से कहते हैं—"हे नारद! न तो मैं वैकुण्ठ मे रहता हूँ और न योगियों के हृदय में, अपितु मेरे भक्त जहाँ गान करते हैं वहीं मैं निवास करता हूँ।"[3]

---

१ भारतीय कला के आदर्श, लक्ष्मीकांत त्रिपाठी, सरस्वती १९२४, पृष्ठ ५८८

२ तस्य गीतस्य माहात्म्यं कः प्रशंसितुमीहते।
धर्मार्थकाममोक्षाणामिदमेवैकसाधनम्॥
संगीत रत्नाकर, अध्याय २०, प्रकरण १

३ नाऽहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥
संगीत-पारिजात, अहोबल, पृ० ५, श्लोक संख्या १६

ईश्वर प्राप्ति के लिए संगीत प्रधान साधन है क्योंकि स्वयं भगवान ने कहा है– हे वरानने मेरी जैसी प्रीति गंधर्व-विद्या मे है वैसी न घी मे है, न नमक में है और न गुग्गुल में है।[१]

पार्वतीपति महादेव गीत से अत्यन्त संतुष्ट होते है तथा गोपी-पति (भगवान कृष्ण) जो अनंत है वे भी संगीत ध्वनि के वशीभूत है।[२]

शास्त्रों मे कहा गया है कि मनुष्यों द्वारा गायन, वादन तथा नृत्य तल्लीनता से किया गया हो तो वह भगवान् विष्णु को प्रसन्न कर देता है।[३]

यही नही वीणा बजाने के तत्व को जानने वाला, श्रुतियो तथा स्वरों के जाति-भेद को समझने वाला तथा ताल के 'काल माप' (मात्रा परिमाण) को जानने वाला अप्रयास ही मोक्ष-मार्ग की ओर अग्रसर होता है।[४]

भागवतकार ने संगीत की आध्यात्मिक महत्ता की ओर संकेत करते हुए कहा है– "दोष-निधि कलियुग मे महान गुण है कि भगवान कृष्ण के कीर्तन से मनुष्य लौकिक आसक्ति से छूट जाता है।"[५]

श्री वल्लभाचार्य का मत है कि भगवान के गुणो के गान से भक्त में ईश्वरीय गुण आ जाते है– "जब तक भगवान अपनी महती कृपा भक्तों को दे तब तक साधन-दशा में ईश्वर के गुण-नाम के कीर्तन ही आनन्द देनेवाले होते हैं। ईश्वर के गुणगान में जो आनन्द है वह लौकिक पुरुषों के गुणगान मे नही तथा जैसा सुख भक्तों को भगवान के गुणगान में होता है वैसा सुख भगवान के स्वरूप ज्ञान की मोक्ष-अवस्था मे भी नही होता। इसलिए सदानन्द

१. न घृते तादृशी प्रीतिर्नक्षारे न च गुग्गुले :
यादृशी चैव गांधर्वे मम प्रीतिर्वरानने ॥
The Krishna Pushkaram Souvenir, 'Hindu Music a Survey, Polavarapu Ramchandra Rao, Page 92

२. गीतेन प्रीयते देवः सर्वज्ञः पार्वतीपतिः।
गोपीपतिरनं तोऽपि गीतध्वनिवंशगतः ॥ स्वरमेलकलानिधि, रामामात्य, पृ० ११

३. देवस्य मानवो गानं वाद्यं नृत्यमतन्द्रितः।
कुर्याद्विष्णोः प्रसादार्थमिति शास्त्रे प्रकीर्तितम् ॥
संगीत-पारिजात, अहोवल, पृ० ५, श्लोक १५

४. वीणवादनतत्वज्ञः श्रुतिजाति विशारदः।
तालज्ञश्चाप्रयासेन मोक्षमार्गं नियच्छति ॥
संगीत-पारिजात, अहोवल, पृ० ६, श्लोक १८

५. कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान्गुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसंगः परं व्रजेत् ॥ भागवत, दशमस्कंध, अध्याय ३, श्लोक ५१

ईश्वर में भक्ति करने वाले भक्तों को सब लौकिक साधन छोड़कर भगवान के गुणों का गान करना चाहिए। ऐसा करने से भक्त में ईश्वरीय गुण आ जायेंगे।"[1]

राग-दर्पण ग्रंथ में फकीरुल्ला ने कहा है कि संगीत की ध्वनि भक्ति का संदेश सुना कर उचित मार्ग की ओर जाने के लिए प्रेरित करती है—"और प्रशंसा का गान उस वादक (रसूल पैगम्बर) के प्रति अर्पित करना उचित है जिसकी हिदायत (मार्गनिर्देश) रूपी सितार की उच्च ध्वनि ने भटकने हुओं को ठीक मार्ग पर आने की आकांक्षा उत्पन्न कर दी और असीम भक्ति के लक्ष्य पर पहुँचा दिया।"[2]

रवीन्द्रनाथ ठाकुर का विचार है कि संगीत में ईश्वर से साक्षात्कार कराने की असीम शक्ति निहित है। संगीत की आध्यात्मिक महत्ता पर मुग्ध होकर उनके हृदय के भावुक उद्‌गार गा उठते हैं—

जानि आमि एइ गानेर बले
बसि गए तोमारि सम्मुखे
प्रान दिए जार नागाल नाइ पाइ
गान दिए सेइ चरण छुए आइ।[3]

अर्थात्—मैं यह जानता हूँ कि इसी गान के बल से मैं तुम्हारे सम्मुख बैठने के योग्य होता हूँ। प्राण और मन देकर भी जिसके समीप मैं नहीं आ सकता था गान देकर उसी के चरण छू लेता हूँ।

यही नहीं भारतीय संगीत की धार्मिक महत्ता पर प्रकाश डालते हुए रवीन्द्रनाथ कहते हैं—"मुझे ज्ञात होता है कि भारतीय संगीत धार्मिक व्याख्या से परिपूर्ण मानवी अनुभवों की अपेक्षा दैनन्दिन अनुभूति से अधिक संबंध रखता है। संगीत का आध्यात्मिक मूल्य है। यह

---

१ महता कृपया यावद्भगवान् दययिष्यति।
तावदानन्दसन्दोह कीर्त्यमान सुखाय हि। ४
महता कृपया यद्वत्कीर्तन सुखद सदा।
न तथा लौकिकाना तु स्निग्धभोजनरुक्षवत्। ५
गुणगाने सुखवाप्तिर्गोविदस्य प्रजायते।
यथा तथा शुकादीना नैवात्मनि कुतोऽयत। ६। १
तस्मात्सर्वं परित्यज्य निरुद्धं सर्वदा गुणा।
सदानंद परैर्गेया सच्चिदानंदता तत। ६
निरोध-लक्षण-षोडश ग्रंथ, भट्ट रमानाथ शर्मा।

२ मानसिंह और मानकुतूहल, हरिहर निवास द्विवेदी, पृ० ५३-५४

३ गीतांजलि, रवीन्द्रनाथ ठाकुर

दैनन्दिन घटनाओं से आत्मा को मुक्त करता है और आत्मा एवं परमात्मा के संबंध का गीत गाता है।...... हमारा संगीत श्रोता को दिन-दिन के मानवीय सुख-दुःख से दूर हटाकर, सृष्टि के मूल विश्रान्ति और त्याग की ओर ले जाता है।"[1]

गायनाचार्य पं० विष्णु दिगम्बर जी संगीत को मोक्ष प्राप्ति का साधन मानते हैं–

"संगीत भी एक स्वर्गीय वस्तु है। यदि उसे 'वसुधा की सुधा' कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। सत्संगीत मनुष्य की आत्मा को इस तापत्रयपूर्ण नरधाम से ऊँचा उठाकर क्षण काल के लिए ऐसे अमरलोक में ले पहुँचाता है जहाँ चारों ओर सुख-शांति का साम्राज्य छाया हुआ होता है।[2]

ठाकुर जयदेव सिंह जी का भी विचार है कि संगीत ईश्वर प्राप्ति का साधन है।[3]

कत्थक शैली के सुप्रसिद्ध नर्तक श्री लच्छू महाराज ने अनंत सौन्दर्य की प्राप्ति को ही कलाकार के जीवन की सफलता कहा है –

"आत्मा के समीप पहुँच कर सौंदर्य पर्यवेक्षण के चरम आनंद को प्राप्त करने में यदि कोई नृत्यकार अथवा कलाकार सफल नहीं हो सका हो, तो मैं उसकी सारी कला के प्रति, प्राप्त प्रशंसा के प्रति खेद ही प्रगट करूँगा।"[4]

प्रसिद्ध संगीतज्ञ श्री सियाराम जी तिवारी भी मानते हैं कि "संगीत दैवी विद्या है। यह चंचल चित्तवृत्ति के निरोध के द्वारा योग-साधन का सा आनंद देती है।"[5] उनकी दृष्टि में भारतीय शास्त्रीय संगीत का लक्ष्य आत्मशांति होना चाहिये। इस विद्या के द्वारा उच्चतम आध्यात्मिक आनंद प्राप्त होता है और अंततोगत्वा मुक्तिलाभ होता है।

श्री कानन भी संगीत को दिव्यकला मानते है।[6]

---

१. संगीत, मार्च १९४९
२. गायनाचार्य पं० विष्णु दिगम्बर जी से साक्षात्कार, मुकुटधर पांडेय, पृ० ७००, माधुरी, दिसंबर १९२७
३. संगीत सम्बन्धी वार्ता करते हुए ठाकुर जयदेव सिंह जी ने लेखिका के सम्मुख यह विचार व्यक्त किया था।
४. संगीत, नवम्बर १९५३, कत्थक शैली के सुप्रसिद्ध नर्तक–श्री लच्छू महाराज श्री सत्य, पृ० ७६२
५. संगीत, मई १९५५, पृ० ३०
६. संगीत, फरवरी १९५५, पृ० ४३

श्री प्रानलाल देवकरन नान्जी संगीत को ईश्वर का दिया हुआ वरदान कहते है ।[1]

महाराज श्री गिरीशचन्द्र नंदी का कथन है कि रस की अनुभूति करा कर संगीत ब्रह्मानंद प्रदान करता है ।[2]

पं० ओंकारनाथ ठाकुर का तो विचार है कि साध्य के साथ एकाकार होने के लिए भक्त का स्वर में तल्लीन होना अनिवार्य है । यही कारण है कि भक्तों की कविता में संगीत घुल मिल गया है ।–'भक्त के लिये संगीत मुख्य साधन है । भक्ति में तन्मयता, तद्रूपता पाने के लिये स्वर में तल्लीन होना पड़ता है भक्तों की कविता में संगीत घुलमिल गया है ।'[3]

न केवल भारतीय वरन् पाश्चात्य कलाकारों ने भी संगीत को ईश्वर से सम्बद्ध माना है । कुमारी हेलेन योम का कहना है–" मैं संगीत को मनोरंजन का साधन मात्र नहीं मानती बल्कि जीवन के निर्माण का एक प्रधान उपकरण मानती हूँ । अगर हमें ईश्वर में विश्वास है तो वह भी इसी संगीत की विराट धारा में व्याप्त है । आप संगीत की वेगमती धाराओं में अपने को डुबो दीजिये और इतना डुबोइए कि फिर आपको विश्व के प्रत्येक पदार्थ से संगीत की मधुर ध्वनि ही फूटती हुई सुनाई पड़े तब उस उच्च स्वर पर आपको ईश्वर के विराट एवं दिव्य रूपों के दर्शन होंगे । हमारा ईश्वर संगीत से परे नहीं है । वह संगीत की स्वर लहरियों में ही रम रहा है इसलिए ही संगीत में संजीवनी शक्ति प्रच्छन्न है, जो मुर्दों में भी प्राण प्रतिष्ठा करा सकती है । "[4]

कुमारी एलवोम ने कहा है–"संगीत ही स्वयं ईश्वर है और ईश्वर ही संगीत है । दोनों एक दूसरे से अलग नहीं किए जा सकते । जिसने संगीत की अमर साधना कर ली मानो उसने सर्व शक्तिमान ईश्वर को भी प्राप्त कर लिया ।"[5]

---

1 "God has bestowed Music upon us as a gift together with its manifold blessings Like a true friend it enhances our happiness and curtails our sorrows It pleases and soothes both the rich and the poor, men and women, and castes and creeds without distinction "

The Krishna Pushkaram Souvenir, Music , D P Nanjee, Page 136

2. ' By clearly expressing the Rasa and enabling men to taste there of it gives the wisdom of Brahma, whereby they may understand how every business is unstable, from which indifference to such business and therefrom arise the highest virtues of peace and patience and thence again may be won the bliss of Brahma "

The Krishna Pushkaram Souvenir, 'Synthesis of Musical Cultures, Maharaja Srischandra Nandy, Page 99

३ संगीत, मार्च १९४?, पृ० २४६

४ संगीत, फरवरी १९२८, पृ० ?६

५ संगीत पर जिन्दा रहने वाली विश्व की प्रथम महिला कुमारी एलवोल लोरा–उमेश जोशी, संगीत, पृ० ६०६, सितंबर १९५३

मिल्टन ने ईश्वर-ज्ञान को संगीतमय माना है —"ईश्वरीय ज्ञान कैसा मनोहर है। न कठोर है और न कटु जैसा कि मंद बुद्धि के लोग सोचते हैं वरन् वह संगीतमय है जैसी एक पोलोट की वीणा होती है।"[1]

मिल्टन संगीत का संबंध ईश्वर से जोड़ता है और उसे अत्यधिक पवित्र समझता है –

In song and dance about the sacred hill
Mystical dance which yonder story sphere
Of planets and of fixed in all her wheels,
Resembles nearest, mazes intricate,
Eccentric, intervolved yet regular
Then most, when most irregular they seem;
And in their motions harmony divine
So smooths her charming tones, the God's own ear
Listens delighted.[2]

संगीत-कला आध्यात्म की ओर उन्मुख करती है। यह एकमात्र कल्पना ही नहीं है वरन् इसमें महान् सत्य छिपा हुआ है। जीवन का उच्चतम ध्येय होता है आत्मा का परमात्मा से सामंजस्य होना। परमतत्व के इस साक्षात्कार के लिये यह अनिवार्य है कि हृदय की चंचल-वृत्तियों को सांसारिक वैभव तथा वासनाओं से मोड़ कर उस ओर उन्मुख कर दे जो इन सांसारिक बंधनों से कहीं अधिक आकर्षक तथा मोहक है। चिंतन, श्रवण तथा गुरु उपदेश परब्रह्म के उस अनंत सौंदर्यशील रूप की झाँकी दिखा देते हैं जिससे कि मनुष्य की वृत्ति उस ओर भी अग्रसर होने लगती है। किन्तु यहाँ यह आवश्यक होता है कि उसकी चंचल वृत्तियों को बढ़ाने के लिए सुगम पथ प्राप्त हो और उसमें इतनी शक्ति हो कि वह उन चंचल-वृत्तियों को पुनः किसी ओर उन्मुख न होने दे वरन् उनको निरन्तर उसी ब्रह्म की सौंदर्य-साधना में लीन करके स्थिर रखे।

संगीत में जनरंजन की अद्भुत शक्ति है जिससे कि मनुष्य उस ओर प्रेरित हो जाता है। संगीत-साधना के लिए तन्मयता अनिवार्य है। संगीत के स्वरों को साधने के लिए अहंभाव तथा अन्य वाह्य भावनाओं को त्याग कर, मन को एकाग्र कर सभी इन्द्रियों को उसी में केन्द्रीभूत करना होता है जिसके कारण तन्मयता की अवस्था प्राप्त होती है। इस तन्मयता में संगीतज्ञ अन्तर्मुख होकर इतना लीन हो जाता है कि उसे वाह्य जगत पर दृष्टि डालने का अवकाश ही नहीं मिलता। वाह्य आडंबरों तथा बंधनों की उपेक्षा कर वह संगीत के स्वरों

---

1. How charming is Divine philosophy. It is not harsh and crabbed as dull fools suppose but musical as is a Pollot's lute.
   Bartlett's Familiar Quotations, John Bartlett, Page 254
2. Milton, Book V, Page 155

में आत्मविस्मृत हो इतना खो जाता है कि समस्त संसार तथा उसकी विघ्नबाधाओं के मध्य रहता हुआ भी वह उनको देख अथवा सुन नहीं सकता।

प्राय देखा जाता है कि संगीतज्ञ गाते-गाते जब किसी स्वर विशेष पर स्थिर हो जाता है तो श्रोतागण की करतलध्वनि गूँजने लगती है तथा ताल की कितनी ही मात्रायें निकल जाती हैं किन्तु संगीतज्ञ उनसे तनिक भी विचलित न होकर उसी स्वर पर स्थिर रहता है। उसका स्वर तनिक भी कंपित नहीं हो पाता। इसका यही रहस्य है कि श्रोतागण के मध्य बैठा हुआ भी संगीतज्ञ संगीत के स्वरों में इतना बँध जाता है, आत्मविस्मृत होकर इतना खो जाता है कि संगीत के स्वरों के अतिरिक्त अन्य कोई वाह्य ध्वनि उसे सुन ही नहीं पड़ती। यही वह अवस्था है जिसको योगी परमानंद में लीन होना कहते हैं।

उक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो गया है कि संगीत में इतनी शक्ति है कि वह मन को एकाग्र करके इतना स्थिर कर दे कि हृदय की चंचल वृत्तियाँ केन्द्रीभूत हो जायें और इधर उधर न भाग सकें।

जैसा कि पूर्व कहा जा चुका है कि शिव तथा शक्ति के संयोग का परिणाम नाद है और उसी नाद से संगीत की उत्पत्ति होती है जिसके कारण संगीत के प्रत्येक स्वर से 'ॐ' की दिव्य ध्वनि प्रस्फुटन होती है। अत संगीत-साधना के द्वारा मनुष्य उसमें अप्रत्यक्ष रूप से निहित ब्रह्म से एकता सन्तुलित कर सकता है। ठाकुर जयदेव सिंह जी का कथन है कि—"नाद ही ईश्वर का दूसरा नाम है। नाद को नाद ब्रह्म की संज्ञा दी गई है। जब ब्रह्म का स्वरूप ही नाद है तो नाद-साधना के द्वारा मनुष्य बहुत सरलता से ब्रह्म को प्राप्त कर सकता है।"[१]

प० ओंकार नाथ ठाकुर का भी मत है कि—"प्रकाश में ही परम प्रकाश दिखाई देता है। रूप से ही परम रूप नजर आता है। तद्वत् नाद ब्रह्म से ही परब्रह्म की प्राप्ति हो सकती है।"[२]

रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी इसी भाव को व्यक्त करते हुए कहा था-"ध्वनि की भाषा अनंत के मौन जगत का एक क्षुद्रतम बिन्दुमात्र है। विश्व की अमर भाषा तो उनके इंगित द्वारा ही व्यक्त होती है। वह सदा चित्रों और नृत्य की भाषा में बोलता है।"[३]

फकीरउल्ला ने भी इस ओर संकेत करते हुए कहा है कि—"स्तुति का तराना प्रथमत

---

१ लेखिका के साथ संगीत संबंधी वार्ता करते हुए ठाकुर जयदेव सिंह जी ने उक्त कथन किया था।

२ सूर संगीत, भाग १, प्राक्कथन प० ओंकारनाथ ठाकुर, पृ० ३

३ विशाल भारत, जनवरी १९४२, मेरे चित्र और उनका अर्थ, रवीन्द्रनाथ, पृ० ६

उस भक्त प्रतिपालक महान संगीतज्ञ की सेवा में समर्पित करना उचित है जिसके कृपा रूपी संगीत के उपकरण आनंद-शोकमय है, जिसने प्रलय और सृष्टि रूपी दो तारों वाली वीणा को निनादित कर विश्व का कल्याण किया और उसे अपनी गुण-गाथा से भर दिया।"[१]

वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी संगीत आध्यात्मिक कसौटी पर खरा उतरता है। जीवन की गति श्वास प्रक्रिया से है। हृदय की गति शून्य होते ही सम्पूर्ण शरीर निष्प्राण तथा चेतना रहित हो जाता है। श्वास की गति के द्वारा हृदय समस्त शरीर की रग-रग पर नियंत्रण रखता है। संगीत की स्वरसाधना के लिए श्वास-क्रिया पर नियंत्रण करना पड़ता है। श्वासक्रिया पर नियन्त्रण करते ही मनुष्य का अपने शरीर तथा उसकी गतिविधियों पर पूर्ण अधिकार हो जाता है जिसके कारण वह अपने विचारों को सन्तुलित कर सकता है। विचारों पर नियंत्रण करने के उपरात ही मनुष्य को अनंत आनद की प्राप्ति होती है।

कृष्णभक्तिकालीन कवि उच्च कोटि के भक्त थे। उनका ध्येय अपने आराध्य की उपासना मे पूर्णतः लीन हो कर उनको प्राप्त करना था। अस्तु सांसारिक बंधनों को भूलकर अपने आराध्य के साथ एकाकार होने के लिये उन्होंने संगीत की शरण ली। "हमारे मध्यकालीन साहित्य की विभूतियाँ उस समय के युग-प्रवाह की उपज नही थीं वरन् उनका निर्माण उन प्राचीनतम भारतीय परिवर्द्धनशील दार्शनिक परम्पराओं की ही सुदृढ़ भित्ति पर हुआ था जो न कभी बँधी थीं उत्तर, दक्षिण, पूर्व या पश्चिम की भौगोलिक परिधि में और न कभी म्लान या पल्लवित हुई थी किसी राजसत्ता विशेष के बनने या बिगड़ने से।"[२] "हिन्दी साहित्य के किसी भी विद्यार्थी से छिपा नही कि पूर्व मध्यकाल का हमारा अधिकांश साहित्य कहलाने वाला अंग दार्शनिक चेतना से भरपूर है। उसके प्रस्तुत करने वाले पेशेवर कवि नही थे और न किसी राजा या रईस के आदेश पर या उसकी काव्य पिपासा शांत करने के लिए अपनी लेखनी रँगनेवाले थे। काव्य-साधना के निमित्त कुछ भी लिखना उनके जीवन का ध्येय नही था। वे तो विशुद्ध अर्थों में तत्वदर्शी मानवता का पाठ पढ़ानेवाले ईश्वरीय सन्देशवाहक थे। उनकी वाणी से अमर काव्य की मन्दाकिनी प्रवाहित अवश्य हुई और ऐसी हुई कि जिसकी तुलना कदाचित देशदेशान्तरों के, युगयुगान्तरो के काव्य-साहित्य मे भी ढूँढे न मिलेगी।"[३] किन्तु "गहराई तक पैठ कर यदि देखा जाय तो इनका यह संदेश भी किसी जाति या देश विशेष के लिए नही था वरन् वह था देशदेशान्तर व्यापी मानव कल्याण के लिए। क्षुद्र संकीर्णताओं से उन्मुक्त मानवता का यह संदेश प्राचीनतम परम्परागत सतत उन्नतिशील मानव जागरण के आन्दोलन की एक महाप्रबल लहर था।"[४] "अतः स्पष्ट है कि इस अज्ञेय तत्व का अन्वेषण जब रसस्रोत के माध्यम से किया गया और उसकी अनु-

---

१. मानसिंह और मानकुतूहल, हरिहर प्रसाद द्विवेदी, पृ० ५३
२. मीरा-स्मृति-ग्रंथ, कृष्णभक्ति परंपरा और मीरा, आचार्य ललिताप्रसाद सुकुल, पृ० १८६
३. काव्यचर्चा, ललिताप्रसाद सुकुल, रहस्यान्वेषण में छाया की प्राप्ति, पृ० १८५
४. मीरा-स्मृति-ग्रंथ, कृष्णभक्ति परंपरा और मीरा, आचार्य ललिताप्रसाद सुकुल, पृ० १८६

भूति की अभिव्यक्ति रसयुक्त हुई तब वह काव्यक्षेत्र का अंग बन गया।"[1] देश देशान्तर व्यापी मानव कल्याण के निमित्त भक्ति भावना की अनुभूति का प्रतिफल होने के फलस्वरूप कृष्णभक्तिकालीन साहित्य के निर्माण में संगीत अपनी धार्मिक प्रवृत्ति तथा पूर्व बतलायी गई विश्वव्यापी महत्ता के कारण प्रमुख माध्यम, आधार तथा उपादान बना साथ ही निम्न-लिखित परिस्थितियाँ, वातावरण तथा विशेषतायें कृष्णभक्तिकालीन कवियों के साहित्य में संगीत की प्रेरणा के लिये विशेषरूप से सहायक तथा उद्दीपक हो गईं।

पूर्व परम्परा

यों तो भारतीय वाङ्मय में अंग उपांगों से परिपूर्ण संगीत की पुनीत एवं अनिवार्य प्रतिष्ठा आदि से ही मिलती है। भारत के पुरातन ग्रंथ तथा भारतीय सभ्यता, संस्कृति, धर्म और साहित्य के आधारस्तम्भ चारों वेदों में से एक सामवेद गान के विशिष्ट रूप में ही प्रकट हुआ था। किन्तु हिन्दी साहित्य भी अपने शैशव से ही संगीत की क्रोड में पला है। राग-रागिनियों में पदों को बद्ध कर गाने की प्रणाली जो कृष्णभक्तिकालीन कवियों के काव्य में प्रस्फुटित हुई है सिद्ध कवियों के समय से ही अपनाई गई है। विक्रम की नवीं शताब्दी के लगभग होने वाले सिद्ध तथा नाथपंथी कवियों ने भी अपने पदों को राग-रागिनियों में बाँध कर गाया है। जयदेव तथा विद्यापति ने भी अपने पदों में संगीत की राग-रागिनियों का आश्रय लिया। किन्तु हिन्दी साहित्य में संगीत की राग-रागिनियों की कड़ियाँ क्रमबद्ध नहीं मिलतीं। वीरगाथा-काल के कवियों तथा प्रेमकाव्य के रचयिताओं ने इस परिपाटी का अनुसरण नहीं किया। वीरगाथा-काल में राजपूताने के चारण भाटों में समस्त काव्य को गा-गा कर सुनाने की प्रथा प्रचलित थी। परंपरा से चारण और भाट लोग ऐसी गाथाओं को कण्ठस्थ रखते थे और राजदरबारों में गा-गा कर सुनाया करते थे। इस कारण वीर-काव्य गाये जाने के लिये ही लिखा गया किन्तु उसमें राग-रागिनियों का विधान नहीं है। सूफी-काव्य में संगीत का समावेश भाषा और शैली के कारण सहज रूप में हो हुआ और बाह्य साक्ष्यों[2] से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है कि सूफी कवि अपनी रचनाओं को गा-गा कर सुनाते थे किन्तु किस धुन में अथवा किन राग-रागिनियों में वे अपने काव्यांशों को बाँधते थे इसका कोई विवरण अथवा उल्लेख नहीं मिलता। सूफी कवियों ने भी विशिष्ट राग-रागिनियों के अन्तर्गत अपने काव्यांशों की अवतारणा नहीं की। सिद्धों और नाथपंथियों के साहित्य का विकसित रूप सन्तकाव्य में पल्लवित हुआ। सिद्ध कवियों का अनुकरण करने के कारण संगीत सन्त कवियों का भी पथ प्रदर्शक बना। सन्त-काव्य में रागों की व्यवस्था है। इसी के समसामयिक राम काव्य में एक तो श्रेष्ठ कवि ही दो चार हुए हैं उनमें भी तुलसी ही राग-रागिनियों के दृष्टि-कोण से महत्वपूर्ण हैं। किन्तु हिन्दी साहित्य के आदिकाल से प्रचलित पदों को राग-रागिनियों में बद्ध करके गाने की प्रणाली का सफल विकास कृष्णभक्तिकालीन कवियों के काव्य में हुआ।

---

१ काव्यचर्चा, ललिताप्रसाद सुकुल, रहस्यान्वेषण में छाया की प्राप्ति, पृ० १८६

२ जायसी ग्रंथावली, रामचन्द्र शुक्ल, भूमिका पृ० १२

समय के प्रवाह में संगीत को जीवनदान मिला और कृष्णभक्ति-कालीन प्रायः सभी कवियों के काव्य मे पूर्णतया लय होकर राग-रागिनियों के रूप में संगीत बिखर ही तो पड़ा। कृष्णभक्ति कालीन अधिकांश कवियों का प्रायः समस्त काव्य विभिन्न राग-रागिनियों मे गाया गया है।

यद्यपि कृष्णभक्तिकालीन कवियो द्वारा प्रयुक्त राग-रागिनियो में पदों को बद्ध कर गाने की प्रणाली का प्रचलन सिद्ध नाथपंथी तथा संत कवियों में भी था किन्तु यहाँ यह न विस्मरण कर देना चाहिए कि उनके संगीत के आधार मे एकता न थी। उनके इष्ट, लक्ष्य, उपासना, भावना, अनुभूति तथा अभिव्यक्ति मे पर्याप्त अन्तर था। सिद्ध तथा नाथपंथियों ने निराकार की साधना की थी। अतः उनका लक्ष्य अनाहत नाद का सुनना था। उन्हें जिस अनाहत नाद की अन्तर मे अनुभूति हुई उसी की उन्होने संगीत के द्वारा अभिव्यक्ति की। अतः यह कहा जा सकता है कि सिद्धों का संगीत उच्छ्वसित हुआ था आतरिक अनाहत नाद की प्रेरणा से। संत कवि कबीर भी निर्गुण उपासक थे। किन्तु उन्होने अनाहत नाद की अभिव्यक्ति संगीत के माध्यम से उसे साकार रूप का रूपक प्रदान कर की। कृष्णभक्त कवि भगवान के साकार रूप के उपासक थे। अतः उनका क्षेत्र अनाहत नाद से संबंधित नहीं था। इन कवियों ने अपने दिव्य चक्षुओं से विविध क्रीड़ा तथा लीला करते हुए भगवान के जिस साकार रूप का अनुभव किया उसमे उन्हे जिस आहत नाद की अनुभूति हुई उसकी अभिव्यक्ति उन्होने संगीत के द्वारा की।

कवियों के आराध्य, विषय तथा दृष्टिकोण

कृष्णभक्तिकालीन गायक कवियों के काव्य में संगीत प्रेरणा के प्रधान उपादान हैं उनके आराध्य तथा उनकी रसवती लीलायें। इन गायक कवियों के इष्ट स्वयं सिद्ध मुरलीधर अर्थात् स्वरों के अधिष्ठाता है। अतः उनके जीवन की रग-रग तथा उनका प्रत्येक क्षण संगीतमय है। सिद्ध संगीतज्ञ होने के कारण उनके जीवन की विविध क्रीड़ाओं मे संगीत एक अनिवार्य तथा प्रमुख अंग है। उनकी प्रायः समस्त क्रियाओं से संगीत संबंधित है। उनकी प्रत्येक लय मे संगीत की ध्वनि झंकृत होती है। कृष्णभक्तिकालीन भक्तों ने भगवान की जिस लीला का अपने दिव्य चक्षुओं से आनंद प्राप्त किया उसी को उन्होंने पदों मे गाकर साकार रूप प्रदान किया है। अतः कृष्ण की उपासना करने के कारण संगीत का समावेश कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में स्वाभाविक रूप से स्वतः ही हो गया है।

कृष्ण-काव्य में कृष्ण की लीलाओं का गान पारलौकिक दृष्टिकोण से प्रमुख रहा है। भगवान कृष्ण के लोकरंजक और लोकरक्षक दोनों ही रूप कृष्ण-साहित्य में मिलते है। कृष्ण के इन दोनों रूपों के वर्णन के कारण उसमें सभी रसों का समावेश हो गया है जिसके फल-स्वरूप प्रायः प्रत्येक रस से संबंधित संगीत की राग-रागिनियों को कृष्ण-साहित्य में स्थान मिल सका है। सभी प्रकार की राग-रागिनियों के लिए स्थान होने के कारण भी संगीत कृष्ण-भक्त कवियों को विशेष रूप से आकर्षित कर सका।

कृष्णभक्तिकालीन कवियों की वृत्ति कृष्ण के लोकरंजन रूप का वर्णन करने में ही अधिक लीन हुई है। उनके वर्णन का विषय प्रायः कृष्ण जन्म की बधाई, रास, होली, बसन्त, वर्षा, मल्हार आदि है। प्रथमतः ये सभी लीलायें आदि से अन्त तक इतनी सरस और मानव-हृदय की विविध रागात्मिका वृत्तियों को उत्तेजित करने वाली हैं कि उनके गुण-गान के क्षणों में वैविध्यपूर्ण संगीत का सहसा प्रवहमान हो जाना पूर्णरूप से नैसर्गिक है। साथ ही इन सभी लीलाओं में संगीत का प्रमुख रूप से समावेश होता है। कृष्ण-जन्म के साथ ही गोपग्वालों द्वारा वाद्ययंत्रों की संगीत में नृत्य करते हुए मांगलिक गीतों का गायन गूंजने लगता है। आश्विन की पीयूषवर्षिणी पूर्णिमा के दिन चन्द्रमा की विहँसती ज्योत्स्ना में गोपी तथा कृष्ण के पैरों के घुंघरुओं की झंकार समस्त वातावरण में झंकृत हो जाती हैं। आषाढ़ की घनघटाओं के बरसते ही राधा-कृष्ण तथा गोपियाँ हिंडोला झूलते हुए मल्हार गाने लगते हैं। बसंत की सुषमा बिकीर्ण होते ही झाँझ, मँजीरे, डफ लेकर उन्मत्त होकर नाचते-गाते कृष्ण तथा ग्वाल बाल होली की धूम मचा देते हैं। इस प्रकार इन सभी लीलाओं तथा उत्सवों में गान, वादन तथा नृत्य का विशेष रूप से आयोजन होता है। मांगलिक तथा आनन्दप्रद गीतों के साथ बाँसुरी, पखावज, डफ, महुवरि आदि विविध वाद्ययंत्र बजते हैं। इन संगीतमय प्रसंगों का आधार लेने के कारण कृष्णभक्ति कालीन साहित्य में भी संगीत का समावेश प्रचुर मात्रा में हुआ है।

कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में प्रेम भाव का व्यापक चित्रण हुआ है। जहाँ तक वात्सल्य में सने मातृ हृदय के प्रेम और दुलार भरे भावों का प्रश्न है उसमें तो संगीत एक प्रधान तत्व है ही। प्रत्येक माँ के हृदय का ममत्व, अनुराग तथा दुलार संगीत की लोरियों में ही साकार रूप प्राप्त करता है किन्तु रसराज शृंगार प्रेम के रतिभाव के संयोग विप्रलंभ दोनों अंगों में संगीत प्रवाहित रहता है। मिलन के क्षणों में भावुक हृदय का तार-तार झन-झना उठता है, कोमल कल्पना राग के स्वरों में प्रवाहित होने लगती है। विरहिणी महादेवी जी तभी तो मिलन-सुख के मधुरिम गीतों को स्मरण कर कहती हैं—

जो तुम आ जाते एक बार
कितनी करुणा कितने संदेश
पथ में बिछ जाते बन पराग
गाता प्राणों का तार तार
अनुराग भरा उन्माद राग।[१]

वियोग में संगीत का स्वर और भी निखर उठता है। वेदनामय संगीत जीवन का मधुरतम संगीत होता है। अत्यन्त विषादपूर्ण भावों में ही मधुरतम संगीत की सत्ता स्वीकार करने वाले पाश्चात्य कवि शेली ने कहा है—

१ यामा, महादेवी, पृ० ६५

Our sweetest songs are those,
That tell of saddest thoughts.[1]

विरहीजन की सिहरन, टीस और उद्‌गार जब इतने प्रबल हो जाते हैं कि नन्हें से हृदय की सीमाओं में सीमित रह पाना उनके लिये असंभव हो जाता है तब वह संगीत का रूप ग्रहण कर गान या कविता बन कर बिखर पड़ते हैं –

वियोगी होगा पहिला कवि
आह से उपजा होगा गान
उमड़ कर आंखों से चुपचाप
वही होगी कविता अनजान।[२]

पुराकाल में आदि कवि की करुणा जब विगलित हो गई थी तब अनायास ही उनका संगीत निम्नलिखित छन्द के रूप मे मुखरित हो उठा था –

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥[३]

यशोधरा की वेदना चरम सीमा पर पहुँच कर रागमय होकर वह निकलती है और राष्ट्रीय कवि मैथिलीशरण गुप्त के शब्दों में वह कह उठती है –

रुदन का हँसना ही तो गान।
गा गा कर रोती है मेरी हृत्तन्त्री की तान।
मीड़ मसक है कसक हमारी और गमक है हूक।

चातक की हुत-हृदय-हूति जो, सो कोयल की कूक॥
राग है सब मूर्च्छित आह्वान
रुदन का हँसना ही तो गान॥[४]

कारुण्य और संगीत का चिरकाल से संबंध रहा है। इसी भावना को प्रकट करते हुए साकेत में गुप्त जी ने कहा है –

---

1. To a Skylark, Percy Bysshe Shelley, Golden Treasury, Palgrave, Page 245.
२. आधुनिक कवि (२), सुमित्रानंदन पंत, 'आंसू से', पृ० १५
३. रामायणम्, वाल्मीकि, निर्णयसागर मुद्रणयन्त्रालय से प्रकाशित, बालकाण्ड, द्वितीय सर्ग, पृ० ११, श्लोक १४
४. यशोधरा, मैथिलीशरण गुप्त, पृ० ६८

मेरा रोदन मचल रहा है, कहता है कुछ गाऊँ।
उधर गान कहता है, रोना आवे तो मैं आऊँ॥[1]

प्रथमत कृष्ण, गोपियो तथा राधा के अनुराग के कारण कृष्ण-चरित्र में सयोग तथा वियोग दोना पक्षो का मधुर सम्मिलन हुआ है साथ ही स्वय भक्त-गायक कवियो ने भक्ति की तन्मयता में अपने इष्ट के सयोग तथा वियोग दोनो रूपो को अनुभूति की अत कृष्णभक्ति कालीन साहित्य में शृगार रस के सयोग और विप्रलभ दोनो अगो का व्यापक समावेश हुआ है। शृगार तथा उसकी क्रोड में करुण रस भी पल्लवित हुआ है। शृगार तथा करुणा दोनो भावनाओ के सयोग के कारण कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में सगीत के लिए विशेष आग्रह है। शृगार के साथ करुणा का मेल अत्यन्त हृदय द्रावक और मर्मस्पर्शी हो जाता है। प्रेम और सौन्दर्य के अप्रतिम गायक कविवर प्रसाद जी ने भी लिखा है—

शृगार चमकता उनका मेरी करुणा मिलने से।[2]

पुष्टिमार्गीय सेवाविधि

यो तो कृष्णभक्तकालीन सभी सम्प्रदायो में कीर्तनभक्ति मान्य थी। सभी गायक भक्त कवि सुन्दर-सुन्दर पदो के कीर्तन से अपने आराध्य को रिझाने की चेष्टा किया करते थे। ईश्वर का कीर्तन करते-करते लीन होकर बेसुध बन नाचने वाले महाप्रभु चैतन्य ने कीर्तन-भक्ति का अत्यधिक प्रचार किया किन्तु पुष्टिमार्गीय सेवाविधि के विधान में एक नियमित क्रम तथा व्यवस्थित रूप में निर्धारित अष्टप्रहर की नित्य कीर्तन प्रणाली तथा उत्सव आदि नैमित्तिक आचार साहित्य तथा सगीत के अपूर्व समन्वय तथा उनके सयोग में विशेष रूप से सहायक हुए।

पुष्टिमार्ग का अर्थ है कि जीव की आत्मा का पोषण परमतत्व के द्वारा होता है। अत जीव का निरतर पास रह कर उस परमतत्व के आचरणो तथा क्रियाओ के गुणगान में सलग्न रहना अनिवार्य है। इसी भावना के कारण पुष्टिमार्गीय भक्ति में अष्टप्रहर की नित्य सेवाविधि तथा वर्षोत्सव सेवाविधि का विधान स्वीकृत हुआ जिसके अन्तर्गत प्रतिदिन प्रात काल से सायकाल पर्यंत आठ बार आठ सेवाओ और वसन्तोत्सव, हिंडोल तथा रामलीला आदि नैमित्तिक आचारो तथा लोक त्यौहार और वैदिक पर्वो के उत्सव, षड्ऋतुओ के उत्सव तथा श्रीकृष्ण की नित्य और अवतार लीलाओ के उत्सव का आयोजन किया गया। अष्टप्रहर की सेवाओ का क्रमविधान निम्नलिखित प्रकार से था—[3]

---

१ साकेत, नवमसर्ग, पृ० २३६
२ आँसू, जयशकर प्रसाद।
३ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, डा० दीनदयालु गुप्त, भाग २, पृ० ५६८–६९

श्री वल्लभ-सम्प्रदायी आठ समय की सेवा–

सेवा	समय
१. मंगला	प्रात: ५ वजे से ७ वजे तक
२. श्रृंगार	प्रात: ७ वजे से ८ वजे तक
३. ग्वाल	प्रात: ९ वजे से १० वजे तक
४. राजभोग	प्रात: १० वजे से मध्याह्न १२ वजे तक
५. उत्थापन	दिन के ३।। वजे से ४।। वजे तक
६. भोग	लगभग सायं ५ वजे से
७. सन्ध्यार्ति	सायं लगभग ६।। वजे से
८. शयन समय	रात्रि के ७ वजे से ८ वजे तक।

श्रीनाथ जी के स्वरूप-पूजन में श्रृंगार, भोग तथा राग द्वारा की गई सेवाविधि के अन्तर्गत संगीत तथा संकीर्तन को प्रमुख स्थान प्राप्त था। प्रत्येक समय तथा उत्सव की झाँकी में कीर्तन की व्यवस्था थी। अष्टप्रहर की नित्यसेवा तथा वर्षोत्सव सेवाओं मे विविध राग-रागिनियों में वद्ध विशिष्ठ वाद्ययंत्रों की संगत में उस समय से संवंधित भावानुकूल पदो के गायन की सम्यक् आयोजना की जाती थी। मंगला की सेवा में अनुराग, खंडिताभाव जगाने तथा दधिमंथन के; श्रृंगार में वालरूप की सुन्दरता, वेपभूपा, वालक्रीड़ा के; ग्वाल में सख्यभाव तथा कृष्ण के खेल चौगान, चकडोरी, गोचारण, गोदोहन, माखनचोरी, पालना, घैया, अरोगन के; राजभोग में छाक के; उत्थापन में गोटेरन तथा वन्यलीला के; भोग में कृष्णरूप, गोपी दशा, मुरली, रूपमाधुरी, गाय, गोप आदि के; संध्यार्ति में गोग्वाल सहित, वन से आगमन, गोदोहन, घैया, वात्सल्य भाव से यशोदा का वुलाना आदि के और शयन समय अनुराग, गोपी भाव से निकुंज लीला तथा संयोग श्रृंगार के पदों का तथा वसंत हिंडोल, रासलीला आदि उत्सवों में इन क्रीड़ाओं से संवंधित पदों का गायन कुशल संगीतज्ञों, कीर्तनकारों तथा गायनाचार्यो द्वारा किया जाता था। अतः पुष्टिमार्गीय सेवाविधि में संगीत को इतनी प्रधानता देने के फलस्वरूप भक्ति के कीर्तन-साधन के रूप में वल्लभसम्प्रदायी भक्तों के द्वारा सुन्दर-सुन्दर पदों का गायन किया गया और ये ही पद अपने दिव्य गुणों के कारण 'काव्य' की संज्ञा से विभूपित हुए।

कृष्ण भक्ति कालीन कवियों का उद्देश्य अपने आराध्य देव की लीला का गान करना था। भक्ति की तन्मयता में ये कवि मौज में आकर कृष्ण की लीलाओं के पद गाया करते थे। जैसा कि पूर्व सिद्ध किया जा चुका है कि वार्ता साहित्य से भी यही ज्ञात होता है कि अष्टछाप के कवियों के जीवन का चरम ध्येय श्रीनाथ जी के समक्ष समय-समय पर कीर्तन तथा अपने पदों का गायन करना ही था और श्रीनाथ जी की पूजा तथा अर्चना के लिए ही वे अपने पदो का निर्माण करते थे। अतः यदि यह कहा जाय कि पुष्टिमार्गीय सेवाविधान में मान्य, प्रचलित तथा निर्द्धारित कीर्तन-प्रणाली अष्टछाप-कवियों की संगीत प्रेरणा का न

केवल एक प्रधान उपादान ही बनी वरन् उसी के परिणामस्वरूप प्राय समस्त अष्टछाप साहित्य की सृष्टि हुई तो अत्युक्ति न होगी।

कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में सगीत का स्वरूप

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में सगीत का अपूर्व सामजस्य है। कृष्णभक्तिकालीन कवियो के साहित्य-निर्माण में सगीत साधना प्रमुख रूप से सहायक हुई है। स्वर-साधना अपनाने के कारण कृष्णभक्तिकालीन साहित्य के अन्तर्गत सगीत-सौन्दर्य निम्नलिखित तीन रूपो में प्रस्फुटित हुआ है—

१ सगीत तथा उससे सबधित सामग्री का उल्लेख।
२ सगीत की विभिन्न राग-रागिनियो का प्रयोग।
३ कृष्णभक्तिकालीन कवियो की भाषा तथा शैली में सगीत का समावेश।

उपर्युक्त इन्ही तीन दृष्टिकोणो से आगे के पृष्ठो में 'कृष्णभक्तिकालीन साहित्य' में सगीत की समीक्षा की जायगी।

चतुर्थ अध्याय

कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में संगीत संबंधी उल्लेख

जिस प्रकार मनुष्य के मस्तिष्क मे उसके पूर्वसंचित विचारों, प्रचलित सांस्कृतिक प्रणालियों एवं भावनाओं का समष्टि रूप विद्यमान रहता है उसी प्रकार साहित्य में मनुष्य जाति के समस्त अनुभव, क्रियाओं, सांस्कृतिक मान्यताओं तथा विचारों का भंडार सुरक्षित रहता है। किसी देश या समाज की चित्तवृत्ति तथा संस्कृति का प्रतिविंब उसका साहित्य ही कहा जा सकता है। समाज की नीति-अनीति की मान्यताओं, रीतिरिवाज, खानपान, वेश-भूषा, आमोद-प्रमोद, सांस्कृतिक अंगों तथा उत्सवों आदि साधनों की ज्यों की त्यो स्वीकृति साहित्य में प्रतिविंवित दीखती है, क्योंकि साहित्य रचयिता समाज के ही व्यक्ति होते हैं। साहित्य समस्त जनता का अथवा समाज की संस्कृति तथा विचारादि का एक व्यवस्थित रूप ही तो है अतः देश के इतिहास में जिस प्रकार की प्रणालियां प्रचलित होती हैं, जिस प्रकार की संस्कृति तथा सभ्यता मान्य होती है उनका साहित्य में अंकित होना स्वाभाविक ही है। सामाजिक संस्कृति का एक महत्वपूर्ण अंग होने के कारण संगीत के गायन-वादन तथा नृत्य इन तीनों अंगों संवंधी सामग्री का भी साहित्य में निरंतर उल्लेख तथा विवरण मिलता है। साहित्य के अन्तर्गत संगीत संवंधी ये उल्लेख अथवा विवरण दो प्रकार से प्राप्त होते हैं –

(१) संगीत संवंधी ग्रन्थों को रच कर उनका विस्तृत विश्लेपण।

(२) संगीत के भेद-प्रभेदो, अंग-उपागों, राग-रागिनियों, वाद्ययंत्रों, नृत्य, संगीत की महत्ता आदि का साहित्य के कथानक सम्बन्धी विविध प्रसंगों के अन्तर्गत यदा-कदा उल्लेख मात्र।

संगीत संवंधी ग्रन्थों की रचना तथा उनका विस्तृत विश्लेषण

हिन्दी साहित्य मे प्रथम दृष्टिकोण से कृष्णभक्तिकालीन कवियों में हरिराम व्यास

का महत्व अतुलनीय है। व्यास जी कृत 'रागमाला' भारतीय सगीत शास्त्र पर रचित अप्रकाशित ग्रथ है। इसकी रचना दोहा-छन्दो में की गई है। 'रागमाला' मे सरस्वती मतानुसार छै राग तथा प्रत्येक राग की पाँच-पाच भार्याओ का वर्णन किया गया है।[1]

व्यास जी के समय तक सस्कृत साहित्य में सगीत पर अनेक ग्रन्थ प्राप्त होते हैं। ब्रजभाषा के व्यापक प्रचार के उस युग में उस समय के सगीत-ज्ञान तथा प्रचलित राग रागिनियो के अध्ययन के लिये हमें सस्कृत तथा फारसी ग्रन्थो का ही आश्रय ग्रहण करना पड़ता है। हिन्दी में व्यास जी कृत 'रागमाला' प्रथम उपलब्ध[2] प्रामाणिक रचना है जिससे, सगीत की राग-रागिनियो पर व्यापक प्रकाश पडता है। इस ग्रन्थ द्वारा हमारे हिन्दी साहित्य की बहुमुखी प्रवृत्ति लक्षित होती है और उस युग में भी हिन्दी साहित्य के व्यापक और विस्तृत दृष्टिकोण का परिचय मिलता है।

जिस प्रकार हिन्दी के रीति काल मे बिहारी के पश्चात् शृगार-सतसई लिखने की एक परपरा सी चल पडती है उसी प्रकार व्यास जी के पश्चात् आगे चल कर हिन्दी साहित्य में सगीत तथा रागमाला सबधी ग्रन्थो के लिखने की एक परिपाटी सी चल पडती है। व्यास जी के समय के बाद से हिन्दी साहित्य में सगीत सबधी कुछ ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं।[3] इस दृष्टिकोण से हिन्दी साहित्य में रागमाला की महत्ता और भी अधिक बढ़ जाती है।

---

१ भक्त कवि व्यास जी, वासुदेव गोस्वामी, पृ० १४३ तथा १४६

२ सगीतशास्त्र पर तानसेन (१५८८-१६४६) कृत दो रचनायें (१) रागमाला तथा (२) सगीतसार कही जाती हैं। रागमाला ग्रथ अभी तक प्राप्त नहीं है। सगीतसार डा० सरयू प्रसाद अग्रवाल लिखित 'अकबरी दरबार के हिन्दी कवि' नामक ग्रथ के परिशिष्ट भाग में प्रकाशित हुआ है। किन्तु इसकी प्रामाणिकता के सबध में सगीताचार्यों तथा विद्वानों में मतभेद है।

३ भक्तिकवि व्यास जी, वासुदेव गोस्वामी, पृ० १४३-४६

१- हिन्दी सग्रहालय प्रयाग तथा प्रयाग-सग्रहालय में सगीत सबधी हिन्दी में लिखित कुछ ग्रथ सुरक्षित हैं। लेखिका ने स्वय वहाँ जा कर निम्नलिखित ग्रन्थों का अवलोकन किया है।

हिन्दी सग्रहालय, हिन्दी-साहित्य सम्मेलन, प्रयाग में सुरक्षित —

(अ) राग रत्नाकर, रचयिता राधाकृष्ण, लिपिकर्ता माधवप्रसाद दुबे, रचनाकाल १८५३, लिपिकाल १६२६, लिपि-नागरी, भाषा-ब्रजभाषा, विषय रागो का वर्णन।

(ब) सगीत दर्पण, भर्त्त बिहारीलाल, रचनाकाल (म० भवानी सिंह का समय), विषय-सगीत

संगीत संबंधी साहित्य में प्राप्त उल्लेख

संगीत और साहित्य के अध्येताओं से यह छिपा नहीं है कि इन दोनों की परंपरायें जितनी प्राचीन हैं, इनसे सम्बद्ध विविध तत्वों के उल्लेख भी कम प्राचीन नहीं है। यदि भारतीय संगीत का आदि स्रोत सामवेद माना जाता है तो परवर्ती साहित्य के क्रमिक अध्ययन के बाद यह भी देखने को मिलता है कि प्राचीनतम रचनाओ के निरन्तर उल्लेख के साथ ही साथ समय-समय पर होने वाली नवीन स्थापनाओं के उल्लेख भी विविध प्रसंगो मे साहित्यिक ग्रंथों में बिछे पड़े है।

सामवेद मे उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित तीन स्वरो का वर्णन है। ऋग्वेद मे गर्गर, गोध, पिंग आदि वाद्ययंत्रों का उल्लेख है। रामायण मे राग की सात जातियों का विवरण मिलता है। वाद्ययंत्रों के अन्तर्गत भेरी, दुनदुभी, मृदंग, पटाहा, घट, पनव, डिमडिमा, मुड्डुका, अडम्बरा तथा वीणा का विशेष रूप से उल्लेख मिलता है। महाभारत में सप्तस्वर तथा गांधार का उल्लेख किया गया है। अश्वघोष ने तूर्य, सोने के पत्ते से मढ़ी वीणा, वेणु, मृदंग, परिवादिनी (बड़ी वीणा), पणव (छोटा ढोल) आदि वाद्ययंत्रो का वर्णन किया है। कालिदास ने मेघदूत मे नृत्य का वर्णन करते हुए लिखा है —

पादन्यासैः क्वणितरशनास्तत्र लीलावधूतैः —

(मेघदूत १-३६)

प्रयाग संग्रहालय में सुरक्षित—

(अ) प्रति स० १०७/२१७, ग्रंथ का नाम 'संगीत प्रबंध सार भाषा' हरिवल्लभ। 'संगीत प्रबंध सार भाषा' भारतीय संगीत शास्त्र पर संगीत दर्पण (संगीत दर्पण १६२५ के लगभग लिखा गया है— उत्तर भारतीय संगीत का संक्षिप्त इतिहास, भातखंडे, पृ० ३२) के अनुसार लिखा गया हिन्दी में ग्रंथ है।

(ब) प्रति नं० २०६/२१— ग्रंथ का नाम 'रागमाला'
(स) प्रति नं० २३२/२१ — ग्रंथ का नाम 'रागमाला'
} जीर्ण अवस्था में होने के कारण दोनों ग्रन्थों के रचयिता तथा रचनाकाल के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं होता।

डा० रामकुमार वर्मा ने हिन्दी साहित्य में संगीत संबंधी निम्नलिखित चार पुस्तकों का उल्लेख किया है।

(अ) सभाभूषण, गंगाराम, संवत् १७४४
(ब) रागरत्नाकर, राधाकृष्ण, संवत् १७६६
(स) रागमाला, रामसखे, संवत् १८०४
(द) रागमाला, यशोनंद, संवत् १८१५, हि० सा० आ० इतिहास, पृ० २०, (विषय प्रवेश)

अर्थात् सध्या समय नृत्य करती हुई वेश्याओं की करधनी के घुंघरू बड़े मीठे शब्द से बज रहे होंगे। कालिदास के विरही यक्ष की कान्ता घुंघुरूदार कड़ेवाले हाथों से साँझ के समय ताली बजा-बजा कर मयूर को नचाती थी —

ताल शिञ्जावलय सुभगैर्नर्तित कान्तया मे
यामध्यास्ते दिवसविगमे नीलकण्ठ सुहृद्व ॥

(मेघदूत २,१६)

कालिदास के ग्रंथ में तूर्य, वल्लकी, आतोद्य, मृदंग, वीणा, वद्याकृत्य, वेणु तथा दुन्दभी वाद्ययंत्रों के नाम भी प्राप्त होते हैं। जातकों में राजाओं के गन्धर्वों से घिरे रहने का उल्लेख है। उस समय के संगीताचार्य गुत्तिल, मुसिल और भरत का नाम जातकों में आया है। महाजनक जातक में चार नादों का उल्लेख है। जातकों में वीणा, पाणिस्सर, सम्मताल कम्मथूण, भेरी, मुतिंगा, मुरज, आलम्बर, आनक, शंख, पवनदेण्डिमा, स्वरमुख, गोधापीला-देन्दिका, कुटुम्बतिण्डिम वाद्ययंत्रों का वर्णन है। वीणा और वेणु की संगति में नृत्य करने का विवरण भी प्राप्त होता है।

हिन्दी साहित्य में भी संगीत का उल्लेख स्थल-स्थल पर किया गया है। वीर-गाथा-काव्य में वीर रस प्रधान है। "भक्ति रस का काव्य तो भारतवर्ष के प्रत्येक साहित्य में किसी न किसी कोटि का पाया जाता है। राधा-कृष्ण को लेकर हर एक प्रान्त ने मद या ऊँची कोटि का साहित्य पैदा किया है। लेकिन राजस्थान ने अपने रक्त से जो साहित्य निर्माण किया है उसकी जोड़ का साहित्य और कहीं नहीं मिलता।"[1] देश के वीरों का यशोगान के साथ स्वागत करने के निमित्त राजस्थान के चारण, कवि तथा भाटों की वाणी मुखरित हुई। युद्ध के लिए वीरों को प्रोत्साहित करने और वीर-गति पाने पर उनकी प्रशस्तियाँ निर्मित करने के लिए चारणों की वीरोल्लासिनी कवितायें गूंज उठीं अस्तु वीर-गाथा-काव्य के अन्तर्गत युद्ध का मार्मिक तथा सजीव वर्णन किया गया है। युद्धक्षेत्र में भी संगीत का विशिष्ट महत्व रहा है। युद्ध प्रारम्भ होने से पूर्व वाद्यों के तार झनझना उठते थे और उनकी झंकार वीर पुंगवों को उत्साहित और उत्तेजित करती थी। शंख और नगाड़ा की ध्वनि से समस्त वातावरण गुंजायमान हो जाता था। वाद्यों के साथ नृत्य सा करते हुये राजपूत वीर अपनी वीरता का प्रदर्शन करते थे। वाद्यों की ध्वनि युद्ध में और तीव्रता लाती थी। संगीत के इस सहयोग के कारण साहित्य में भी युद्ध प्रसंगों से संबंधित स्थलों पर अनेकों वाद्ययंत्रों का उल्लेख मिलता है। पृथ्वीराज-रासो में कवि चन्द बरदायी ने पग सेना के रणवाद्यों के वर्णन में निशान, उपंग, मृदंग, विपतार, बाँसुरी, शहनाई, नफेरी, नवरंग, भेरी, शृंग, घन, घटा, शंख, आदि वाद्यों का परिचय दिया है। नरपतिनाल्ह कृत बीसलदेव-रासो में ढोल, बाँसुरी, नगाड़े का उल्लेख है। पृथ्वीराज कृत 'वेलिक्रिसन रुक्मिणी री' में मृदंग, वीणा, डफ, जलगूँजा, बाँसुरी,

---

१ राजस्थान का पिंगल साहित्य, पं० मोतीलाल मेनारिया, पृ० ८

नसतरंग आदि वाद्ययंत्रों का विवरण है। पृथ्वीराज रासो में ध्रुपद, आलाप, तान, ग्राम, ताल, आरोह, अवरोह, उरप, तिरप, आदि शब्दों तथा नृत्य के बोलों का प्रयोग भी किया गया है। वीरगाथा-काव्य में वीर रस के साथ शृंगार रस भी सहायक के रूप में प्रयुक्त हुआ है। शृंगार तथा प्रेम के पुट के कारण रासो में नृत्य का भी सजीव चित्रण किया गया है।

सूफी कवि जायसी ने भैरव, मालकोश, हिंडोल, मेघ मल्हार, श्री और दीपक इन छः रागों तथा कल्याण, कान्हरा, बिहाग, केदारा, प्रभाती, बंगाली, आसावरी, गुनकली, मालीगौरा, धनाश्री, सूहा, बिलावल, मारू, रामकली, नट, गौरी, खमाच, सुघराई, सामंत, सारंग, गूजरी, सारंग, बिभास, पूर्वी, सिन्धी, देस, बैराटी, टोड़ी, गोंड और निरारी इन ३० रागिनियों का वर्णन किया है। वसंत-खंड के अन्तर्गत वसन्त ऋतु मे गाए जाने वाले पंचम राग का भी उल्लेख मिलता है। वाद्ययंत्रों में पखावज, रबाब, वीणा, बेनु, कमाइच (सारंगी बजाने की कमान), अमृत कुंडली, मुहचंग, उपंग, तुरही, बाँसुरी, हुडुक, डफ, झाँझ, मजीरा, ढोल, दुंदुभी, भेरी, किंगरी, शृंगी, मृदंग और यंत्र का प्रमुख रूप से उल्लेख किया गया है।

सूफी कवि आलम ने षडज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद—संगीत के सातों स्वरों, झपताल, एकताल, ध्रुवपद, धुन, देसी आदि शब्दों का वर्णन किया है। कवि ने ६ राग तथा ३० रागिनियों का वर्गीकरण भी निम्नलिखित प्रकार से प्रस्तुत किया है—

राग—	रागिनियाँ—				
भैरव	(१) भैरवी,	(२) बिलावली,	(३) बंगाली,	(४) आसावरी,	(५) बेरारी
मालकोस	(१) गौड़ी,	(२) काटी,	(३) देवगंधारी,	(४) गंधारी,	(५) धनाश्री
हिंडोल	(१) तेलंगी,	(२) देवगिराई	(३) बासंती,	(४) सिंदूरी,	(५) सुघराई
दीपक	(१) कछाली,	(२) पटमंजरी,	(३) टोड़ी,	(४) कामोद,	(५) गूजरी
श्री	(१) बैराटी,	(२) करनाटी,	(३) गौरी,	(४) आसावरी,[1]	(५) सिंधवी
मेघ	(१) सोर,	(२) गौड़मल्हार,	(३) आसा,	(४) गुनकली,	(५) सूहो।[2]

६ राग और ३० रागिनियो के अतिरिक्त कवि ने प्रत्येक राग के ८ पुत्र तथा इस प्रकार ४८ पुत्रों का वर्णन भी किया है। वाद्ययंत्रों में वीणा तथा मृदंग का विशेष रूप से उल्लेख है। नृत्य का सुन्दर वर्णन भी किया गया है।

रामायण में रामविवाह, रामविलास, वसन्तविहार, राज्याभिषेक आदि आनन्दमय स्थलों पर मांगलिक गीतों के साथ वाद्ययंत्रों का भी उल्लेख है। जिस प्रकार तुलसीदास भगवान राम के प्रत्येक मंगल कार्य पर देवताओं के द्वारा पुष्प वर्षा करवाते है उसी प्रकार

१. आलम ने आसावरी रागिनी का दो बार उल्लेख किया है। आसावरी रागिनी का भैरवराग तथा श्रीराग दोनों की भार्याओं के अन्तर्गत उल्लेख हुआ है।

२. प्रेम-गाथा-काव्य-संग्रह, गणेश प्रसाद द्विवेदी, पृ० १९३-९४

वे प्रत्येक मांगलिक पर्व पर झाँझ, मृदंग, ताल, शंख, शहनाई, डफ, निशान, दुन्दुभी, वीणा, वेणु आदि वाद्ययंत्रों को अवश्य बजवाते हैं।

कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में संगीत का उल्लेख प्रचुर मात्रा में मिलता है। कृष्ण-भक्तिकालीन प्रायः सभी कवियों ने संगीत तथा उसके भेद-प्रभेदों, अंग-उपांगों आदि का यत्र-तत्र पर्याप्त वर्णन किया है। यद्यपि संगीत संबंधी ग्रंथ तो इन कवियों में से केवल व्यास जी ने ही लिखा किन्तु उत्कृष्ट संगीत गायक होने के नाते इन सभी कवियों के भक्ति के आवेश में गाये पदों में संगीत से संबंधित सामग्री पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होती है।

संगीत के भेद-प्रभेदों, अंग-उपांगों तथा पारिभाषिक शब्दों का उल्लेख

कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में नाद, ग्राम, २२ श्रुति, २१ मूर्च्छना, ४९ कूटतान, सप्तस्वर, सातों स्वरों के नाम–षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद– सप्तक सरगम, तान, ओडव षाडव, आरोही, अवरोही आदि शब्दों का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। इससे संबंधित कृष्णभक्तिकालीन कवियों के पदों की कुछ पंक्तियाँ नीचे उद्धृत की जाती हैं –

मुरलिया बाजति है बहुबान
तीन ग्राम, इकईस मूर्छना, कोटि उनचास तान।[1]

बंसी री बन कान्ह बजावत
सुरश्रुति तान बधान अमित अति सप्त अतीत अनागत आवत।[2]

नंद नंदन सुघराई बाँसुरी बजाई।
सरगम सुनी कैं साधि सप्त सुरनि गाई।

अतीत अनागत संगीत बिचतान मिलाई।
सुरतालऽरु नृत्य ध्याइ, पुनि मृदंग बजाई।

सकल कला गुन प्रवीन, नवल बाल भाई।
सूरज प्रभु अरस परस रीझि सब रिझाई॥[3]

कबहू गान करत अपनी रुचि करतल तार बजावत
कबहुँक नृत्य करत कौतूहल सप्तक भेद दिखावत।[4] (सूरदास)

खेलत गिरिधर रँगमगे रंग

---

१ सूरसागर, (भाग–१), पृ० ७३१, पद सं० १९७१
२ वही, पृ० ४८६, पद सं० १२६६
३ वही, पृ० ६५५, पद सं० १७६६
४ वही, पृ० ७३८, पद सं० १९९४

पिचकारी नीकें करि छिरकत गावत तान तरंग ।[1]

मदन गोपाल वेनु नीको बाजत मोहन नाद सुनत भई बावरी ।[2] (परमानंददास)

गावति गिरिधरन संग परम मुदित रास-रंग······

सरि-गम-पध-धनि-गम-पधनि, उघटित सप्त सुरनि ।[3]

हिंडोरें व झुलवन आई ·····

तान, मान, बंधान, भेद, गति, ताल, मृदंग बजावें ।[4] (कुंभनदास)

निकुंज में वेनु मधुर कल गावे ।

सप्त सुरन में रसिकराय पिय, रसिकिनि तोय बुलावै ॥······

औघर तान मान संपूरन संगीत सुर उपजावै ।[5] (कृष्णदास)

मधूरे सुर गावति उपजावे आधी आछी तानन मनुहारी ।[6]

सप्त सुरन साज मिल सुलप बजाइ री ।[7] (नंददास)

सरस मुरली धुनि सों मिले सप्त सुर

रास रंग भीने गावे और तान बंधान ।[8]

ऐसेहिं मोहू क्यों न सिखावेहु······

सारंग राग सरस नंदनंदन, सजि सप्तक सुर गावहु ।······

श्रुति संगीत करी परिमिति तो ताहू में अतित बढ़ावहु ।[9] (चतुर्भुजदास)

महिमा धनि तुव मति श्रेष्टतुव परम निपुन नृत्त तेरो बन्यो स्यामा वृन्दावन रीझें बीसों बिसा । सप्त सुर तीन ग्राम इक्कीस मूर्छना बाइस सित मति राग मध्य रंग रंग राख्यो स र ग–

---

१. अष्टछाप परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० १९९, पद सं० ७०
२. वही, पृ० २०१, पद सं० ८५
३. कुंभनदास, कांकरौली, पृ० २२, पद सं० ३५
४. वही, पृ० ५०, पद सं० ११९
५. अष्टछाप परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २३३, पद सं० ३८
६. नंददास, उमाशंकर शुक्ल, पृ० ३३६, पद सं० १६१
७. वही, पृ० ३७४, पद सं० ३९
८. अष्टछाप परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २८८, पद सं० ५६
९. वही, पृ० २८९, पद सं० ६३

म प ध नि सा स स न स न न न न ध ध ध ध प प प प म म म म ग ग ग ग री री सा सा ।[१]

गोप वृन्द संग निर्त्तत रंग
स रि ग म प ध नी अलाप करत उपजत तान तरंग ।[२]
ए री ह्या वृन्दावन रंग
सकल कला प्रवीन सा रि ग म प ध नी अलाप करत हैं उपजत तान तरंग ।[३]
नंदलाल संग नाचत नवल किसोरी
षड्ज, ऋषभ, गंधार सप्त सुरनि मधिम तार लेत ग्र ग्र त त त त होरी ।[४]
झूलत सुरंग हिंडोरे राधा मोहन •
राग मलार अलापनि सप्त सुरनि तीन ग्राम जोरैं ।[५] (गोविंदस्वामी)
लाल संग रास-रंग लेत मान रसिक रमन •••
स रि ग म प ध नि, ग म प ध नि धुनि सुनि
ब्रजराज तरुनि गावत री, अति गति यति भेद सहित
ता न न ना न न न न न न न न अति गति असलीने ।[६]
श्री राग में कान्ह मुरली बजावैं ।
सप्त सुर भेद अवघर तान विकट सो गति मधुर धर मोद मनसिज उपजावैं ।[७]
(छीतस्वामी)

आज माई रिझाई सारंग नैनी
अतिरस मीठी तानंनि काननि काननि में अमृत सो बरसत ।[८]
आज मोहन रची रास रस मडली •••

---

१ गोविंदस्वामी, कांकरौली, पृ० १६८, पद सं० ४२३
२ वही, पृ० १५३, पद सं० ३६६
३ वही, पृ० १३८, पद सं० ३२०
४ वही, पृ० २६, पद सं० ६३
५ वही, पृ० १०३, पद सं० २१०
६ अष्टछाप परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २६७, पद सं० १५
७ हस्तलिखित पद-संग्रह, छीतस्वामी, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० २८
८ मोहनी वाणी श्री गदाधर भट्ट जी की, प्रकाशक कृष्णदास, पृ० ३१

गान रस तान के बान वेध्यौ विश्व जानि अभिमान मुनिध्यान रतिदल मली ।[१]
(गदाधर भट्ट)

नंद नंदन सुघर राय मोहन वंसी वजाइ सारीगमपधनी सप्त सुरन मिलि गावे ।
अति अनाघाति संगीत सरस सुर नीके अवघर तान मिलावे
सुराध्याय तालाध्याय न्रित्याध्याय निपुन लघु गुरुतजि पुलकभेद त्रिदंग वजावे ।

सूरदास मदनमोहन सकल कलागुन प्रवीन आपुन रिझ रिझावे ।[२]
(सूरदास मदनमोहन)

लागि कट्टुर उरप सप्त सुर सौं सुलप लेति सुन्दरि सुघर राधिका नामिनी ।[३]
(हितहरिवंश)

अपनें वृंदावन रास रच्यौ नाँचत प्यारी पिय संग ।
सव्द उघटत स्याम नटवर मनौं कल मुखचंग ॥
विविध वरन संगीत-अभिनय-निपुन-नखसिग अंग ।
सा रे ग म प ध नी सप्तम सुर गान तार तरंग ॥[४]
नाँचति नागरि सरस सुवंग······
सप्त सुर गान रागिनि-राग-सागर मान-नागर
तान पद-वंधान धुनि सुनि विगत गर्व अनंग ॥[५] (व्यास)

तीनहूं सुर के तान वंधान धुर धुरपद अपार ।[६] (हरिदास)

राग-रागिनियों का उल्लेख

कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में 'राग रागिनी' शब्दों का उल्लेख किया गया है। उदाहरणस्वरूप कतिपय पंक्तियाँ उद्‌धृत की जाती हैं—

'राग रागिनी' मूरतिवंत दुलह दुलहिनि सरस वसंत ।[७]

---

१. श्री गदाधरभट्टजी महाराज की वानी, वालकृष्णदास जी की हस्तलिखित प्रति, पृ० २३, पद सं० १
२. अकवरी दरवार के हिन्दी कवि, सरयूप्रसाद अग्रवाल, पृ० ४४६, पद सं० ६
३. चौरासी पद हितहरिवंश, प्रति सं० ३८/२१५, प्रयाग संग्रहालय, पद सं० ६८
४. भक्त कवि व्यास जी, वासुदेव गोस्वामी, पृ० ३६७, पद सं० ६४४
५. वही, पृ० ३६२, पद सं० ७२४
६. पद संग्रह, प्रति सं० ३७१/२६६, का० ना० प्र० सभा, पृ० श्री स्वा० १६, पद सं० ३
७. सूरसागर, (भाग १), पृ० ६७२, पद सं० १७६८

'राग रागिनी' प्रकट दिखायो गायो जो जिहि रूप ।[1]
नाना 'राग रागिनी' गावत धरे अमृत मृदु बैननि में ।[2] (सूरदास)
कमल नयन प्यारे अवधर तान जानत
अलग सों लग, अरु 'राग सो रागिनी' बहुत अनागत आनन ।[3] (कुम्भनदास)
सुंदर नंदनंदन जो हों पाऊँ
'राग रागिनी' उरप सुरप गति सुर सब मधुरे गाऊँ ।[4] (कृष्णदास)
'राग रागिनी' गावत हरखत बरषत सुख को ढेरी ।[5]
'राग रागिनी' की रानी ततथेई की कल बानी ।[6]
अनेक भात 'राग रागिनी' अनुराग भरे उपजावें ।[7] (नंददास)
नवल किसोर औ नवल किसोरी 'राग रागिनी' गावें ।[8]
नेंकु सुनावे हो मोहन मुरली तान ।
अपुने कर ले धरत लालन 'राग रागिनी' गान ।[9] (गोविंदस्वामी)
मुदित अनुराग सब 'राग रागिनी' तान मान गत गर्व रभादि सुरबाल ।[10]
(गदाधर भट्ट)

'राग रागिनी' जमी विपिन बरषत अमी
अधर बिंब निरमी मुरली अभिरामिनी ।[11]
'राग रागिनी' तान मान सगीत मत थकित राकेश नभ सरद की जामिनी ।[12]
(हितहरिवंश)

---

१ सूरसागर, पृ० ६५३, पद सं० १७६२
२ वही, पृ० ७३४, पद सं० १९८३
३ कुम्भनदास, विद्याविभाग कांकरोली, पृ० १६, पद सं० २८
४ अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २३३ पद सं० ३४
५ वही, पृ० ३१८, पद सं० ६
६ वही, पृ० ३७० पद सं० २५
७ वही, पृ० ३७४, पद सं० ६४
८ गोविंदस्वामी, कांकरोली, पृ० ५२, पद सं० १०६
९ वही, पृ० १६७ पद सं० ४१६
१० श्री गदाधर भट्ट जी महाराज की बानी, बालकृष्णदास जी की प्रति, पत्र २३-२४, पद सं० ३
११ चौरासी पद हितहरिवंश, प्रति सं० ३८।२१५, प्रयाग संग्रहालय, पद सं० ६८
१२ वही, पद सं० ७१

'राग रागिनी' तान मान महिं लालन लगतें आवत ।[1]
अद्‌भुत 'राग रागिनी' घन वरषत आनंद सिंधु वढ़ावति ।[2]
'राग रागिनी' गान, सप्तसुर पट ताल, सूलक लगिनि मान रंग रासे ।[3]
(व्यास)

हाथ किन्नरी मधि सच पाइ सुलप 'राग रागिनि' सों मिलि गावत ।[4]

इन उद्धरणों से ज्ञात होता है कि कृष्णभक्तिकालीन कवियों के समय में 'राग-रागिनी-वर्गीकरण' की पद्धति प्रचलित थी और इनके द्वारा भी यही प्रणाली मान्य थी ।

सूरदास के पदों में राग-रागिनियों की संख्या की ओर भी संकेत किया गया है। सूरदास ने एक स्थल पर लिखा है –

छहों राग छत्तीसों रागिनि, इक इक नीकें गावें री ।[5]

इससे ज्ञात होता है कि सूरदास के द्वारा ६ राग तथा प्रत्येक की ६-६ रागिनियों वाला वर्गीकरण मान्य था । कौन से ६ राग थे तथा प्रत्येक की रागिनियों के क्या नाम थे इसका उल्लेख सूरदास ने नहीं किया । सूरसारावली में श्याम-श्यामा की क्रीड़ा का वर्णन करते हुए सूरदास कहते हैं –

ललिता ललित वजाय रिझावत मधुरवीन कर लोने ।
जान प्रभात राग पंचम पट मालकोस रस भीने ॥
सुर हिंडोल मेघ मालव पुनि सारंग सुर नट जान ।
सुर सांवत भुपाली ईमन करत कान्हरो गान ॥
ऊच अडनि के सुर सुनियत निपट नायकी लीन ।
करत विहार मधुर केदारो सकल सुरन सुखदीन ॥
सोरठ गोर मलार सोहावन भैरव ललित वजायो ।
मधुर विभास सुनत वेलावल संपति अति सुख पायो ॥
देवगिरि देसाक देव पुनि गौरी श्री सुखवास ।
जैतश्री अरु पूर्वी टोडी आसावरी सुखरास ॥
रामकली गुनकली केतकी सुर सुघराई गाये ।
जैजैवंती जगतमोहनी सुर सों वीन वजाये ॥

---

१. भक्त कवि व्यास जी, वासुदेव गोस्वामी, पृ० २४०, पद सं० १९१
२. वही, पृ० ३३४, पद सं० ५३८
३. वही, पृ० ३४०, पद सं० ५५६
४. पद संग्रह, प्रति सं० ३७१।२६६, का० ना० प्र० सभा, पृ० १६, पद सं० ?
५. सूरसागर, (भाग पहला), पृ० ६९८, पद सं० १८५६

सूआ सरस मिलत प्रीतम सुख सिंधुवार रस मान्यौ ।
जान प्रभात प्रभाती गायौ भोर भयौ दोउ जान्यौ ॥[1]

इस उद्धरण के अन्तर्गत निम्नलिखित रागिनियो के नाम आए है –

(१) ललित (२) पचम, (३) खट, (४) मालकोस, (५) हिंडोल, (६) मेघ, (७) मालव, (८) सारग, (९) नट, (१०) सावत, (११) भूपाली, (१२) ईमन, (१३) कान्हरो, (१४) अडाना, (१५) नायकी, (१६) केदारो, (१७) सोरठ, (१८) गौडमल्हार, (१९) भैरव, (२०) बिभास, (२१) बिलावल, (२२) देवगिरि, (२३) देशाख, (२४) गौरी, (२५) श्री, (२६) जैतश्री, (२७) पूर्वी, (२८) गोडी, (२९) आसावरी, (३०) रामकली, (३१) गुनकली, (३२) सुघराई, (३३) जैजैवती, (३४) सूहा, (३५) सिंधूरा, (३६) प्रभाती ।

अष्टछाप परिचय में श्री प्रभुदयाल मीतल इस उद्धरण तथा उसमे आई इन ३६ राग-रागिनियो की ओर इगित करते हुए कहते है –"सगीत का आधार सप्तस्वरो पर है ।" इन स्वरो से मूलत हिंडोल, दीपक, भैरव, मालकोस, श्री और मेघ इन छ रागो की उत्पत्ति हुई है । प्रत्येक राग की पाँच-पाँच स्त्रियाँ मानी गई है जिनको रागिनियाँ कहते है । ये रागिनियाँ तीस है ।"[2] आगे मीतल जी कहते है –"राग-रागिनियो की छत्तीस सख्या सर्व सम्मति से निश्चित है किन्तु इनके नामो के सबध में मतभेद है । सूरदास ने इन राग रागिनियो के नामो का इस प्रकार कथन किया है ।"[3]

मीतल जी के इस विवरण से यह प्रकट होता है कि सूरदास के द्वारा ६ राग तथा प्रत्येक की ५-५ भार्याओ इस प्रकार कुल मिलाकर ३६ राग-रागिनियो वाला वर्गीकरण मान्य था और इन ३६ राग-रागिनियो के नाम ऊपर लिखित क्रम से थे । किन्तु लेखिका का इससे मतभेद है । इसी अध्याय में पीछे पृष्ठ १२६ पर कहा गया है कि कृष्णभक्तिकालीन कवियो के द्वारा राग-रागिनियो के वर्गीकरण की पद्धति मान्य थी । 'कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में प्रयुक्त राग-रागिनियाँ' शीर्षक अध्याय में 'राग का विकास' नामक प्रकरण में दिखाया गया है कि कृष्णभक्तिकालीन कवियो के समय में ६ राग तथा उनकी रागिनियो वाली पद्धति मान्य हो गई थी । किन्तु प्रत्येक राग की रागिनिया की सख्या तथा उनके नाम के सबध में विभिन्न मत थे । कुछ लोगो की ६ राग तथा ३० रागिनियो का वर्गीकरण मान्य था । इसके विपरीत कुछ लोग ६ राग तथा ३६ रागिनियो वाली पद्धति को मानते थे । अत निश्चित रूप से यह कह देना कि सूरदास ने ६ राग तथा ३० रागिनियो वाली पद्धति को

---

१ सूरसारावली, सूरदास, वें० प्रे०, छ० स० १०१२ से १०१८ तक

२ अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० ३६२

३ वही, पृ० ३६३

ग्रहण कर ऊपर के उद्धरण मे ३६ राग-रागिनियों के नाम गिनाये है केवल भ्रम मात्र ही है। सूरदास के पदों में कहीं भी ६ राग तथा प्रत्येक की ५–५ रागिनियों वाले वर्गीकरण की ओर इंगित नहीं किया गया है वरन् इसके विपरीत जैसा पृष्ठ १२६ पर कहा जा चुका है सूरदास के पद में ६ राग तथा ३६ रागिनियों की ओर संकेत किया गया है। इससे स्पष्ट रूप से प्रकट होता है कि सूरदास ६ राग तथा प्रत्येक की ६–६ भार्याओं वाले सिद्धांत के समर्थक थे। सूरसारावली के उक्त प्रसंग में जो ३६ राग-रागिनियों के नाम आये है वे किसी सिद्धांत के अनुसार नही है क्योंकि उसमें प्रत्येक राग तथा उससे सम्वन्धित रागिनियो का अलग-अलग स्पष्ट उल्लेख नही किया गया है। सूरदास भावुक भक्त तथा एक महान संगीतज्ञ थे किन्तु उनका ध्येय अपनी संगीत विद्वत्ता का प्रदर्शन करना नहीं था। उनके आराध्य संगीत के कुशल कलाकार थे और कृष्ण की विनोद-क्रीड़ा में संगीत का प्रमुख स्थान रहा है इसीलिए सारावली में श्याम-श्यामा की संयोग-क्रीड़ा में प्रसंगवश कुछ राग-रागिनियो के नामों का उल्लेख मात्र हो गया है।

कृष्णभक्तिकालीन साहित्य मे यत्र-तत्र संगीत की विविध राग-रागिनियों के नामों का उल्लेख हुआ है। इनमें प्रमुख रूप से सारंग, गौरी, हिंडोल, सुघराई, नटनागर, मलार, आसावरी, ललित, भैरव, विभास, वसंत, केदारी, कल्याण, कान्हरो राग-रागिनियों का बार-बार नाम आता है।

इन राग-रागिनियों से सम्वन्धित कृष्णभक्तिकालीन कवियों के काव्य की पंक्तियाँ उदाहरणस्वरूप अगले पृष्ठ पर उद्धृत की जाती है –

जेंवत गावत है 'सारंग' की तान कान्ह सखिन के मध्य छाक लेत कर छीने ॥[1]
अधर धर मुरली स्याम बजावत।
'सारंग' 'गौड़ी' 'नटनारायन', 'गौरी' सुरहि सुनावत।[2]
केकी-पच्छ मुकुट सिर भ्राजत 'गौरी' राग मिलै सुर गावत।[3]
अधर अनूप मुरलि सुर पूरत 'गौरी राग' अलापि बजावत।[4]
मंद-मंद सुर पूरत मोहन 'राग मलार' बजावत।[5] (सूरदास)

आजु नीकौ बन्यौ 'राग आसावरी'।[6]
या हरि को संदेश न आयौ ·····

१. सूरसागर, (भाग पहला), पृ० ४२०, पद सं० १०८५
२. वही, पृ० ६९३, पद सं० १८३८
३. वही, पृ० ४३६, पद सं० ११२४
४. वही, पृ० ७३५, पद सं० १९८६
५. वही, पृ० ८७९, पद सं० २४२६
६. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २०१, पद सं० ८५

'राग मल्हार' सह्यो नहिं जाई, काहू पथि कहि गायौ ।[1] (परमानन्ददास)

नीको मोहि लागै श्री गिरिधर गावें
ततथई ततथेई, ततथेई 'भैरव राग' मिलि मुरली बजावें ।[2]
करहिं केल बन-विहार, निरखि जोट लजित नारि
गावत मिलि बदन चारु, 'ललित राग' री ।[3]
गावें तहा कृष्णदास गिरधर गोपाल पास,
राग धम्मार, 'राग मलार' मोद मन मांचें ।[4] (कृष्णदास)

या तें तू भावति मदन गोपालें ।
'सारग रागे' सरस अलापति, सुघर मिलत एकतालें ॥[5]
आई रितु चहू दिसि फूले द्रुम कानन,
कोकिला समूहनि गावति 'बसतहिं' ।[6]
गावत 'नटनाराइनराग' मुदित देत चैन ।
फाग चहू दिसा जुरि ग्वालबाल-वृद टोलना ॥[7]
सरस सरोवर माझ देखियतु फूले कुमुद कल्हार,
तान, मान, सुगान गावें जम्यो 'राग मल्हार' ।[8] (कुभनदास)

मुरली मधुर 'मलार' सुनावत उघरे अबुद फिरि घिरि आवत ।[9]
बन तें आवत गावत 'गौरी' ।[10] (नददास)

गरजत गगन दामिनी दमकत, गावत 'मलार' तान लेत प्यारी ।[11]
'सारग राग' सरस नँद नदन, सजि सप्तक सुर गावहु ।[12]
हिडोरना माई झूलन के दिन आए,
गरज-गरज गगन दामिनि दमकत, 'राग मलार' जमाए ।[13]

१ अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २०४, पद स० १००
२ वही, पृ० २३२, पद स० ३३
३ वही, पृ० २३८, पद स० ६४
४ वही, पृ० २३६, पद स० ६७
५ वही, पृ० ११३, पद स० ४४
६ वही, पृ० ११३, पद स० ४०
७ कुभनदास, विद्याविभाग कांकरौली, पृ० ३६, पद स० ७४
८ वही, पृ० ५१, पद स० १२०
९ नददास, उमाशकर शुक्ल, पृ० २८८, पद स० ५०
१० वही, पृ० ३३२, पद स० ८४
११ अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २८८, पद स० ५६
१२ वही, पृ० २८६, पद स० ६३
१३ वही, पृ० २९३, पद स० ८०

खेलत, नंद किसोर व्रज में हो-हो होरी
'गौरी राग' अलापत गावत, मधु मुरली कल घोरी ।[1] (चतुर्भुजदास)

मच्यौ 'राग बसंत' तिहि औसर गावत तान भली ।[2]
बीरी खात खवावत मुदित मन गावत,
'सारंग राग' तान ही सो मन ही मन फूलें ।[3]
गोविंद बलि सुघर दोउ गावत, 'केदारो राग' तान अति सरसे ।[4]
रसिक सिरोमनि 'राग कल्यान' गावे ।[5]
वन तें बने माई आवत व्रजनाथ ।
गावत 'गौरी राग' वल्लव बालक साथ ।[6]
गावत 'राग मलार' भामिनि, पहिरे झूमक सारी ।[7]
'राग कान्हरो' सप्त सुर राजत गावत गीत रसाल ।[8] (गोविंदस्वामी)

नंदनंदन गोधन संग आवत ।
सखा मंडली मध्य विराजत 'राग गौरी' सरस सुर गावत ।।[9]
'श्री राग' में कान्हा मुरली बजावें ।[10] (छीतस्वामी)

ऊँची ध्वनि सुन चकित होत मन सब मिलि गावत 'राग हिंडोल ।[11]
(सूरदास मदनमोहन)

युवतिनि मंडल मध्य श्यामघन 'सारंगराग' जमायो ।[12]
दोऊ मिलि चाचर गावत 'गौरी राग' अलापि ।[13]
नव मुरली जु 'मल्लार' नई गति श्रवण सुनत आये घन घोरी ।[14]

---

१. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २६४, पद सं० ८५
२. गोविंदस्वामी, विद्याविभाग कांकरौली, पृ० ५०, पद सं० १०३
३. वही, पृ० ७५, पद सं० १४१
४. वही, पृ० ९०, पद सं० १७६
५. वही, पृ० १६८, पद सं० ४२४
६. वही, पृ० १५६, पद सं० ३८०
७. वही, पृ० ९८, पद सं० १९८
८. वही, पृ० १०३, पद सं० २११
९. हस्तलिखित पद-संग्रह, छीतस्वामी, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० २५
१०. वही, पद सं० २८
११. अकबरी दरबार के हिन्दी-कवि, सरयू प्रसाद अग्रवाल, पृ० ४५०, पद सं० १२
१२. चौरासी पद हितहरिवंश, प्रति सं० ३८/२१५, प्रयाग संग्रहालय, पद सं० ३६
१३. वही, पद सं० ५७
१४. वही, पद सं० ५४

'गौरी' गान सु तान तान गहि रिझवत क्यों न गुपालहि ।[१]
जै श्री नटवत हरिवंश गान 'रागिनी कल्यान' तान सप्त सुर निकलइ ते पर मुरलिका बरषी ।[२] (हितहरिवंश)

नागरी 'नट नारायण' गायौ ।[३]
सारग नैनो चलो अलि सग, सुनि 'सारग' की तान[४]
कृष्ण भुजंगिनि बैनी नाचति, गावति गोरी 'आसावरी' ।[५]
सिद्ध रागिनी, 'राग सारग' सहित, सरस सुघग ।[६]
नाचति गावति 'राग बसतहि' सुनि फूली मोहन की छतियाँ ।[७]
तब 'राग मलारनि' बाजति हैं, तब मोर मडली गावति जु सुहाई ।[८] (व्यास)

प्यारी पियहि सिखावत बीना तान बधान 'कल्यान' ।[९]
सौंने ओजलिट छूटी पिय के अस भुजा पाछैं सखी सुघर 'विभासहि' गावति ।[१०] (बिट्ठलविपुल)

सब सखी मिलि 'सुघराई' गावती बीन बजावत सब सुख मिलि सगीत पगे ।[११]
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुजबिहारी के गावत 'राग मलार' जम्यो किसोर किसोरिनि ।[१२] (हरिदास स्वामी)

विहरत बन बन बूदनि मैं गावत 'राग मलार' मिले मन ।[१३]
श्री विहारिन दामि गाई गूढ ओढ़नी उठाई
रीझि रहे अग भीजि मिल 'मलार' गाई ।[१४] (विहारिनदास)

---

१ चौरासी पद हितहरिवंश, प्रति स० ६४/२१६, पद स० ८
२ वही, (फुटकर पद), पद स० १३
३ भक्त कवि व्यासजी, वासुदेव गोस्वामी, पृ० २६४, पद स० ३६७
४ वही, पृ० ३२६, पद स० ५२१
५ वही, पृ० ३३६, पद स० ६२६
६ वही, पृ० ३६७, पद स० ६४४
७ वही, पृ० ३७४, पद स० ६६४
८ वही, पृ० ३७६, पद स० ६८२
९ पद-सग्रह, प्रति स० १६२०/३१३०, हिन्दी सग्रहालय, पद स० २६
१० वही, पद स० २
११ वही, पृ० २७, पद स० २
१२ वही, पृ० २८, पद स० २
१३. पद-सग्रह, प्रति स० ३७१/२६६, ना० ना० प्र सभा, पत्र १३१, पद स० ३
१४ वही, पत्र १३१, पद स० २

परसराम प्रभु अलल भक्त क्यों मोर 'मलार' सुणावै ।[1]
हो सुनि व्रजराज 'राग सारंग' सुर गावत गुण व्रज नारी ।[2] (परशुराम)

गायन के प्रकारों का उल्लेख

कृष्णभक्तकालीन साहित्य में गायन के प्रकारों में से ध्रुपद तथा धमार का उल्लेख मिलता है। उदाहरणस्वरूप निम्नलिखित पंक्तियाँ दृष्टव्य होंगी –

स्यामा स्याम रिझावत भारी······ (हितहरिवंश)
दोहा–छंद–'ध्रुपद' जस हरि कौ, हरिहो गाइ सुनावति ।[3]
छंद 'ध्रुवनि' के भेद अपार। नाचति कुंवरि मिलै झपताल ।[4]

इक गावत है 'धमारि' ,इक एकनि देत गारि,
दई सबनि लाज डारि बाल पुरुष तोरी ।[5] (सूरदास)

गावैं तहाँ 'कृष्णदास' गिरिवर गोपाल पास
राग 'धम्मार' राग मलार मोद मन माँचै ।[6] (कृष्णदास)

डोल झुलावत सब व्रज सुंदरि, झूलत मदन गोपाल ।
गावत फाग 'धमार' हरषि भर, हलधर और सब ग्वाल ।[7] (नन्ददास)

कोकिल धुनि वाजित्र बजावहि गावहि सरस 'धमार' ।[8] (गोविंदस्वामी)
गावत सुंदर हरि रस 'धमारि' ।[9] (हितहरिवंश)

गावत नाँचत हो–हो होरी, हो 'धमारि' जमी ।[10]
सनमुख आवत 'होरी' गावत सखन सहित बलबीर ।[11] (व्यास)
परस्पर राग जम्यौ समेत किन्नरी मृदंग सो तार ।
तीनहूं सुर के तान बंधान धुर 'ध्रुपद' अपार ।[12] (हरिदास)

---

१. रामसागर, परशुराम, ६८०/४६२, का० ना० प्र० सभा, रा० साग० १०३, पद सं० ७
२. वही, रा० साग० ७६, पद सं० ४५
३. सूरसागर, (भाग १), पृ० ६३४, पद सं० १६६७
४. वही, पृ० ६७२, पद सं० १६६८
५. वही, (भाग २), पृ० १२२७, पद सं० ३५०६
६. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २३६, पद सं० ६३
७. वही, पृ० ३२६, पद सं० ४२
८. गोविंद स्वामी, कांकरोली, पृ० ७६, पद सं० १४३
९. चौरासी पद, प्रति सं० ३८।२१५, प्रयाग संग्रहालय, पद सं० २७
१०. भक्त कवि व्यास जी, वासुदेव गोस्वामी, पृ० ३३०, पद सं० ६५४
११. वही, पृ० ३३१, पद सं० ६५८
१२. पदसंग्रह, प्रति सं० ३७१।२६६, का ना० प्र० सभा, श्री स्वा० पृ० १६, पद सं० १६१

होरी पिया बिण म्हाणे णा भावा घर आगणा णा सुहाव ।
वा बिरया कव होदी म्हारी हस पिय कण्ठ लगावा
मीरा 'होडी' गावा।[1] (मीरा)

वाद्ययत्रो का उल्लेख

कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में कृष्ण-जन्म तथा उससे सबधित उत्सवो, श्याम, श्यामा, गोप और गोपियो की विनोद-क्रीडा, वसन्त, फाग, होली, हिंडोल आदि विविध उत्सवो तथा रास-लीला, जलविहार-क्रीडा, वर्षा आदि प्रसगो में बार-बार निम्नलिखित वाद्ययत्रो का उल्लेख किया गया है –

रुज, मुरज, डफनाल, बाँसुरी, झालर, बीन, रबाब, किन्नरी, अमृतकुडली, यत्र, स्वरमडल, जलतरग, पखावज, उपग, सहनाई, सारगी, कसताल, कठताल, मुहचग, लजरी, पटह, निसान, मृदग, डफ, झाँझ, तूर, वीणा, घन, दास, शृगी, भेरि, नगाडा, हुडुक, डमरू, कुडली, दुदुभी, घटा, तानतरग, ढोल, वेणु, ताल, अघौटी, डप, पिनाक, मदनभेरि, थारी, महुवरि, मजीरा, सहदाना, दमामा, आवज, करताल, मुरली, तान्तत्र, बेना, पचसब्द, तार, और बीना चीन।

वाद्ययत्रो से सबधित कृष्णभक्तिकालीन कवियो के काव्य की कुछ पक्तियाँ उदाहरणस्वरूप नीचे उद्धृत की जा रही हैं–

पचनि पच शब्द करि साजे सजि वादित्र अपार।
रुज मुरज डफताल बाँसुरी झालर की झकार॥
बाजत बीन रबाब किन्नरी अमृत कुडली यत्र।
सुर सुरमण्डल जलतरग मिल करत मोहनी मत्र॥
बिविध पखावज आवज सचित बिच बिच मधुर उपग।
सुर सहनाई सरस सारगी उपजत तान तरग॥
कसताल कठताल बजावत शृग मधुर मुहचग।
मधुर खजरी पटह प्रणव मिल सुख पावत रतभग॥
निपटन भेरी थरणन धुनि सुनि घोर न रहे ब्रजबाल।
मधुर नाद मुरली को सुन के भेंटे श्याम तमाल॥[2] (सूरदास)
बने बन आवत मदन गोपाल
बेनु, मुरज, उपचग, चग मुख, चलत विविध सुर-ताल
बाजे अनेक बेनु रव सो मिलि, रनित किंकिनी-जाल।[3]

---

१ मीरा-स्मृति ग्रथ, मीरा-पदावली, पृ० २०, पद स० ७०
२ सूरसारावली, (श्री वेंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित), पृ० ३७, छद स० १००२ से १०७६ तक
३ अष्टछाप परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० १८६, पद स० ३३

लालन संग खेलन फाग चलीं ·· ··
वाजत तालमृदंग वांसुरी, गावत गीत सुहाए।[1]
खेलत गिरिधर रँगमगे रँग ·····
वाजत ताल मृदंग झाँझ डफ, मुरली मुरज उपंग
अपनी अपनी फेंटन भरि-भरि, लिए गुलाल सुरंग।[2] (परमानंद)
जुवतिनि संग खेलत फागु हरी
वाजत डफ, मृदंग, वांसुरी, किन्नरि सुर कोमल री।[3]
गिरिधर लाल रस भरे खेलत विमल वसंत राधिका संग
वाजत ताल, मृदंग, अघौटी वीना, मुरली तान तरंग।[4]
जुवति-जूथ-संग फाग खेलत नंदलाल
वाजत आवज, उपंग, वांसुरी, सुर, बेनु, चंग
संख, वंस, झांझि, डफ, मृदंग, ढोलनां॥[5]
खेलत फाग गोवर्द्धन धारी 'हो होरी' बोलत व्रज बालक संगे।
वाजत ताल, मृदंग, अवौटी, वाजत डफ, सुर, बीन उपंगे।[6]
माई हो हो होरी खिलाइए।
झांझ, बीन, पखावज, किन्नरी, डफ, मृदंग वजाइए।[7]
झूलें भाई स्याम-स्याम हिंडोरें
वाजत ताल, मृदंग, झांझ रुचि और बांसुरी थोरें।[8]
नवल हिंडोरना हो। साज्यो नवल किसोर
वेनु, वीना, ताल, उघटित, मुरज, मृदंग रबाब
महुवरी, किन्नरि, झांझ वाजत संख डफ पिनाक।[9] (कुंभनदास)
वाजत ताल मृदंग मुरज ढफ कहि न परत कछु बात।[10]
ताल मृदंग मुरज ढफ बाजै ढोल दनक नव घन ज्यों गाजै।[11]

---

१. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० १६६, पद सं० ७६
२. वही, पृ० १६६, पद सं० ७७
३. कुंभनदास, विद्याविभाग कांकरौली, पृ० ३४, पद सं० ६९
४. वही, पृ० ३५, पद सं० ७२
५. वही, पृ० ३६, पद सं० ७४
६. वही, पृ० ३७, पद सं० ७६
७. वही, पृ० ३७, पद सं० ७३
८. वही, पृ० ४७, पद सं० १११
९. वही, पृ० ५१, पद सं० १२०
१०. नंददास, उमाशंकर शुक्ल, पृ० ३३६, पद सं० १९३
११. वही, पृ० ३३७, पद सं० १९४

बाजत ताल मृदग भाझ डफ सहनाई अरु ढोल ।[1]
ताल मृदग मिलि बजावैं बीन बेनु रसाला ।[2]
घट आवज सुर बीन अनाघात गति गाजहीं ।[3]
ताल मृदग उपग रुज मुरज डफ बाजहीं ।[4]
बाजत दुदभी भेरी पटह नीशान सोहाय ।[5]
बाजत ढोल दमामा चहूँ दिशि ताल मृदग उपगा ।[6]
सुर मडल डफ बीना भीना बाजत रस के एना

बज्यो हे चटक कठताल तार ओर मृदग मुरज टकार
तिन सग रग रगीली मुरली बीच अमृत की धार ।[7] (नददास)
खेलत नदकिसोर ब्रज में हो हो होरी ।

दुदुभी, भाम्फ, मुरज, डफ, बीना, मृदग, उपगें तार
दुहूँ दिसि खेल मच्यौ जु पुरन्दर घोपराय दरबार ।[8] (चतुर्भुजदास)
विविध सुरनि गावत सकल सुन्दरी ताल कठताल बाजत सरस मृदगे।
बीन वेना अमृत कुडली किन्नरी झाझ बहु भाति आवत उपगे ।[9]
ताल मृदग रबाब झाझ डफ मृदग मुरली धुनि थोरी ।[10]
डिम डिम दुदुभी झालरी रुज मुरज डफताल ।[11]
ताल पखावज रबाब भाझ डफ बेना बेनु रसारी ।[12]
प्रफुलित सुरपति तूर बजाए बरखन लागे फूल ।[13] (गोविंदस्वामी)
आयो ऋतुराज साज पचमी बसत आज
बाजत आवज उपग बासुरी मृदग चग

---

१ नददास, उमाशकर शुक्ल, पृ० २०५, पद स० २०६
२ वही, पृ० ३३६, पद स० २२५
३ वही, पृ० ३३६, पद स० २३४
४ वही, पृ० ३३६, पद स० २३५
५ वही, पृ० ३६४, पद स० ६
६ वही, पृ० ३७४, पद स० ३७
७ वही, पृ० ३७४, पद स० ६५
८ अष्टछाप परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २६४, पद स० ८५
६ गोविंदस्वामी, विद्याविभाग-कांकरौली, पृ० ५२, पद स० १०८
१० वही, पृ० ५३, पद स० ११०
११ वही, पृ० ६०, पद स० १२१
१२ वही पृ० ६१, पद स० १२२
१३ वही, पृ० ८०, पद स० १५३

यह सब सुख 'छीत' निरखि इच्छा अनुकूली ।[1]
आरति करत जसोमति निरखि ललन मुख अतिहि आनंद भरि प्रेम भारी ।
बजत घंटा, ताल, बीन, झालरी, संख, मृदंग, मुरली विविध नाद सुखकारी ।[2]
(छीत स्वामी)

ढोल कटोल निसान मुरज डफ बाजहीं
मैंन के मेघ मनोरस वृष्टि सों गाजहीं ।
ताल पखावज आवझवा जंत्र सौं
गान मनोहर मोहन मैंन के ग्रहें ।[3]

बाजत बांसुरी चंग उपंग पखावज आवज ताल
गावत गारी दै दै करतारी मनोहर गीत रसाल ॥[4]
आलि नू बूका चंदन रोरी हरह गुलाल
बाजत मधुर महुवरि मुरली अरु ढफ ताल ॥[5]
पटह निसान भेरि सहनाई महागरज की घोर रे ।[6]
संगीत रस कुसल नृत्य आवेश वश लसति राधा रास मंडल विहारिनी
मृदंग बीना ताल सुर संच संचारु चा ता चातुरी सार अनुसारिनी ।[7]
(गदाधर भट्ट)

झूलत जुग कमनीय किसोर सखी चहुँ ओर झुलावत डोल······
भेरी झांझ दुन्दुभी पखावज औ डफ आवज बाजत ढोल
आए सकल सखा समूह गुर हो हो होरी बोलत बोल ।[8]
(सूरदास मदनमोहन)

मंजीर मुरज डफ मुरली मृदंग
बाजत उपंग वीणा वर मुख चंग ।[9]
ताल मृदग उपंग मुरज डफ मिलि रस सिंधु बढ़ायो
विविधि विशद वृषभान नंदिनी अंग सुधंग दिखायो ।[10]

---

१. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २६७, पद सं० १७
२. हस्तलिखित पद-संग्रह, छीतस्वामी, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० २१
३. श्री गदाधर भट्ट जी महाराज की बानी, बालकृष्णदास जी की प्रति, पत्र १५, पद सं० १
४. वही, पत्र २६, पद सं० २
५. वही, पत्र २६, पद सं० ३
६. वही, पत्र २२, पद सं० १
७. वही, पत्र २३, पद सं० २
८. अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, सरयू प्रसाद अग्रवाल, पृ० ४५०, पद सं० १२
९. चौरासी पद, हस्तलिखित प्रति, सं० ३८।२१५, प्रयाग-संग्रहालय, पद सं० २७
१०. वही, पद सं० ३६

मधुर मधुर मुरली कल बाजै
बाजत ताल मृदंग उपंग ।[१]
ताल बीणा मृदंग सरस नाचत सुघंग एकतें एक संगीत की स्वामिनी ।[२]
ताल रबाब मुरज डफ बाजत मधुरि मृदंग
सरस उकति गति सूचत बर बासुरी मुख चंग ।[३]
मंजीर मुरज डफ मुरली मृदंग
बाजत उपंग बीणा बर मुख चंग ।[४]
मृदुल मृदंग मुरज भेरी डफ दिव दुन्दभि रबकार ।[५] (हितहरिवंश)
सहज दुलहिनी श्री राधा सहज सांवरो दूलहु
सहज ब्याह वृन्दावन, निरखि-निरखि किन फूलहु ॥ ...
बाजे बाजत बनु धुनि सुनि मुनि मोहैं जू ।
ताल, पखावज, रुंज, झांझ, झप, झिरनौ-रव सोहैं जू ।[६]
चलहु भैया हो ! नंद महर घर, बाजति आजु बधाई ।
बाजत झांझ, मृदंग, चंग, डफ, बीना, बेनु सुहाई ।
बाजत ढोल, मृदंग, रुंज, आवज, उपंग सहनाई ।
राइगिरी गिरो अरु निसान-धुनि तिहूँ लोक में छाई ॥[७]
भैया आज रावल बजति बधाई ।
ढोल, भेरि, सहनाई धुनि सुनि, खबर महावन आई ।[८]
खेलति राधिका, गावति बसंत
बाजत ताल, मृदंग, झांझ, डफ, आवज, बीन, बीम सुकंत ॥[९]
ये चलि, ललन भरहिं मिलि चलि हो, चलि अलि बेगि गिरिधरन भरहिं मिलि ॥
महुवरि, चंग, उपंग, बासुरी, बीना, मुरज, मृदंग
ढोलक, ढोल, झांझ, डफ बाजत कह्यौ न परत सुख रंग ॥[१०]
फूली फिरनि राधिका प्यारी, पहिरें फूलन की डेंडिया

---

१ चौरासी पद, हस्तलिखित प्रति सं० ३८।२१५, प्रयाग संग्रहालय, पद सं० १८
२ वही, पद सं० ६८
३ वही, पद सं० ५७
४ वही, पद सं० २७
५ वही, प्रति सं० ८५।२१६, (फुटकर पदों में), पद सं० ७
६ भक्त-कवि व्यास जी, वासुदेव गोस्वामी, पृ० ३५३, पद सं० ५९७
७ वही, पृ० ३५४-५५, पद सं० ६०१ व ६०२
८ वही, पृ० ३५७, पद सं० ६१०
९ वही, पृ० ३६९, पद सं० ६४९
१० वही, पृ० ३७१, पद सं० ६५९

वजत मृदंग, उपंग, ताल, डफ, रवाव, झांझि, डफिया ।[१] (हरिराम व्यास)
वाजत ताल रवाव और वहु तरुनि तनया कूलहु ।[२]
डोल झूलत हैं विहारी विहार निरागुर मिरह्यौ
काहू के हाथ अधौटी, काहू के वीन काहू के मृदंग कोन् गहें तार ।[३]
परस्पर राग जम्यों समेत किन्नरी मृदंग सों तार ।[४]
हाथ किन्नरी मधि सच पाइ सुलप राग रागिनीं सो मिलि गावत ।[५] (हरिदास)
प्यारी पियहि सिखावत वीना तान वंधान कल्यान ।[६] (विट्ठलविपुल)
राजत रास रसिक रस रासे ······
वाजत ताल मृदंग अंग संग मंद मधुर मृदु हासै ।[७]
प्रात समैं नव कुंज द्वार ह्वै ललिता ललित वजाई वीना ।[८] (विहारिनदास)
जै जै सुर करताल वजावें गीत वाद सुचाल मिलावें ।[९]
गावत सहित मिलत गति प्यारी मोहनी मुख मुरली सु वाजें ।[१०] (श्रीभट्ट)
नाना धुनि वंसिका वजावत ।[११]
देखि सघण घण अरिवलि वरखति इंद निसांण वजावें ।[१२]
लीनी कर मुरली हरि हितकारी हित सों ओसर अधर निजुं धरण कूं ।[१३]
(परशुराम)
ताड़ पखावजा मिरंदग वाजां साधां आगे णाचां ।[१४]
होड़ी पिया विण लागां री खारी ।······
वाज्यां झांझ मिरदंग मुरड़ियां वाज्यां कर इकतारी ।[१५]

---

१. भक्त कवि व्यासजी, वासुदेव गोस्वामी, पृ० ३७४, पद सं० ६६४
२. पद संग्रह, प्रति सं० १६२०।३१७०, प्रयाग-संग्रहालय, पृ० १७, पद सं० १८
३. वही, पृ० २०, पद सं० ६
४. वही, प्रति सं० ३७१।२६६, का० ना० प्र० सं० पृ० श्री स्वा० १६, पद सं० ३
५. वही, पद सं० २
६. वही, १६२०।३१७०, प्रयाग-संग्रहालय, पद सं० २६
७. पद-संग्रह, प्रति सं० ३७१।२६६, का० ना० प्र० सभा पत्र १४८, पद सं० २२
८. वही, पत्र संख्या १२१, पद सं० १
९. युगलशत-श्रीभट्ट, प्रति सं० ७१२।३२, का० ना० प्र० सभा, पत्र २, पद सं० ६
१०. वही, पत्र ३, पद सं० १७
११. राम-सागर, परशुराम, प्रति सं० ६८०।४६२, रा० सा० ६८, पद सं० १४८
१२. वही, १०३, पद सं० ३१७
१३. वही, पद सं० २०
१४. मीरा-स्मृति-ग्रंथ, मीरा-पदावली, पृ० १४, पद सं० ४८
१५. वही, पृ० २६, पद सं० १०२

अधर मधुर जसो बजावा रीझ रिझावा ब्रजनारी जो ।[1]
मुरलिया बाजा जमणा तीर ।[2] (मीरा)

रजनी मुख आवत गायन संग मधुर बजावत बैना ।[3]
नाचत किसन नचावत गोपी कर करताल बजावन कू ।[4] (आसकरण)

तालो का उल्लेख –

कृष्णभक्तिकालीनसाहित्य में तालो का उल्लेख प्राय नगण्य सा ही है। कही-कही चर्चरी ताल, एकताल, ध्रुवताल, झपताल का उल्लेख हुआ है। इनसे सबधित पक्तियाँ नीचे उद्धृत की जाती हैं –

छद धुवनि के भेद अपार । नाचति कुवरि मिले 'झपताल' ।[5] (सूरदास)
गावति गिरिधरन सग परम मुदित रास-रग ।
उरप तिरप लेत तान नागर नागरी ।
वर्धन ताम्बल देत, 'ध्रुवतालहि' गतिहि लेत ।
गिडगिड तत थुग थुग अलग लाग री ।[6]
या ते तू भावति मदन गोपालै ।
सारग रागै सरस अलापति, सुघर मिलत 'इकतालै ।[7] (कुभनदास)

नीको मोहि लागे श्री गिरिधर गावैं ।
सुरति देत मधु मत्त मधुप कुल 'एकताल' सब [redacted] जिय भावैं ।[8] (कृष्णदास)

दूसरे कर चरन सो कठताल त्रिकटि झझ ।
'झपताल' में अवघर गति उपजावैं ।[9] (गोविंदस्वामी)

श्री राग में कान्ह मुरली बजावैं
बजत नूपुर धरत चरन अवनी चतुर 'ताल चर्चरी' सो मन लावैं ।[10]
(छीतस्वामी)

---

१ मीरा-स्मृति-ग्रथ, मीरा पदावली, पृ० २, पद स० ४
२ वही, पृ० २७, पद स० ६४
३ अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, सरयू प्रसाद अग्रवाल, पृ० ४५१, पद स० ७
४ वही, पृ० ४५२, पद स० ११
५ सूरसागर, (भाग १), पृ० ६७२, पद स० १७६८
६ कुभनदास, कांकरोली, पृ० २२, पद स० ३५
७ वही, पृ० २४, पद स० ४१
८ अष्टछाप परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २३२, पद स० ३३
९ गोविन्द स्वामी, कांकरोली, पृ० २६, पद स० ५८
१० हस्तलिखित पद-सग्रह, छीतस्वामी, डा० दीनदयालु गुप्त, पद स० २८

करत हरि नृत्य नवरंग राधा संग लेत नव गति भेद 'चर्चरी ताल' के ।[1]
(गदाधर भट्ट)

वृषभान नंदिनी मधुर कल गावैं
विकट अवघर तान 'चर्चरी ताल' सों नंदनंदन मनसि मोद उपजावैं ।[2]
(हितहरिवंश)

गावत मनि-मंजीर वजावत मिलवत गति 'झपताल' ।[3]
रसिक सुंदरी वनी रास-रंगे
'चरचरी' ताल मैं तिरप वांधति वनी, तरकि टूटी तनी, वर सुधंगे ।[4]
(व्यास)

नृत्य का उल्लेख तथा वर्णन –

"लय और ताल के साथ अंग संचालन करते हुए हृदयगत भावनाओं को शरीर की चेष्टाओं द्वारा प्रकट करना"[5] नृत्य कहा जाता है । वाद्यादि संयुक्त अंग-विक्षेप का नाम नृत्य है ।

नृत्य के प्रकाश –

नृत्य के दो भेद हैं –(१) ताडव और (२) लास्य । नृत्य उत्कट हो तो तांडव और मधुर तथा सुकुमार हो तो लास्य कहलाता है । ताण्डव पुरुषत्व का और लास्य नारीत्व का द्योतक है । ताण्डव नृत्य में वीर तथा रौद्र रस का प्रदर्शन किया जाता है । इसमें मृत्यु की भीषणता, संहार की भयंकरता, क्रोध की विकरालता, वीरत्व और भव्यता प्रदर्शित करने वाली मुद्रायें दिखाई जाती हैं । ताण्डव नृत्य में अंगों की मरोड़ अत्यधिक जोरदार तथा अंगचापल्य और अभिनय विशेष रूप से गंभीर व आवेशपूर्ण होता है ।

लास्य शृंगाररस प्रधान नृत्य है । इसमे शरीर के अवयवों के लावण्यमय संचालन–विशेष रूप से मस्तक के मोहक, मृदु, भाववाहक दोलन से प्रेम तथा शृंगारमय भावों की अभिव्यक्ति की जाती है । लास्य नृत्य मे अंगविक्षेप अत्यन्त कोमल, मधुर और मृदुल होता है ।[6]

---

१. श्री गदाधर भट्ट जी महाराज की वानी, वालकृष्ण दास जी की प्रति, पत्र २३-२४, पद सं० ३

२. चौरासी पद, प्रति सं० ३८।२१५, प्रयाग-संग्रहालय, पद सं० ८१

३. भक्तकवि व्यास जी, वासुदेव गोस्वामी, पृ० ३०७, पद सं० ४३८

४. वही, पृ० ३६०, पद सं० ६१९

५. नृत्यशाला, अंक १, पृ० १९

६. "ताण्डव–वीर रसे महोत्साहो पुरुषो यत्र नृत्यंति ।
रौद्रभावरसो पत्तिस्त ताण्डवमिति स्मृतं ॥ (संगीत-नृत्याकर)

कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में नृत्य का उल्लेख –

गायन और वादन का उल्लेख तो भक्तिकालीन सभी धाराओं के साहित्य के अन्तर्गत मिलता है किन्तु नृत्य का समावेश कृष्ण-काव्य की अपनी विशेषता है। भक्तिकालीन सूफी कवि आलम ने अवश्य 'माधवानल कामकंदला' ग्रंथ में नृत्य का सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया है। 'माधवानल कामकंदला' की सम्पूर्ण कथा संगीत पर आश्रित है और संगीत के माध्यम से ही वह आगे बढ़ती है। कथा के नायक और नायिका भी वहाँ के राजकुमार या राजकुमारी न होकर संगीत के कलाकार हैं। नायक माधव कुशल वीणावादक है और नायिका कामकंदला नृत्य विद्या में अद्वितीय। अस्तु 'माधवानल कामकंदला' में स्थल-स्थल पर ऐसे प्रसंग आते हैं जहाँ नृत्य-कला अपने लालित्यपूर्ण उच्च रूप में चित्रित की जाती है। आलम के अतिरिक्त भक्तिकालीन अन्य अन्य सूफी, संत तथा रामभक्त कवियों के काव्य में प्रायः नृत्य-वर्णन का अभाव सा ही है। इसके विपरीत भक्तिकालीन कृष्णभक्त कवियों ने अपने काव्य में गायन-वादन एवं नृत्य तीनों के सफल समन्वय द्वारा संगीत की परिभाषा सार्थक कर दी है। इन कृष्ण कवियों के काव्य के आराध्य नटनागर नंदकिशोर नृत्य के भी आचार्य हैं। अतः नटवर वेषधारी कन्हैया की नृत्य-लीलाएं इन कवियों के आकर्षण का प्रमुख केन्द्र बन गईं और उनकी नृत्य-मुद्राओं का सफल अंकन इन कवियों के काव्य में हुआ।

नृत्य के प्रकारों का उल्लेख –

कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में ताण्डव तथा लास्य दोनों प्रकार के नृत्यों का उल्लेख किया गया है। उदाहरणस्वरूप कृष्णभक्तिकालीन कवियों की निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य होंगी –

उरप तिरप "ताण्डव" करै, ता-थेई रचि उघटि तान,
सुघग चाल लेत हैं संगीत स्वामिनी ॥[1] (कुंभनदास)
गोविंद करत मोहन गान। *
राग गुर्जरि समुद्र "ताण्डव लास्य" कलानिधान।
व्रज वधू सब मुदित भावन लेत अवधर तान ॥[2] (कृष्णदास)

---

* लास्य–लास्यते सुकुमारिणा गमकध्वनिवर्धनि।
हृदयाद्धास्य प्रसन्नस्योमुखरागोमवेदिधा ॥ (संगीत-रत्नाकर)
यौवनस्त्री विलासिन्य कामभावविचक्षणा।
पदगहारवंदध्यात् कुर्यल्लास्यमदीरितम् ॥ (नृत्य-पारिजात)
नतनतनुयात्पात्र का ताहास्यादिदृष्टिज।
नानागतिलसद्भाव मुखरागादिसंयुत ॥ (अशोकमल्ल का नृत्याध्याय)
नृत्य-अङ्क, नृत्यसागर के कुछ पृष्ठ, डा० कृष्णचन्द्र निगम, पृष्ठ ७१–७३

१ कुंभनदास, कांकरोली, पृ० २६, पद स० ४५
२ हस्तलिखित पद संग्रह, कृष्णदास, डा० दीनदयालु गुप्त, पद स० ३०

नचत गोपाल फणिफणारंगे ।······

वहुरि फिरि झगरि चढ़ि सीस "ताण्डव" रच्यो परसि पदतलनि मनि रंगु सुहायो ।[1]

(गदाधर)

कुंजविहारी नाचत नीकें लाडिली नचावत नीकें ।

औघर ताल धरे श्री स्यामा मिलिवत तातयें गावत संग पीकें ।

'ताण्डव लास्य' और अंग को गनें जे जे रुचि उपजत जी कें ।।[2] (हरिदास स्वामी)

नृत्य का वर्णन–

नृत्य-वर्णन भक्तिकालीन कृष्ण कवियो के काव्य का अनिवार्य अंग वन गया है । कृष्ण की वाल्यावस्था और किशोर अवस्था दोनो ही समय के तथा तांडव और लास्य सभी प्रकार के नृत्य-चित्रण कृष्ण-काव्य के अन्तर्गत आये है ।

वाल नृत्य–

वाल-क्रीड़ा के प्रसंग मे वालक कृष्ण का नृत्य वर्णन अत्यधिक स्वाभाविक तथा हृदयग्राही है । कान्हा अभी छोटे हैं । नृत्य का विधिवत् ज्ञान उन्हे कहाँ ? किन्तु जीवन की उमंग स्वतः स्वाभाविक नृत्य के रूप में अवतरित होती है और कृष्ण अपनी इच्छानुसार टूटे-फूटे शब्दों में गा-गा कर नाच-नाच कर हर्षित हो रहे है –

हरि अपनें आंगन कछु गावत ।

तनक तनक चरननि सों नाचत, मनहीं मनहिं रिझावत ।[3]

वालक के इस भोले रूप को देख कर मातृ-हृदय विभोर हो जाता है । माता यशोदा तालीं वजा-वजा कर गाती है और कृष्ण को नचाती हैं । कृष्ण भी माँ के गाने तथा करतल-ध्वनि का अनुकरण करके गाते, ताली वजाते तथा अपने नन्हें-नन्हें पैरो से घुंघरू वजाते हुए नाचते है –

आंगन स्याम नचावहीं जसुमति नंदरानी ।

तारी दै-दै-गावहीं, मधुरी मृदु वानी ।।

पाइन नूपुर वाजई, कटि किंकिनि कूजै ।

नान्हीं एड़ियन अरुनता, फल विव न पूजै ।।

जसुमति गान सुनै स्रवन, तव आपुन गावै ।

तारी वजावत देखई, पुनि आपु वजावै ।।······

जसुमति सुतहिं नचावई, छवि देखति जिय तें ।

सूरदास प्रभु स्याम को मुख टरत न हिय तें ।।[4]

---

१. मोहिनी वाणी श्री गदाधर भट्ट जी की, प्रकाशक कृष्णदास, पृ० ३२

२. पद संग्रह, प्रति सं० १६२०/३१७०, प्रयाग–संग्रहालय, पृ० २०, पद सं० ८

३. सूरसागर, (भाग पहला), दशमस्कंध, पृ० ३१०, पद सं० ७६५

४. वही, पृ० ३०६, पद सं० ७५२

ताण्डव नृत्य –

नृत्य, गान आदि विविध क्रीड़ा करते हुए शिशु कृष्ण का शैशवकाल बीत जाता है और वे कुछ बड़े हो जाते हैं। सखाओं के साथ कृष्ण यमुना-तट पर खेल खेलने लगते हैं। खेल-खेल में गेंद यमुना में गिर जाती है और कृष्ण काली नाग का वध करने के लिए जल में कूद पड़ते हैं। शिशुकाल में किया गया कृष्ण का बाल नृत्य वय तथा परिस्थिति के साथ ही प्रचंड रूप धारण कर लेता है और कालिय नाग-नाथन के मिस रौद्र मुद्रा में कृष्ण का ताण्डव नृत्य होता है –

सबै ब्रज है जमुना कैं तीर।
कालीनाग के फन पर निरतत, सङ्कर्षन कौ बीर।
लाग मान थेइ-थेइ करि उघटत ताल मृदंग गभीर।
प्रेम मगन गावत गन्धर्ब गन ब्योम बिमाननि भीर।
उरग नारि आगैं भई ठाढ़ी, नैननि ढारति नीर।
हमकौं दान देइ पति छाँड़हु, सुंदर स्याम सरीर।
आए निकसि पहिरि मनि भूषन, पीत बसन कटि चीर।
सूर स्याम कौं भुज भरि भेंटत, अकम देत अहीर॥[1] (सूरदास)

नचत गोपाल फनिफणारंगे।
मनहु मनि नील के खम ऊपर सिखी नृत्य आरम्भ किय अति उमंगे॥
प्रथम तरतुंग चढ़ि भए यमुना लई सुभग पट पीत कटितट लपेटे।
एक पलतें निकसि और घनकौं चल्यौ स्याम घन मनहु चपलाहि भेंटे॥
बहुरि फिरि भगरि चढ़ि सीस ताण्डव रच्यौ परसि पदतलनि मनि रंगु सुहायौ।
चरण पटतार विषभार झरहत अतुते ललपनेक हू नीरनायो॥
कुसह हरि भारतें कंठ आये लटकि परसि करै कवि सकल उपमा विचारा।
मनहु नखचन्द्र की चन्द्रिका त्रासतें उरपि नीचो धसो तिमिर धारा।
गगन गुणगननि गुण गान गधर्व करै जै करै देव मुनि पहुप बरषै।
तरनिजा तीर भरभीर आभीर कुल धीर मन माझ धरि अधिक हरषै॥
विवश भूषण बसन सिथिल रसना क्रमम शरण आई अबहि नागनारी।
कान्ह करुणा करी चिह्न पद सिरधरे मेटि खगराज की त्रास भारी॥
पूजि हरि को चल्यो नाग रमणकदीप श्यामजु मुदित जलतीर आये।
कहि गदाधर जु आनन्द कुलाहल भयो सकल ब्रजजन निकिरि प्राणपाये॥[2]
(गदाधर)

---

१ सूरसागर, (पहला भाग), दशमस्कंध, पृ० ४५७, पद सं० ११६३
२ मोहिनी वाणी श्री श्री गदाधर भट्टजी की, प्रकाशक कृष्णदास, पृ० ३२–३३

कमल दड़ ड़ोचणां थ णाध्यां काड़ भुजंग ।
काड़िन्दी दह णांग णाध्यां काड़ फणफण निरत करंत ।
कूदां जड़ अन्तर णा डर्‌यां थे एक वाहु अगणंत ।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर व्रज वणतां रो कंत ॥' (मीरा)

शृंगार तथा प्रेम-भाव की अभिव्यंजना के अतिरिक्त नृत्य द्वारा वीर, रौद्र तथा अद्‌भुत रस की अभिव्यंजना भी होती है। रोमन प्रजा में वसन्तारम्भ के समय स्थल-स्थल पर युद्ध-नृत्य का उत्सव होता है। आज भी अफ्रीका और ब्रह्मा की अनेक जातियों भीलों, किरातो आदि में युद्ध-नृत्य अत्यधिक लोकप्रिय है। ढाली, काढी, रायवंसी और किरात नृत्य वंगाल में अत्यधिक प्रचलित है। व्याधि नृत्य आज भी विशेष प्रिय माना जाता है। भारतीय दार्शनिक साहित्य में प्रलय तक में ताण्डव नृत्य की कल्पना की गई है। शिव का ताण्डव नृत्य सत् की सृष्टि और असत् के संहार करते हुए विश्व के लय ताल संयुक्त विकास का प्रतीक है। ताण्डव नृत्य के समय डमरू का नाद संसार की उत्पति, हस्तमुद्रा संसार के रक्षण, अग्नि-संहार क्रिया और उठा हुआ पैर मोक्ष को प्रगट करता।[2] रौद्र रूप में किया हुआ नटराज शिव का यह ताण्डव नृत्य विश्व की सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोभाव, आविर्भाव और अनुग्रह इन पाँच क्रियाओं का द्योतक है।[3] कृष्णकालीन कवियों के द्वारा वीर परिस्थिति में चित्रित किया हुआ कृष्ण का काली-मर्दन नृत्य, आसुरी भावना की पराजय, दैवी भावना की विजय तथा परब्रह्म के अनिर्वचनीय आनंद का द्योतक माना जाय तो अत्युक्ति न होगी।

रास नृत्य –

नृत्य मानव-जीवन के आनंदमय उल्लासपूर्ण क्षणों में स्वयं ही उत्पन्न होने वाली स्वाभाविक भावाभिव्यक्ति है। जीवन की उमंग में विभोर मानव-हृदय जिस समय झूमने लगता है उस समय हर्षातिरेक की असह्य धारा में डूबता-उतराता वह नृत्य करने के लिए विवश हो जाता है। यही कारण है कि संयोग शृंगार के रस की सृष्टि के लिये नृत्य एक नैसर्गिक तथा स्वाभाविक प्रवृत्ति वन गई है है। फ्रायड हैवेल नृत्य को संयोग भावना का आविष्कार मानते है। जंगली जातियों में नृत्य के द्वारा अपनी प्रेयसी को आकर्षित करके वरण करने की प्रथा प्रचलित रही है। न केवल पुरुषों वरन् पशु-पक्षियों मे भी नृत्य की यह प्रवृत्ति समागम तथा संयोग के समय लक्षित होती है। उत्तर अमेरिका में ग्राउज़ नामक पक्षी संयोग के दिनों में प्रतिदिन प्रात.काल पंखों को चक्राकार वनाकर नाचता है। वसन्त ऋतु मे ह्वाइट् थ्रोट नामक पक्षी हवा में उड़कर विचित्र क्रियाओं के साथ पंख फड़फड़ाता हुआ गाता और फिर वैठ जाता है। मोर मे भी यह प्रवृत्ति स्पष्ट लक्षित होती है।

---

१. मीरा-स्मृति-ग्रंथ, मीरा-पदावली, पृ० ६, पद सं० ३२

2. "Creation arises from the drum, protection proceeds from the hand of hope, from fire proceeds destruction, the foot held aloft gives release."
The Dance of Shiva by Ananda Coomaraswamy.

३. नृत्य-अंक, नृत्यसागर के कुछ पृष्ठ, कृष्णचन्द्र निगम, पृ० ६६

नृत्य प्रेम की पराकाष्ठा है। नृत्य ही अनुराग की चरमसीमा है। प्रेम की अंतिम अभिव्यक्ति नृत्य ही तो है। यही कारण है कि यौवन के पदार्पण के साथ ही प्रणय की की उन्मत्त अवस्था में कृष्ण गोपियों को रिझाने वृंदावन की कुंजगलियों में नृत्य करते दीख पड़ते हैं —

> मोर मुकुट पीतांबर सोहै कुंडल की झकझोर।
> वृंदावन की कुंज गलिन में नाचत नंद किसोर॥[1]

यमुना के कछार कुंजों में राधा, कृष्ण तथा गोपियों का मधुर मिलन होता है। शरद की ज्योत्स्ना विकीर्ण हो जाती है। कुंजों में नवीन सौन्दर्य छा जाता है। प्रकृति गा उठती है तथा यमुना का कलकल निनाद करता हुआ जल वातावरण को और भी उद्दीप्त कर संगीत के अनुकूल बना देता है। कृष्ण तथा गोपियों की मिलन क्रीडा 'रास-लीला' का रूप धारण कर नृत्य में परिणत हो जाती है। यही रासलीला-नृत्य कृष्णभक्तिकालीन कवियों के जीवन का पाथेय बन जाता है। अतः रास लीला-नृत्य का वर्णन इन कवियों के काव्य का एक प्रमुख अंग बन गया है।

रास नृत्य का स्वरूप —

"रसो वै स" अर्थात् परमात्मा रस है। "रसस्याम् इति रस" अर्थात् रस (परमात्मा) से जो सम्बद्ध है वह रास कहलाता है तथा "रसाना समूह रास" अर्थात् रस समूह को रास कहते हैं।

रास-नृत्य हल्लीश-नृत्य का ही रूप है।[2] मंडलीकार रूप में अनेक नर्तकियां सहित नृत्य करने को रास-नृत्य कहते हैं।[3] रास नृत्य में चहुँ ओर गोपियाँ, मध्य में कृष्ण और उनके पास राधा रहती है। आध्यात्मिक दृष्टिकोण से कृष्ण ब्रह्म के तथा राधा और गोपियाँ जीव का प्रतीक हैं। परमात्मा जीव को अपनी ओर खींचता है। इसी भावना को व्यक्त करने के लिये रास-नृत्य में केन्द्र में स्थित कृष्ण के चहुँ ओर गोपियाँ नृत्य करती दिखाई जाती हैं। राधा सबसे अधिक आकर्षित होकर खिंच आई है अस्तु वह मध्य में कृष्ण के पास सुशोभित होती है।

---

१ मीरा-माधुरी, ब्रजरत्नदास, पृ० ३४, पद सं० १२६

२ हरिवंशपुराण, नीलकण्ठ टीका, पृ० १९८—९९

३ "श्रीधर स्वामी ने भागवत की टीका में 'रास' का परिचय इस प्रकार दिया है — 'बहुनर्तकीयुक्तो नृत्यविशेषो रास' अर्थात —'बहुत सी नर्तकियों सहित विशेष नृत्य का नाम रास है।'

श्री चैतन्य सम्प्रदायी श्री जीवगोस्वामी जी ने अपनी भागवत की टीका बृहत क्रम संदर्भ में रास की व्याख्या इस प्रकार की है—

शृंगार रस से परिपूर्ण तथा कोमल और मधुर प्रकृति का होने के कारण रास-नृत्य लास्य-नृत्य का ही एक प्रकार माना जाता है।

कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में रास-नृत्य का वर्णन

कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में रास-नृत्य के अन्तर्गत संयुक्त रूप से राधाकृष्ण तथा गोपियों के मंडलाकार नृत्य का वर्णन किया गया है। कृष्णभक्तिकालीन प्रायः सभी कवियों ने रास से सम्बद्ध पदों में तानाथेई, ततथेई, ततंगथेई, ततथे, थेइततथेइ, गिड़गिड़ तत, थुंगथुंग थे, तकिट, गिडित, धिधद्रण, द्रण, तत तत, ग्र, च, नागदाट, उरप तिरप, उपज, हस्तकभेद आदि नृत्य के बोल तथा नृत्य की परिचित पदावली का प्रयोग करके अपने नृत्य-ज्ञान का सुन्दर परिचय दिया है। उदाहरणस्वरूप इनके कतिपय पद दृष्टव्य होंगे —

आजु निसि रास रंग हरि कीन्हौ।
ब्रज वनिता विच स्याम मंडली, मिलि सवकौं सुख दीन्हौ।
सुर ललना सुर सहित विमोहीं, रच्यौ मधुर सुर गान।
नृत्य करत, उघटत नानाविधि, सुनि मुनि बिसरयौ ध्यान।
मुरली सुनत भए सव व्याकुल, नभ-धरनी-पाताल।
सूर स्याम को कौन किये वस, रचि रस-रास रसाल ॥[1] (सूरदास)

ब्रजवनिता मधि रसिक राधिका, बनी सरद की राति हो।
ततथेई ततथेई गिरिधर नागर, गौर-स्याम अंग कांति हो ॥
इक-इक गोपी, बिच-बिच माधौ, बने अनूपम भांति हो।
जै-जै सब्द उचारत नभ सुर, नर-मुनि कुसुम वरषत न अघात हो ॥
निरखि थक्यौ ससि आइ सीस पर, क्यों नहिं होत प्रभात हो।
'परमानंद' मिले यहि औसर, बनी है आज की बात हो ॥[2]
(परमानंददास)

'नटैर्गृहीतकंठेन अन्योन्यातकीश्रियाम्,
नर्तकीनां भवेत् रासो मंडलीभूय नर्तनः।
नट के साथ गले में बांह डालकर मण्डलाकार होकर नाचना 'रास' कहलाता है। श्री वल्लभाचार्य जी ने सुबोधिनी टीका में इस विषय पर लिखा है कि जिसमें बहुत सी नर्तकियां हों और नाच करें, उसमें रस की अभिव्यक्ति होती है, इसी रस-युक्त नाच का नाम रास है।"
अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, डा० दीनदयालु गुप्त, (भाग २), पृ० ४९८

१. सूरसागर, (भाग १), दशमस्कंध, पृ० ६५३, पद सं० १७६०
२. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २००, पद सं० ८२

गावत गिरिधरन-संग परम मुदित रास-रंग,
उरप तिरप लेत तान नागर नागरी ॥
सरि गम पध-धनि, गम पधनि उघटति सप्त सुरनि,
लेति लाग, डाट कल अति उजागरी ॥
चर्वन ताम्बूल देत, ध्रुवतालहि गतिहि लेत,
गिडि गिडि तत-थुग-थुग अलग लाग री ॥
सुरति-केलि रास-विलास बलि-बलि 'कुभनदास'
श्री राधा नदनन्दन वर सुहाग री ॥[1]
रास में गोपाल लाल नाचत, मिलि भामिनी ।
अंस-अंस भुजनिमेलि, मंडल-मधि करत केलि,
कनक बेलि मनु तमाल स्याम संग स्वामिनी ॥
उरप, तिरप, लाग, डाट ग्राम ताता थेई थेई थाट,
सुघर सरस राग तैसी ए सरद-जामिनी ॥
कुभनदास, प्रभु गिरिधर नटवर-वपु-भेष धरें,
निरखि-निरखि लज्जित कोटि काम कामिनी ॥[2] (कुभनदास)
निरतत गोपाल संग राधिका बनी ।
बाहु दड भुजन मेलि, मंडल मधि करत केलि,
सरस गान स्याम करें संग भामिनी ॥
मोर मुकुट कुंडल छवि, काछिनी बनी विचित्र,
झलकत उर हार बिमल, चकित चाहनी ॥
परम मुदित सुर नर मुनि, बरषत सब कुसुम माल,
वारति तन मन प्रान, 'कृष्णदास' स्वामिनी ॥[3]

नाचत गोपाल लाल अद्भुत नट भेख धरे गान करति ब्रज सुंदरि रास रागिनी ।
अति कोमल बन्यो फूलमल्ली बहु भाति पूर्ण जल सीकर हरत पवन तट तरंगिनी ।
सरद सर्बरी सुहत कित मधुप जूथ श्रुति मिलवत बिलसत पिय संग चपल दृष्टि कुरंगिनी ।
गिडिगता गिडिगिडिता गिडित कटि तारावली, धि भ द्रण द्रण द्रणवर मृदंगिनी ।
तत थेई थेई उच्चार तिरप बंध टूटे हार मृतति बाम भाग कुच उतंगिनी ।
कृष्णदास प्रभु गिरिधर मुरली नाद चित चोरत सम्पन हरि साधु साधु स्वरउपगिनी ।[4]
(कृष्णदास)

---

१ कुभनदास, कांकरौली, पृ० २२, पद स० ३५
२ वही, पृ० २४, पद स० ४२
३ हस्तलिखित पद सग्रह, कृष्णदास, डा० दीनदयालु गुप्त, पद स०, ११६
४ वही, पद स० ६६

देखो री नागर नट निरतत कालिंदी तट,
गोपिन के मध्य राजै मुकुट की लटक । देखो०
काछनी किंकिनी कटि पीतांबर की चटक-मटक,
कुंडल किरन रवि रथ की अटक । देखो०
ततथेई थेई सवद सकल घट,
उरप तिरप मानों पद की पटक ।
रास मध्य राधे, राधे मुरली में येई रट,
'नंददास' गावै तहां निपट निकट । देखो ०।[1] (नंददास)

प्यारी भुजग्रीवा मेलि नृत्यत पीय सुजान ।
मुदित परस्पर लेत गति में सुगति,
रूप-रासि राधे, गिरिधरन गुन-निधान ॥
सरल मुरली-धुनिसों मिले सप्त सुर,
रास-रंग भीनें गावें और तान वंधान ।
'चतुर्भुज' प्रभु स्याम-स्यामा की नटनि देखि,
मोहे खगमृग अरु थकित व्योमविमान ॥[2] (चतुर्भुजदास)

नाचत गोपाल-संग गोप कुंवरि अति सुधंग-
तथेई तथेई तथेई तथेई मंडल मधि राजे ।
संगीत गति भेद मान लेत सप्त सुर वंधान-
धिधि कटि धिधि कटि मृदंग मधुर मधुर वाजे ॥
मुरली रटनि रस को रटन मटकनि कटक मुकुट-
चटक पिय प्यारी लटकि लपटि उरसि राजे ।
'गोविंद' प्रभु पिय की छवि देखत रस वस मंत्र मगन-
जमुना तट काछे नट अद्भुत छवि छाजे ॥[3]

गिड़गिड़ थुंग थुंगनि तकिटि थुंगनि –
एक चरन कर सों भले भले वहु मृदंग वजावें ।
दूसरे कर चरन सों कठताल त्रिकटि झं झं–
झपताल में अवघर गति उपजावें ॥
कंठ सरस सुरहि गावें मोहन मधुरी तान लावें–

---

१. वही, पद सं० १६
२. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २२८, पद सं० ५६
३. गोविंदस्वामी, कांकरोली, पृ० २८, पद सं० ६२

सकल कला गुन पूरन वृषभानुनंदिनी पीय मन भावें।
गोविंद प्रभु रीझि रहे मुसिकाई रसन दसन धरिकें रहसि उरसि लपटाव।[1]
(गोविंदस्वामी)

लाल संग रास-रंग लेत मान रसिक रमन,
गिड-गिडता, गिड-गिडता, त त्त त्त त्त त्त थेई थेई गति लीने।
स रि ग म प ध नि, ग म प ध नि धुनि सुनि,
ब्रजराज तरुनि गावत री, अति गति यति भेद सहित,
ता न न ना न न न न न न न न अति गति ग्रसलीने ॥
उदित मुदित सरद-चंद्र, बंद छूटे कंचुकी के,
वैभव भव निरखि-निरखि कोटि काम हीसे।
विहरत बन रस-विलास, दंपति वर ईषद् हास,
'छीतस्वामी' गिरिवरधर, रसबस कर लीने ॥[2] (छीतस्वामी)

करत हरि नृत्य नवरंग राधासंग लेत नव गति भेद चर्चरी ताल के।
परस्पर दर्श रसमत्त भये तत्त थेई थेई बचन रचना सुसंगति सुरसाल के।
फरहरत बर्हिवर ढरहरत उरहार भरहरत भ्रमर वर विमल बन माल के।
खिसत सित कुसुम शिर हसत कुंतल मनो हुलस कल झलमलनि स्वेदकण भाल के।
अंग अंगनि लटक मटक भृगुर भ्रकुटि पट कपट लाल कोमल चरण चाल के।
चमक चल कुंडलनि दमक दशनावली विविध व्यंजित भाव लोचन विशाल के।
बजत अनुसार दुमिदुमि मृदंग निनाद झमकि झनकार किंकिणी जाल के।
तरल ताटंक तड़ंकित तड़ित नील मव जलद पै यों विराजति प्रिया पास गोपाल के।
ब्रजयुवती यूथ अगणित वदन चंद्रमा चंद भये मंद उद्योत तिहि काल के।
मुदित अनुराग बस राग रागिनी तान गान गत गर्व रंभादि सुरवाल के।
गगन चर सघन रस मग्न वर्षत फूल वारि डारत रत्न यत्न भरि थाल के।
शेष रसना गदाधर न वरनत बने चरित अद्भुत गिरिधरन लाल के।[3] (गदाधर)

आली रासमंडल नृत्य करत मदनमोहन अधिक सोहन लाडिली रूप निधान।
चरण चारु हस्त भेद मृत्यत आछी भांति न मुख हास भ्रुव विलास लेत नैन ही में मन ॥
गायत वेणु बजावत दौड रीझ परस्पर रिझवत आछो भरि भरि लेत रीझ रीझ।
अंक भरे तताथें तताथें करत कहत मगन मन ॥
सूरदास मदनमोहन रासमंडल में प्यारी के अंचल लै पोंछत है श्यामघन ॥[4]
(सूरदास मदनमोहन)

---

१ वही, पृ० २६, पद सं० ५८
२ अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २६७, पद सं० १५
३ श्री गदाधर भट्टजी महाराज की बानी, बालकृष्ण दासजी की प्रति, पत्र २३-२४, पद सं० ३
४ वाणी श्री श्री सूरदास मदनमोहन की, प्रकाशक कृष्णदास, पृ० १०, पद सं० २८

आजु वन नीको रास बनायौ ।
पुलिन पवित्र सुभग यमुना तट मोहन वेनु बजायौ ।
कल कंकन किंकिणी नूपुर धुनि सुनि खग मृग सचु पायौ ।
युवतिनि मंडल मध्य श्यामघन सारंग रागु जमायौ ।
ताल मृदंग उपंग मुरज डफ मिलि रस सिंधु बढ़ायौ ।
विविध विशद वृषभान नंदिनी अंग सुघंग दिखायौ ।
अभिनय निपुन लटकि लट लोचन भृकुटि अनंग नचायौ ।
तात्ता थेई ता थेई धरति नौतन गति पति ब्रजराज रिझायौ ॥[1] (हितहरिवंश)

स्याम-वाम अंग संग, नाचति गति वर सुघंग,
रास-लास रंग भरी सुभग भामिनी ।
तरनि-तनया-तीर खचित, मृदुल कनक रचित हीर,
त्रिगुन सुख समीर, सरद-चंद जामिनी ॥
चरन रनित नपुर, करकंकन, कटि किंकिनि धुनि,
सुनि खग-मृग मोहि गिरत काम-कामिनी ।
पंचम सुर गान तान, गगन सघन भये आन,
मगन मगन जान, गिरत मेघ-दामिनी ॥
झपताले चालि उरपि, लेति तिरप मान सुर्खहि,
चंद सुघर औघर वर सुलप गामिनी ।
नयन लोल, मधुर बोल, भृकुटि भंग, कुच उतंग,
हंसति पियहिं विवस करति 'व्यास' स्वामिनी ॥[2]

स्याम-नटवा नटत राधिका संगे ।
पुलिन अद्भुत रच्यौ, रूप-गुन-सुख रच्यौ, निरखि मनमथ-वधू मान भंगे ॥
तत्त थेई-थेई, मान सप्तसुर षट गान, राग-रागिनी, तान रूवन भंगे ।
लटकि मुँह मटकि, पद पटकि, पट झटकि, हंसि विविध कल माधुरी अंग अंगे ॥
रतन कंकन क्वनित किंकिनी नूपुरा, चर्चरी ताल मिलि मनि-मृदंगे ।
लेति नागर उरपि, कुंवरि औघर तिरप, 'व्यासदासि' सुघर वर सुघंगे ॥[3] (व्यासजी)

अद्भुत गति उपजत अति नाचत दोऊ मंडल कुंवर किसोरी ।
सकल सुघंग अंग भरि भोरी पिय नृतत मुसकनि मुख मोरी परिरंभन रस रोरी ।
ताल धर वनिता मृदंग चंडागत घात बजै थोरी थोरी ।
सप्त भाइ भाषा विचित्र ललिता गाइनि चित चोरी ।

---

१. चौरासी पद, हितहरिवंश, प्रति सं० ३८/२१५, पद नं० ३६
२. भक्तकवि व्यासजी, वासुदेव गोस्वामी, पृ० ३१४, पद सं० ४६८
३. वही, पृ० ३१६, पद सं० ४७१

श्री वृंदावन फूलनि फूल्यौ पुन ससि त्रिविध पवन बह थोरी।
गति विलास रसहासि परस्पर भूतल अद्भुत जोरी।
श्री जमुनाजल विथकित पहुपनि वरिषा रति पति डारत तर तोरी।
श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंज विहारी जू को रस रसना कह कोरी।[1] (हरिदास)

रास रास रसिक रस रासे।
आस पास जुवती मुखमंडल मिलि फूले कमलासे।
मध्य मराल मिथुन मन मोहन चितवत आतुरता से।
बचन रचन सुरसप्त तृपनति मदन मयर विकासे।
बाजत ताल मृदंग अंग सम मद मधुर मदु हासे।
घघट मुकुट अटक लटक्त नट अभिनय भ्रकुट विलासे।
वारति कुसुम सुगध देखि सखि आनद हियें हुलासे।
नित्तारति रति रति ओरति छिन छिन विपुल विहारनि दासे।[2]
(विहारिनदास)

हरि रास रच्यो केलि करण कौं।
वृदावन जमुना तट मोहोन प्रगट करण ब्रज सरण कौं।
लीनी कर मुरली हरि हितकरि हित सौं ओसर अधर निजु धरण कू।
सुनि सनि धुनि आई यह ग्रह तें सब गोपीपति पाय परण कू।
थकित पवन सुणि जाणि पर्मसुष जाननि चलि जल जल विभरण कू।
मोहे पसु पखी थिरचर सुर लोचन सफल सरोज चरण कू।
सोभित अति सखी सरद निसा सुख देखो स्याम स्नेह वरण कू।
परसराम प्रभु सब सुखदाइ कहरि मगल पद वो रण कू॥[3] (परशुराम)

नृत्य से सम्बद्ध रूपक तथा उत्प्रेक्षा –

कृष्णभक्तिकालीन कवियो ने नृत्य संबधी रूपक तथा उत्प्रेक्षायें भी प्रस्तुत की है। यथा –

कवि सूर ने अपने पूर्व कृत्यो का दिग्दर्शन करते हुए एक स्थल पर सागरूपक द्वारा नृत्य का ठाठ बाँधा है –

अब मैं नाच्यौं बहुत गुपाल
काम क्रोध को पहिरि चोलना, कंठ विषय की माल।
महामोह के नूपुर बाजत, निंदा सब्द-रसाल।

---

१ पदसग्रह, प्रति सं० ३७१/२६६, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, पृ० १२, पद सं० ३
२ पद सग्रह, प्रति सं० ३७१।२६६, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, पत्र सं० १८०, पद सं० २२
३ राम-सागर परशुराम, प्रति सं० ६८०।४६२, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, पद सं० २०

भ्रम भोयो मन भयो पखावज, चलत असंगत चाल ।
तृष्ना नाद करति घट भीतर, नाना विधि दै ताल ।
माया को कटि फेंटा बांध्यो, लोभ तिलक दियो भाल ।
कोटिक कला काछि दिखराई जल-थल सुधि नहिं काल ।
सूरदास की सबै अविद्या दूरि करौ नंदलाल ।।[1]

उत्प्रेक्षा के माध्यम से नृत्य का वर्णन करते हुए नंददास कहते है –

सांझ समै वन तें हरि आवत, चंद मनौं नट-नृत्य करन,
उडगन मांनों पुहुप-अंजुली, अम्बर असन वरन ।
नंदी-मुख सनमुख है बामें-देव मनावन विघन हरन,
'नंददास' प्रभु गोपिन के हित बंसी धरी श्री गिरिधरन ।[2]

व्यासजी ने नेत्रों की गति तथा संचालन के द्वारा नृत्य का सुन्दर रूपक प्रस्तुत किया है –

नटवा नैन सुधंग दिखावत ।
चंचल पलक सवद उघटत है ग्रंग्रं तत्र थेई थेई कल गावत ।।
तारे तरल तिरप गति मिलवत, गोलक सुलप दिखावत ।
उरप भेद भ्रू-भंग संग मिलि, रतिपति कुलनि लजावत ।
अभिनय निपुन सैन सर ऐंननि, निसि वारिद वरषावत ।
गुनगन रूप अनूप 'व्यास' प्रभु निरखि परम सुख पावत ।।[3]

संगीत की व्यापकता का उल्लेख

पूर्व कहा जा चुका है कि प्रकृति तथा पशु पक्षियों के कण-कण में संगीत निहित है। कृष्णभक्तिकालीन कवियो ने प्रकृति तथा पशु पक्षियों के माध्यम से संगीत संबंधी अत्यन्त सुन्दर रूपक तथा उत्प्रेक्षाये प्रस्तुत की है। उदाहरणस्वरूप इन कवियों के कतिपय पद दृष्टव्य होंगे –

गावत स्याम स्यामा-रंग ।
सुघर गति नागरि अलापति, सुर भरति पिय-संग ।।
तान गावति कोकिला मनु, नाद अलि मिलि देत ।
मोर संग चकोर डोलत, आपु अपने हेतु ।।[4]

---

१. सूरसागर, (भाग १), प्रथमस्कंध, पृ० ५१, पद सं० १५३
२. हस्तलिखित पदसंग्रह, नंददास, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० ३५
३. भक्तकवि व्यासजी, वासुदेव गोस्वामी, व्यासवाणी, पृ० २७९, पद सं० ३४२
४. सूरसागर, (पहला खंड), दशम स्कंध, पृ० ६३५, पद सं० १७०१

सिखिन सिखर चढ़ि टेर सुनायो ।
बिरहिन सावधान ह्वै रहियो सजि पावस दल आयो ॥
नव बादर बानैत, पवन ताजी चढ़ि, चुटक दिखायो ।
चमकत बीजु सेल्हकर मंडित, गरज निसान बजायो ॥
चातक, पिक, भिल्ली गन दादुर, सब मिलि मारू गायो ॥[1] (सूरदास)

इन मोरन की भांति देखि नाचे गोपाला ।
मिलवत गति भेद नीके मोहन रिपुसाला ॥
गरजत घन मद मद दामिनी दरसावें ।
झुमकि झुमकि बूंद परे गौडमलार गावें ॥
चातक पिक सिखर कुंज बारबार कूजें ।
वृंदावन कुसुम माल चर्ण कमल पूजें ॥
सुर नर मुनि काम धेनु, देखन कौतुक आवें ।
भवत उचित वारि फेरि परमानंद पावें ॥[2] (परमानन्ददास)

ब्रज पर नीकी आजु घटा हो ।
नन्हीं भन्हीं बूंद सुहावनी लागति, चमकति बिज्जु छटा हो ॥
गरजत गगन मृदंग बजावत, नाचत मोर नटा हो ।
तैसेई सुर गावत चातक, पिक, प्रगट्यो है मदन भटा हो ॥
सब मिल भेंट देत नंदलालहिं बैठे ऊंचे अटा हो ।
कुंभनदास लाल गिरिधर सिर कुसुभी पीत पटा हो ॥[3] (कुंभनदास)

माई मोरन संग मदनमोहन लिए तरंग नाँचे ।
बचिछन अंग टेढ़ो, सिर टेढी तैसेई धर,
टेढ़े किएँ चरन-जुगल नृत्य-भेद साँचे ॥
मृदंग मेघ बजावें दादुर सुर-धुनि मिलावें,
कोकिला अलाप गावें, वृंदावन रंग राँचे ॥
गावें तहाँ 'कृष्णदास' गिरिधर गोपाल पास,
राग धम्मार, राग मलार मोद मन माँचे ॥[4] (कृष्णदास)

कान्ह कुंवर के कर-पल्लव पर, मानों गोवर्द्धन नृत्य करै ।
ज्यों ज्यों तान उठत मुरली की, त्यों त्यो लालन अधर धरै ॥

---

१. वही, (दूसरा खंड), पृ० १३८८, पद सं० ३९४६
२. हस्तलिखित पद-संग्रह, परमानन्ददास, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० ७०
३ कुंभनदास, काँकरौली, पृ० ४४, पद सं० ९७
४ अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २३९, पद सं० ९७

मेघ मृदंगी बजावत, दामिनी दमक मानों दीप जरै ।
ग्वाल ताल दै नीके गावत, गायन के सँग सुर जु भरै ।।
देत असीस सकल गोपी-जन, वरसा को जल अमित झरै ।
अति अद्‌भुत अवसर गिरिधर को, 'नंददास' के दुःख हरै ।।[१] (नंददास)

व्रज पर उनई आजु घटा ।
नई नई बूंद सुहावनी लागति, चमकति बिज्जु छटा ।।
गरजत गगन मृदंग बजावत, नाँचत मोर नटा ।
गावत ही सुर देत चातक-पिक, प्रगट्यौ मदन-घटा ।।
सब मिलि भेंट देत नँदलालै, बैठे ऊंचे अटा ।
'चतुर्भुज' प्रभु गिरिधरन लाल सिर, कसूंभी पीत पटा ।।[२] (चतुर्भुजदास)

पावस नट नट्यो अखारो वृन्दावन अवनी रंग ।
नित गुन रासि वरुहा पपैया सब्द उघटत कोकिला गावति तान तरंग ।
जलधर तहाँ मंद मंद सुलप संच गति भेव-उरपि तिरपि मानु लेत मधुर मृदंग ।
'गोविंद' प्रभु गोवर्द्धन सिंघासन पर बैठे सुरभी सखा मध्य रीझे ललित त्रिभंग ।।[३]

मदनमोहन वन देखत अखारो रंग ।
सुलप संच गति भेद वरुहा निर्त करैं कोकिला कुहु कुहु तान तरंग ।।
उघटत सब्द पपैया पियु पियु करैं मधुव्रत गुंजमाल सरस उपंग ।
गोविंद प्रभु रीझे सकल सभा सहित जलधर सुघर बजावत मृदंग ।[४]
(गोविंदस्वामी)

अद्‌भुत शोभा वृन्दावन की देखो नन्दकुमार ।
बालक विहग अनंग रंग भरि बाजत मनो बधाई ।
मंगल गीत गायबे को जानो कोकिल वधू बुलाई ।।[५]

निज सुख पुंज वितान कुंज हिंडोरना झुलत स्याम सुजान । ·····
गरजत तरजत मधुर राग लिये केकी शब्द सुहाए । ·····
मधुर मंजीर गगन उघटत सम सुभट पखावज बाजें ।।[६]
दुलह सुंदर श्याम मनोहर दुलहिनि नवल किशोरी जू ।

---

१. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० ३१९, पद सं० १०
२. वही. पृ० २९३, पद सं० ४८
३. गोविंदस्वामी, कांकरौली, पृ० ६२, सं० १८१
४. वही, पृ० ६२, पद सं० १८२
५. मोहिनी बानी श्री गदाधर भट्ट जी की, प्रकाशक कृष्णदास, पृ० ४२
६. वही पृ० ६२

शारद निशा दिशा सब निर्मल डहडहे पूरण चन्दा जू ।
यमुना पुलिन नलिन रासरंजित सुभग सवारी चौरी जू ।
बोलत मधुर वेदवाणी सो मिलें भौंर अरु भौंरी जू ॥
गोपी जुरी जनु कंज कलिनि को आमर मोर बनायौ जू ।
मधुर कंठ कोकिला सवासिनि गीत सरस स्वर गावैं जू ।
नाचत मयूर नौंछावरि करि करि द्रुम निज फूलनि डारैं जू ॥[1] (गदाधर भट्ट)

नाचत मोरनि संग स्याम मुदित स्यामहिं रिझावत,
तैसीयें कोकिला अलापति पपीहा देत सुर तैसीई मेघ गर्जित मृदंग बजावत ।
तैसी यें स्यामघटा निसि कारी तैसी ये दामिनि कौंधि दीप दिखावत ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी रीझि राधे हँसि कंठ लगावत ॥[2]
राधे चलिरी हरि बोलत कोकिला अलापत सुर देत पंछी राग बन्यौं ।
जहां मोर काछ बांधे नृत्य करत मेघ पखावज बजावत बधान गन्यौं ।
प्रकृति की कोऊ नाहो याते श्रुति के उनमान गहि हौं आई मैं जन्यो ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी की अटपटी और कहत कछु और भन्यौं ।[3]
(हरिदास)

घूमरे गगन गरजत घन मदमद बरसत वृंदावन सघन सरस पावस रितु सुहाई ।
चातक पिक मोर मुदित नाचत गावत मेरे निरखिनिरखि दंपति सब सखि सुखदाई ।[4] (बिहारिनदास)

संगीत की महत्ता का उल्लेख

जैसा कि पहिले भी कहा गया है संगीत की महत्ता असीम है । संगीत की स्वर लहरियाँ जड तथा चेतन सभी को आकर्षित करती है । कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में अनेक स्थलों पर विशेष रूप से मुरली तथा रासलीला सम्बन्धी प्रसंगो में संगीत की महिमा तथा संगीत के प्रभाव का वर्णन किया गया है । उदाहरण स्वरूप कृष्णभक्तिकालीन कवियों के संगीत की महत्ता तथा प्रभाव संबंधी कतिपय पद तथा पंक्तियां द्रष्टव्य होंगी —

दूरि करहि वीना कर धरिबौ ।
रथ थाक्यौ, मानौ मृग मोहे, नाँहिन होत चंद्र कौ ढरिबौ ॥[5]

---

१ मोहिनी बानी श्री गदाधर भट्ट जी की, प्रकाशक कृष्णदास, पृ० ३६
२ पद-संग्रह, प्रति ३०१/२६६, का० ना० प्र० सभा, पृ० श्रो स्वा० २४, पद सं १
३ वही, पृ० ७, पद सं० १४
४ वही, पत्र सं० १३१, पद सं० २
५ सूर-सागर, (दूसरा खंड), दशम स्कंध, पृ० १३६७ पद सं० ३८०७

सुनहु हरि मुरली मधुर बजाई।
मोहे सुर-नर-नाग निरंतर, ब्रज वनिता उठि धाई॥
जमुना नीर-प्रवाह थकित भयो, पवन रह्यो मुरझाई।
खग-मृग-मीन अधीन भए सब, अपनी गति बिसराई॥
द्रुम, बेली अनुराग-पुलक तनु ससि थक्यो निसि न घटाई।
सूर श्याम वृंदावन-विहरत, चलहु सखी सुधि पाई॥[1]

आजु हरि अद्भुत रास उपायो।
एकहि सुर सब मोहित कीन्हे मुरली नाद सुनायो॥
अचल चले, चल थकित भए, सब मुनिजन ध्यान भुलायो।
चंचल पवन थक्यो नहिं डोलत, जमुना उलटि बहायो॥
थकित भयो चंद्रमा सहित-मृग, सुधा-समुद्र बढ़ायो।
सूर स्याम गोपिन सुखदायक, लायक दरस दिखायो॥[2]

मुरली सुनत अचल चले
थके चर, जल झरत पाहन, विफल वृच्छ फले॥
पय स्रवत गोधननि थन तें, प्रेम पुलकित गात।
झुरे द्रुम अंकुरित पल्लव विटप चंचल पात॥
सुनत खग-मृग मौन साध्यौ, चित्र की अनुहारि।
धरनि उमंगि न माति उर में, जती जोग बिसारि॥[3] (सूरदास)

मदन गोपाल वेंनु नीको बाजत, मोहन नाद सुनत भई बावरी।
बछरा खीर पीवत थन छाँड्यो दंतन तृन खंडित नहिं गावरी।
अचल भए सरिता मृग पंछी, खेवट चकित चलत नहीं नांव री॥[4]
(परमानंददास)

हरि कर पल्लव लोल विराजत।
राग रागिनी के उपजावत वेनु मधुर धुनि बाजत।
देव मनुज मुनि खग मृग मोहें जब गूजरीनि बाजत।
नाचत मोर मौनधरि कोकिल मेघ अकासनि गाजत।
ब्रज वनिता मनि परी चटपटी बिस भए लोचन आंजत।
परमानंद काम रति बाढ़ी भूपन वनें न साजत॥[5] (परमानंददास)

१. सूरसागर (पहला खंड), दशम स्कंध, पृ० ६०३, पद सं० १६०८
२. वही, पृ० ६५४, पद सं० १७५८
३. वही, पृ० ६२८, पद सं० १६८६
४. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २०१, पद सं० ८५
५. हस्तलिखित पद-संग्रह, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० ८९

गोविंद करत मुरली गान ।
अधर कर धरि स्याम सुदर सप्त सुर बघान ।
विमोहो ब्रज-नारि, पसु, पखि सुनै दै धरि कान ।
चर स्थिर हो फिरत चल, सब की भई गति आन ॥
तजि समाधि जु मुनि रहे थके व्योम विमान ।
'कुभनदास' सुजान गिरिधर रची अद्भुत ठान ।[1]

राास रच्यौ नदलाला
वृदावन सोभा बड्यो ता पर व्योम विमाननि सों मड्यो ।
दुदुभी देव बजावै फूलनि अजुलि बहु बरसावै ।
बरसै जु फूलनि अजुली बहु अबर घन कौतुक पगे ।
बिवस अकनि निज-बधू लिए निरखि मनमथ-सर लगे ।
ह्वै गए थिर चर, उचर चर, सरद-पूरन ससि चढ्यौ ।
'दासकुभन' रास-औसर वृदावन सोभा बढ्यो ।[2] (कुभनदास)

गोविंद करत मोहन गान
बसीकृत नग सिंधु सुर गन थकित व्योम विमान ।
खग मृग पसु सुनत नाद पिवत अधर सुधा स्वाद ।
'कृष्णदास' बदत बाद सुफल भाग री ।[3] (कृष्णदास)

वृदावन बसी बट कुज जमुना के तट
रास में रसिक प्यारी खेल रच्यौ बन मै
राधा माधौ कर जोरे रवि-ससि होत भोरे
मडल मै निर्तत दोऊ सरस सघन मै
मधुर मृदग बाजै मुरली की धुनि गाजै
सुधि न रही री कछु सुर मुनि जन म
नददास प्रभु प्यारो रूप उजियारो कृष्न
क्रीडा देखि थकित सब जन मन में ।[4] (नददास)

बेनु धरघौ कर गोविंद गुन निधान
जाति हुती बन काऊ सखिन सग, ठगी धुनि सुनि कान

१ कुभनदास, कांकरौली, पृ० २०, पद स० ३१
२ वही, पृ० २५, पद स० ४३
३ हस्तलिखित पद-सग्रह, कृष्णदास, डा० दीनदयालु गुप्त, पद स० ३०
४ अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २३८, पद स० ६४
५ नददास, उमाशकर शुक्ल, पृ० ३३२, पद स० ११५

मोहन मोहे फल खग मृग, पसु वहु विधि सप्तक सुर-बंधान
'चतुर्भुजदास' प्रभु गिरिधर तन-मन, चोरि लियो करि मधुर गान ।[1]

प्यारी के गावत कोकिला मुख मूंदि रही
पिय के गावत खग नैना मूंदि रहे सब ।[2] (चतुर्भुजदास)

नाचत लाल गोपाल रास में सकल व्रज वधू संगे । .....
सिव विरंचि मोहे सुर सुनि सुनि सुर नर मुनि गति भंगे ।।[3]
उमगत रस ग्रीव भुजा नाचे स्यामा स्याम .....
थियकित चंद सखी लीक लयो काम । . ...
'गोविंद' प्रभु लाग लेत व्रह्मादिक लखि अचेत
जैं जैं करि पुहुप अंजुली छोड़त सुखधाम ।।[4] (गोविंदस्वामी)

मुरली सुनत गई सुधि मेरी ।
ग्रह काज सब भूलि गयो, मोहि सपति करिहों तेरी ।
एकटक लागि सुनत श्रवनन पुट जेसे चित्त चितेरे ।
छीतस्वामी गिरधर मन करख्यो इत उत चले ने फेरी ।[5]
लाल संग रास-रंग लेत मान रसिक रमन......

उदित मुदित सरद-चंद बंद छूटे कंचुकी के,
वैभव भव निरखि-निरखि कोटि काम हीते ।[6] (छीतस्वामी)

करत हरि नृत्य नवरंग राधा संग लेत नव गति भेद चर्चरी ताल के ।
वृजयुवती जूथ अगणित वदन चन्द्रमा चन्द भये मन्द उद्योत तिहि काल के ।
मुदित अनुराग वस राग रागिनि तान गान गतगर्व रंभादि सुरबाल के ।
गगन चर सघन रस मग्न वर्षत फूलवारि टारत रत्न यत्न भरि थाल के ।[7]
(गदाधर भट्ट)

बांसुरी बजाई आज रंग सो मुरारी ।
सिव समाधि भूल गई मुनि जन की नारी ।।
वेद भनत ब्रह्मा भूले भूले ब्रह्चारी ।

---

१. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २८६, पद सं० ६१
२. वही, पृ० २९०, पद सं० ७४
३. गोविंदस्वामी, कांकरौली, पृ० २६, पद सं० ५७
४. वही, पृ० २८, पद सं० ६१
५. हस्तलिखित पद-संग्रह, छीतस्वामी, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० २३
६. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २६६, पद सं० १५
७. गदाधर भट्ट जी महाराज की बानी, बालकृष्ण दास जी की प्रति, पत्र २३-२४, पद सं० ३

रभा सब ताल चूकी भूलि नृत्यकारी ।
जमुना जल उलटि बह्यो सुध ना सभारी ॥
वृंदावन बसी बजी तीन लोक प्यारी ।
ग्वालबाल मगन भये ब्रज की सब नारी ॥[1]   (सूरदास मदनमोहन)

रसिक सिरोमनि ललना-लाल मिले सुर गावत ।
मत्त मधुर बिधि धुनि सुनि कोकिल कूजत तन मन ताप बुझावत ।
मोर मडली नाँचति प्रमुदित, आनँद नैननि नीर बहावत ।
मद-मद घनवृंद गाज लजि, सीतल जल सीकर बरसावत ॥
नाद स्वाद मोहे गो, गिरि, तरु, खग, मृग, सर, सरिता सचुपावत ।
वृंदाविपिन-बिनोदीराधा रवन बिनोद, 'व्यास' मन भावत ।[2]

प्यारी के नाचत रग रह्यो ।
पिय के बेनु बजावत गावत, सुख नहिं परत कह्यो ।
कोमल पुलिन नलिन, मदल सँह, त्रिबिध समीर बह्यौ ।
बिथकित चद मद भयो, पय चलिबे कहुँ रथ न रह्यौ ।
ककन किंकिनि नूपुर सुनि, मुनि कन्यनि को मन उमह्यौ ।
उलट बह्यौ जमना को जल, सब ही के नैननि नीर बह्यौ ।
अग सुघगनि देखत, गव सर्बस तें मदन बह्यौ ।
तिरप उरप, सुलपनि की गति की, पति नहिं मरम लह्यौ ॥[3]

दुलहिन दूलहु खेलत रास ।
थके बिमान गगन धुनि सुनि-सुनि, ताननि कियो बिलास ।
मोहन मुरली नैक बजाई, थोवति लियो उसास ।
नूपुर धुनि उपजाइ बिमोह्यौ, सकर भयो उदास ।
ककन किंकिन धुनि सुनि नारद, कीनो कहूँ न बास ।[4]

बजावत स्यामहिं बिसरी मुरली ।
मोहन सुर अलाप जब गायौ, राधा चित चुरली ।
अरुन बरुन दिसि, निसि ससि बिकसित, सकुचत कमल कली ।
तमचुर-सुर सुनि मिलि बिछुरी, चकवनि की ओट छली ॥
फूली धरनि सबा गति भूली तरनिसुता न चली ।
बिकल भँवर, पिक पथिक अचल पथ, रोकत कुजगली ॥

---

१ वाणी श्री श्रीसूरदास मदनमोहन की, प्रकाशक कृष्णदास, पृ० ७, पद स० १७
२ भक्त कवि व्यास जी, वासुदेव गोस्वामी, प० २६३, पद स० ३६१
३ वही, पृ० ३७७, पद स० ६७५
४ वही, पृ० ३६५, पद स० ६३५

स्थावर-जंगम, संगम बिछुरे, सब की गति बदली।
कै यह मरम जानि है महलनि, कैए 'व्यास' वृषली ॥[1] (व्यास)

अद्‌भुत गति उपजत अति नाचत दोऊ मंडल कुंवर किसोरी।
श्री जमुना जल विथकित पहुपनि वरिषा रति पति डारत तृन तोरी ॥[2]
(हरिदास)

हरि रास रच्यो केलि करण कों।
लीनो कर मुरली हरि हितकरि हित सों ओसर अधर निजु धरण कूं।
सुंनि सुंनि धुंनि आई ग्रह ग्रह तें सब गोपी पति पाय परण कूं।
थकित पवन सुंणिजांणि पर्मसुख जा तनि चलि जल-जल विभरण कूं।
मोहे पसु पंछी थिरचर सुर लोचन सकल सरोज चरण कूं।[3] (परशुराम)

म्हारो परनाम बांके विहारी जी।
अधर मधुरधर बंसी बजावां रीझ रिझावां ब्रजनारी जी।[4]
नागर णंद कुमार लाग्यो थारो णेह।
मुरड़ी धुण सुण वीसरां म्हारो कुणवो गेह।[5]
मुरड़िया वाजां जमणा तीर।
मुरड़ी म्हारो मण हर ड़ीन्डो चित्त घरांणा धीर।
धुण मुरड़ी शुण शुध वुध विशरां जर-जर म्हारो सरीर।[6] (मीरा)

कीर्तन और भजन गायन की महिमा तथा उसमें मन को लीन रखने के लिए दी गई चेतावनी सम्बन्धी उल्लेख

संगीत-कुशल मुरलीधर नटवर कृष्ण संगीत के वशीभूत है। संगीत की ध्वनि सुनकर वे प्रफुल्लित होते हैं। अतः भक्तजन, गंधर्व तथा देवता गान और नृत्य के द्वारा अपने आराध्य को रिझाने की चेष्टा करते हैं –

गावत गोपी मृदु मधु बांनी।
जाके भुवन बसरत त्रिभोवनपति राजा नंद यशोदा रानी।
गावत गुनि गंधर्व काल सिव गोकुल नाथ महा तुम जानी ॥

---

१. भक्तकवि व्यास जी, वासुदेव गोस्वामी, पृ० ३१२, पद सं० ४५६
२. पद-संग्रह, प्रति सं० ३७१।२६६, का० ना० प्र० सभा, पृ० १२, पद सं० ३
३. राम-सागर, परशुराम, प्रति सं० ६८०-४६२, का० ना० प्र० सभा, पद सं० २०
४. मीरा-स्मृति-ग्रंथ, मीरा-पदावली, पृ० २, पद सं० ४
५. वही, पृ० २२, पद सं० २७
६. वही, पृ० २७, पद सं० ६४

गावत चतुरानन जगनायक गावत सेस सहस मुख रास ।
मन कर्म बचन प्रीति पद अंबुज अब गावत परमानंददास ॥[1] (परमानंददास)

ध्यावत कान्ह विमल जस तेरो ।
गावत सिव-सारद मुनि नारद प्रान जीवन धन मेरौ ॥
गावत वेद बंदि जन निसिदिन अरु मुनि-जूथ घनेरौ ।
गावत सेष महेस विविध विधि रस रसि कहि सुख केरौ ॥
गिरधर पिय गावत ब्रजवासी मिले प्रेम के घेरौ ।
'कृष्णदास' द्वारे दुलरावत श्री वल्लभ को चेरौ ॥[2] (कृष्णदास)

नाचत गावत हरि सुख पावत ।
नाँचि-गाइ सोलें छिन हूँ, पुनि कठिन काल-दिन आवत ।
नाँचत नाऊ, जाट, जुलाहो, छीपा नीके गावत ।
पीपा अरु रैदास, विप्र जयदेव सु भले रिझावत ।
नाँचत सनक, सनंदन अरु सुक नारद मुनि सचु पावत ।
नाँचत गन गंधर्व-देवता 'व्यासहिं' काहु जगावन ।[3] (व्यास)

कृष्णभक्तिकालीन कवि बार-बार कीर्तन, भजन, गायन की महिमा तथा प्रभाव की ओर संकेत करते है और हृदय को चेतावनी देते हैं कि भगवद् भजन, कीर्तन तथा गायन करते हुए अपना समय व्यतीत करो । कीर्तन की महिमा तथा हृदय को दी गई चेतावनी को व्यक्त करने वाली कुछ पंक्तियाँ नीचे उद्धृत की जाती हैं—

है हरि-भजन को परमान ।
नीच पावें ऊँच पदवी, बाजते नीसान ।
भजन को परताप ऐसौ, जल तरै पाषान ।
अजामिल अरु भील गनिका, चढे जात बिमान ।
चलत तारे सकल मंडल, चलत ससि अरु भान ।
भक्त ध्रुव कौं अटल पदवी, राम के दीवान ।
निगम जाकौ सुजस गावत, सुनत संत सुजान ।
सूर हरि की सरन आयौ, राखि ले भगवान ॥[4]

नीकें गाइ गुपालहिं मन रे ।
जा गाए निर्भय पद पाए अपराधी अनगन रे ।

---

१ हस्तलिखित पद-संग्रह, परमानंददास, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० २
२ अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २४०, पद सं० ७१
३ भक्त कवि व्यास जी की वानी, वासुदेव गोस्वामी, पृ० २५२, पद सं० ३२४
४ सूरसागर, (पहला खंड), प्रथम स्कंध, पृ० ७६, पद सं० २३५

गायो गीध अजामिल, गनिका, गायो पारथ-धन रे।
गायो स्वपच परम अघ-पूरन, सुत पायो बाम्हन रे।
गायो ग्राह-ग्रसत गज जल में, खंभ वँधे तें जन रे।
गाए सूर कौन नहिं उबर्‌यो, हरि परिपालन पन रे।[1]

जो सुख होत गुपालहि गाये।
सो नहि होत जप तप के कीने कोटिक तीरथ न्हाये।[2]

सोइ रसना, जो हरि-गुन गावे।[3]
दिन दस लेहि गोविंद गाइ।[4]

दिन द्वै लेहु गोविंद गाइ।[5]
गाइ लेहु मेरे गोपालहि।[6]

भजि मन नंद नंदन चरन।[7]
मन तो सों किती कही समुझाई।

नंदनंदन के चरन कमल भजि, तजि पाखंड चतुराइ।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु, जै है जनम गँवाइ।[8]

भजन बिनु कूकर-सूकर जैसो .....
सूरदास भगवंत भजन बिनु, मनो ऊँट-वृष भैंसो।[9]

भजन बिनु जीवन जैसे प्रेत।[10]
जिहिं तन हरि भजिवो न कियो।

सो तन सूकर-स्वान-मनि ज्यों, इहिं सुख कहा जियो।[11]
सकल तजि भजि मन चरन मुरारि।[12]

---

१. सूरसागर, (पहला खंड), प्रथम स्कंध, पृ० २२, पद सं० ६६
२. वही, पृ० ११६, पद सं० ३४६
३. वही, पृ० ११६, पद सं० ३५०
४. वही, पृ० १०४, पद सं० ३१५
५. वही, पृ० १०४, पद सं० ३१६
६. वही, पृ० २४, पद सं० ७४
७. वही, पृ० १०१, पद सं० ३०८
८. वही, पृ० १०४, पद सं० ३१०
९. वही, पृ० ११६, पद सं० ३५७
१०. वही, पृ० ११६, पद सं० ३५८
११. वही, पृ० ११६, पद सं० ३५९
१२. वही, पृ० १२४, पद सं० ३७४

भजि मन, नंद-नंदन-चरन ।[1]
भजहु न मेरे स्याम मुरारी ।[2] (सूरदास)
तुम्हारो भजन सब ही को सिंगार ।[3]
हरि के भजन में सब बात ।
ज्ञान कर्म सो कठिन करि क्त देत हो दुख गात ।
बदत बेद पुरान छिनु-छिनु साझ अरु परभात ।
सत जन मुख श्रवत हरि जसु नंदलाल पद अनुरात ।
नाहिन भव जलधि कोउ औरों बिघन के सिरलात ।
दास परमानंद प्रभु पें मारि मुख ए जात ।[4] (परमानंददास)
श्री विट्ठल जू के चरनकमल भजि रे मन ! जो चाहत परमारथ ।[5]
(कुंभनदास)

सब तजि भजि गोपिन सुख दायक ।[6]
भजहि सखी मोहन मदनबनाहि ।[7] (कृष्णदास)
श्री वल्लभ-सुत के चरण भजौं,
अति सुकुमार भजन-सुख-दायक, प्रति-सन पावन-करन भजौं ।
दूर किये कलि-कपट वेद-विधि, मस, प्रचंड बिसतरन भजौं ।
अतुल प्रताप महा महि सोभा, ताप-सोक-अघ हरन भजौं ।
'नंददास' प्रभु प्रगट भये दोउ, श्री बिट्ठलेस, गिरिधरन भजौं ।[8]
(नंददास)

रे मन भजि श्री बिट्ठलनाथे ।[9]
निसि दिन वल्लभवल्लभ कहिए ।
श्री हरि बदन बहोत सुखदायक श्रीवल्लभ गुन गइए ।[1] (गोविंदस्वामी)
श्री बिट्ठलनाथ रस अमृत पान सदा तू करि, रे रसना ।

---

१ वही, पृ० १०१, पद सं० ३०८
२ वही, पृ० ७०, पद सं० २१२
३ हस्तलिखित पद-संग्रह, परमानंददास, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० ३०८
४ वही, पद सं० ३११
५ कुंभनदास, कांकरौली, पृ० ३२, पद सं० ६३
६ हस्तलिखित पद-संग्रह, कृष्णदास, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० १८
७ वही, पद सं० १०४
८ वही, नंददास, पद सं० २
९ गोविन्दस्वामी, कांकरौली, पृ० २१४, पद सं० ५७०
१० वही, पृ० २१०, पद सं० ५६२

जो तू अपनो भलो चाहतो यहै बात जिय धरि, रे रसना ।
हरि को विमल यश गावत निरंतर जा, रे रसना ।[१] (छीतस्वामी)
दुलह सुंदर श्याम मनोहर दुलहिनि नवल किशोरी जू ।······
इहि विधि सदा विलास रास रस अगणित कल्प विताय जू ।
ते सुख शुक शिव शारद शेष सहस्र मुख गाये जू ।
और कहां कहि सकै गदाधर मोहन मधुर विलासा जू ।
रसना सहज शुद्ध करिवै कौं गावत हरि के दासा जू ॥[२]
वरनौं कहा यथामति मेरी वेदहु पार न पावै जू ।
भट्ट गदाधर प्रभु की महिमा गावत ही उर आवै जू ॥[३] (गदाधर भट्ट)
गाइ मन-मोहन नागर-नटहिं ।······
'व्यास' आस तजि भजि यहु, रसिक अनन्यनि के संघटहिं ।[४]
गाइ लै गोपालै दिन चारि ।[५]
गाइ लेहु गोपालहिं, यह कलिकाल वृथा न वितीजै ।[६]
हरि गावत कलिजुग रहियौ ।[७]
सुन विनती मेरी तू रसना, राधा वल्लभ गाइ ।[८]
वृथा काल खोवहिं, जिन सोवहि, छिन भंगुर तन आइ ।
सुनहि श्रवन रति भवन किसोरहि गावत नैकु सुनाइ ।······
सुन सुत नवलकिसोर-दासहूँ, हरि गुन गाय-गवाद ।[९]
गावत मन दीजै गोपालहिं ।
नांचत हरि पर चितु दीजै तो प्रीति बढ़ै प्रतिपालहिं ।[१०] (व्यास)
मन हरि भजि हरि भजि हरि भजि भाई ।[११]
भजिए श्री गोपाल कलपतरु ।[२] (परशुराम)
मीरां रे प्रभु गिरधर नागर भजण विणा नर फीकां ।[१२] (मीरा)

१. छीतस्वामी पद-संग्रह, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० ६२
२. मोहनी वाणी श्री गदाधर भट्ट जी की, प्रकाशक कृष्णदास, पृ० ३५–३६
३. वही, पृ० ५८
४. भक्त कवि व्यास जी, वासुदेव गोस्वामी, पृ० २२३, पद न० १२५
५. वही, पृ० २२३, पद सं० १२६
६ वही, पृ० २३६, पद सं० १८७
७. वही, पृ० २३६, पद सं० १८८
८. वही, पृ० २५४, पद सं० २५०
९. वही, पृ० २५४, पद सं० २५१
१०. राम-सागर, प्रति सं० ६८०/४६२, का० ना० प्र० सभा, पृ० रा० साग० ५१, पद सं० ३
११. वही, पद सं० ८
१२. मीरा-स्मृति-ग्रंथ, मीरा-पदावली, पृ० ३, पद सं० ८

सगीत सबधी आत्मविषयात्मक उल्लेख

(अ) गायन सबधी आत्मविषयात्मक उल्लेख –

कृष्णभक्ति कालीन साहित्य में कहीं-कहीं कुछ पदो के अन्तर्गत ऐसी पक्तियाँ आई हैं जिनसे ज्ञात होता है कि कृष्णभक्तिकालीन कवि अपने पदो को गाया करते थे। कृष्ण-भक्तिकालीन साहित्य में उपलब्ध इस प्रकार के सगीत सबधी आत्मविषयात्मक उल्लेख नीचे दिए जा रहे है –

अविगत गति कछु कहत न आवै।
सब विधि अगम विचारै ताते सूर सगुन लीला पद गावै।[1]
व्यास कहे सुकदेव सों द्वादस स्कन्ध बनाइ।
सूरदास सोई कहै पद भाषा करि गाइ।[2]
मेरी तो गति पति तुम अनतहिं दुख पाऊँ।
सूर कूर आंधरौ मैं द्वार परयौ गाऊँ।[3]
स्याम बलराम कौं सदा गाऊँ।[4]
प्रभु तुम दीन के दुख-हरन।
सूर प्रभु को सुजस गावत नाम-नौका तरन।[5]
व्यास कह्यौ जो सुक सौं गाइ। कहौं सो सुनौ सत चित लाइ।
जैसे सुक कौं व्यास पढ़ायौ। सूरदास तैसे कहि गायौ।[6]
सूरदास प्रभु नन्द-नदन-गुन गावत निसि दिन रोवे।[7]
जोग पथ केरि उन तनु तजे। सूर सबै तजि हरि पद भजे।[8] (सूरदास)
मनिमय आगन नद के खेलत दोऊ भैया।
बाल लीला विनोद सो परमानद गावै।[9]
पीताम्बर को चोलना, पहिरावत मैया।

---

१ सूरसागर, (भाग १), पृ० १, पद स० २
२ वही, पृ० ७३, पद स० २२५
३ वही, पृ० ५५, पद स० १६६
४ वही, पृ० ५५, पद स० १६७
५ वही, पृ० ६६, पद स० २०२
६ वही, पृ० ७४, पद स० २२६
७ वही, पृ० ८३, पद स० २५९
८ वही, पृ० ९३, पद स० २८८
९ अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० १९४, पद स० ८

जोई सुनै ताकौ मन हरै 'परमानंद' गावै ।[1]
मोहन मान मनायौ मेरौ । ·····
परमानंद भोर भयौ, गावें विमल जस तेरौ ।[2]
मदन मोहन-राधा रस लीला, कछु 'परमानंद' गाई ।[3]
जै जै कृष्न जै जै श्री राधे, जस गावत 'परमानंद, सार ।[4] (परमानंददास)
माई गिरिधरन के गुन गाऊँ ।।[5]
लाडिली लाल-पदरज उर राखि गावै 'कुंभनदास' ।[6]
गोप ग्वाल संग लियें परस्पर, 'कुंभनदास' गुन गाई ।[7]
रथ बैठे श्री त्रिभुवन-नाथ ।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर कौ जसु गावत न अघात ।[8]
श्री गिरिधरन-छवि सुजस चित धरि गाइ 'कुंभनदास' ।[9] (कुंभनदास)
रसिक राय गिरिवरधर मिलतहिं 'कृष्णदास' गावत तव गीति ।[10]
नव विलास सों गिरिधर कीरति 'कृष्णदास' हँसि गाई री ।[11]
गावें तहाँ 'कृष्णदास' गिरिधर गोपाल पास
राग धम्मार, राग मलार मोद मन मांचै ।[12]
जय जय श्री वल्लभ नंदन······
कृष्णदास गावत श्रुति छन्दन ।[13]
जै श्री वल्लभ नंदन गाऊँ ।[14] (कृष्णदास)
प्रात समय श्री वल्लभ सुत को पुण्य पवित्र विमल जस गाऊँ ।[15]
रास में राधे राधे मुरली में एक रट, 'नंददास' गावै तहाँ निपट निकट ।[16]

---

१. वही, पृ० १६४, पद सं० ६
२. वही, पृ० १६१, पद सं० ४१
३–४. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० १६५, २०० पद सं० ६०, ८४ क्रमशः
५–६. कुंभनदास, कांकरौली, पृ० ८४, ७, पद सं० २२८, १० क्रमशः
७. वही, पृष्ठ ३१, पद सं० ५८
८. वही, पृ० ४१, पद सं० ६०
६. वही, पृ० ६२, पद सं० १५७
१०. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २३४, पद सं० ४३
११. वही, पृ० २३५, पद सं० ४५
१२. वही, पृ० २३६, पद सं० ६७
१३. हस्तलिखित पद-संग्रह, कृष्णदास, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० १३२
१४. वही, पद सं० ११३
१५. नंददास, उमाशंकर शुक्ल, भाग २
१६. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० ३२५, पद सं० ३३

सीतल भोग धरि करत आरती 'नंददास' गुन गावें ।[१] (नंददास)
गिरिधर कुवर जननी दुलरावै । 'चतुर्भुजदास' विमल जस गावै ।[२]
दै बीरा आरति बारति हैं 'चतुर्भुज' गावत गीत रसाल ।[३]
श्री वल्लभ सुजसु सतत नित्य गाऊँ ।[४] (चतुर्भजदास)

वल्लभ श्री वल्लभ श्री वल्लभ गुन गाऊँ ।[५]
निज जन निरखि निरखि कें श्री मुख 'गोविंद' हरषि गुन गावत ।[६]
जै जैकार भयो तिहि औसर 'गोविंद' तहां विमल जस गावत ।[७]
देत असीस सदा चिरजीयो 'गोविंद' विमल विमल जसु गावति ।[८]
श्री वल्लभ पद-रज-महिमा ते 'गोविंद' यह जसु गाई ।[९]
भक्तनि मन आनंद भयो 'गोविंद' इह जसु गायो है ।[१०] (गोविंदस्वामी)

'छीतस्वामी' गिरिधर श्री विट्ठल पद-पदम-रैनु ।
वर प्रताप महिमा तें कीयौ कीरति-गान ।[११]
गाऊँ श्री वल्लभ नंदन के गुन, लाऊँ सदा मन अग-सरोजन ।
पाऊँ प्रेम-प्रसाद तितच्छन, गाऊँ गोपाल यहै चित चोजन ।[१२] (छीतस्वामी)

मेरी मति अतियोरी बरनत अतिहि अपार ।
तदपि गदाधर गावत उपजत आनद री धार ।[१३]
यह सुख देख देख सखी सुख पावे ।
कवि को बरण सके गदाधर गावे ।[१४] (गदाधर भट्ट)
सेष असेस पार नहिं पावत, गावत सुक–'व्यासादि' ।[१५]

---

१ वही, पृ० ३२६, पद स० ४१
२ वही, पृ० २७६, पद स० ४
३ वही, पृ० २७७, पद स० ८
४ हस्तलिखित पद-संग्रह, चतुर्भुजदास, डा० दीनदयालु गुप्त, पद स० ६५
५ गोविंदस्वामी, कांकरौली, पृ० २१०, पद स० ४६३
६ वही, पृ० २३, पद स० ५१
७ वही, पृ० ३२, पद स० ६६
८ वही, पृ० ४०, पद स० ८०
९ वही, पृ० ४५, पद स० ८६
१० वही, पृ० ५४, पद स० १११
११ अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २६७, पद स० १६
१२ वही, पृ० २७०, पद स० २८
१३ मोहनी बाणी श्री गदाधर भट्ट जी की, प्रकाशक कृष्णदास, पृ० ५६
१४ वही, पृ० ६२
१५ भक्त कवि व्यास जी, वासुदेव गोस्वामी, पृ० २०१, पद स० ३८

'व्यास' स्वामिनी की छबि निरखति विमल विमल जस गाऊँ ।[१]
'व्यासदास' आसा चरननि की, विमल विमल जस गाये ।[२]
'व्यास' स्वामिनी के गुन गावत, रसिक अनन्य सुढाढ़ी ।[३] (व्यास)
श्री विहारनिदासि गाई गूढ़ ओढ़नी उठाई रीझि रहे अंग भीजि मिलि मलार गाई।[४]
(विहारिनदास)
म्हाणे चाकर राखां जी गिरधारी ड़ाड़ा चाकर राखां जी ।
ब्रिन्दावण री कुंज गंड़ मां गोविन्द डीड़ा गाश्यूं ।[५]
माई सांवरे रंग रांची । ·····
गायां गायां हरि गुण निसदिण काड़ व्याड़ री वांची ।[६]
माई म्हा गोविन्द गुण गाणा ।[७]
माई म्हा गोविन्द गुन गाश्यां ।[८] (मीरा)

(ब) नृत्य संबंधी आत्मविषयात्मक उल्लेख –

भक्तिकालीन प्रायः सभी कृष्ण भक्त कवियों ने अपने काव्य में आराध्य कृष्ण की नृत्य-मुद्राओं, उस समय की छवि, नृत्य के बोलों तथा संगीत आदि का इतना पूर्ण तथा सजीव वर्णन किया है कि पढ़ने पर नटनागर की नृत्य-क्रियाएँ नेत्रों के सम्मुख चलचित्र की भाँति सामने ही होती दीख पड़ती हैं । कवि-साधकों की गहरी अनुभूति के मध्य साध्य की मनोहारिणी नृत्य-मूर्ति संगीत की लय मे साकार हो उठती है किन्तु क्रियात्मक नृत्य के साधकों में एक मात्र मीरा का नाम ही विशेपरूप से उल्लेखनीय है । यों तो जैसा कि पूर्व भी कहा जा चुका है वार्ता-साहित्य आदि वाह्य आधारों से ज्ञात होता है कि परमानन्ददास भी कभी-कभी भक्ति के आवेश में प्रेम-विभोर हो सुध-बुध खोकर भगवान के सम्मुख नाचने लगते थे । स्वयं परमानन्ददास जी ने भी अपने एक पद में इस ओर संकेत किया है ।[९] किन्तु नृत्य के माध्यम से निरन्तर कृष्ण को रिझाने का प्रयास केवल मीरा ही ने किया है अतः मीरा के काव्य में नृत्य संबंधी आत्मविषयात्मक उल्लेख पग-पग पर मिलते हैं ।

१. वही, पृ० २५८, पद सं० २६६
२. वही, पृ० २६६, पद सं० २८६
३. वही, पृ० २८८, पद सं० ३७२
४. हस्तलिखित पद-संग्रह, प्रति सं० ३७१।२६६, का० ना० प्र० सभा, पत्र १३१, पद सं० २
५. मीरा-स्मृति-ग्रंथ, मीरा-पदावली, पृ० १०, पद सं० ३५
६. वही, पृ० २३, पद सं० ८३
७. वही, पृ० १७, पद सं० ६१
८. वही, पृ० २८, पद सं० १०१
९. नांचत हम गोपाल भरोसे ।
गावत वाल विनोद कान्ह के नारद के उपदेसे ।
हस्तलिखित पद-संग्रह, परमानंददास, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० २०७

मीरा प्रेम की पुजारिन थी। विरह-बाण से बिंधे उनके अंगों की व्याकुलता तथा दर्द छिपाये नहीं छिपता था। प्रेमानुभूति की तीव्रता में हृदय की यह टीस नृत्य के रूप में साकार हो गई और नाच-नाच कर गाते हुए प्राणों का समर्पण तथा उत्सर्ग ही उनके जीवन का लक्ष्य बन गया। संगीत के साम्राज्य में दीवानी हो कर विचरण करने वाली मीरा राजकुल की मर्यादा की शृंखलाओं को तोड़ कर साधुमंडल तथा सामान्य जन-समुदाय के सम्मुख नृत्य करने लगीं –

म्हा गिरधर आगा नाच्या री।
णाच णाच म्हा रसिक रिझावा प्रीत पुरातण जाच्या री।
स्याम प्रीत रो बाध घूघरया मोहण म्हारो साच्या री।
लोक लाज कुल रा मरज्यादा जग में नेक णा राख्यां री।
प्रीतम पल छण णा बिसरावा मीरा हरि रंग राच्यां री॥[1]
म्हारे गोकुल रो ब्रजवासी।
णाच्यां गावां ताल बज्यावां पावा आणद हासी।[2]
माई सांवरे रंग राची।
साज सिंगार बाध पग घूघर लोक लाज तज नाची।[3]
माई म्हा गोविंद गुन गास्या
हरि मंदिर मा निरत करावां घूघरयां छमकास्या।[4]
चाला अगम वा देस काल देख्यां डरां।
सील घूघरा बाध तोस निरता करां।[5]
सखि म्हारो सामरिया णे देखवा करां री।
सांवरो उमरण सांवरो सुमरण सांवरो ध्याण धरां री।
ज्यां ज्यां चरण धरयां धरणीधर निरत करां री।[6]

कोई मीरा का उपहास करता है, कोई निन्दा करता है। सास और पति क्रोधित हो जाते हैं किन्तु मीरा के घुंघरुओं की ध्वनि मूक नहीं होती। वह निरन्तर बढ़ती ही जाती है। प्रेम में विभोर मीरा क्षण-क्षण में विवश हो झूम उठती है –

पग बांध घूंघरयां णाच्यां री
लोग कह्यां मीरा बावरी सासू कह्यां कुलनासा री।

१ मीरा स्मृति ग्रंथ, मीरा-पदावली, पृ० १६, पद सं० ५६
२ वही, पृ० १७, पद सं० ६२
३ वही, पृ० २३, पद सं० ८३
४. वही, पृ० २८, पद सं० १०१
५ वही, पृ० २०, पद सं० ७१
६ वही, पृ० १६, पद सं० ५७

विखरो प्याड़ो राणा भेज्यां पीवां मीरा हांशां री।
तण मण वारघां हरि चरणां मां दरसण अमरित पाश्यां री।
मीरां रे प्रभु गिरधर नागर थारो शरणां आश्यां री।[1]
सांवरियो रंग रांचां राणां सांवरियो रंग रांचां।
ताड़ पखावजां मिरदंग वाजां साधां आगे णाचां।
बूझ्यां माणे मदण बावरी श्याम प्रीत म्हां कांचां।
विखरो प्याड़ो राणां भेज्या आरोग्यां णा जांचां।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर जणम जणम रो सांचां॥[2]

प्रिय-विरह की वेदना सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त हो जाती है और अपनी हृदय-तंत्री से करुण रागिनी को झंकृत करती हुई मीरा कह उठती है –

तननी बनावुं तंबुरो, जीवनो तार तणावुं राम।
वन-वन वाजे घूंघरा, जीवनो लाड़ लड़ावूं राम।[1]

कबीर के शरीर रूपी रवाव (विशेष वाद्ययंत्र) की शिराओं रूप तांत से भी विरह के द्वारा प्रिय-मिलन की स्मृति तथा व्याकुलता में अनुपम संगीत छेड़ा जाता है –

सब रग तांत रवाब तन विरह बजावै नित।
और न कोई सुन सकै कै सांई कै चित॥[2]

प्रेम की पीड़ा में व्याकुल सूफी संत जायसी की नागमती के शरीर की हड्डियां रूपी किंगरी (वाद्ययंत्र) की नसें रूपी तांत से भी दिव्य संगीत का सृजन होता है –

हाड़ भए झुरि किंगरी नसैं भईं सब तांति।
रोवें-रोवें तनधुनि उठै, कहेसु बिथा एहि भांति॥[3]

किन्तु मीरा सबसे ही आगे बढ़ जाती है। शरीर रूपी तंबूरे में जीवन रूपी तार सँजो कर नाचती-गाती मीरा अपने इष्टदेव को रिझाने का प्रयास निरंतर करती आ रही थीं किन्तु प्रिय-विरह की पीड़ा कहां तक रुकती; वेदना का बांध सहसा टूट गया और सोलह शृंगार करके मीरा ने भी प्रेम रूपी ढोल बजाकर शरीर रूपी ताल में नृत्य करते हुए प्रिय के चरणों में आत्मसमर्पण कर दिया –

---

१. मीरा-स्मृति-ग्रंथ, मीरा-पदावली, पृ० १३, पद सं० ४७
२. वही, पृ० १४, पद सं० ४८
१. मीरा-माधुरी, ब्रजरत्नदास, पृ० ९९, पद सं० ३६१
२. कबीर-ग्रंथावली, विरह कौ अंग, पृ० ९, छं० सं० २०
३. जायसी-ग्रंथावली, सम्पादक-माताप्रसाद गुप्त, पृ० ३६५, छं० सं० ३६१

विरह पिंजर की बाड सखी री, उठकर जी हुलसाऊँ, ए माय
मन कूं मार सजूं सतगुर सूं, दुरमत दूर गमाऊं, ए माय।
डको नाम सुरत की डोरी, कड़ियाँ प्रेम चढ़ाऊँ, ए माय
प्रेम को ढोल बन्या अति भारी, मगन होय गुण गाऊँ, ए माय।
तन करूँ ताल करूँ मन मोरचंग, सोती सुरत जगाऊँ, ए माय
निरत करूँ मैं प्रीतम आगे तो (प्रीतम पद) पाऊँ, ए माय।[1]

वास्तव में मीरा के नृत्य सम्बन्धी आत्मविषयात्मक उल्लेख उनकी हृत्तंत्री की झकार है। उनकी आत्मा की अनुभूति भावों की भाषा में आलापित होकर गा उठी हैं। वेदना की तीव्रता में सच्चे हृदय की तन्त्री से निकले हुए हमारी अन्तरात्मा को थिरका देने वाले इन सगीतमय उद्‌गारों द्वारा मीरा ने जिस अनुपम दिव्य सगीत की सृष्टि की है वह अजर-अमर, शाश्वत और चिरन्तन है।

१ मीरा-माधुरी, ब्रजरत्नदास, पृ० ६२, पद स० २५३

पंचम अध्याय

कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में प्रयुक्त राग-रागिनियाँ

राग की उत्पत्ति तथा विकास

राग भारतीय संगीत की नींव है। भारतीय संगीत का पूर्ण रूप रागों द्वारा ही प्रदर्शित होता है। किन्तु राग की उत्पत्ति किस समय हुई इस विषय पर संगीताचार्यों ने विशेष प्रकाश नहीं डाला। इसका कारण यही है कि संगीत की उत्पत्ति के सदृश्य ही राग की उत्पत्ति भी शंकर के मुख से मान ली गई है।

भारतीय धारणा के अनुसार राग का सृजन शंकर जी ने किया। संगीतदर्पणकार का कथन है कि 'शिव तथा शक्ति इन दोनों के योग से राग उत्पन्न हुए। पंचानन महादेव जी के पाँच मुखों से पाँच राग उत्पन्न हुए और छठा राग पार्वती जी के मुख से निकला। महादेव जी ने जब नाट्य (नाच) शुरू किया तब उनके 'सद्योवक्त्र' नामक मुख से 'श्रीराग', वामदेव मुख से 'वसंत', अघोर मुख से 'भैरव', तत्पुरुष मुख से 'पंचम' और ईशान मुख से 'मेघराग' तथा नृत्य के प्रसंग में पार्वती जी के मुख से 'नट्टनारायण' राग उत्पन्न हुए।'[1]

राधाकृष्ण ने भी अपने ग्रंथ में इसी मत की पुष्टि करते हुए कहा है –

---

१. शिवशक्तिसमायोगाद्रागाणां सम्भवो भवेत्।
पञ्चास्यात् पञ्च रागाः स्युः षष्ठस्तु गिरिजामुखात्॥ ९॥
सद्योवक्त्रात्तु श्री रागो वामदेवाद्वसन्तकः।
अघोराद् भैरवोऽभूत्तत्पुरुषात् पञ्चमोऽभवत्॥ १०॥
ईशानाख्यान्मेघरागो नाट्यारम्भे शिवादभूत्।
गिरिजायाः मुखाल्लास्ये नट्टनारायणोऽभवत्॥ ११॥
संगीत-दर्पण, दामोदर पंडित, पृ० ७३

सिव गिरजा सजोग तें उपज्या है सब राग।
जिन्हें सुनें आनदमन बहुरि बढ़ें अनुराग ॥
पचवदन परगट कियें पाच राग सुप रूप।
श्री गिरिका मुष तें भयो छठहों राग अनूप ॥

भारतीय वाङ्मय के इतिहास में अनवरत रूप से हम देखते हैं कि विशेष कर समस्त ललित-कलाओ और उपयोगी शास्त्रो का उद्गम् शिव की वाणी, उनके डमरू के शब्द अथवा शिव और शक्ति के सयुक्त प्रसाद रूप में ही माना गया है। इस परम्परा को देखकर आधुनिक विचारक प्राय इसे शिवभक्तो का धार्मिक पक्षपात अथवा अन्धविश्वास ही मान कर छोड देते हैं। सभव है प्रचलित लोकाचार के क्षेत्र में ऐसी मान्यता कुछ अशो तक सार्थक हो किन्तु यदि गभीरता से विचार किया जाय तो श्रृ खलाबद्ध यह परम्परा निश्चय ही किन्ही मूल सिद्धातो एव भारतीय जीवन-दर्शन की सिद्ध मान्यताओ की ओर सकेत करती देख पडेगी। यद्यपि यहाँ शिव और शिवत्व की विस्तृत व्याख्या अपेक्षित नही तथापि यह तो सर्वस्वीकृत है कि शिव और शिवत्व विश्वव्यापी कल्याण का प्रतीक है और शक्ति कार्यशीलता की केवल प्रेरणा ही नही वरन् सृष्टि कार्यणीय परा शक्ति की प्रतीक है। समस्त कलाओ और शास्त्रो के मूल में शिव और शक्ति की सस्थापना का मूल प्रयोजन यह था कि इनकी सृष्टि विश्व-कल्याण के निमित्त ही मानी गयी थी क्योंकि जिस परा शक्ति के द्वारा इनकी उत्पत्ति है वह स्वभाव से ही अपने धर्म में रचनाशीला है। रचनात्मिका प्रवृत्ति के कारण ही वह समस्त कलाओ और शास्त्रो की जन्मदात्री है, अत उद्भव, स्थिति और निमित्त में ललित कलाओ और उपयोगी शास्त्रो को विश्व-कल्याणकारी होना ही चाहिये।

भारतीय सगीत के इतिहास पर एक विहग-दृष्टि डालने से ज्ञात होता है कि राग की उत्पत्ति कोई थोडे समय की देन नही है। जिस प्रकार धीरे धीरे भाषाओ का विकास हुआ और कालातर में एक-एक शब्द के सम्मिश्रण से भाषा विकसित होती रही उसी प्रकार राग का भी विकास हुआ। प्रारभ मे राग शब्द का प्रचलन नही था। प्राचीन सगीत जनरुचि के परिवर्तन के अनुकूल बदलता गया और धीरे-धीरे राग गाने का प्रचार हुआ। शताब्दियाँ व्यतीत होती गईं और उसी के साथ राग-परिवार मे भी वृद्धि हुई।

हमारा भारतीय सगीत उतना ही प्राचीन है जितना कि सकल विद्याओ का आदि-करण वैदिक साहित्य। भारतीय सगीत का स्रोत वेदो से माना गया है। सामवेद की ऋचायें गाई जाती थी। सामवेद में उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित् आदि शब्दो का प्रयोग मिलता है किन्तु इसमें राग सबधी कोई विवरण नही मिलता।

भारतीय सगीत का सर्वप्रथम उपलब्ध प्रामाणिक ग्रथ भरत का नाट्यशास्त्र है। इस ग्रथ में प्राचीन भारतीय नाट्यशास्त्र के विस्तृत विवेचन के साथ ही आनुसगिक रूप में सगीत का उल्लेख हुआ है। भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में श्रुति, षड्जग्राम, मध्यमग्राम तथा अठारह

जातियों का वर्णन तो किया है किन्तु उसमें राग-रागिनियों का कोई उल्लेख नहीं मिलता। इससे ज्ञात होता है कि भरत के युग तक भारत में जाति-गायन प्रचलित था परन्तु राग-गायन गायन का प्रचार नहीं हुआ था। जाति-गायन के ही अनेक नियमों को आगे चल कर राग के साथ जोड़ दिया गया।

'राग' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग कालिदास के शकुन्तला नाटक में मिलता है। पंचतंत्र में भी राग शब्द आया है। किंतु संभवतः राग शब्द का प्रयोग उस समय आज से विभिन्न अर्थ मे किया जाता था। मतंग मुनि के ग्रंथ वृहद्देशी में सात जातियों का उल्लेख किया गया है। इसमें से एक का नाम राग जाति है। मतंग मुनि ने जिस 'राग जाति' का उल्लेख किया है उसका विकास आगे चल कर दिखाई देता है। सोमेश्वरकृत 'अभिलापार्थ-चिन्तामणि' में राग का संबंध सामवेद से माना गया है और जाति से राग, राग से भाषा, तत्पश्चात् विभाषा और अन्तरभाषिका की उत्पत्ति मानी गई है।[1]

संगीत-मकरन्द में सर्वप्रथम रस के आधार पर रागों का पुल्लिग राग, स्त्रीराग तथा नपुंसक राग के अन्तर्गत विभाजन किया गया है जो राग तथा रागिनी का अन्तर प्रकट करता है। नारद ने २० पुल्लिग रागों, २४ स्त्रीराग तथा १३ नपुंसक रागों का वर्णन किया है किन्तु संगीत-मकरन्द में रागिनी शब्द का उल्लेख नहीं है।

नाट्य-लोचन में ८ शुद्ध राग, १६ सांलक तथा २२ संघिरागों के अन्तर्गत ४४ रागों का वर्णन किया गया है। नाट्य-लोचन में रागों का पुरुष तथा स्त्री राग के रूप में कोई विभाजन नहीं किया गया है।

१३ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में लिखित उपलब्ध सांगीतिक प्रमाणों में श्रेष्ठतम ग्रंथ पं० शार्ङ्गदेव कृत 'संगीत-रत्नाकर' मे गायन तथा नृत्य का विस्तृत विवेचन किया गया है। यह ग्रंथ हमारे संगीत की ऐतिहासिक शृंखला में एक महत्वपूर्ण कड़ी है। संगीत-रत्नाकर को उत्तरी अथवा दक्षिणी किस संगीत-प्रणाली के प्रामाणिक ग्रंथों के अन्तर्गत माना जाय, यह प्रश्न एक विवाद का विषय बना हुआ है। उत्तर तथा दक्षिण दोनों स्थानों के पंडित ग्रंथकारों ने संगीत-रत्नाकर को अपने यहाँ प्रचलित संगीत-प्रणाली से संबंधित करने का

---

१. सामवेदात् स्वर जातः स्वरभेयो ग्रामो संभवः
ग्राम्येभ्यो जातयो जात जातिभ्यो राग निर्णयः ॥ १ ॥
रागेभ्यश्च तथाभास विभासश्च अपि संजातस्यैव अंतर भासिका ॥ २ ॥
अभिलापार्थ चिन्तामणि (भंडारकर रिसर्च इंस्टीट्यूट पूना की हस्तलिखित प्रति) ;
Ragas and Raginis, O. C. Gangoly, Page 20

प्रयत्न किया है। रचयिता ने रागो को पूर्वप्रसिद्ध तथा अधुनाप्रसिद्ध खडो में भी विभाजित किया है। रत्नाकर से ज्ञात होता है कि उस समय रागो का विशेष प्रचार था।

शार्ङ्गदेव के समसामयिक अथवा कुछ काल उपरान्त होने वाले पार्श्वदेव ने 'सगीत-समय-सार' में १०१ रागो का उल्लेख किया है। जिसमें से ८३ राग उस समय प्रचार में रह गये थे।

शुभकर लिखित 'सगीत सागर' में ३८ रागो का वर्णन किया गया है।

१४ शताब्दी के प्रारम्भ से सबधित ज्योतरीश्वर रचित 'वर्ण-रत्नाकर' में ४४ रागो के नाम दिए गये हैं। रचयिता ने यह भी कहा है कि इनके अतिरिक्त अन्य बहुत से राग भी गाये जाते हैं।

१४ वी शताब्दी प्रारम्भ होने के उपरान्त भारतीय सगीत में महान क्रांति हुई। भारत ने अपने दीर्घकालीन इतिहास के दौरान में अनेक सस्कृतियो के समन्वयवाद की असाधारण शक्ति प्रदर्शित की है। जिस प्रकार प्रत्येक विजयी धारा भारत भूमि पर पहुँच कर स्थिर हो गई उसी प्रकार बाह्य देशो की जो सास्कृतिक परम्परायें और विचारधारायें भारतीय जीवन में पहुँची वे क्रमश यहाँ के इतिहास का एक स्थायी तथ्य बन गई। आक्रमणो के पीछे सास्कृतिक सबध स्थापित हुए, किन्तु सास्कृतिक विनिमय की यह प्रक्रिया एकाकी न थी। जहाँ मुसलमानो ने हिन्दू धर्म की महान आध्यात्मिक निधि को अपने विचारो एव सस्कारो में ग्रहण किया वहाँ भारतीय कला सबधी आन्दोलन भी मुस्लिम विचारो तथा परम्पराओ से अप्रभावित न रह सके। इस प्रकार सायोगिक रूप में ही कला और साहित्य की प्रगति हुई। किन्तु इन दो सस्कृतियो का समन्वय तथा सश्लेषण कदाचित् गीत और राग के क्षेत्र में ही सबसे अधिक स्पष्ट है। फारसी सगीत के प्रभाव से भारतीय सगीत में विशेष परिवर्तन हुआ।

यो तो हिन्दू सगीताचार्य ने प्रारम्भ से ही विदेशी राग-रागिनियो को अपनाया है। अनार्य राग शक तथा पुलिन्द प्रारम्भ में ही ग्रहण कर लिये गये थे। तुरुष्क तोडी का आगमन तुर्किस्तान के सम्बन्ध से हुआ। किन्तु मुसलमानो के सम्पर्क से सगीत में महान परिवर्तन हुआ। मध्यकालीन भारत के असाधारण प्रतिभाशाली सगीतज्ञ तथा कवि अमीर खुसरो ने अपने जीवन-काल में भारतीयो को तत्कालीन भारत में प्रचलित सगीत सम्बन्धी रीतियो से परिचित तथा अभ्यस्त कराने का महान प्रयास किया। फारसी प्रभाव के फलस्वरूप भारतीय सगीत में उत्तरी तथा दक्षिणी दो पद्धतियो का पृथक्-पृथक विकास हुआ।[1] दक्षिण-वासियो ने अपनी प्राचीन परम्परा को विदेशी प्रभाव से पूणतया बचा कर रखा। इसके विपरीत उत्तरी सगीत फारसी सगीत के विशेष सम्पर्क में आया और कुछ ही समय में उत्तरी सगीत प्रणाली दक्षिणी सगीत प्रणाली से कुछ भिन्न हो गई।

---

१ उत्तर भारतीय सगीत का सक्षिप्त इतिहास, भातखडे, पृ० १३

फारसी तथा भारतीय रागों के अद्भुत सम्मिश्रण तथा समन्वय द्वारा अमीर खुसरो ने नवीन रागों का आविष्कार किया। वरारी, मालरी और हुसैनी को मिलाकर अमीर-खुसरो ने दिवाली नाम रखा है। टोडी मे पंजगाह मईर को मिलाकर मोवर नाम रखा है। पूर्वी का नाम बदल कर गनम रख दिया है और फारसी के शहनाज को पटराग में मिलाकर जैल्फ नाम रख दिया है।...गौड़ और बिलावल, गौर और मारंग को मिलाकर सरपर्दा नाम रखा है।......कानडा में चन्द गाने मिलाकर उसका नाम फरदोस्त रखा है और यमन में फारसी गाना नैरेज मिला कर उसका नाम ऐमनी रखा। पूर्वी, विभास, गौर और गुनकली को ईराक के स्वरों मे गाकर साजागिरि नाम रखा। कल्याण में नैरेज नाम का फारसी का नग्मा (गीत) मिलाकर शनम नाम रखा। यह बात छिपी न रहे कि साजागिरि, बाखर, उष्पाक में ऊपर लिखे हुए राग मिलाये गये है। दूसरे रागों में कहीं-कहीं परिवर्तन किया गया है और उसका नाम भी वही रक्खा है। उदाहरणार्थ अमीर खुसरो ने यमन और वसन्त को मिला दिया है और उसका नाम एमन-वसन्ती रखा है।"[१]

अभी तक के ग्रंथों में यद्यपि रागों को विभाजित करने तथा भेद मानने की प्रवृत्ति लक्षित होती है किन्तु नारदकृत 'पंचम-संहिता' मे सर्व प्रथम रागिनी शब्द का प्रयोग मिलता है। 'पंचमसार-संहिता' मे उन्हे रागो की भार्या (रागयोषित) के रूप में स्वीकार किया गया है। १५ वी शताब्दी से उत्तरी भारत में राग-रागिनी वर्गीकरण की प्रणाली सर्वमान्य हो जाती है और उसका स्पष्ट उल्लेख मिलने लगता है। समय की गति के साथ ही राग परिवार में भी वृद्धि होती है और प्रत्येक राग के साथ उनकी भार्याओं, पुत्रों तथा पुत्रवधुओं का भी उल्लेख होने लगता है। किन्तु राग-रागिनी पद्धति को मानने वाले संगीतचार्यो के मतों में एकता नही दीख पड़ती। संगीताचार्यो के द्वारा मुख्य रागों, उनकी भार्याओं, उनमे उत्पन्न पुत्रों तथा पुत्रवधुओं की संख्या तथा नामों के विषय में मतभेद होता है जिसके फलस्वरूप राग-रागिनी वर्गीकरण के विभिन्न मत प्रचलित हो जाते है।

राग-रागिनी वर्गीकरण की यह पद्धति १७ वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक मान्य रही। किन्तु संगीत एक परिवर्तनशील कला है अतः कालचक्रानुसार कालांतर में परिस्थितियों तथा जनरुचि के परिवर्तन के साथ इस पद्धति में भी परिवर्तन होने लगा। सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में व्यंकटमखी पंडित ने गणित द्वारा ७२ मेल सिद्ध करके रागों का वर्गीकरण नवीन ढंग से किया। आधुनिक युग में पं० विष्णु नारायण भातखंडे ने जन्य-जनक पद्धति अथवा ठाट-राग-पद्धति का प्रतिपादन इसी के आधार पर किया। आज के युग में प्राचीन राग-रागिनी पद्धति मान्य नहीं है।

वर्गीकरण सृष्टि का स्वाभाविक नियम है। वर्गीकरण के मूल में समानता तथा विभिन्नता निहित रहती है। संगीत के क्षेत्र में भी समानता रखने वाले रागों को एक वर्ग में संकलित करने की परम्परा प्रचलित है। संगीताचार्यो ने राग वर्गीकरण के दो तत्व माने है। (१)

१. मानसिंह और मानकुतूहल, हरिहरनिवास द्विवेदी, राग-दर्पण, फ़कीरउल्ला, पृ० ७५-७७

स्वर-साम्य अर्थात् स्वरो में समानता तथा (२) स्वरूप-साम्य अर्थात् रागों के स्वरूप तथा चलन में समानता। जनक-जन्य-पद्धति में रागो का वर्गीकरण स्वर-साम्य की दृष्टि से किया गया है। यह निश्चित रूप से कहना कठिन है कि प्राचीन राग-रागिनी वर्गीकरण स्वर-साम्य अथवा स्वरूप-साम्य पर अथवा दोनो पर आधारित है। किन्तु इसमें सदेह नही कि उस युग में राग-रागिनी पद्धति की यह व्यवस्था किसी न किसी उद्देश्य की पूर्ति अवश्य करती रही होगी। जिस प्रकार आज यह कहने से कि जोगिया भैरव ठाट से उत्पन्न होता है तत्काल इस बात का ज्ञान हो जाता है कि जोगिया में ऋषभ तथा धैवत स्वरो का प्रयोग होता है, उसी प्रकार सभव है कि उस युग में विशिष्ट रागो की भार्या आदि का उल्लेख करने से उनकी एक जातीयता, समप्रकृति अथवा स्वर-साम्य का बोध होता होगा। सभव है शृगार, करुण, शात आदि रसो के दृष्टिकोण से यह वर्गीकरण किया गया हो।

प्रत्येक युग में सगीत शास्त्र तथा क्रियात्मक सगीत में एक-रूपता रहती है अर्थात् युग विशेष में विभिन्न राग सगीतज्ञो द्वारा जिस भाव से गाये बजाये जाते थे उसी के आधार पर उस युग के सगीत-शास्त्र का निर्माण होता है। अस्तु प्रत्येक सगीत-ग्रथ में अपने समय में प्रचलित सगीत-प्रणालियो का उल्लेख होता है। जनरुचि तथा परिस्थितियो के अनुसार क्रियात्मक सगीत में भी परिवर्तन होता रहता है। सगीत के परिवर्तित स्वरूप के चित्रण हेतु नवीन शास्त्र का सृजन होता है और इसीलिए रागो के परिवर्तित स्वरूप पर पुराना शास्त्र तथा पूर्व प्रचलित रागो पर नवीन शास्त्र लागू नही हो पाता। अस्तु किसी युगविशेष के कवि-सगीतज्ञों के सगीत-ज्ञान के परखने की कसौटी उसी युग तथा समय की प्रचलित सगीत-पद्धतियाँ तथा उस युग के प्राप्त ग्रथ ही होने चाहिए तभी उनके साथ न्याय होगा।

यद्यपि आज के वैज्ञानिक युग में रागो के वर्गीकरण की प्राचीन राग-रागिनी-पद्धति अशुद्ध, अवैज्ञानिक तथा कपोल-कल्पना मात्र मान ली गई है किन्तु जैसा कि पूर्व बतलाया जा चुका है हमारे कृष्णभक्तिकालीन कवियो के द्वारा तथा उस समय में उत्तरी भारत में यही पद्धति सर्वमान्य थी अत राग-रागिनी पद्धति के अनुसार उस युग में प्रचलित राग-रागिनियो को दृष्टिकोण में रख कर ही इन कवियो के काव्य में प्रयुक्त राग-रागिनियो की समीक्षा की जायेगी।

कृष्णभक्तिकालीन कवियों के समय में प्रचलित राग–रागिनियाँ

कृष्णभक्तिकालीन कवियो के समय में कौन-कौन सी राग-रागिनियाँ प्रचलित थी यह जानने के लिए उस युग में प्रचलित विभिन्न मतो पर एक दृष्टि डालनी होगी।

जैसा कि पूर्व भी कहा जा चुका है राग-रागिनी सबधी विभिन्न मतो में पर्याप्त मतभेद है। 'चत्वारिंशच्छतरागनिरूपणम्' में १० प्रमुख राग माने गये है किन्तु अन्य मतो में ६ प्रमुख राग मिलते है। हनुमन्मत में बगाली को भैरव की रागिनी माना गया है किन्तु अन्य मतो में बगाली नटनारायण की भार्या है। शिवमत में तोडी बसन्त की रागिनी मानी गई

है परन्तु हनुमन्मत में तोड़ी कौशिक की भार्या है। शिवमत में रागिनी ३६ है और हनुमन्मत में ३०। हनुमन्मत में वराटी मेघयोपिता है परन्तु चत्वारिंशच्छतरागनिरूपण में वह वसंत-स्नुपा है। चत्वारिंशच्छतरागनिरूपण में भूपाली वसन्त-स्नुपा है किन्तु हनुमन्मत में भूपाली मेघयोपिता है। अस्तु किस मत को प्रामाणिक माना जाये यह खोज का एक स्वतंत्र विषय है। वर्गीकरण के इस विवाद में न पड़कर आगे के पृष्ठों में विभिन्न मतों का उल्लेख किया जाएगा जिससे यह स्पष्ट प्रकट हो जाएगा कि उस युग में कौन-कौन सी राग-रागिनियां प्रचलित थीं। इन्हीं के आधार पर आगे सिद्ध किया जायगा कि कृष्णभक्तिकालीन कवियों ने अपने काव्य में किन प्रचलित, पूर्व प्रसिद्ध तथा नवीन राग-रागिनियों का प्रयोग किया है।

नारद मतानुसार रागों का वर्गीकरण[1]

राग	रागयोपितः		
(१) मालव	(१) धनाश्री	(२) मालश्री	(३) रामकिरी
	(४) सिन्दूरा	(५) आसावरी	(६) भैरवी
(२) मल्लार	(१) वेलावली	(२) पूर्वी	(३) कानड़ा
	(४) मायुरी	(५) कोड़ा	(६) केदारिका
(३) श्रीराग	(१) गान्धारी	(२) गौरी	(३) सुभगा
	(४) कुमारिका	(५) वेलावारी	(६) वैरागी
(४) वसंत	(१) तोड़ी	(२) पंचमी	(३) ललिता
	(४) पटमंजरी	(५) गुज्जरी	(६) विभास
(५) हिंडोला	(१) माधवी	(२) दीपिका	(३) देशकारी
	(४) पाहिड़ा	(५) वराडी	(६) मारहाटी
(६) कर्नाट	(१) नाटिका	(२) भूपाली	(३) गयड़ा
	(४) रामकली	(५) कामोदी	(६) कल्यानी

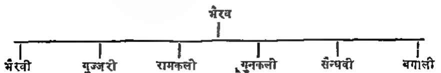
मेषकर्ण की रागमाला के अनुसार रागों का वर्गीकरण[2]

राग	भार्या	पुत्र
(१) भैरव	(१) बंगाली,	(१) बंगाल, (२) पंचम, (३) मधु,
	(२) भैरवी,	(४) हर्ष, (५) देशाख, (६) ललित,
	(३) वेलावली,	(७) बिनावल, (८) माधव
	(४) पुन्यकी,	
	(५) सनेहकी,	

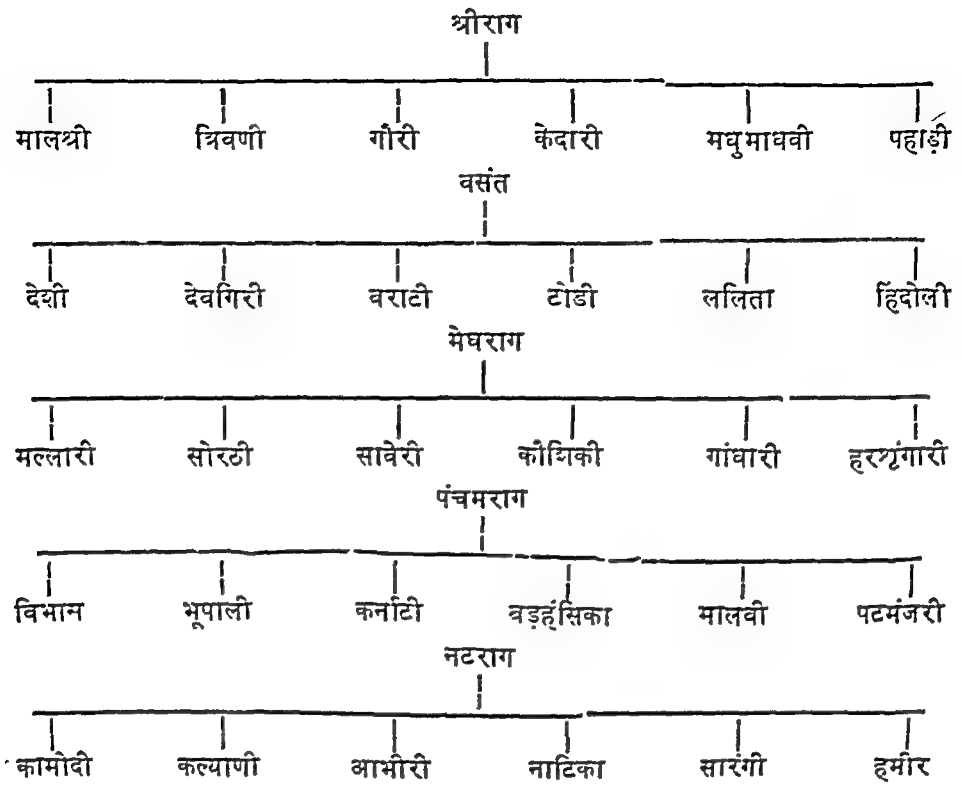
1. Pancham Sanhita. Narad.
A MS. no. 5040 with colophon dated 1362 Saka,
(Asiatic Society of Bengal)
2. According to Ragamala by Mesakarna.
According to the colophon of a Ms. in the collection of the Asiatic Society of Bengal.

(२) मालकौशिक	(१) गुडक्री, (२) गाधारी, (३) मालश्री, (४) श्रीहठी, (५) धनाश्री,	(१) मारू, (२) मेवाड, (३) बखली, (४) मिष्टाग, (५) चद्रकाय, (६) भ्रमर, (७) नदन, (८) कोक्कर
(३) हिंडोल	(१) तिलगी, (२) देवगिरी, (३) वासती, (४) सिन्धूरी, (५) आभीरी	(१) मगल, (२) चद्रबीन, (३) शुभराग, (४) आनद, (५) विभास, (६) वर्धन, (७) विनोद, (८) वसत
(४) दीपक	(१) कामोदिनी, (२) पटमजरी, (३) तोडी, (४) गुज्जरी, (५) काहेली या सारगी	(१) कमल, (२) कुसुम, (३) राम (४) कुतल, (५) कलिंग, (६) बहुल, (७) चम्पक, (८) हेमल
(५) श्रीराग	(१) वैराटी, (२) कर्नाटिका, (३) सावेरी, (४) गौडी, (५) रामगिरी	(१) सिन्धवा, (२) मालव, (३) गौड, (४) गभीर, (५) गुनसागर, (६) विगड, (७) कल्याण, (८) कुरभ
(६) मेघराग	(१) मल्लारी,[1] (२) सोरठी, (३) सुहावी, (४) आसावरी, (५) कोमनी	(१) नट, (२) कनार, (३) सारग, (४) केदार, (५) गुडमल्लार, (६) गुड, (७) जलधर, (८) शकरा

सोमेश्वर-मतानुसार रागो का 'वर्गीकरण'



१ राग-दर्पण, एस० एम० टैगोर, पृ० ७२



भरत-मतानुसार रागों का वर्गीकरण[1]

(१) रागभैरव

रागभार्याः (१) मधुमाधवी, (२) भैरवी, (३) बंगाली, (४) वराटी, (५) सैंधवी
पुत्राः (१) बेलावल, (२) पंचम, (३) देशाख, (४) देवगांधार (५) विभास
पुत्रभार्याः (१) रामकली, (२) सूहो, (३) सुघरई (४) पटमंजरी, (५) टोड़ी

(२) राग मालकोस

रागभार्याः (१) गुनकली, (२) खंबावती, (३) गुज्जरी, (४) भूपाली, (५) गौरी
पुत्राः (१) सोम, (२) परसन, (३) बड़हंस, (४) कुकुभ, (५) बंगाल
पुत्रभार्याः (१) सोरठी, (२) त्रिवणी, (३) कर्नाटी, (४) आसावरी, (५) गौड़गिरी

(३) राग हिंडोल

रागभार्याः (१) बेलावली, (२) देशाखी (३) ललिता, (४) भीमपलासी, (५) मालवी
पुत्राः (१) रिखवहंस, (२) वसंत, (३) नोकहास, (४) गन्धर्व, (५) ललित,
पुत्रभार्याः (१) केदार (२) कामोदी, (३) बिहागड़ा, (४) काफी, (५) परज

---

१. संगीत, राधामोहन सेन, पृ० १२३–२५

(४) रागदीपक

रागभार्या	(१) नट,	(२) मल्लारी,	(३) केदारी,	(४) कानरा,	(५) मारिका
पुत्रा	(१) शुद्धकल्याण,	(२) सोरठ,	(३) देशकार,	(४) हमीर,	(६) मारू
पुत्रभार्या	(१) बडहस,	(२) देशवराटी,	(३) वैराटी,	(४) देवगिरि,	(५) सिंधवी

(५) राग श्रीराग

रागभार्या	(१) बसती,	(२) मालवी,	(३) मालश्री,	(४) साहाना,	(५) धानश्री
पुत्रा	(१) नट,	(२) छायानट,	(३) कानडा,	(४) इमन,	(५) शकराभरण
पुत्रभार्या	(१) श्याम,	(२) पूरिया,	(३) गुर्जरी,	(४) हमीरी,	(५) अडाना

(६) राग मेघराग

रागभार्या	(१) सारग,	(२) बक्रा,	(३) गन्धर्वी,	(४) मल्लारी,	(५) मुल्तानी
पुत्रा	(१) बहादुरी,	(२) नटनारायण,	(३) मलवा,	(४) जयती,	(५) कामोद
पुत्रभार्या	(१) पहाडी,	(२) जयती,	(३) गाधारी,	(४) पूर्वी,	(५) जयजयवती

रागार्णव-मतानुसार रागो का वर्गीकरण[1]

राग —	सभ्रया —		
(१) भैरव	(१) बगाली	(२) गुणगिरी	(३) मध्यमादि
	(४) वसन	(५) धनाश्री	
(२) पचम	(१) ललिता	(२) गुर्जरी	(३) देशी
	(४) वराडी	(५) रामकृत	
(३) नाट	(१) नट्टनारायण	(२) गाधार	(३) सालग
	(४) केदार	(५) कर्णाट	
(४) मल्लार	(१) मेघ	(२) मल्लारी	(३) मालकौशिक
	(४) पटमञ्जरी	(५) आसावरी	
(५) गौडमालव	(१) हिंडोल	(२) त्रिवण	(३) आधारी
	(४) गौरी	(५) पटहसिका	
(६) देशाख्य	(१) भूपाली	(२) कुडाली	(३) कामोदी
	(४) नाटिका	(५) वेलावली	

हनुमन्मतानुसार रागों का वर्गीकरण[2]

पुरुष राग —	वरागना —		
(१) भैरव	(१) मध्यमादि	(२) भैरवी,	(३) बगाली

१ सगीत-दर्पण, दामोदर पडित, पृ० ७६

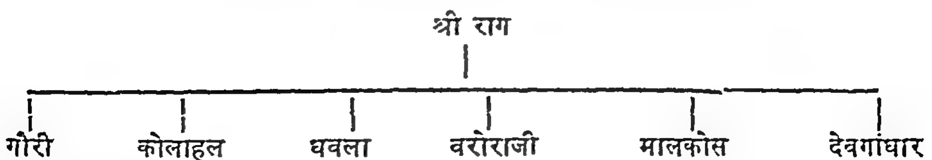
२ वही, पृ० ७८

	(४) वराटी	(६) सैन्धवी	
(२) कौशिक	(१) टोड़ी	(२) खंबावती	(३) गौरी
	(४) गुणक्री	(५) ककुभा	
(३) हिंदोल	(१) वेलावली	(२) रामकिरी	(३) देशाख्य
	(४) पटमंजरी	(५) ललिता	
(४) दीपक	(१) केदारी	(२) कानड़ा	(३) देशी
	(४) कामोदी	(५) नाटिका	
(५) श्रीराग	(१) वासंती	(२) मालवी	(३) मालश्री
	(४) धनासिका	(५) आसावरी	
(६) मेघराज	(१) मल्लारी	(२) देशकारी	(३) भूपाली
	(४) गुर्जरी	(५) टंकी	

शिवमतानुसार रागों का वर्गीकरण[1]

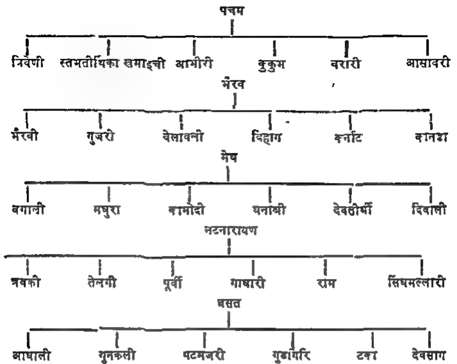
पुरुष राग –	वरांगना:–		
(१) श्रीराग	(२) मालश्री	(३) त्रिवणी	(३) गौरी
	(४) केदारी	(५) मधुमाधवी	(६) पहाड़ी
(२) वसंत	(१) देशी	(२) देवगिरि	(३) वराटी
	(४) तोडी	(५) ललिता	(६) हिन्दोली
(३) भैरव	(१) भैरवी	(२) गुर्ज्जरी	(३) रामकिरी
	(४) गुणकिरी	(५) वंगाली	(६) सैन्धवी
(४) पंचम	(१) विभाषा	(२) भूपाली	(३) कर्णाटी
	(३) वड़हंसिका	(५) मालवी	(६) पटमंजरी
(५) मेघ	(१) मल्लारी	(२) सोरटी	(३) सावेरी
	(४) कौशिकी	(५) गान्धारी	(६) हरशृंगार
(६) वृहन्नाट	(१) कामोदी	(२) कल्याणी	(३) आभीरी
	(४) नाटिका	(५) सारंगी	(६) नट्टहम्बीरा

कल्लिनाथ के मतानुसार रागों का वर्गीकरण[2]



१. संगीत-दर्पण, दामोदर पण्डित, पृ० ७४–७५

२. राग और रागिनी, ओ० सी० गांगुली, पृ० १६२



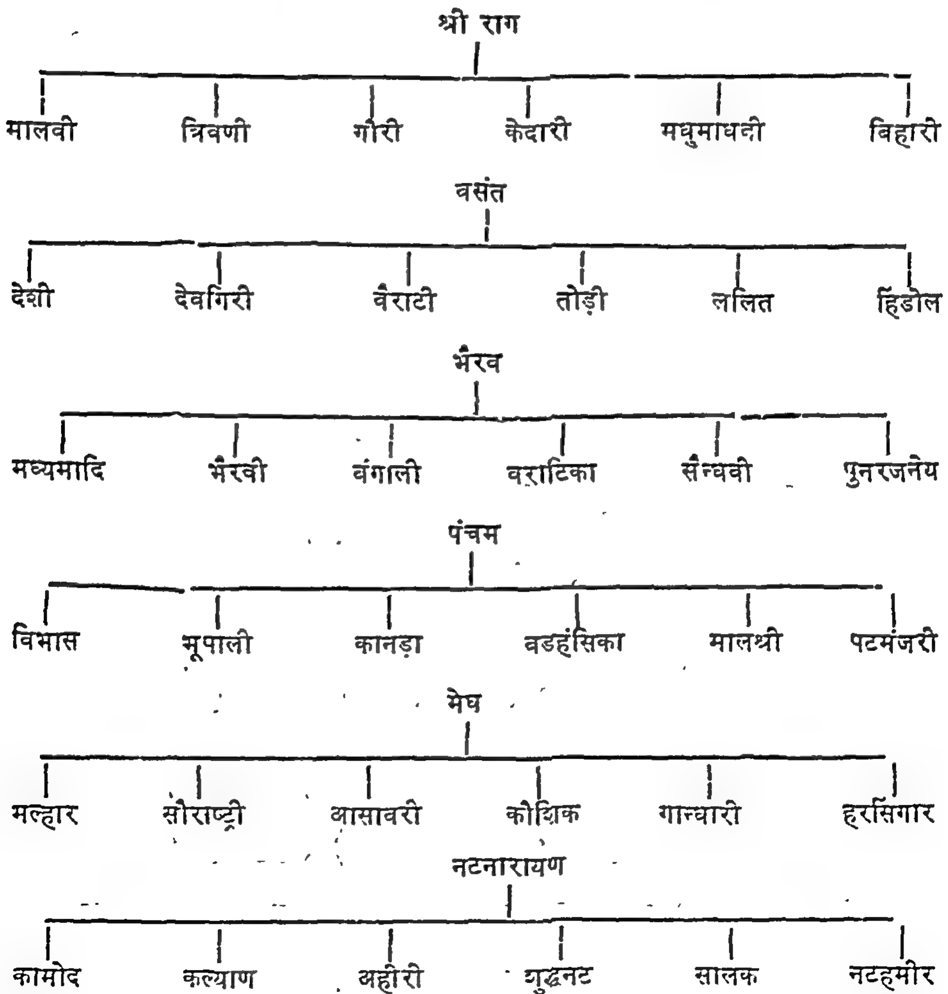
पुंडरीक विट्ठल कृत रागमाला के अनुसार रागों का वर्गीकरण[1]

राग नाम –	रागभार्या –	पुत्र –
(१) शुद्ध भैरव	(१) धन्नासी (२) भैरवी	(१) भैरव (२) शुद्धललित
	(३) सैंधवी (४) मारवी	(३) पंचम (४) परज
	(५) आसावरी	(५) बंगाल
(२) हिंडोल	(१) भूपाली (२) वसंती	(१) वसंत (२) शुद्धबंगाल
	(३) तोडी (४) प्रथममंजरी	(३) श्याम (४) सामंत
	(५) तुरुष्कतोडी	(५) कामोद
(३) देशकार	(१) रामश्री (२) बहुली	(१) ललित (२) विभास
	(३) देशी (४) जैतश्री	(३) सारंग (४) त्रिवण
	(५) गुर्जरी	(५) कल्याण
(४) श्री राग	(१) गौडी (२) पाडी	(१) टक्क (२) देवगंधार
	(३) गुणकरी (४) शुद्धरामश्री	(३) मालव (४) शुद्धगौड
	(५) गुडश्री	(५) कर्णाट बंगाल

1 A comparative system of some of the leading music systems of the 15th, 16th, 17th and the 18th centuries, V N Bhatkhande, Page 54

(५) शुद्ध नाट	(१) मालवश्री (२) देशाक्षी (३) देवक्री (४) मधुमाधवी (५) अहीरी	(१) जिजावती (२) सालंगनाट (३) कर्नाट (४) छायानट (५) हमीरनाट
(६) नटनारायण	(१) वेलावली (२) कांवोजी (३) सावेरी (४) सुहवी (५) सौराष्ट्री	(१) मल्हार (२) गौड (३) केदार (४) शंकराभरण (५) विहागड़ा

अबुलफ़ज़ल कृत आइनेअकबरी के अनुसार रागों का वर्गीकरण[1]



---

1. Ain-I-Akbari, Abul Fazl Allami, Translated by H. S. Jarrett.

राजा कुंभकर्ण (मेवाड) रचित 'सगीत-राज' के अनुसार रागो का वर्गीकरण[1]

'सगीत-राज' में दो मतो के अनुसार निम्नलिखित रागो का उल्लेख मिलता है –

प्रथम मत –	(१) मध्यमादि	(२) ललित	(३) वसत
	(४) गुर्जरी	(५) धनासी	(६) भैरव
	(७) गुडक्रिति	(८) मालवश्री	(९) केदार
	(१०) मालवी	(११) आदिगौड	(१२) स्थानगौड़
	(१३) श्री राग	(१४) मल्हार	(१५) वराटिका
	(१६) देशाक्षिका	(१६) मेघराग	(१८) धोरण
द्वितीय मत–	(१) नट्ट	(२) केदार	(३) श्री राग
	(४) स्थानगौंड	(५) धोरणि	(६) मालवी
	(७) वराटी	(८) मेघराग	(९) मालवश्री
	(१०) देवसाख	(११) गौंटकृण	(१२) भैरवी
	(१३) धनासिका	(१४) मल्हार	(१५) ललित
	(१६) गुर्जरी	(१७) ललित	

नारदकृत चत्वारिंशच्छतरागनिरूपणम् मतानुसार रागो का वर्गीकरण[2]

पुरुष राग

(१) श्री राग

भार्या (१) गौरी (२) कोलाहली (३) आधाली (४) द्राविडी (५) मालवकौशिकी
पुत्र (१) शुद्धगौड (२) कर्नाट (३) मालव (४) पूर्विका
पुत्रभार्या (१) वराटी (२) वौनी (३) मध्यमादि (४) आरभी

(२) वसत राग

भार्या (१) नीलाम्बरी (२) धनाश्री (३) रामक्री (४) पटमजरी (५) गौडक्री
पुत्र (१) साम (२) सोम (३) मानव (४) पूर्विका
पुत्रभार्या (१) कल्याणी (२) दुग्धवराटी (३) सावेरी (४) तरगिणी

(३) पचम राग

भार्या (१) त्रिवली (२) वल्लकी (३) सवावती (४) ककुभा (५) आहरी
पुत्र (१) वलहम (२) गान्धार (३) देवहिदोल (४) पावक
पुत्रभार्या (१) नारायणी (२) भूपाली (३) मारू (४) नवरोचिका

(४) भैरव राग

भार्या (१) वेलावली (२) भैरवी (३) गुर्जरी (४) ललिता (५) कर्णाटी

---

1 Ragas and Raginis, O C Gangoli, Page 47
२ सगीत, जनवरी १९५०, पृ० ६४–६५

पुत्र (१) पंचवक्र (२) कलहार (३) ललित (४) चंद्रशेखर
पुत्रभार्या (१) कुरंगमाली (२) वीचिका (३) माहुली (४) मंगलकौशिकी

(५) कौशिक

भार्या (१) तोड़ी (२) देवगांधारी (३) देशाख्या (४) गुनक्रिय (५) शुद्धसावेरी
पुत्र (१) सारंग (२) कामोद (३) विद्युन्माल (४) मोदक
पुत्रभार्या (१) नट्टा (२) पालिका (३) पूर्णचंद्रिका (४) तरंगिणी

(६) मेघ राग

भार्या (१) त्रोटकी (२) मोटकी (३) अपरा (४) वृहन्नटा (५) अहन्नटा
पुत्र (१) घंटारव (२) रोहक (३) घंटकंठ (४) कमल
पुत्रभार्या (१) सुधामयी (२) डोम्बक्री (३) मृतसजीवनी (४) मेघरंजी

(७) नटनारायण राग

भार्या (१) वंगाली (२) शुद्धसांलक (३) देवक्री (४) काम्भोजी (५) मधुमाधवी
पुत्र (१) मोहन (२) नाट (३) गारुण (४) शुद्धवंगाल
पुत्रभार्या (१) त्रैलंगी (२) लांगली (३) सोरटी (४) हंवीरी

(८) हिंडोल राग

भार्या (१) देशी (२) शिवक्री (३) ललिता (४) मल्लारी (५) सुहन्सिका
पुत्र (१) रमणीय (२) मुखारि (२) उदयपंचम (४) शुद्धवसंत
पुत्रभार्या (१) सिंधुरामक्रिया (२) वेगवाहिनी (२) धरा (४) छायातरंगिणी

(९) दीपक राग

भार्या (१) आसावरी (२) नाटिका (२) देहुली (४) कानड़ा (५) केदारी
पुत्र (१) केदारगौल (२) वैरन्जी (२) होलि (४) सौराष्ट्र
पुत्रभार्या (१) कुरंजमंजरी (२) नागवराली (२) देवरंजनी (४) सूरसिंधु

(१०) हंसक राग

भार्या (१) श्री रंजनी (२) मालश्री (२) सरस्वती मनोहरी (४) गौरी ५) ईशमनोहारी
पुत्र (१) नागध्वनि (२) सामंत (२) भिन्नपंचम (४) टक्क
पुत्रभार्या (१) मालवी (२) श्यामकल्याणी (३) देशाक्षी (४) विलहरी

कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में प्रयुक्त राग-रागिनियाँ

कृष्णभक्तिकालीन कवियों ने अपने पदों में कौन-कौन सी राग-रागिनियों तथा कितनी संख्या में किन-किन राग-रागिनियों का प्रयोग किया है इन पर आज तक हिन्दी के किसी भी लेखक, इतिहासकार तथा आलोचक ने प्रकाश नहीं डाला। प्रायः विद्वानों ने कुछ रागों के नाम गिना कर तथा उसके साथ यह कह कर कि इसके अतिरिक्त अन्य भी बहुत से राग गाये हैं सन्तोष कर लिया है। इन कवियों ने कुछ विशेष रागों का अधिक प्रयोग

किया है, इस ओर संकेत करते हुए भी उसे सिद्ध करने की चेष्टा नही की गई। आगे के पृष्ठो में यह दिखाया जायगा कि प्रत्येक कवि ने किन राग रागिनियो का तथा उनमे सख्यानुसार कितने पदो का प्रयोग किया है।

इस विषय को अंकित करने मे प्रमुख रूप से दो कठिनाइयाँ उपस्थित होती है –

(१) सभी कवियो के समस्त काव्य-ग्रंथ उपलब्ध नही होते। जो काव्य-ग्रंथ उपलब्ध होते है उनमें प्राय पदो की समानता नही है। विभिन्न पद-सग्रहो में प्रत्येक कवि के पद विभिन्न सख्या में दिए हुए है।

(२) प्राप्त पद-सग्रहो में अधिकाश पदो के ऊपर किसी राग अथवा रागिनी का नाम दिया हुआ है। प्राय प्रत्येक पद का नामकरण कर दिया गया है। किन्तु यह उल्लेखनीय है कि विविध पदावलियो के प्राप्त सग्रहो में नामकरण भी एक से नही है वरन् उनमें विषमता है। ऐसी परिस्थिति में प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि इस प्रकार के नामकरण मूलगायक के द्वारा किये गये थे अथवा उनकी पदावलियो के सग्रहकर्त्ताओ के द्वारा। आलोचना जगत में साधारण मान्यता तो यही है कि उपर्युक्त प्रकार के नामकरण सभवत मूल गायको के द्वारा ही किए गए थे। किन्तु इसे स्वीकार करने में कुछ कठिनाइयाँ उपस्थित होती है –

(अ) जैसा ऊपर उल्लेख किया गया है कि नामकरण में विभेद है यदि मूल लेखक के द्वारा पदो में निहित राग-रागिनियो का नामकरण किया जाता तो इस प्रकार का भेद उपस्थित नही हो सकता था।

(ब) पदावली-सग्रहो मे हम यह भी देखते है कि सवत्र ही राग-रागिनियो के नामो का उल्लेख नही भी किया गया है। अनेक स्थलो पर अनामक पद भी प्राप्त होते है। यदि भक्त गायक के द्वारा नामकरण कर देने की परपरा नियमित और स्वीकृत होती तो निश्चय ही प्रत्येक पद राग अथवा रागिनी के नाम से युक्त होता और नामकरण में वैषम्य न होता।

(स) इस सन्दर्भ में यह भी स्मरणीय है कि जिन पदावलिया की समीक्षा इस प्रबध में अभीप्ट है उनके मूल गायक सगीत-साधना के लिये नही वरन् अपनी भक्ति-साधना के लिए सगीत को माध्यम बना कर पदावलियो की रचना कर गये है। इस पृष्ठभूमि पर जब इन पदावलियो की रचनाविधि का हम अध्ययन करेंगे तो समझने में कठिनाई नही होनी चाहिये कि भक्त अपनी नैसर्गिक भक्ति की प्रेरणा और उमग में जब इष्ट का गुणगान अपनी स्वर-लहरी में प्रवाहित करता है उस समय सगीत विषयक स्वीकृत विधान उसकी दृष्टि में गौण रहता है, इष्ट का कीर्तन ही प्रधान रहता है। स्वर-लहरी अपने आप सगीतबद्ध हो उठती है, उसके लिए भक्त-गायक को प्रयास नही करना पडता। इस रूप और प्रकार से उद्भूत होने वाले वैष्णव भक्तो के पद पहले स्वीकृत सगीत के किसी ढाँचे

में बँधे होंगे और भक्त-गायक के द्वारा उनका नामकरण किया गया होगा इसकी संभावना बहुत कम जान पड़ती है।

तथापि प्राप्त पदावलियों मे साधारणत. संगीत-शास्त्र स्वीकृत राग-रागिनियों के जो नाम हमे प्राप्त होते हैं उनकी समीक्षा करने के उपरान्त बहुत अंशों मे देखते है कि उनके नामकरण लक्षण सम्मत हैं । जैसा ऊपर उल्लेख किया जा चुका है कि किन्हीं पदों के नामकरणों में विविध पदावलियों में भेद भी पाया जाता है लेकिन कुछ स्थलों को छोड़ कर अन्यत्र नामकरण का यह भेद अंचलीय प्रचलित नामकरणों का फल है अर्थात् भारतीय संगीत परम्परा देशव्यापिनी होते हुए भी क्षेत्रीय प्रभावो से युक्त होकर स्वीकृत हुई थी और एक ही राग या रागिनी के पृथक-पृथक अंचलों मे भिन्न-भिन्न नाम पड़ गए थे । कहीं-कहीं रुचि भेद के अनुसार सामान्य लक्षण परिवर्तन भी कर दिए गए थे । इसी के अनुसार हमें विवेचनीय पदावलियों में नामकरण का भेद मिलता है किन्तु लक्षण साम्य के साथ ऐसी परिस्थिति मे यह कहना अनुचित न होगा कि उपर्युक्त कारणों से नामकरण भले ही मूल पद-गायकों के द्वारा न किये गये हों किन्तु उनके परवर्ती पदावलियों के सम्पादक जिन्होंने विविध पदावलियों के संग्रह प्रस्तुत किए हैं वे संगीत-शास्त्र की स्वीकृत परिपाटियो से परिचित अवश्य थे ।

अतः ऐसी परिस्थिति में कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में प्रयुक्त राग-रागिनियो के विषय पर विचार करते हुए प्रत्येक कवि के जितने हस्तलिखित तथा प्रकाशित पद-संग्रह उपलब्ध हो सके है उन सब मे प्रयुक्त तथा प्राप्त राग-रागिनियों और पद-संख्या का विवरण दिया गया है। यदि किसी कवि का कोई प्रकाशित पद-संग्रह प्रामाणिक रूप म मान्य है तो एकमात्र उसी पर विचार किया गया है। उस कवि के हस्तलिखित तथा अन्य प्रकाशित पद-संग्रहो की विवेचना नही की गई है। जिन पदो के ऊपर राग-रागिनियों के नामो का उल्लेख नही है उनकी गणना भी नहीं की गई है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि हस्तलिखित तथा छपे पद-संग्रहों में पद के ऊपर दिए गये राग अथवा रागिनी के नाम विशेष के साथ अधिकांश स्थलों पर राग अथवा रागिनी शब्द का उल्लेख नहीं किया गया है। जिन पदों के ऊपर राग अथवा रागिनी के नाम के साथ राग अथवा रागिनी शब्द का उल्लेख मिलता है वह प्रायः राग-रागिनी वर्गीकरण के नियमों के अनुकूल नहीं है क्योंकि जो नाम रागिनी की कोटि में आता है उसके साथ भी राग शब्द ही लिखा गया है।

सूरदास

सूरसागर मे प्रयुक्त राग-रागिनियाँ[1]

राग-रागिनियाँ —	पद-संख्या —	राग-रागिनियाँ —	पद-संख्या —
(१) आसावरी	११७	(२) सूहौ	६२

१. काशी नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित सूरसागर के आधार पर ।
परिशिष्ट १ तथा २ में दिये गये पदों की प्रामाणिकता में संदेह होने के कारण उन पदों में दिये गये रागों तथा पदों की गणना नहीं की गई है।

(३) सूहा	३	(३५) भूपाली	४
(४) बिलावल	६२१	(३६) बसत	१४
(५) सारग	६०६	(३७) कामोद	१
(६) कान्हडा / कान्हरो / कान्हरा	२४१	(३८) गाधार	१
		(३९) नायकी	१
		(४०) काफी	३१
(७) धनाश्री	३६८	(४१) मलार कामोद	१
(८) मारू	१५७	(४२) बिलावल रामकली	१
(९) रामकली	२४४	(४३) गुन कली	१
(१०) केदारो	१७१	(४४) गुन सारग	१
(११) केदार	६	(४५) जैजैवती	२
(१२) मलार	३१५	(४६) श्री हठी	८
(१३) गौरी	२६०	(४७) सालत	२६
(१४) नट	२५१	(४८) भैरव	४२
(१५) बिहागडो / बिहागरो	१८२	(४९) नटनारायनी	४
		(५०) भैरवी	३
		(५१) गुडमलार	६४
(१६) सोरठ	१६६	(५२) गौड	३
(१७) कल्यान	१२६	(५३) गुड	५
(१८) परज	४	(५४) पूर्वी	२३
(१९) देवगधार	५०	(५५) बिहागडा	६
(२०) नटनारायन	३२	(५६) मेघमलार	३
(२१) सूहा बिलावल	१६	(५७) श्री	२
(२२) तोडी	७८	(५८) देवगिरि	१
(२३) झिझौटी	१	(५९) षटपदी	१
(२४) बिहाग	२	(६०) भोपाल	१
(२५) गौडमलार	२४	(६१) धमार	१
(२६) गूजरी	५३	(६२) देसकार	१
(२७) जैतश्री	१०६	(६३) रामगिरि	१
(२८) जगला	१	(६४) बसती	१
(२९) अहीरी	२	(६५) राजी हठीली	१
(३०) मुलतानी धनाश्री	१	(६६) राजी श्रीहठी	१
(३१) सवावती	१	(६७) राजी मलार	२
(३२) मुलतानी	१	(६८) राजी रामगिरी	१
(३३) सुधरई	१५	(६९) अलहिया बिलावल	१
(३४) बिभास	११	(७०) श्री मलार	१

(७१) होरी	३	(८०) हमीर	६
(७२) सोरठी	४	(८१) देसाख	२
(७३) अडाना	१८	(८२) संकीर्ण	१
(७४) देवसाख	४	(८३) कर्नाट	२
(७५) ईमन	१९	(८४) वैराटी	१
(७६) गंधारी	१	(८५) सानुत	१
(७७) अलहिया	२	(८६) पुरिया	१
(७८) शंकराभरण	३	(८७) मालकोस	१
(७९) कुरंग	१		

परमानंददास

डा० दीनदयालु गुप्त के 'परमानंददास के हस्तलिखित पद-संग्रह' में प्रयुक्त राग-रागिनियाँ[1] –

राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –
कान्हरा, कानरो, कान्हरो	१९
गोरी, गौरी	४८
सारंग	२१४
गूजरी, गुर्जरी	२
विलावल	३२
धनासिरी, धन्यासी	३५
रामगिरी	२
असावरी, आसावरी	२३
केदारो	५
सोरठी	३

राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –
गंधार	१
कल्याण	१४
मलार	५
तोड़ी	४
वसंत	२
नायकी	१
सामेरी	१
देवगंधार	१
विहाग, विहागरो	१७
मालकोंस	१
रामकली	७
भैरवी	१
जंगला	२
पीलू	१
सिंव	१

---

१. लेखिका को यह पद-संग्रह, डा० गुप्त जी के सौजन्य से देखने को मिला है। प्रस्तुत संग्रह में कुल ४८९ पद हैं जिनमें से १८ पदों के ऊपर राग-रागिनियों का उल्लेख नहीं किया गया है।

भैरव भैरो	६	सूहा नट	१ १
विभास	१५	ईमन	३
		कुल पद	४७१

कुभनदास

डा० दीनदयालु जी गुप्त के 'कुभनदास के हस्तलिखित पद-सग्रह' में प्रयुक्त राग-रागिनियाँ[1] –

राग रागिनियाँ –	पद-सख्या –	राग-रागिनियाँ –	पद-सख्या –
श्री	१	विभास	१
धनासिरी	१३	कल्यान	४
रामकली	१	आसावरी	२
सारग	१७	मल्हार	५
गौरी	६	बसत	३
नट	४	मालवगोडी	१
केदारो	१२	पीलो	१
देवगधार	३	भैरव	२
विलावल	७	ललित	२
नटनारायन	२	मालकौंस	२
कानरो	३	विहागरो	२
		कुल पद	९४

कृष्णदास

काँकरौली-विद्याविभाग तथा श्री नाथद्वार के निजी पुस्तकालय में कृष्णदास अधिकारी के पद-सग्रहो की प्रतियो में प्रयुक्त राग-रागिनियाँ[2] –

प्रति स० ५१/४ 'कृष्णदास के कीतन' (काँकरौली-विद्याविभाग की प्रति)

राग-रागिनियाँ –	पद-सख्या –	राग-रागिनियाँ –	पद-सख्या –
विभास	६	धनासिरी	११

१ लेखिका को यह पद सग्रह, डा० गुप्त जी के सौजन्य से देखने को मिला था। प्रस्तुत सग्रह में कुल ९६ पद दिए हैं जिनमें से २ पदों के ऊपर राग-रागिनियों का उल्लेख नहीं किया गया है।

२ अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय, (भाग १), डा० दीनदयालु गुप्त, पृ० ३२१–२३ के आधार पर।

ललित	१६	आसावरी	१६
भैरव	६	सारंग	१७
विलावल	१६	गौड़ी	४१
टोड़ी	३६	श्री	८
गूजरी	१२	कल्याण	१५
रामकगी	२	कानरा	१५
देवगन्धार	१	केदारा	४०
			कुल पद २६३

प्रति सं० २२/६ 'कृष्णदास के पद' (कांकरोली-विद्याविभाग की प्रति)

राग-रागिनियां –	पद-संख्या –	राग-रागिनियां –	पदसंख्या –
विभास	४३	सारंग	६७
भैरव	७	मालवगौड़ी	२४
विलावल	२८	श्री	१५
टोडी	४३	गौरी	२८
धन्यासिरी	३४	कल्यान	६४
गूजरी	१७	कानरो	१५७
रामग्री	१	केदारो	६५
आसावरी	२३	वसन्त	३०
			कुल पद ६७६

प्रति सं० १५/२ 'कृष्णदास जी के पद' (श्री नाथद्वार के निजी पुस्तकालय की प्रति)

राग-रागिनियां –	पद-संख्या –	राग-रागिनियां –	पद-संख्या –
विभास तथा ललित	४३	सारंग	६५
भैरव	७	मालवगौड़ी	१५
विलावल	२८	श्री	१६
टोड़ी	४१	गौरी	२८
धनासिरी	३	कल्याण	६४
गूजरी	१७	कानरो	१५७
रामग्री	१	केदारो	६६
आसावरी	२१	मल्हार	१४
		वसन्त	३०
			कुल पद ६४६[1]

१. डा० दीनदयालु गुप्त ने कुल पदों की संख्या ६७६ लिखी है किन्तु गणना करने पर कुल पदों की संख्या ६४६ ही आती है।

नवदास

डा० दीनदयालु जी गुप्त के नन्ददास के हस्तलिखित पद-संग्रह में प्रयुक्त राग-रागिनियाँ[1] —

राग-रागिनियाँ —	पद-सख्या —	राग-रागिनियाँ —	पद सख्या —
विभास	३	अडानो	५
रामकली	४	बिहाग }	९
भैरव	२	बिहागडो }	
ललित	२	धनाश्री	३
मालकोस	३	बसत	२
देवगधार	१	काफी	४
बिलावल	४	मारू	६
ईमन	३	मल्हार	३
टोडी	५	जैजैवती	३
सारग	७	आसावरी	३
नट	४	रायसौ	१
पूर्वी (पूरवी)	२	हमीर	१
गौरी	३	गोडी	१
कल्याण	२	पचम	१
नायकी	२		कुल पद १००
कान्हरो	५		
केदार }	६		
केदारो }			

चतुर्भुजदास

डा० दीनदयालु जी गुप्त के चतुर्भुजदास जी के हस्तलिखित पद-संग्रह में प्रयुक्त राग-रागिनियाँ[2] —

राग-रागिनियाँ —	पद-सख्या —	राग-रागिनियाँ —	पद-सख्या —
देवगधार	५	गोडी }	६
भैरव	१०	गोडी }	
रामगरी	३	गौरी }	१३
बिलावल —	१२	गौरी }	

१ लेखिका को यह पद-संग्रह ,डा० दीनदयालु जी गुप्त के सौजन्य से देखने को मिला।

२ वही।

जैतश्री जैतसिरी	२	कानरो कान्हरो	४
वसंत	१	केदारो	५
धनासिरी धन्यासरी धन्यासिरी धनाश्री	१२	नटनारायन सारंग मलार सामेरी मालव गोरी वसंत	३ १ १ १ ३
ललित	३	पंचम	१
रामकली	८	विभास	५
आसावरी	४	नट	३
सारंग	१५	विहाग	१
मल्हार मलार	६	कुल पद	१२६

'कीर्तन संग्रह चतुर्भुजदास'

प्रति सं० २/१ (काँकरोली, विद्याविभाग) में प्रयुक्त राग-रागिनियाँ[1] –

राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –	राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –
भैरव	१२	मालवगोरा	३
विलावल	१२	मलार	११
देवगंधार	७	नटनारायण चर्चरी	११
टोड़ी	१	गौरी	२३
धनासिरी	१४	कल्याण	४
जैतश्री	३	कानरो	८
रामग्री	६	केदारा	१४
आसावरी	४	विहागरो	१
सारंग	४८	सामेरी	१
		वसंत	३
		कुल पद	१८६

१. अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय, डा० दीनदयालु गुप्त, भाग १, पृ० ३८४

गोविन्दस्वामी

डा० दीनदयालु जी गुप्त के गोविन्दस्वामी के हस्तलिखित पद-संग्रह में प्रयुक्त राग-रागिनियाँ[1] –

राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –	राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –
विभास	१२	गौरी	२२
बिलावल	४	श्री	५
रामकली	३	इमन	३१
देवगधार	२	कान्हरो	२८
आसावरी	३	केदारो	२६
टोडी	६	बिहाग	६
धन्याश्री	४	सकराभरन केदारो	६
सारग	३७	मलार	१५
नट	२३	बसत	२
पूरबी	८		
		कुल पद	२५२

छीतस्वामी

डा० दीनदयालु जी गुप्त के छीतस्वामी के हस्तलिखित पद-संग्रह में प्रयुक्त राग-रागिनियाँ[2] –

राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –	राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –
भैरव	५	हमीर	१
रामकली	३	अडानो	१
बिलावल	२	केदारो	१
विभास	३	सोरठ	१
नट	३	इमन	२
देवगधार	२	ललित	१
काफी	२	पूर्वी	२

१ लेखिका को यह हस्तलिखित पद-संग्रह डा० गुप्त जी के सौजन्य से देखने को मिला।

२ वही। इसमें कुल ६२ पद हैं जिसमें १६ पदों के ऊपर राग-रागिनियों के नामों का उल्लेख नहीं किया गया है।

टोड़ी	१	विहाग	३
सारंग	१		
गोरी	४	विहाग	
कल्यान	१	मलार	१
आसावरी	४	वसंत	२
		कुल पद	४६

वल्लभ सम्प्रदायी कीर्तन-संग्रहों में छपे छीतस्वामी के पदों में प्रयुक्त राग-रागिनियाँ –

कीर्तन-संग्रह के तीनों भागों में मिलाकर कवि के ६४ पद प्राप्त होते हैं जो विषयानुसार विभाजित हैं। एक पद में राग के नाम का उल्लेख नहीं किया गया है, शेष ६३ पद राग-रागिनियों के अन्तर्गत मिलते है।

राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –	राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –
विलावल	६	कान्हरो	५
आसावरी	३	विहागरो	१
सारंग	१५	रामकली	३
इमन	३	जेतश्री	१
अड़ानो	१	वसंत	३
देवगंधार	८	विभास	१
मल्हार	१	मालकोश	१
विहाग	१	ललित	१
नट	१	पूर्वी	२
गोरी	३	भैरव	१
कल्याण	२		
		कुल पद	६३

गदाधर भट्ट

श्री गदाधर भट्ट जी महाराज की वानी में प्रयुक्त राग-रागिनियाँ[1] –

गदाधर भट्ट जी की रचना 'श्री गदाधर भट्ट जी महाराज की वानी' की एक हस्त-लिखित प्रति बालकृष्णदास जी चौखम्भा वनारस के पास है। उक्त प्रति को ही लेखिका ने

१. लेखिका को 'श्री गदाधर भट्ट जी महाराज की वानी' नामक हस्तलिखित प्रति श्री वालकृष्णदास जी के सौजन्य से देखने को मिली थी।

देखा है। इसकी पत्र सख्या कुल ३२ है। अत सम्पूर्ण है किन्तु प्रारम्भ का पत्र १ तथा मध्य में १२ से १६ पत्र तक नही है।

इसका लिपिकाल पौष्य शुक्ल सवत १९२६ दिया हुआ है। लिपिकार के नाम का पता नही चलता।

इसमे ध्यान-लीला, सिद्धान्त के पद, सस्कृति पदानि रस के पद, उत्सव के पद तथा हिंडोरे के पद शीर्षक प्रकरण है।

ध्यान-लीला छदो में लिखी गई है। इसमे ५७ छद है। प्रति में प्रथम पत्र के फटे होने के कारण सख्या ६ से छद दिया हुआ है।

'सस्कृत पदानि' विभिन्न छदो में है। छदो का प्रारम्भ पत्र ■ से होता है किन्तु पत्र ११ के उपरान्त फटा हुआ है और १६ तक फटा है। उसके बाद से रस के पद मिलते है। अत छदो की सख्या का पता नही चल पाता। सिद्धान्त के पदो की सख्या २२ है जो विभिन्न रागो में दिए हुए है। पत्र सख्या ४ से ८ तक है।

रस के पदो की सख्या २४ है किन्तु उसका प्रारम्भ फटा होने से उक्त प्रति मे पद सख्या १३ से १४ तक ही मिलती है। इस प्रकार रस के पदो की सख्या केवल १२ ही है जो विभिन्न रागो मे गाये गये है। उत्सव के पदो की सख्या १३ है। १२ पद विभिन्न राग-रागिनिया में गाये गये है और १ पद में राग का नाम नही दिया है।

हिंडोरे के पदो की सख्या ६ है जो विभिन्न रागो के अन्तर्गत है। सम्पूर्ण पदो को मिलाकर उनका रागानुसार विभाजन निम्नलिखित प्रकार से है –

राग-रागिनियाँ –	पद सख्या –	राग-रागिनियाँ –	पद-सख्या –
विभास	५	मारू	३
देवगधार	१	काहरो	२
जैतिश्री	१	हमीर	२
नट	२	वसत	२
सारग	५	काफी	३
भैरो (भैरव)	६	राइसौ	२
श्री	४	विहागरो	१
रामकली	३	धनासिरी	१
बिलावल	१	मलार	२
भूपाली	३	अडानो	२
गौरी	४		
		कुल पद	५५

सूरदास मदनमोहन

सूरदास मदनमोहन के काव्य में प्रयुक्त राग-रागिनियाँ

पं० रामचन्द्र शुक्ल[1] ने सूरदास मदनमोहन के दो पद तथा डा० सरयूप्रसाद अग्रवाल[2] ने वर्षोत्सव-कीर्तन से इनके १२ पद उद्धृत किए है किन्तु उनमें रागों का उल्लेख नही किया है। संगीत-राग-कल्पद्रुम भाग १ तथा २, राग-रत्नाकर तथा वल्लभ सम्प्रदायी कीर्तन-संग्रह भाग १, २ तथा ३ में कवि के कुछ पद रागों में मिलते है जिनका विवरण नीचे दिया जा रहा है।

संगीत-राग-कल्पद्रुम में छपे सूरदास मदनमोहन के पदों मे प्रयुक्त राग-रागिनियाँ –

राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –	राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –
भैरव	६	विभास	१
जयजयवंती	१	विलावल	१
		कुल पद	९

राग-रत्नाकर में छपे सूरदास मदनमोहन के पदों में प्रयुक्त राग-रागिनियाँ।

राग-रागिनियाँ	पदसंख्या	राग-रागिनियाँ	पदसंख्या
भैरव	१	कान्हरा	१
		कुल पद	२

वल्लभ सम्प्रदायी कीर्तन संग्रहों में छपे सूरदास मदनमोहन के पदों में प्रयुक्त राग-रागिनियाँ –

राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –	राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –
आसावरी	१	केदारो	२
गौरी	२	मल्हार	२
ईमन	४	जैतश्री	२
कान्हरो	२	वसंत	१
धनाश्री	१	भैरव	२
सारंग	६	मालकोस	१

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० १८०

२. अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, डा० सरयूप्रसाद अग्रवाल, पृ० ४४७–५०

बिलावल	४	टोडी	१
पूर्वी	४	अडानो	१
नट	१	विहाग	१
कल्याण	२		
		कुल पद	४०[1]

हितहरिवंश

हितहरिवश जी के काव्य में प्रयुक्त राग-रागिनियाँ —

हितहरिवश जी के काव्य में प्रयुक्त राग-रागिनियो की सख्या के विषय में हस्तलिखित पद-सग्रहो में निम्नलिखित कवित्त मिलता है —

छ पद विभास माँझ सात हैं बिलावल में टोडी में चतुर आसावरी में द्वै बने।
सप्त हैं धनासिरी में जुगल बसत केलि देवगधार पद सुर सौ सनै।
सारग में षोडस हैं चारि ही मलार एक गौड में सुहायौ नव गौरी रस सौ सनै।
षट कल्यान निधि कान्हरौ केदारो वेदवानी हित जू की सब चौदह राग में गनै।

इससे ज्ञात होता है कि हितहरिवश जी के पदो में प्रयुक्त राग-रागिनियो की सख्या निम्नलिखित प्रकार से है —

राग-रागिनियाँ —	पद-सख्या —	राग-रागिनियाँ —	पद-सख्या —
विभास	६	सारग	१६
बिलावल	७	मलार	४
टोडी	४	गौड मलार	१
आसावरी	२	गौरी	९
धनासिरी	७	कल्याण	६
बसत	२	कान्हरौ	९
देवगधार	७	केदारौ	४
		कुल पद	८४

किन्तु गणना करने पर उन्ही हस्तलिखित तथा प्रकाशित अन्य पद-सग्रहो में प्राप्त राग-रागिनियो के नाम तथा राग प्रति पद-सख्या उक्त कवित्त से मेल नहीं खाते। यही नही प्रत्येक पद-सग्रह में प्राप्त राग-रागिनियो के नाम तथा उनकी सख्या में भी विभिन्नता है।

१ इन पदों के अतिरिक्त एक पद और मिलता है किन्तु उसमें राग का नाम नहीं दिया गया है।

प्रायः किन्हीं भी दो संग्रहों में साम्य नहीं है। अतः हितहरिवंश जी के जितने भी प्रकाशित तथा हस्तलिखित पद-संग्रह लेखिका के देखने में आये हैं उन सभी का विवरण नीचे लिखी पंक्तियों में दिया जाता है –

प्रयाग-संग्रहालय में हितहरिवंश जी के पद संग्रह

प्रति सं० ३८।२१५, 'चौरासी पद-हितहरिवंश'। प्रति जीर्ण तथा पुरानी अवस्था में है। पदों का विभाजन निम्नलिखित प्रकार से रागानुसार किया गया है –

राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –	राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –
विभास	१	गुज्जरी	७
ललित	५	सारंग	१६
विलावल	७	मल्लार	५
टोडी	४	गौरी	६
आसावरी	२	कल्याण	६
धन्यासी	७	कान्हरो	६
वसंत	२	केदारो	४
		कुल पद	८४

प्रति सं० २१७।१०३, "चौरासी पद-हितहरिवंश"। प्रति सम्पूर्ण है। देखने में पुस्तक वहुत पुरानी नहीं प्रतीत होती। पदों का विभाजन रागों के अन्तर्गत किया गया है किन्तु प्रारम्भ के छै पदों में राग के नामों का उल्लेख नहीं है। सातवें पद से रागों का नाम तथा पदसंख्या उपर्युक्त प्रति सं० ३८।२१५ के अनुसार ही है किन्तु गुज्जरी के स्थान पर राग देवगंधार नाम दिया हुआ है और मलार में ४ पद तथा गौडमलार में १ पद दिया गया है।

प्रति सं० ८५।२१६, चौरासी पद-हितहरिवंश। उक्त प्रति का लिपिकाल संवत् १६०४ मिति सावन वदि ५ है। इसमें राग प्रति पद-संख्या निम्नलिखित प्रकार से है –

विभास	६	सारंग	१६
विलावल	७	मलार	४
टोडी	४	गौडमलार	१
आसावरी	२	गौरी	६
धनासिरी	७	कल्याण	६
वसंत	२	कान्हरो	६
देवगंधार	७	केदारो	४
		कुल पद	८४

इसी प्रति में इन पदो के अतिरिक्त पहले सवैया, छप्पै, कवित्त, कुडलिया, अरिल्ल छदो में हितहरिवश जी की कुछ वाणी दी है उसके उपरान्त निम्नलिखित प्रकार से विभिन्न राग रागिनियो में कुछ फुटकर पद भी दिए है —

राग रागिनियाँ —	पद-सख्या —	राग-रागिनियाँ —	पद-सख्या —
बिलावल	१	गौरी	२
विभास	१	कल्याण	२
धनासिरी	३	मलार	१
बिहागरौ	४		
			कुल पद १४

प्रति स० १६५।२१६, श्रीकृष्ण लीला हितहरिवश। इस प्रति का लिपिकाल सवत् १८४५ वैसाष सु० १० दिया हुआ है। इसमें हितहरिवश जी की वाणी, पहले कवित्त, कुडलिया, अरिल्ल छदो में दी गई है, उसके बाद उनके स्फुट पद विभिन्न राग-रागिनियो में दिए गए है। रागो का नाम, क्रम तथा सख्या ठीक प्रति स० ८५।२१६ के स्फुट पदो की ही भाति है।

हिन्दी-सग्रहालय हिन्दी साहित्य-सम्मेलन में हितहरिवश जी के पद-सग्रह

प्रति स० १३६१।२१६०, "चौरासी पद हितहरिवश"। प्रति अपूर्ण है। इसमें कवि के १६ पद (एक पद आधा दिया है) रागानुसार है। रागो में विभाजन निम्नलिखित प्रकार से मिलता है —

राग-रागिनियाँ —	पद-सख्या —	राग रागिनियाँ —	पद-सख्या —
विभास	६	टोडी	४(एक पद आधा दिया हुआ है)
बिलावल	७	आसावरी	२
			कुल पद १६

याज्ञिक सग्रहालय में हितहरिवश जी के पद-सग्रह

प्रति स० १०५।५५, चौरासी पद-हितहरिवश। इस प्रति में हितहरिवश जी के चौरासी पद निम्नलिखित राग-रागिनियो में दिए हुए हैं —

राग-रागिनियाँ —	पद-सख्या —	राग-रागिनियाँ —	पद-सख्या —
विभास	६	सारग	१६
बिलावल	७	मलार	८
टोडी	४	गौडमलार	१

आसावरी	२	गौरी	६
धनासिरी	७	कल्याण	६
वसंत	२	कान्हरो	१३
देवगंधार	७		
			कुल पद ८४

इसके अतिरिक्त इस प्रति में हितहरिवंश जी की छंदों में वानी तथा स्फुट रस के पद भी दिए हुए है। प्रारम्भ के दो पदों मे राग का नाम नहीं है। तीन पद राग धनासिरी में तथा दो पद राग सारंग में दिए हुए है। आगे की प्रति खंडित है।

प्रति सं० ५०६/५५, हितहरिवंश चौरासी। इसमें हरिवंश जी के ८४ पद विभिन्न रागों के अन्तर्गत दिए हैं। रागों का क्रम तथा संख्या कल्याण राग तक तो ठीक ऊपर की ही तरह है किंतु इस प्रति मे कान्हरो राग में केवल ६ पद मिलते है। शेष चार पद राग केदारो में दिए गए है।

प्रति सं० ७०५/५३०, हितचौरासी—हित हरिवंश। इस प्रति में कवि के ८४ पद दिए है। रागों का क्रम तथा संख्या गौरी राग तक तो प्रति सं० १०५/५५ की ही भाँति है किंतु इसमें कल्याण राग में गाए गए पदों की संख्या १५ है और ४ पद राग केदारो में है। इसमें कान्हरो राग का उल्लेख नहीं मिलता।

प्रति संख्या २८६६/१७८१, श्री चौरासी जू। प्रति का लिपिकाल मि० ६ वदी अषाढ़ सं १९३० दिन सोमवार है। लिपिकार का नाम प्रियादास है। प्रति पूर्ण है। पद संख्या ११० है। इसमें हितहरिवंश जी के ८४ पद ठीक प्रति सं० १०५/५५ में दिए गए रागो में तथा उसी क्रमानुसार लिखे है।

प्रति सं० २८००/१७८२, श्रीमच्चौरासी पद। इस प्रति में हितहरिवंश जी के ८४ पद प्रति सं० ५०६/५५ की भाँति उसी क्रम में तथा उन्हीं राग-रागिनियों में दिए हैं।

संगीत-राग-कल्पद्रुम (भाग एक तथा दो) में हितहरिवंश जी के ३२ पद राग-रागिनियों[1] में दिए है जो निम्नलिखित प्रकार से है —

राग-रागिनियाँ —	पद-संख्या —	राग-रागिनियाँ —	पद-संख्या —
आसावरी	१	विभास	६
मुलतानी	१	देवगंधार	२०
धनाश्री	१	बिलावल	३
			कुल पद ३२

१. राग विभास के अन्तर्गत दिए गए ६ पदों को पुनः राग देवगंधार के अन्तर्गत भी दिया गया है।

संगीत-राग-रत्नाकर में हितहरिवंश जी के ३ पद निम्नलिखित राग-रागिनियों में दिए हुए हैं —

राग-रागिनियाँ —	पद-संख्या —	राग-रागिनियाँ —	पद-संख्या —
देवगधार	२	कान्हरा	१
			कुल पद ३

वल्लभ सम्प्रदायी कीर्तन-संग्रह भाग १, २ तथा ३ में हितहरिवंश जी के १७ पद[1] निम्नलिखित राग-रागिनिया में दिए हुए हैं —

राग-रागिनिया —	पद-संख्या —	राग-रागिनिया —	पद-संख्या —
विलावल	१	ललित	१
सारंग	३	विभास	१
भैरव	१	बसंत	३
पूर्वी	२	मल्हार	४
गोरी	१		
			कुल संख्या १७

व्यास जी

व्यासवाणी में प्रयुक्त राग-रागिनियाँ[2]

राग-रागिनियाँ —	पद-संख्या —	राग-रागिनिया —	पद-संख्या —
सारंग	१८२	पट	११
विलावल	१८	मोजिला	१
केदारो	१८	भोतिला	१
धनाश्री	५६	आसावरी	५
गौरी	४७	गधार	१
नट	२०	बसंत	७
जयतिश्री	११	विहागरो	६
देवगधार	२३	श्री	१
कान्हरो	२६	मलार	१३
भैरव	२	स्याम गूजरी	१
कामोद	१९	देवगिरि	१
रामकली	३	मारू या मारवौ	६

१ इन पदों के अतिरिक्त एक पद में राग के नाम का उल्लेख किया गया है।

२ वासुदेव गोस्वामी रचित 'भक्त-कवि-व्यास जी' नामक ग्रंथ के आधार पर।

भूपाली / भोपाली	५	अलैया विलावल	१
		सूहो बिलावल	१
		तोड़ी	२
गूजरी	१	सूही	१
गौड़मलार	८	पूरवी सारंग	१
कल्याण	२३	ग्रड़ानो	१
			कुल पद ४८२

हरिदासस्वामी

हरिदास स्वामी के काव्य में प्रयुक्त राग-रागिनियाँ

काशी नागरी प्रचारिणी सभा में हरिदास स्वामी का पद-संग्रह

प्रति सं० ३७१/२६६, पद-संग्रह-हरिदास, विट्ठलविपुल, विहारिन देव। इस प्रति में इन तीनों कवियों के पद संग्रहीत हैं। प्रति से लिपिकार के नाम अथवा लिपिकाल का ज्ञान नही होता। पत्र संख्या १ से २७ तक हरिदास स्वामी के पद, पत्र संख्या २८ से ३४ तक विट्ठलविपुल जी की वाणी तथा उसके उपरान्त बिहारिनदेव जी के पद तथा उनकी वाणी दी है। प्रति संपूर्ण है।

हरिदास स्वामी के पदों की कुल संख्या १३० है जिसमें २० पद सिद्धांत के तथा ११० पद शृंगार के हैं। सभी पद विभिन्न राग-रागिनियों मे गाए गए हैं। रागानुसार पदों की संख्या का विभाजन निम्न प्रकार से है –

राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –	राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –
विभास	१४	सारंग	११
विलावल	३	मल्लार	८
आसावरी	७	गौंड मलार	२
कल्याण	१४	वसंत	५
वरारी	१	गोरी	६
कान्हरो	३५	नट	२
केदारो	२२		
			कुल पद १३०

हिन्दी-संग्रहालय हिन्दी साहित्य सम्मेलन में हरिदास स्वामी का पद-संग्रह

प्रति संख्या १६२०/३१७०। इसमें हरिदास, विट्ठलविपुल तथा बिहारिन दास की वाणी दी हुई है। प्रति फटी हुई तथा अपूर्ण है।

हरिदास स्वामी के पदो की कुल सख्या इस प्रति में ११० दी हुई है किन्तु फटी हुई अवस्था में होने के कारण पद सातवी सख्या से प्राप्त होने हैं। पद सख्या ७ से ३० तक राग का नाम नही दिया। सभव है कि प्रारभ में उस पृष्ठ पर जो फट चुका है राग का नाम दिया रहा हो।

इसके बाद पुन पद सख्या १ से २२ तक रागो का नाम नही दिया गया। इस प्रकार कुल ११० पदो में से ५२ पदो में रागो का उल्लेख नही मिलता। शेष ५८ पद विभिन्न राग-रागिनियो में गाये गए हैं जिनका विभाजन निम्नलिखित हैं –

राग-रागिनियाँ –	पद-सख्या –	राग-रागिनियाँ –	पद-सख्या –
कल्याण	१२	गौडमलार	२
सारग	११	वसत	८
विभास	१०	गौरी	६
बिलावल	२	नट	२
मलार	८		——
			कुल पद ५८

विट्ठल विपुल

विट्ठल विपुल जी के काव्य में प्रयुक्त राग-रागिनियाँ

काशी नागरी प्रचारिणी सभा में विट्ठल विपुल जी का पद-सग्रह

प्रति स० ३७१/२६६, पद-सग्रह हरिदास, विट्ठलविपुल, बिहारिनदास। इस प्रति का परिचय हरिदास स्वामी के पदों के प्रसग में दिया जा चुका है। प्रति में विट्ठलविपुल जी के ४० पद निम्नलिखित राग-रागिनियो में लिखे हुए हैं –

राग-रागिनियाँ –	पद-सख्या –	राग-रागिनियाँ –	पद-सख्या –
विभास	४	मल्हार	३
भैरू	८	कल्याण	३
बसत	२	केदारी	६
सारग	११		——
			कुल पद ४०

हिन्दी सग्रहालय, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग में विट्ठल विपुल जी का पद सग्रह

प्रति स० १६२०/३१७० । इस प्रति में हरिदास स्वामी, विट्ठलविपुल तथा बिहारिनदास जी के पद-सग्रहीत हैं। विट्ठलविपुल जी के ४० पद निम्नलिखित राग-रागिनियो तथा सख्या मे लिखे हुए हैं।

राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –	राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –
विभास	४	मल्हार	३
भैरो	१	कल्याण	१
विलावल	७	कानरो	२
वसंत	२	केदारो	८
सारंग	११		
		कुल पद	४०

विहारिनदास

विहारिनदास जी के काव्य मे प्रयुक्त राग-रागिनियाँ

काशी प्रचारिणी सभा में विहारिनदास जी का पद-संग्रह

प्रति सं० ३७१/२६६, पद-संग्रह हरिदास, विट्ठलविपुल, विहारिनदास। इस प्रति में विहारिन दास जी की वाणी दी हुई हैं जिसमें कवित्त, कुंडलिया आदि छंद तथा ३७३ पद हैं। ये पद निम्नलिखित राग-रागिनियों तथा संख्या में दिए गए है –

राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –	राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या–
भैरो	१७	तोड़ी	४
विलावल	२६	जैतश्री	७
रामकली	१४	मलार	७
आसावरी	१४	हिंडोल	४
धनाश्री	६८	काफी	६
सारंग	५८	अटानो	४
नट	६	सोरठ	५
कानरो	२६	कल्याण	१३
गौरी	२३	वसंत	८
केदारो	४६	विहागरो	१
विभास	७	सूहा विलावल	१
देवगंधार	२		
		कुल पद	३७३

हिन्दी-संग्रहालय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन में विहारिनदास जी का पद-संग्रह

प्रति सं० १६२०/२१७०। इस प्रति में विहारिनदास जी की कुछ वाणी दी गई है।

प्रति अपूर्ण तथा खडित है । अत इसमें कवि के केवल ११३ पद निम्नलिखित राग-रागिनियो के अन्तर्गत मिलते है –

राग-रागिनियाँ –	पद-सख्या –	राग-रागिनियाँ –	पद-सख्या –
भैरू	१६	आसावरी	६
बिलावल	११	धनाश्री	६६
रामकली	१०	सारग	१
		कुल पद	११३

श्रीभट्ट

युगल शतक में प्रयुक्त राग-रागिनियाँ

मयाशकर याज्ञिक सग्रहालय में युगल शतक की प्रतियाँ

प्रति सख्या २७११/१६६६, जुगलसत-श्री भट्ट । इस प्रति में पत्र सख्या २८ है किन्तु बीच में स० ११ का पत्र नही है । सग्रह में १०३ पद विभिन्न राग-रागिनियो में दिए गए है । पत्र सख्या ११ के न होने से पद सख्या ३२ से ३५ तक के ४ पद प्रति में नही मिलते । ग्रथ से लिपिकार का नाम तथा लिपिकाल का कोई ज्ञान नही होता । प्रति के ६६ पदों की रागानुसार सख्या निम्न प्रकार है –

राग-रागिनियाँ –	पद-सख्या –	राग-रागिनियाँ –	पद-सख्या –
केदारो	२४	बिलावल	१२
गौरी	४	पचम	२
सारग	१५	बिहागरो	१५
रामकली	१	सोरठ	३
विभास	३	आसावरी	२
भैरो	४	बसत	४
कानरो	१	मलार	६
		कुल पद	६६

प्रति स० ७१२/३२, जुगल सत–श्री भट्ट । इस प्रति में पत्र सख्या ३६ है । प्रारम्भ के १८ पृष्ठो में जुगलसत पोथी लिखी हुई है । इसके उपरान्त विभिन्न कवियो के पद सग्रहीत है ।

जुगलसत के पदो की सख्या क्रमानुसार नही दी गई है । जो पद प्राप्त होते है उनका रागानुसार विभाजन निम्नलिखित है –

राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –	राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –
केदारो	१४	विलावल	६
गौरी	३	पंचम	२
सारंग	१७	विहागरो	७
रामकली	१	सोरठ	१
विभास	३	आसावरी	२
भैंरो	४	हिंडोल	३
कानरो	१	मलार	१४
			कुल पद ८१

प्रति सं० २५१/३२, जुगलसत-श्री भट्ट। यह खंडित प्रति है। बीच-बीच में पृष्ठ नही हैं। इसमे विभिन्न रागों में ६६ पद दिए हुए हैं। पद संख्या ५२ से ५६ तक वाला पृष्ठ उक्त प्रति में नहीं है। अंत भी फटा हुआ है। शेष पदों का विभाजन रागानुसार निम्न प्रकार है –

राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –	राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –
केदारो	११	भैरव	४
गोरी	६	विलावल	७
सारंग	१७	संकराभरन	२
रामकली	८	सोरठ	५
विभास	१	विहागरो	४
			कुल पद ६१

परशुराम

रामसागर में प्रयुक्त राग-रागिनियाँ

प्रति सं० ६८०।४६२, रामसागर। परशुराम जी कृत राममागर काशी नागरी प्रचारिणी सभा में लेखिका के देखने में आया था। रामसागर में कवि के पद भी दिये हुए है। कुछ पदों पर राग-रागिनियों का उल्लेख नहीं किया गया है। शेष पद निम्नलिखित राग-रागिनियों तथा संख्या में मिलते है –

राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –	राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –
ललित	३	मलार	२१
भैरू	१६	गोड़ी	६६

विलावल	४०	सोरठ	३३
टोडी	२२	गुड	१२
आसावरी	६२	कानडो	१५
धनासिरी	२६	केदारो	२३
रामगिरी	३६	मारू	४
मारग	१८४		

कुल पद ५६६

मीराबाई

मीरा के काव्य में प्रयुक्त राग-रागिनियाँ

जैसा कि पूर्व भी कहा गया है वगीय-हिंदी-परिषद से प्रकाशित 'मीरा-स्मृति-ग्रंथ' में छपे पद ही कवियित्री की प्रामाणिक रचना हैं। उसमें छपे पदो के ऊपर राग-रागिनियो का उल्लेख नहीं है। आचार्य ललिता प्रसाद सुकुल जी ने भी लेखिका से वार्ता करते हुए यही बताया है कि जिन हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर प्रस्तुत ग्रंथ में मीरा के पदो का सकलन किया गया है उसमें भी पदो के ऊपर राग-रागिनियो का उल्लेख नहीं है। अस्तु मीरा ने अपने पदो का किस रूप अथवा किन राग-रागिनियो में गायन किया इसके विषय में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

राजा आसकरण

राजा आसकरण के पदो में प्रयुक्त राग-रागिनियाँ

राजा आसकरण के कुछ पद सगीत-राग-कल्पद्रुम, राग-रत्नाकर, वल्लभ सम्प्रदायी कीर्तन-सग्रहो तथा 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' में मिलते हैं जो निम्नलिखित राग-रागिनियो में गाए गए हैं।

सगीत-राग-कल्पद्रुम में छपे राजा आसकरण के पदो में प्रयुक्त राग-रागिनियाँ।

भैरवी	१	रामकली	२
परज	१	विभास	३

कुल पद ७

राग-रत्नाकर में राजा आसकरण का एक पद राग कान्हरो में मिलता है।

वल्लभ सम्प्रदायी कीर्तन-सग्रहो में छपे राजा आसकरण के पदो में प्रयुक्त राग-रागिनियाँ –

आसावरी	२	देवगंधार	२
रामकली	४	जेतश्री	१
टोड़ी	२	भैरव	१
सारंग	६	विभास	१
पूर्वी	२	गोरी	१
नायकी	१	कान्हरो	२
विलावल	३	ईमन	१
नट	१	केदारो	२
विहागरो	१	विहाग	१
मालव	१		
		कुल पद	३८

२५२ वैष्णवन की वार्ता मे छपे राजा आसकरण के पदो में प्रयुक्त राग-रागिनियाँ –

केदारो	६	विभास	४
कान्हरो	१	रामकली	२
गोरी	१		
		कुल पद	१४

गंग ग्वाल

छपे हुए वल्लभ सम्प्रदायी कीर्तन संग्रह (भाग १) में गंगग्वाल का एक पद राग गौरी में मिलता है ।[1]

प्रकाशित रूप में प्राप्त पद के अतिरिक्त उनका यही पद हस्तलिखित रूप में लेखिका के देखने में आया है जिसका विवरण नीचे दिया जाता है ।

---

१. हेरी हेरी रे भैया हेरी हेरी ॥ध्रु०॥
हेरी दे किन गाव ही भलो वन्यो है काज ॥
रानी जसुमति ढोटा जायो आयो व्रज में राज ॥१॥
पट पीरो प्योसार को रानी जसुमति पहरे ताहि ।
दामिनि के भोरे गयों मो मन घोखो आय ॥२॥
नेति नेति जासों कहे ध्यान न आवे रूप ।
सो या वावा नंद के पर्यो देखियत सूप ॥३॥

हिंदी-संग्रहालय, हिंदी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग में हस्तलिखित संग्रह में प्राप्त
गंगग्वाल का पद

प्रति सं० १४५८।२५५५, उत्सव के पद। इस संग्रह में परमानंद, सूरदास, नंददास, हितहरिवंश आदि विभिन्न कवियों के पद संग्रहीत हैं। ग्रंथ अपूर्ण स्थिति में है। इसी में गंग ग्वाल का वही पद जो वल्लभ सम्प्रदायी कीर्तन-संग्रह भाग १ में मिलता है, कुछ पाठ-भेद के अन्तर से गौरी राग में दिया हुआ है। इनका अन्य कोई पद देखने में नहीं आया।

फूले फिरत गुवालिया बिप्रन बूझत धाइ।
कहा कुंवर को नाम है हमसों कहो सुनाइ ॥४॥
नामन की गिनती नहीं सबहिन के शिरताज।
पहलो तो सुमिरहु भैया जाको नाम गरीब निवाज ॥५॥
बूढ़ी बाझ सबै भये क्षीर प्रवाह बहायो।
चाहत चरन गोपाल के मानो इनहीं को जायो ॥६॥
सब ग्वालिन मिलि मतो मत्यो करि मन में आनंद।
आवो पकरि नचाइये ब्रजपति बाबा नंद ॥७॥
ऊँचे मनि को चौंतरा तहां बैठे शिरदार।
देखत भरोसो लगे वाको चित उदार ॥८॥
लघु भैया पायन परे सकुचत हैं ब्रजराज।
उठि किन दादा नाचही पूत भयो है आज ॥९॥
नाचत बाबा नंद जू संग लिये सब ग्वाल।
मलकत मौंदा हालही देखि हँसी ब्रजबाल ॥१०॥
एक ओर ब्रज ग्वालिनीं एक ओर सब पौनि।
पहरावत मधु मंगले या ब्रज की महतौनि ॥११॥
फूलि कह्यो वृषभान जू पूरब पुन्य सगाई।
कीरति कन्या होइगी तो देहौं कुंवर कन्हाई ॥१२॥
भैया भैया कहि टेरियो कहा बड़े कहा छोट।
ठकुराई तिहु लोक की दुरी अहीरन ओट ॥१३॥
यह पद गायो हेत सों गंग ग्वाल सुख पाय।
रोम रोम रसना करौं तो मोपे बरन्यो न जाइ ॥१४॥

वर्षोत्सव-कीर्तन, (कीर्तन-संग्रह भाग १), पृ० ८३

पृ० ८७ पर पुनः गंगग्वाल का यही पद (कुछ शब्दों के हेर फेर से) राग गौरी में दिया है।

पिछले पृष्ठो पर की गई विवेचना से यह स्पष्ट है कि कृष्णभक्तिकालीन साहित्य मे संगीत की अनेक राग-रागिनियों का प्रयोग हुआ है । कृष्णभक्तिकालीन कवियों के द्वारा प्रस्तुत की गई पदावली-सामग्री की यदि समीक्षा की जाय तो इस समस्त संगीतमय काव्य को हम तीन कोटियों में विभक्त कर सकते है ।

(१) इनमें से अधिकांश तो प्रचलित सामयिक संगीत-रूपों में अभिव्यक्त है जो 'कृष्ण-भक्तिकालीन कवियों के समय में प्रचलित राग-रागिनियाँ' शीर्षक प्रकरण में संलग्न वर्गीकरण से ज्ञात हो जाता है । इस कोटि के अन्तर्गत निम्नलिखित राग-रागिनियाँ आती है ।[1]

(१) आसावरी	(२) मुलतानी	(३) धनाश्री	(४) विभास
(५) देवगंधार	(६) विलावल	(७) सारंग	(८) भैरव
(९) पूर्वो	(१०) गौरी	(११) ललित	(१२) वसंत
(१३) मल्हार	(१४) टोडी	(१५) गुर्जरी	(१६) कल्याण
(१७) देशी	(१८) गंधार	(१९) कुरंग	(२०) भीमपलासी
(२१) जयतश्री	(२२) मालश्री	(२३) पूरवी	(२४) मालव
(२५) श्री	(२६) त्रिवण	(२७) विहाग	(२८) भैरवी
(२९) सोरठ	(३०) खंबावती	(३१) परज	(३२) मालकोस
(३३) नट	(३४) हिंडोल	(३५) इमन	(३६) जयजयवंती
(३७) रामकली	(३८) सूहो	(३९) मारू	(४०) केदारा
(४१) नटनारायण	(४२) अहीरी	(४३) सुघरई	(४४) भूपाली
(४५) कामोद	(४६) काफी	(४७) गुनकली	(४८) श्री हठी
(४९) गौड़	(५०) गुड	(५१) विहागड़ा	(५२) देवगिरि
(५३) देसकार	(५४) रामगिरि	(५५) वसंती	(५६) सोरठी
(५७) अडाना	(५८) देवसाख	(५९) गंधारी	(६०) राइसी
(६१) शंकराभरण	(६२) हमीर	(६३) कर्नाट	(६४) वैराटी
(६५) पुरिया	(६६) टंक	(६७) पट	(६८) कानरा
(६९) सिंदूरा	(७०) सूहा	(७१) मालवगौरा	(७२) जंगला
(७३) झिझौटी	(७४) सामेरी	(७५) पंचम	(७६) सिंध
(७५) मालवगोडी	(७८) वरारी		

(२) किन्तु कुछ थोड़े से पद प्राचीन परिपाटी के अनुसार पूर्व स्वीकृत किन्तु अप्रचलित राग-रागिनियो में आबद्ध हैं । इस कोटि में निम्नलिखित राग-रागिनियों वाले पद आते हैं –

(१) देशी तोड़ी	(२) श्री गौरी	(३) गौड़ सारंग
(४) गौड़ मलार	(५) मेघ मलार	(६) अलहिया'

१. लोचन कृत राग-तरंगिणी में इन राग-रागिनियों का उल्लेख किया गया है ।

(३) भक्त गायकों द्वारा देश के विस्तृत क्षेत्र में और विस्तृत काल में जिस विपुल पदावली काव्य-साहित्य की सृष्टि हुई उसमें अनेक नवीन प्रयोगों का होना भी स्वाभाविक ही था क्योंकि काव्य-परंपरा के अनुसार ही हमारे देश की संगीत-परंपरा भी अति प्राचीन, पुष्ट और प्रगतिशालिनी रही है। ऐसी दशा में सम्पन्न और शाश्वत स्फूर्तिदायक वातावरण और आलंबन को पा कर संगीत के क्षेत्र में नवकलात्मक प्रयोग न किए जाने यह असंभव था। कृष्ण-भक्ति-कालीन साहित्य में निम्नलिखित नवीन राग-रागिनियों का प्रयोग हुआ है —

(१) गुन सारंग	(२) मलार कामोद	(३) बिलावल रामकली
(४) सूहा बिलावल	(५) गुंड मलार	(६) राम्री हठीली
(७) जलहिया बिलावल	(८) श्री मलार	(९) सानुन
(१०) नायकी	(११) संकराभरन केदारो	(१२) पूरिया सारंग
(१३) मोजिला	(१४) मोतिला	(१५) सारंग मलार
(१६) राम्री श्रीहठी	(१७) राम्री मलार	(१८) राम्री रामगिरि
(१९) सकीण	(२०) स्याम गूजरी	(२१) पीलू
(२२) मुलतानी धनाश्री	(२३) नटनारायनी	(२४) षटपदी
(२५) सारंग मलार		

निश्चित रूप से यह तो नहीं कहा जा सकता कि कृष्ण-भक्ति-कालीन-साहित्य में प्रयुक्त इन नवीन राग-रागिनियों की सृष्टि हमारे कृष्णभक्तिकालीन कवियों के द्वारा ही हुई थी अथवा उनके समसामयिक अन्य संगीताचार्यों द्वारा किन्तु कृष्णभक्तिकालीन कवियों के संगीत-ज्ञान तथा बहुमुखी प्रतिभा को देखते हुए यह भी संभव है कि इन नवीन राग-रागिनियों का सृजन हमारे इन कवियों के द्वारा ही हुआ हो।

कृष्णभक्तिकालीन कवियों से संबंधित कुछ राग-रागिनियाँ ऐसी भी हैं जिनका प्रयोग उनके काव्य में नहीं मिलता किन्तु प्रचलित जनश्रुतियों के आधार पर संगीताचार्य निम्नलिखित राग-रागिनियों को परंपरा से निम्नलिखित कवियों द्वारा आविष्कृत मानते आये हैं —

सूरदास — (१) सूर की मल्हार[1] (२) सूर सारंग
मीरा — (१) मीराबाई की मल्हार

कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में प्रयुक्त राग-रागिनियां तथा उनकी संख्या के अध्ययन से कुछ विशेषतायें दृष्टिगोचर होती हैं।

(१) कृष्णभक्तिकालीन कवियों को कुछ विशेष रागों से अधिक मोह था। उन्होंने

१ कुछ लोग इसे रामदास के पुत्र सूरदास मदनमोहन के द्वारा आविष्कृत मानते हैं, संगीत, अगस्त १९५०, पृ० ५३४

उनका अतिमात्रा मे प्रयोग किया है । कुछ रागों का नगण्य प्रयोग है तथा कुछ विशिष्ट राग ऐसे भी है जो किन्ही कवियो विशेष को ही आकर्षित कर सके है ।

कृष्णभक्तिकालीन प्राय: सभी कवियों ने 'सारंग' राग का अतिमात्रा में प्रयोग किया है । परमानंददास, कुंभनदास, चतुर्भुजदास, गोविन्दस्वामी, छीतस्वामी, सूरदास मदनमोहन, हितहरिवंश, व्यासजी, विट्ठलविपुल, विहारिनदास, परशुराम, आसकरण इन सभी कवियों के प्राप्त पदो मे सबसे अधिक प्रयोग सारंग राग का ही किया गया हैं । सूरदास, कृष्णदास, नन्ददास, गदाधर भट्ट, तथा श्री भट्ट के पदों में भी क्रमश: विलावल, कानरो, विहाग, भैरों तथा केदारो के पश्चात् उनसे कुछ न्यून संख्या में किन्तु अन्य सभी राग-रागिनियों से अधिक मात्रा में सारंग राग ही प्रयुक्त हुआ है । हरिदास स्वामी के पदो मे कान्हरो, केदारो, विभास और कल्याण के उपरान्त सारंग राग का ही अधिक प्रयोग है । इससे ऐसा ज्ञात होता है कि सारंग राग वृन्दावन के इन कृष्णभक्तिकालीन कवियों का अत्यधिक प्रिय राग था और उसके अतिमात्रा के प्रयोग के कारण ही उसी स्थान के नाम पर इस राग का नाम वृंदावनी सारंग पड़ गया है । इस तथ्य की पुष्टि इससे भी होती है कि कृष्णभक्तिकालीन कवियो के समय से पूर्व वृंदावनी सारंग नामक राग का कही भी उल्लेख नही मिलता ।

सारंग के पश्चात् विलावल, गौरी, कान्हरो, भैरव, धनाश्री तथा केदारो का प्रयोग अधिक मिलता है । किन्तु इनमें भी विलावल सूरदास का, गौरी चतुर्भुजदास तथा हितहरिवंश का, कान्हरो कृष्णदास तथा हरिदास स्वामी का, भैरव गदाधर भट्ट का, धनाश्री विहारिनदास का और केदारो श्री भट्ट का सबसे अधिक प्रिय राग रहा है। इन रागो से कुछ कम मात्रा में ईमन, नट, तोड़ी, रामकली, आसावरी, वसंत, मल्हार, देवगंधार, विभास और कल्याण का प्रयोग किया गया है । मालकोश, पूर्वी, ललित, गुर्जरी, श्री, परज, विहाग, कान्हरा, भूपाली, अडानो, मारु, विहागरो, काफी, जयतश्री, नायकी, भैरवी, मालव, सोरठ का प्रयोग न्यून संख्या में किन्तु अधिकांश कवियों के द्वारा हुआ है । मुलतानी का प्रयोग सूरदास तथा हितहरिवंश के. पंचम का श्री भट्ट तथा नंददास के, पट का व्यास तथा नंददास के, गौड़ी का कृष्णदास तथा परशुराम के, रामश्री का कृष्णदास तथा चतुर्भुजदास के, नटनारायण का सूरदास तथा चतुर्भुज-दास के, जयजयवंती का सूरदास, नंददास तथा सूरदास मदनमोहन के, सूहाविलावल का सूरदास, व्यास, विहारिनदास के, गुंड का सूरदास तथा परशुराम के, शंकराभरण का सूरदास तथा श्री भट्ट के, हमीर का सूरदास तथा गदाधर के और सूहो, कामोद, देवगिरि तथा अल-हिया विलावल का सूरदास तथा व्यास जी के ही पदों में प्रयोग किया गया है ।

कुछ राग-रागिनियां ऐसी भी मिलती है जिनका प्रयोग केवल एक ही कवि के द्वारा किया गया है । यथा –

सूरदास –जंगला, अहीरी, सुघरई, मलार, कामोद, वैराटी, विलावल, रामकली, गुनकली, गुन सारंग, सानुत, श्री हठी, नटनारायनी, गुंडमलार, गौड़, पुरिया, मेघ मलार,

भूपाल, देसकार, रामगिरि, झिझौटी, बमती, राग्री हठोली, राग्री श्रीहठी, खवावती, राग्री मलार, राग्री रामगिरि, श्री मलार सूहा, सोरठी, देवसाख, सघारो, अलहिया, कुरग, देसाख, मकीर्ण और कर्नाट।

चतुर्भुजदास –सामेरी

गोविन्दस्वामी –शकराभरण केदारो

गदाधर भट्ट –राइमो

व्यासजी –मोजिला, मोतिला, स्याम गूजरी, पूरबी सारग, गान्धार

हरिदास –वगरी

किन्तु इन राग-रागिनियो में प्रयुक्त पदो की सख्या बहुत थोडी है।

(२) फारसी तथा भारतीय रागो के समन्वय से आविष्कृत रागो में केवल 'ईमन राग' का ही प्रयोग कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में मिलता है।

(३) कृष्णभक्तिकालीन साहित्य के अन्तर्गत एक ही राग के नाम को विकृत करके कई प्रकार से प्रयोग किया गया है। यथा–

(१) धन्यासी, धनासी, धनाश्री, धन्यासिरी, धनासिरी, धनासरी
(२) अडानो, अडानी, अडाना
(३) गोरी, गौरी
(४) बिहागरो, बिहागरी, बिहाग, बिहागडा, बिहागडौ
(५) केदारो, केदारी, केदारा, केदार
(६) इमन, ईमन
(७) जयतश्री, जैतश्री
(८) भूपाल, भोपाल, भूपाली, भोपाली
(९) जयजयवती, जैजैवती
(१०) मालवगौरी, मालवगौडी, मालवगौरा
(११) मालव कौशिक, माल-कोश, मालकोस
(१२) कान्हरा, कान्हरो, कान्हरौ, कानरो, कान्हडो
(१३) पूरवो, पूर्वी, पुरवी
(१४) मारू, मरवो
(१५) सूहौ, सूहा
(१६) असावरी, आसावरी
(१७) भैरो, भैरव, भैरू
(१८) देसाख, देवसाख, देशाख

(४) कुछ नाम ऐसे भी मिलते हैं जो राग की श्रेणी में नहीं रखे जा सकते यथा होली, धमार, नटनारायण तथा चर्चरी।

होली तथा धमार कोई विशेष राग नहीं है वरन् ध्रुपद, ख्याल आदि की तरह शैलियां विशेष हैं। नटनारायण की गणना अवश्य राग की कोटि में की जाती है किंतु चर्चरी एक ताल विशेष का नाम है। ऐसा प्रतीत होता है कि संभवतः संकलन कर्त्ताओं ने भ्रमवश इन नामों का राग-रागिनियों की कोटि में उल्लेख कर दिया है। यह भी संभव है कि होली का विशेष प्रचलन होने के कारण होली शब्द किसी विशेष धुन अथवा राग का व्यंजक हो और इस कारण राग के स्थान पर इसका उल्लेख साम्प्रदायिकता का व्यंजक बन गया हो परन्तु चर्चरी तथा धमार को किसी भी प्रकार राग का व्यंजक नही माना जा सकता।

कृष्णभक्तिकालीनसाहित्य संगीत की अनेकों राग-रागिनियों का अमूल्य कोष है। कृष्णभक्तिकालीन कवियों ने पूर्ववर्ती तथा अपने समय में प्रचलित राग-रागिनियों को तो अपनाया ही साथ ही अपनी सर्वतोन्मुखी प्रतिभा से नवीन राग-रागिनियो का संयोग करके संगीत-श्री की अभिवृद्धि की। इन कवियों ने राग-रागिनियों के द्वारा जिस संगीत काव्य के प्रासाद का निर्माण किया उसमें प्राचीनता, मौलिकता तथा नवीनता का अमर समन्वय किया है। इन कवियों ने अपने काव्य में इतनी अधिक राग-रागिनियों का समन्वय किया कि उनके स्वरों में वह स्वर्गसंगीत छिड़ा कि उनकी स्वरलहरी से सम्पूर्ण काव्योपवन लहरा उठा। संगीत की जो धारा इन कवियों ने वहाई है पूर्ववर्ती अथवा परवर्ती साहित्य उसकी समता नहीं कर सकता।

षष्ठ अध्याय

कृष्णभक्तिकालीन साहित्य की समीक्षा सगीत-सिद्धातो के निकर्ष पर

रस और राग-सिद्धान्त

रसानुराग मनुष्य मात्र में नैसर्गिक रूप से है। "मानव गोरा हो या काला, पूर्व का हो या पश्चिम का, उच्चवर्ग का हो या निम्नवर्ग का, पडित हो या अपडित, यदि किसी अश में भी मानव-सज्ञा को सार्थक करता है तो मानवोचित प्रेरणा से वह नितान्त शून्य कदापि नही हो सकता। उसका हृदय विशाल हो या सकुचित, बुद्धि तीव्र हो या मन्द, यदि उसके शरीर में मानवरक्त का सचार है तो रसोद्रेक अनिवार्य चेतना है।"[1] इसे ही काव्य-शास्त्रियो ने 'व्यसन' कहा है। काव्य में रस-चैतन्य की क्रिया जिस प्रकार अर्थ-चमत्कार और उपयुक्त स्वर-साहचर्य के माध्यम से साधी जाती है उसी प्रकार सगीत में रस-चेतना का विकास विशुद्ध ध्वनि के माध्यम से सधता है।

राग और रस का गहन सबध है। राग का वास्तविक अर्थ है भावना।[2] प्रत्येक राग विशिष्ट भावनाओ से सबधित माना जाता है क्योकि प्रत्येक राग की सृष्टि विशिष्ट स्वरो के मेल से होती है और विशिष्ट स्वरो में विशेष भावो को प्रकट करने की शक्ति निहित रहती है। जिस प्रकार वाणी के विभिन्न उच्चारणो से विभिन्न भाव प्रकट होते है अर्थात् अधिक जोर से बोलने पर लडने, झगडने, हँसने और आश्चर्य का भाव प्रकट होता है, मन्द-वाणी से दैन्य, माधुर्य, धैर्य, शाति आदि गुण प्रदर्शित होते है उसी प्रकार सगीत में भी विभिन्न स्वरो के गायन से विभिन्न भाव प्रदर्शित होते हैं। "सगीत के श्रोता प्राय यह पूछा

---

१ काव्य-चर्चा, ललिताप्रसाद सुकुल, पृ० १२६

2 "Rag means passion, emotion and feeling"
Sangit of India, Atiya Begum, Page 50

करते हैं कि गाने वाले एक ही शब्द को बार-बार दुहराते क्यों हैं ? उत्तर यह है कि यद्यपि शब्द एक ही होता है तथापि प्रत्येक बार जिन स्वरों में वह शब्द गाया जाता है वे भिन्न होते हैं और भिन्न-भिन्न भावों को व्यक्त करते हैं। उदाहरण के लिए एक छोटा सा शब्द लीजिए 'सुनो'। देखिए, बोलने में भिन्न-भिन्न भावों के अनुसार एक इसी 'सुनो' शब्द की ध्वनि किस प्रकार बदलती है। जब हम साधारण रीति से किसी का ध्यान अपनी बात की ओर आकृष्ट करना चाहते हैं तो कहते हैं 'सुनो'। जब हम अनुनय-विनय के साथ किसी को सुनने के लिए कहते हैं तब ध्वनि बदल जाती है और हम कहते हैं 'सुनो ......'। जब हम भय प्रदर्शन करना चाहते हैं तब उसी 'सुनो' शब्द की ध्वनि फिर बदल जाती है। जब हम हृदय की वेदना व्यक्त करना चाहते हैं तब उसी 'सुनो' शब्द की ध्वनि फिर बदल जाती है। नाटक में कुशल अभिनेता भिन्न-भिन्न ध्वनियों से भिन्न-भिन्न भाव प्रकट करता है। संस्कृत के साहित्यकार भिन्न-भिन्न ध्वनियों से भिन्न भावों को व्यक्त करने की कला को 'काकु' कहते हैं। जैसे साहित्यदर्पणकार ने लिखा है 'भिन्नकंठध्वनिर्धीरः काकुरित्यभिधीयते'। जब साधारण ध्वनि में एक ही शब्द के द्वारा भिन्न-भिन्न भाव व्यक्त करने की इतनी शक्ति है तो स्वर में जो कि सुनियमित और सुव्यवस्थित ध्वनि है कितनी शक्ति होगी इसकी आप स्वयं कल्पना कर सकते हैं। जैसे ध्वनि का 'काकु' होता है उसी प्रकार स्वर का भी 'काकु' होता है जिसे कि एक कुशल गायक तरह-तरह से व्यक्त करता है। अब मैं उसी 'सुनो' शब्द को बागेश्वरी राग के एक गान में भिन्न-भिन्न रूप से विश्लेषण करता हूँ। गान है 'टेर सुनो ब्रजराज दुलारे'। इसमें ध्यान से देखिएगा 'सुनो' पहले एक हलके खटके के साथ गाया जायगा मानो जैसे कोई 'सुनने' के लिए अपनी ओर ध्यान आकृष्ट कर रहा हो। इसके अनन्तर 'सुनो' इस ढंग से गाया जायगा जिससे करुणा व्यक्त होगी। फिर 'सुनो' शब्द को, स्वरों के बिना तोले हुए, तीन लपेट में गाया जायगा जिससे यह व्यक्त होगा कि कोई करुणापूर्ण विनय के साथ झूम-झूमकर किसी को सुनने के लिए मना रहा हो। फिर 'सुनो' को इस प्रकार गाया जायगा जिससे यह व्यक्त होगा कि अब कोई मचल-मचल कर सुनने के लिए अभ्यर्थना कर रहा हो। अन्त में 'सुनो' एक छोटी तान के साथ गाया जायगा, जिससे हृदय की व्यथा एक व्यग्रता के साथ व्यक्त होगी।" '

उक्त उदाहरण से दृष्टव्य है कि प्रत्येक राग स्वरों के माध्यम से भावों को व्यक्त कर विशेष वातावरण की सृष्टि करके विशेष रस की उत्पत्ति करता है। स्वरों के संयोजन, प्रयोग, संकोचन, विश्रांति, उतार, चढ़ाव, खटका, लपेट, कम्प, आस, सांस आदि द्वारा विशिष्ट भावों के प्रगटीकरण से विशिष्ट रसों की उत्पत्ति होती है।

विविध प्रकार के रसोद्रेक का सहज प्रभाव मनुष्य ही क्यों प्राणी मात्र की वाणी पर पड़ना अवश्यम्भावी प्रक्रिया है। इसी से हमें यह वैज्ञानिक संकेत मिलता है कि बाह्य स्वर-लहरी भी अन्तर में निहित रसात्मक व्यसन को उत्तेजित करने में अचूक सिद्ध होती है।

---

१. संगीत, अप्रैल, १९५५, संगीत सुनने की कला, ठाकुर जयदेवसिंह, पृ० ३–४

यही है संगीत की शक्ति कि संगीत-कला का ज्ञाता स्वरों के आरोह और अवरोह के माध्यम से यथा अवसर अभीप्सित रस-चेतना श्रोता में जागृत कर सकता है।

भारतीय संगीत के सातों स्वर रस प्रधान माने गए हैं। नाट्य-शास्त्र में भरत मुनि ने कहा है—

"हास्य और शृंगार में म तथा प, वीर, रौद्र तथा अद्भुत में सा और रे, करुण रस में ग तथा नि और वीभत्स तथा भयानक रस में ध स्वरों का प्रयोग करना चाहिए।"[1]

संगीत-रत्नाकरकार ने भी प्रत्येक स्वर को विशिष्ट रस से सबंधित माना है—"सा और रे वीर, अद्भुत और रौद्र रस को ध, वीभत्स तथा भयानक रस को ग और नी करुण को तथा म और प हास्य एवं शृंगार रस को उद्दीप्त करते हैं।"[2] संगीत-मकरन्द के अनुसार "षडज में अद्भुत तथा वीर, ऋषभ में रौद्र, गाधार में शांत, मध्यम में हास्य, पंचम में शृंगार, धैवत में वीभत्स और निषाद में करुण रस होता है।"[3] अहोबल पंडित ७ स्वरों का नवरसों के अन्तर्गत वर्गीकरण करते हुए कहते हैं—"षडज हास्य रस में, मध्यम शृंगार में होता है तथा धैवत वीभत्स रस में और निषाद करुण रस में एवं पंचम भयानक रस में होता है। ऋषभ शृंगार में और गाधार हास्य रस में होता है।"[4]

---

१ हास्यशृंगारयो कार्यौ स्वरौ मध्यम पंचमौ।
षडजर्षभौ च कर्तव्यौ वीर रौद्राद्भुतेष्वथ॥
गाधारश्च निषादश्च कर्तव्यौ करुणे रसे।
धैवतश्च प्रयोक्तव्यौ वीभत्से च भयानके॥
नाट्य-शास्त्र, भरत, स० बटुकनाथ शर्मा तथा बलदेव उपाध्याय,
एकोनत्रिंशत्तमोऽध्याय, पृ० ३३१, श्लो० स० १७-१८

२ स री वीरेऽद्भुते रौद्रेधो वीभत्से भयानके।
कार्यौ ग नी तु करुणे हास्य शृंगारयोर्मपौ॥
संगीत रत्नाकर, शार्ङ्गदेव, प्रथम भाग, स० प० एस० सुब्रह्मण्य शास्त्री, पृ० ६६,
श्लो० स० ५६

३ षडजस्याऽद्भुतवीरौ च ऋषभस्य च रौद्रक।
गाधारस्य च शान्ति च हास्यास्य मध्यमस्य च॥
पंचमस्य च शृंगारो वीभत्सो धैवतस्य च।
करुणा च निषादस्य सप्तस्थान रसा नव॥
संगीत-मकरन्द, नारद, स० मगेश रामकृष्ण तेलग, श्लो० स० ४७-४८

४ स-मौ हास्ये च शृंगारे स्वरौ स्याता तथा ध नौ।
पो वीभत्से तथा दैन्ये भयानक रसे भवेत्।
रसे शृंगारके रि स्याद्गाधारो हास्यके पुन॥
संगीत-पारिजात, अहोबल, पृ० २६, श्लो० स० ६४

यद्यपि प्रत्येक स्वर में रस-भाव का संचरण तो अवश्य होता है किन्तु रस का वास्तविक रूप अथवा पूर्ण अनुभव विभिन्न स्वरों के मेल में ही होता है। यह तो नितांत सत्य है कि रसों के स्थायी भाव संगीत के स्वरों में पाये जाते हैं। रसानुकूल विभाव, अनुभाव, सात्विक और संचारी भाव भी संगीत के स्वरों में निहित हैं किन्तु रस की पूर्णतः व्यंजना तभी हो सकती है जब कि स्वरों का मेल स्थापित हो जाय। प्राचीन काल में जब संगीत के रागों की उत्पत्ति नहीं हुई थी। रागों के रूप में जातियां प्रचलित थीं। उस समय ये जातियां ही विभिन्न रसों की अवतारणा करती थीं और उन्हीं के माध्यम से रस की सृष्टि की जाती थी। कालांतर में रागों ने यह स्थान ले लिया।

सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ के दो पक्ष हैं। सृष्टि ही क्यों स्वयं पुरुष और शक्ति के भी मधुर और प्रचंड पक्ष हैं। हमारे संगीत के भी ये दो पक्ष हैं जो सुख-दुख, रुदन-हास, प्रेम-भय, आसक्ति अनासक्ति की ओर इंगित करते हैं। संगीत में आँसू ही आँसू अथवा करुणा ही को प्रगट करने की एकमात्र शक्ति नहीं वरन् उसके द्वारा प्रायः प्रत्येक रस[1] का सफल अनुभव कराया जा सकता है। संगीत की सृष्टि में जहां माधुर्य रस की सरिता है वहां वीर-करुण आदि रसों के सागर भी प्रस्तुत हैं। "साहित्य का इतिहास इसका साक्षी है कि संसार न केवल हर्ष या प्रेम के क्षणों में ही गाता रहा है वरन् करुण, वीर वा भयानक रसों का उद्रेक भी उसके कण्ठ से उसी प्रकार गीत को प्रवाहित कर सका है। प्रेम-विह्वल हृदय यदि गीत में सुख पाता है तो वही करुणा से द्रवीभूत होकर गीत से सहानुभूति एवं शांति का अनुभव करता है, परन्तु वीरता के उद्रेक में रौद्र और भयानक का पुट पाकर उसी गीत के द्वारा उत्साह, साहस और शौर्य का सन्देश प्राप्त करता है।"[2] प्रत्येक राग लयरूप में शृंगार, करुण, वीर आदि किसी रस की ओर संकेत करता है। यदि श्री राग शृंगार का प्रतीक है तो भैरव वैराग्य का। राग नटनारायण में संगीत यदि भयानक शक्ति, साहस और वीरता का रूप धारण करता है तो करुणा के आवेश में संगीत दो बूंद आंसू बन कर सोहनी के रूप में वह निकलता है। मालकोश के स्वरों में करुण रस उत्पन्न करने की महान शक्ति है तो शुद्ध कान्हड़ा या दरबारी गंभीर और संयत राग है। अड़ाना में चंचलता है तो सोहनी में चपलता। नीरव निशीथ में विरह की निस्तब्धता का आह्वान पंचम राग के द्वारा परिस्फुट होता है तो मेघ राग से हृदय उल्लास, आशा और हर्षातिरेक से उद्वेलित हो जाता है। "हम लोगों का गान भारतवर्ष की नक्षत्र-खचित निशीथिनी को भाषा देता है, हम लोगों का गान वन-वर्षा की विश्वव्यापी विरह-वेदना और नव वसन्त की वनान्त प्रसारित गंभीर उन्मादना को वाक्य-विस्मृत

---

१. "क्या संगीत में नव रसों को प्रकाशित करने की शक्ति है, इस विषय पर संगीताचार्यों में मत-भेद है।

२. काव्य-चर्चा, ललिताप्रसाद सुकुल, पृ० ३७-३८.

विह्वलना है।"[१] कहने का तात्पर्य यह है कि प्रत्येक राग किसी न किसी विशेष रस का सचरण करता है और इस रसश्री की उपलब्धि में मानव अपने आपको विस्मृत कर देता है। आकाशवाणी से प्रसारित वार्ता में श्री सुमित्रानदन पंत के यह पूछने पर कि "विशेष रस के लिए विशेष रागिनियाँ होनी हैं, क्या यह सत्य है?" प० ओंकारनाथ जी ठाकुर ने भी यही कहा था कि "यह निनान्त सत्य है। प्रत्येक राग विशेष रस के लिए होता है। प्रकृति से पाई हुई यह बात है पर उच्चारण भेद से, आवाज़ की लगान से उसकी फ्रीक्वेन्सी भिन्न-भिन्न रेशो के द्वारा भिन्न भिन्न परिणाम आ सकते है।"[२]

सगीत में रस का विवेचन करते हुए इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि एक राग कई रसो के अन्तर्गत आ सकता है। करुण तथा वियोग शृगार के अन्तर्गत आने वाले राग बहुत कुछ समान भी हो जाते हैं परन्तु इसका कारण केवल अभिव्यक्त करने का अपना अलग-अलग ढग है। सारग और मल्हार रागो में दोनो रसों की समान अभिव्यक्ति होती है। दरबारी को शृगार तथा भक्ति रस दोनो के अन्तर्गत रख सकते है। मालकोश हृदय द्रावक राग है। उससे शात तथा भक्ति दोनो रसो की निष्पत्ति होती है। इसी प्रकार सैंधवी, वीर और करुण, गौडी, गौड तथा धन्नासिका वीर और शृगार, देसी विरक्ति के भाव तथा करुण रस दोनो की अभिव्यक्ति करता है।

रागो से उत्पन्न होने वाले रस को हम दो भागो में बाट सकते है, (१) मृदु तथा (२) उदात्त। कुछ रागो की रस-प्रतीति में मार्दव गुण रहता है तथा कुछ रागो में उदात्तता। कल्याण, ईमन, भैरवी, पीलू तथा बागेश्वरी रागों की ध म अथवा म प ध ग में करुण-अभ्यर्थना निहित है। भैरव, मालकोस आदि रागों में सम की सगति श्रोताओं को प्रबुद्ध सा करती है। दरबारी आदि रागो में उदात्तता है। वात, पित्त तथा कफ के स्वरो के कारण ही राग-रागिनियो में विभिन्न प्रभाव भरा हुआ है। किसी भी पद को आप बिहागडा, बिहाग, खमाज, यमन, कल्याण आदि पित्त-प्रकृति का प्रभाव रखने वाली राग-रागिनियो के अन्दर गाते-गाते फिर एकदम से भैरव, कालिंगडा, जोगिया, परज, विभास आदि की कफ-प्रकृति की राग-रागिनियो में वे ही पद गाने लगें तो क्षण मात्र में ही गाने वाले का तथा श्रोताओं का भाव परिवर्तित हो जायगा। पद का भाव चाहे शृगार रस से ही परिपूर्ण क्यो न हो किन्तु कफ-प्रकृति की राग-रागिनिया उस पद का शृगार रस दूर करके अपना शीताग प्रभाव अवश्य डाल देंगी अर्थात श्रोतागणो और गायको को स्वय वही पद रोता, भीना, शीताग स्वर में डूबा हुआ प्रतीत होगा। इसी भांति चाहे रौद्र अथवा भयानक रस का ही पद क्यो न हो किन्तु पित्त प्रकृति की राग-रागिनियो में गाने से वही पद शृगार रस के समान आनद प्रदान करने वाला प्रतीत होगा।

---

१ विशाल भारत, सितम्बर १९३५, गान-रचयिता रवीन्द्रनाथ, हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० ३०७

२ सगीत, मार्च, १९५२, पृ० २५०

अतः राग का निर्देश पात्र की तात्कालिक प्रकृति तथा पद के रस के अनुकूल होना चाहिये। यदि गायक श्रृंगार रस के पद का उसके प्रतिकूल रौद्र तथा वीर रस के राग में गायन करे तो उसमें श्रृंगार की भावना का प्रगटीकरण कैसे हो सकता है। उदाहरणस्वरूप कोई गोपी विरहाकुल होकर श्रीकृष्ण के वियोग मे गाती है –

निसदिन बरसत नैन हमारे।

यह गीत यदि खमाच, भैरव अथवा भीमपलासी राग में बांधा गया तो इसका कुछ भी प्रभाव न होगा और रस-दोष हो जायगा। किन्तु यही पद यदि गौड़ मल्हार मे गाया जाय तो निश्चित रूप से इसका प्रभाव ठीक पडेगा और दर्शक भी गीत के शब्दो और राग की ध्वनियों के मेल से उत्पन्न रस की तीव्रतम अनुभूति कर सकेंगे। पद में निर्दिष्ट राग का प्रभाव श्रोता पर यह पड़ना चाहिए कि वह उसे संवेदनशील बना कर उसमे उसी रस तथा भाव की सृष्टि करे जिससे संगीत प्रेरित हुआ है; पद को दिया हुआ राग पद के रस को उसी भांति व्यक्त कर दे, ऐसा न हो कि विरह के पदों को सुनने से कभी आनंद की अनुभूति हो जाय तो कभी भय की। राग और रागिनियों के रस-भाव को देखकर उसकी यथार्थ अनुभूति पाकर तदनुसार और तदनुकूल गीत पद्य का चुनाव होना चाहिये। कवि-गायक को पद निबद्ध करने तथा गाने के पूर्व पद के रस तथा शब्द क्या कहना चाहते है इनका सूक्ष्म अध्ययन कर लेना चाहिये और तब उपयुक्त रस वाले राग का चयन करके उस पद को बांधना चाहिये। काव्य के अनुकूल रस वाले राग की अवतारणा करने से श्रोताओं के हृदय मे ठीक उसी रस की तीव्र अभिव्यक्ति होगी जिससे पद और राग के भाव संबंधित है अतः गायक कवि को रागों की रस-शक्ति का पूर्ण ज्ञान होना अनिवार्य है।

राग, ऋतु और समय सिद्धांत –

भारतीय संगीत में राग-रागिनियों की प्राण-प्रतिष्ठा ऋतु और कालों के अन्तर्गत की गई है। हमारे संगीत का ध्येय कभी भी केवल उत्तेजना प्रदान करना, नूतन तथा विभिन्न ध्वनियो के मेल द्वारा श्रोतागण को अवाक्, आश्चर्यचकित कर देना ही नही है। भारतीय संगीत का चरम लक्ष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रहा है इसीलिए भारतीय जीवन मे संगीत-कला लौकिक अनुरंजन की सीमा तक ही आबद्ध न रह कर चरम साधना का माध्यम स्वीकृत हुई। साधना पक्ष का व्यवहार सदा से ही निसर्गबद्ध रहा है। वहां की प्रत्येक क्रिया पग-पग पर प्रकृति की आश्रयभूता होती है। अस्तु भारतीय संगीत में कुछ राग ऋतुकालीन (मौसमी) माने गए है अतः उन रागों को विशेष ऋतु में गाने का विधान है। उन रागों के गायन की ऋतु नियमित है और वे राग अपनी विशिष्ट ऋतु में ही गाये जाते है।

जहां एक ओर रागों को विशेष ऋतुओं में गाने का विधान मिलता है वहीं दूसरी ओर रागो का संबंध विशिष्ट समय से भी स्थापित किया गया है। रागों का गायन-समय भी नियमित है और प्रत्येक राग दिवस अथवा रात्रि में अपने निर्धारित समय पर गाया जाता है।

भारतीय पद्धति के अनुसार ऋतु तथा समयानुकूल गायन सिद्धात निरर्थक कल्पना मात्र ही नही है वरन् इस क्रम स्थापन के अन्तर्गत महान रहस्य निहित है। इस सिद्धान्त का रहस्य प्रकृति की लय के रहस्य पर आधारित है। शब्दो की लहरो पर अधकार और प्रकाश का प्रभाव भिन्न-भिन्न पडता है। कुछ शब्द प्राकृतिक कारणो से सुगम सुनाई देते हैं और कुछ कठिनता से सुने जाते हैं। शब्दमडल में अनेक तरगें उठती हैं, उनके प्रवाह का रूप भिन्न भिन्न ऋतुओ और समयो में भिन्न-भिन्न होता है। हमारे प्राचीन सगीताचार्यो ने प्रकृति का गहन अध्ययन किया था और वे प्रकृति के नियमो से भली भांति परिचित थे। उन्होंने ध्वनि सबधी गहन तथा गोपनीय रहस्यो का उद्घाटन किया और इस तथ्य का पता लगाया कि विशेष ऋतु तथा काल में विशिष्ट ध्वनियाँ विशिष्ट स्वर-समुदायो से एकता, अनुरूपता तथा सामजस्य रखती है। और फिर उन्होने प्रकृति के अनुरूप स्वरो को व्यवस्थित कर लिया। भारतीय सगीतज्ञो के मतानुसार रागो में कुछ ऐसे प्राकृतिक तथा स्वभावजन्य गुण होते हैं जो उन्हें विशेष ऋतु से सबधित करते हैं। अर्थात् सगीत में कुछ स्वर ऐसे होते हैं जिनकी प्रकृति तीक्ष्ण, तेजस्वी, उग्र तथा अग्निमय होती है। जिन रागो में इन स्वरो की प्रधानता या अधिकता होती है वे अपनी प्रकृति से मेल खाते हुए समय में अर्थात् ग्रीष्म के मासो में गाए जाते हैं। इसके विपरीत जो राग जाडे के मौसम में गाए जाते है उनमें उन स्वरो को प्रधानता तथा महत्व प्रदान किया जाता है जो शीतलता, उदासीनता आदि गुणो से युक्त होते हैं।

प्रत्येक राग विशिष्ट भावनाओ से सबधित होने के कारण अपना विशिष्ट वातावरण उपस्थित करता है। अत प्रत्येक राग को उस वातावरण से सबधित विशेष समय पर ही गाया जाता है। उष काल का वातावरण शात, सुखद, शीतल तथा आनदप्रद होता है, हृदय चिन्तामुक्त हो जाता है और सात्विक भावनाओ से परिपूर्ण रहता है। अत उस समय ऐसे राग गाए जाते है जो भक्तिपूर्ण, ईश्वर की उपासना से सबधित, त्याग-परिपूर्ण, अचचल तथा अतीव्र (धीमे) होते है। दुपहरी के वातावरण की तीव्रता के साथ रागो में भी चचलता बढती जाती है। दिन भर की थकान से व्यथित मनुष्य सध्या-समय मनोरजन तथा चित्त को प्रफुल्लित करने के लिए शृगारमय वातावरण और शृगारिक भावनाओ का आश्रय ग्रहण करता है अत सध्याकालीन गाये जाने वाले रागो में शृगार रस प्रधान हो जाता है। नीरव रजनी के अधकार के साथ ही वातावरण में निस्तब्धता तथा भयानकता का सचार होने लगता है अत इस समय जो राग गाये जाते है वे भयानक, रौद्र आदि रसो से सबधित होते हैं। स्वप्नो के ससार में विचरण करते हुए प्राणी नीद में मस्त सोते हैं। रात्रि व्यतीत हो चली है किन्तु विरहिणी के नेत्रो में नीद कहाँ। उसकी वेदना और उसकी व्यथा अश्रु बन कर निरतर बहती ही जाती है। इस समय करुण रस प्रधान रागो का गायन हृदयस्पर्शी प्रतीत होता है। अत प्राचीन आचार्यों ने प्रात, मध्याह्न, साय एव रात्रि के तापमान वातावरण का अभ्यास करने के उपरान्त रागो के गायन-समय निश्चित किये है।

ऋतु तथा समयानुकूल गायन सिद्धात का यह अर्थ कदापि नही कि अपने निश्चित

समय के अतिरिक्त राग अन्य किसी समय गाए ही नहीं जा सकते। समय के नियम को परिस्थितियों के अनुसार शिथिल कर देने की प्रथा पूर्वकाल से प्रचलित दिखाई देती है। संगीत-मकरन्द में कहा गया है –

विवाह समये दान-देवतास्तुति संयुते
अवलरागमाकर्ण्य न दोषो भैरवीं विना ॥[1]

लोचन कवि ने अपनी रागतरंगिणी में कहा है –

दशदंडात्परं रात्रौ सर्वेषां गानमीरितम्।
रंगभूमौ नृपाज्ञायां कालदोषो न विद्यते ॥[2]

दर्पणकार ने भी कहा है –

यथोक्तकाल एवैते गेयाः पूर्वविधानतः।
राजाज्ञया सदागेया नतु कालं विचारयेत् ॥[3]

इनसे विदित होता है कि दशदंड रात्रि के उपरान्त (लोचन कवि के मतानुसार) विवाह, दान, देवतास्तुति, रंगभूमि तथा राजा की आज्ञा से किसी भी समय कोई राग गाया जा सकता है। यह भी कहा गया है कि कोई मोह या लोभ से असमय भी राग गा दे तो गुर्जरी रागिनी गा लेने से दोष का परिहार हो जाता है।

किसी कवि ने कहा है –

नीको पै फीको लगे बिन अवसर की बात।
जैसे बरनत युद्ध में रस रंग कछु न सुहात ॥

ठीक यही हाल रागों का है। प्रत्येक राग अपने लालित्य में अद्वितीय है किन्तु अपने नियमित समय के विपरीत गाये जाने पर वही राग अत्यधिक कर्णकटु प्रतीत होने लगता है। ऊषःकाल में भैरवी के स्वर अत्यधिक मधुर प्रतीत होते हैं। रात्रि में उसकी क्या आवश्यकता। रात्रि में तो विहाग का स्वर ही उचित है। रात्रि में भैरवी को गाते सुन उर्दू-शायर का यह शेर स्मरण हो आता है –

शिक़वा करते हो तुम सुहाग के वक़्त।
भैरवी गाते हो तुम विहाग के वक़्त ॥

---

१. संगीत-मकरन्दः, नारद, सम्पादक मंगेश रामकृष्ण तेलंग, संगीताध्याये तृतीयः पादः पृ० १६

२. राग-तरंगिणी, लोचन, पृ० १३

३. संगीत-दर्पण, दामोदर, पृ० ७६, श्लोक संख्या २६

समय विशेष में राग विशेष के गाये जाने से चित्त पर अधिक प्रभाव पडता है । आज के युग में यद्यपि योरोप के कतिपय पडितो तथा हमारे देश के भी कुछ विद्वानो का मत है कि समय के नियम को स्थापित करने में कोई अर्थ नहीं है किन्तु हमारे प्राचीन सगीताचार्यों ने समय-सिद्धात का प्रतिपादन किया है। सगीत-मकरन्द में तो यहाँ तक कहा गया है कि "रागो को असमय गाने से उनकी हत्या हो जाती है तथा जो उनको सुनता है वह दरिद्रता को प्राप्त हो जाता है और उसका नाश हो जाता है" ।[1] तरगिणीकार ने भी रागो के समयानुकूल गाने का समर्थन करते हुए कहा है कि समय के उपयुक्त गीत गाने से वह मधुर प्रतीत होता है ।[2]

राग की प्रकृति, गुण तथा प्रभाव

सगीत की राग-रागिनियो के रस भाव तथा समयानुकूल गायन में वह आश्चर्यजनक शक्ति निहित है जो ससार के सजीव और निर्जीव पदार्थों, जड तथा चेतन दोनों में परिणाम *(Change)* *उत्पन्न कर एक निश्चित कार्य करने तथा विशिष्ट प्रभाव उत्पन्न करने में समर्थ* होती है । गायनाचार्य प० विष्णुदिगम्बर जी ने रागो के कार्यों के विषय पर विचार करते हुए कहा है —"रागो के कार्यों के विषय में जो प्रवाद है उन्हें असभव नही कहा जा सकता । गान-वाद्य करते समय किवाड के काँच तडकते हुए मैंने स्वय देखा है । वाद्यो में पचीसो तार होते है, जो तार मिले हुए होते है वह एक दूसरे से दूर होने पर भी एक को छेडने से दूसरे हिल जाते है पर बिना मिला हुआ निकट वाला तार नही हिलता। पेडो पर तो गान का स्पष्ट प्रभाव पडता है । इसकी सत्यता विज्ञानाचार्य श्री जगदीशचन्द्र बोस आदि बतला सकेंगे । दीपक राग के विषय में जो प्रवाद है उसका प्रत्यक्ष प्रमाण नही मिलता पर इतना कहा जा सकता है कि बिना घर्षण के ध्वनि नही हो सकती । जहाँ घर्षण है वहीं ध्वनि है और जहाँ घर्षण और ध्वनि है वहाँ अग्नि भी है ।"[3]

प्रसिद्ध सितारवादक प० रविशकर भी सितार के द्वारा सगीत के कार्यों तथा प्रयोगो की सफलता का विवरण देते हुए कहते है – "हाँ, कभी-कभी सितार के प्रभावशाली आलाप व गतो के द्वारा निद्रा का आ जाना, करुण रस का सचार होकर आँसू ढलकना और शिथिलता तथा उसके बाद शाति देखने में आई है ।"[4] रसभाव तथा समयानुकूल

---

१ रागवेला प्रगानेन रागानाम् हिंसको भवेत् ।
य स श्रृणोति स दारिद्री च नश्यति सर्वदा ॥
सगीत-मकरन्द, नारद, तृतीयपाद, पृ० १५

२ यथा काले समारब्ध गीत भवति रजकम् ।
अत स्वरस्य नियमाद्रागेऽपि नियम कृत ॥
राग-तरगिणी, लोचन, पृ० १३

३ माधुरी, दिसम्बर १९२७, पृ० ७०३

४ सगीत, अप्रैल १९५३, सगीत साधको से भेंट, प० रविशकर, पृ० ३४२

गायन की महत्ता के कारण ही भारतीय संगीत के अन्तर्गत कुछ राग-रागिनियों को विशेष गुणों, प्रभाव, माधुर्य तथा आकर्षण से सम्बद्ध माना गया है। उदाहरणस्वरूप –

(१) दीपक राग के गायन से अग्नि प्रज्वलित हो जाती ह।
(२) मेघ राग के गायन से वृष्टि होने लगती है।
(३) मालकोश राग के प्रभाव से पत्थर पिघल जाता है।
(४) हिंडोल राग के गायन से झूला स्वतः हिलने लगता है।
(५) सारंग राग को सुनकर पशु मुग्ध हो जाते हैं।
(६) टोड़ी राग से आकर्पित होकर हिरन चले आते हैं।
(७) रामकली राग को सुनकर कोयल कुहुकने लगती है।
(८) वसंत राग के गायन से पुष्प विकसित हो जाते हैं।
(९) श्री राग के गायन से शुष्क वृक्ष हराभरा हो जाता है।
(१०) सोहनी को सुनकर मनुष्य के नेत्रों से अश्रु प्रवाहित होने लगते हैं।
(११) नट राग के गायन से मनुष्य में वीर रस का संचार किया जा सकता है।
(१२) भैरव राग के गायन से मनुष्य की चंचल प्रकृति भक्तिनिष्ठ हो जाती है।
(१३) जोगिया के गायन द्वारा सांसारिक वासनामय प्रवृत्ति वैराग्य में परिवर्तित हो जाती है।

यद्यपि आधुनिक युग के अधिकांश विद्वान् संगीत की इन विशेपताओं, गुणों तथा प्रभावों को कपोल कल्पना एवं किंवदन्ती मात्र मानते है किन्तु वास्तव में रागों की यह समस्त निर्द्धारित रूपरेखा रागों का पूर्णतः अलंकारिक रूप मात्र ही नहीं है वरन् जैसा कि विष्णुदिगम्बर तथा पं० रविशंकर जी के भी ऊपर दिए गए विचारों से प्रगट होता है, रागों के रसभाव तथा समयानुकूल गायन से कुछ निश्चित प्रभाव अवश्य उत्पन्न किए जा सकते हैं।

पूर्व पृष्ठों के रस, राग और सिद्धांत तथा रागों की प्रकृति, गुण और प्रभाव आदि की विशेपताओं के आधार पर आगे के पृष्ठों में कृष्णभक्तिकालीन कवियों के संगीत-ज्ञान की समीक्षा की जायगी। हमें देखना होगा कि कृष्णभक्तिकालीन कवियों के काव्य में राग का निर्देश, पदों के रसों, भावों तथा समय के अनुकूल किया गया है अथवा नहीं। कवि रागों के विशेष गुणों तथा प्रभाव आदि से परिचित हैं कि नहीं। समय-सिद्धांत की विवेचना दो रूपों में की जायगी –

वाह्य आधार–वार्ता साहित्य में कुछ कवियों के वर्णन में उनके कुछ पदों के गायन-समय का उल्लेख किया गया है। ऐसे प्रसंगों के उद्धरण ले कर यह देखेंगे कि उस समय जिन रागों को उन कवियों ने गाया है वह समय-सिद्धांत की कसौटी पर खरे उतरते हैं अथवा नहीं।

आन्तरिक आधार–कृष्णभक्तिकालीन कवियो के पदो में राग का निर्देश पदों में वर्णित भावो के समय तथा पद में उल्लेख किए गए समय के अनुकूल है अथवा नहीं। पद मे जिस समय अथवा जिस समय के भावो का प्रकाशन किया गया है वह उस राग के समय से साम्य रखता है कि नहीं।

सूरदास

सूरदास जी शास्त्रीय संगीत में पारंगत थे। उपर्युक्त वातावरण की सृष्टि के लिये वे रागो की प्रकृति के अनुकूल भावो की रचना करते थे अथवा भावो के अनुकूल प्रकृति वाले राग में उसे गाते थे। शाहंशाह अकबर द्वारा अपना यश वर्णन करने के आग्रह पर सूरदास ने जो पद गाए थे वे वार्ताकार के अनुसार राग केदारा में हैं।[1] केदारा एक प्राचीन राग है। यह औडुव-षाडव जाति का राग है। अत इसके आरोह में 'रे', 'ग' ये दो स्वर वर्जित है और अवरोह में 'ग' दुर्बल तथा वक्र रहता है। केदारा में कोमल और तीव्र दोनो मध्यमो का प्रयोग होता है। शेष सब शुद्ध स्वर लगते हैं। इसके अवरोह में कभी-कभी कोमल 'नी' का भी प्रयोग होता है। इसमें कोमल 'म' वादी और 'सा' संवादी स्वर है।[2] कोमल 'नी' के प्रयोग से राग में गंभीरता आ जाती है। आरोह में 'रे' तथा 'ग' स्वरो के वर्जित होने के फलस्वरूप 'सा' से सीधे 'म' पर जाना पड़ता है। 'स' से 'म' पर चढ़ाव और 'प' तक जाने में स्वरो में एक खिचाव रहता है। खिचाव की गंभीरता के कारण राग में तन्मयता का अनुभव होता है। शुद्ध रूप से गाने के लिए गायक को राग के स्वरो के

---

१ "सो यह विचार के देसाधिपति ने सूरदास सों कही, जो श्री भगवान ने मोको राज्य दियो है सो सगरे गुनीजन मेरो जस गावत है सो तिनको में अनेक द्रव्यादिक देत हों। तासो तुमहू गुनी हो सो तुमहू मेरो कछू जस गावो। सो तिहारे मन में जो इच्छा होय सो माँगि लेहु। सो यह देसाधिपति ने कह्यो। तब सूरदास जी ने यह पद गायो–

राग केदारो – "नाहिन रह्यो मन में ठौर"।

८४ वैष्णवन की वार्ता, (अष्टसखान की वार्ता प्रसंग), स० द्वारिकादास परीख, पृ० १५

२ केदारस्त्वभिवर्णितो रिगनिर्मुक्तस्तीवैं सदाऽलङ्कृतो।
वादी कोमल मध्यमो भवति संवादी च षड्जस्वर ॥
तीव्रोपि क्वचिदत्र मध्यम इहारोहे रिगौ वर्जितौ।
यामे च प्रथमे निशासु मधुर वीणारवैर्गीयते। रागकल्पद्रुमांकुर, पृ० १७
द्विमस्तीव्रान्यको मनि आरोहे रिगवर्जित।
क्वचित्कोमलनिर्यामे केदार. प्रथमे निनि ॥ रागचंद्रिका, पृ० ८
समौ मपौ धपौ मश्च पधौ पमौ पमौ रिसौ।
केदार मासको राम्या आरोहे रिग दुर्बल ॥ अभिनवरागमंजरी, पृ० १४
मध्यम द्वै तीवर सबहो आरोहत रिग हान।
सम संवादी दितें केदारा पहिचान ॥ रागचंद्रिकासार, पृ० ११

साथ एकाकार हो जाना पड़ता है। समस्त बंधनों को त्यागकर गायक केदारा के स्वरों में खो जाता है। कवि सूर का पद भी तो इसी भाव का है। कवि भगवान् में तन्मय हो चुका है। कृष्ण के साथ एकाकार हो जाने के उपरान्त कवि के हृदय में अन्य भाव आता ही नहीं और तब वह तन्मय हो कर केदारा के स्वरों में गा उठता है –

राग केदारा

नाहिन रह्यौ मन में ठौर।
नंदनंदन अछत कैसे आनिये उर और ?
चलत, चितवत, द्यौस जागत, सपन सोवत राति।
हृदय तै वह मदन मूरति, छिन न इत-उत जाति ॥
कहत कथा अनेक ऊधौ, लोभ लाभ दिखाय।
कहा कहौं, चित प्रेम पूरन घट, न सिंधु समाय ॥[१]

पद के भाव को देखते हुये राग केदारा अत्यधिक उपयुक्त है। तीव्र मध्यम तथा कोमल निषाद के कण ने कवि के हृदय की उस वेदना, करुणा और टीस को भी व्यक्त कर दिया होगा जो अकबर के नर-प्रशंसा करने के आग्रह से उत्पन्न हुई होगी। रागिनी केदारा का जो चित्र उपलब्ध हुआ है उसमें वियोग की भावना चित्रित की गई है।[२] केदारा को एक वियोगी के रूप में अंकित किया गया है जिसे विरह-वेदना की तीव्रता में कुछ भी मधुर नहीं लगता। अकबर के आग्रह के कारण कवि सूर को भी उन तक आना पड़ा किन्तु प्रियतम की स्मृति क्षण-क्षण में उन्हें विचलित कर देती है। विरह की अनुभूति के कारण व्याकुल, व्यथित उनके हृदय को, सांसारिक प्रलोभन सांत्वना नही दे पाते। लोक-मर्यादा की कठोर कड़ियाँ उनकी विचलित सिसकियों को बाँध नहीं पाती और तब सबकी उपेक्षा करते हुए सूर उपयुक्त भावों को प्रकट कर देने वाले राग केदारा के स्वरों में अपने हृदय को खोल कर रख देते हैं। वास्तव में सूर के पद में भक्ति की साधना तो है ही साथ ही स्वर की भी परम साधना है। जैसा शुद्ध भावनामय पद है वैसा ही तन्मयकारी इनका संगीत भी है।

सूरदास स्वभावतः ही उत्कृष्ट गायनाचार्य थे। इसी कारण उनके पदों में रस-राग के सिद्धांत का सुन्दर पालन देख पड़ता है। श्री राम का युद्ध,[३] केशी-वध,[४] कुवलया-वध,[५]

---

१. ८४ वैष्णवन की वार्ता, स० द्वारिकादास, पृ० १५
२. रागिनी केदारा, चित्र सं० १,
३. सूरसागर, (पहला खंड), नवमस्कंध, पृ० २१८
४. वही, दशमस्कंध, पृ० ७४४
५. वही, (तृतीय खंड), पृ० १२९८

हस्ती-वध,[1] मुदक्षिण वध,[2] द्विविद-वध,[3] जरासंध-वध,[4] शाल्व-वध,[5] दन्तवक्र-वध,[6] लक्ष्मण-युद्ध-गमन[7] प्रसंगो में कवि ने नट, कान्हरा और मारू राग-रागिनियों को अपनाया है। उदाहरणस्वरूप देखिये –

कस के अत्याचारो से पीडित जनता को त्राण देने के लिये कृष्ण ने वीर रूप धारण किया है। मल्लो को पराजित करके, कुवलयापीड का वध कर कस के पापो का तिरोधान करने के लिए कृष्ण रंगभूमि में उसकी ओर अग्रसर हो रहे हैं। कृष्ण की आकृति और वेषभूषा वीर रस की पूर्णत अवधारणा कर रही है। उनके कमल नयनो में आज क्रोध की अरुणाई झलक रही हैं। भौंहें ही धनुष हैं और ललाट पर सुशोभित तिलक बाण के सदृश दीख रहा है। श्याम शरीर पर पीत वस्त्र ऐसे प्रतीत होते हैं मानो काले बादलो के मध्य विद्युत हो। हिलते हुये कानो के कुंडल बिजली की भाँति चमक कर वातावरण को और भी अधिक भयानक बना रहे हैं। सूरदास कृष्ण की इस वीर आकृति का वर्णन नट-राग में करते है –

नट

नवल नद-नदन रंगभूमि राजै।
स्याम तन, पीत पट मनो घन में तड़ित मोर के पख माथें बिराजै॥
स्रवन कुंडल झलक मनो चपला चमक, दृग अरुन कमल दल से बिसाला।
भौंह सुदर धनुष, बान सम सिर तिलक, केस कुंचित सोह भृग माला॥
कुवलया मारि चानूर मुष्टिक पटकि बीर दोउ कध गज-दंत धारे।
जाइ पहुँचे तहां कस बैठ्यो जहां, गए अवसान प्रभु के निहारे॥[8]

नट रागिनी वीरता, साहस तथा उत्साह का सृजन करती है।[9] यह मनुष्य की वीर और ओजस्विनी प्रवृत्ति की प्रतीक है। नट की आकृति युद्ध-भूमि में शत्रुओ को पराजित

---

१ सूरसागर, पहला खड, पृ० १३०१
२ वही, पृ० १६७५
३ वही, पृ० १६७६
४ वही, पृ० १६७६
५ वही, पृ० १६८३
६ वही, पृ० १६८६
७ वही, नवमस्कध, पृ० २३६
८ सूरसागर, काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित, (द्वितीय खड), दशम स्कध, पृ० १३१०, पद स० ३६६६
9 "Nut excited valour" Sangit of India, Atiya Begum, Page 60

करते हुए एक वीर नायक के रूप मे अंकित की जाती है ।[1] नट रागिनी का जो चित्र[2] प्राप्त हुआ है उसमे भी वीर रस के उपयुक्त वातावरण को चित्रित किया गया है । वीर योद्धा को उत्साहित होकर अपने शत्रुओं से लड़ते तथा पराजित करते हुए दिखाया गया है । नट रागिनी में निहित इस वीर रस की भावना के कारण ही सूर ने अपने वीर रस के पद में नट रागिनी की अवतारणा की है ।

जरासंध वध के प्रसंग मे कवि कहता है –

मारू

कंस खल दलन, रन राम रावन हनत, दीन दुख हरन गज मुक्तकारी ।
नृपति चहुँ देस के बंदि जरासंध के, रैनि दिन रहत जिय दुखित भारी ।।

सुनी जदुनाथ यह बात जब पथिक तें, धर्म सुत कें हृदय यह उपाई ।
राजसू जज्ञ कौ कियौ आरंभ मैं, जानि कै नाथ तुमकौं सहाई ।।

भीम अरजुन सहित विप्र कौ रूप धरि, हरि जरासंध सौं जुद्ध माँग्यौ ।
दियौ उन पै कह्यौ तुम कोऊ राजसी कपट करि विप्र कौ स्वांग स्वांग्यौ ।।

हरि कह्यौ भीम अरजुन दोऊ सुभट ये, कृष्ण मैं देखि लोचन उघारी ।
वचन जो कह्यो प्रतिपाल ताकौ करौ, कै सभा माँहि पत जाहु हारी ।।

पार्थ तुम नहीं समरत्थ मम जुद्ध कौ, भीम सौं लरौं यह कहि सुनाई ।
बीस औ सप्त दिन यौं गदाजुद्ध कियौ, दोउ बलवंत कोउ लियौ न जाई ।

स्याम तृन चीरि दिखराइ दियौ भीम कौं, भीम तब हरषि ताकौ पछारचौ ।
जरा जरासंध की संधि जोरचौ हुतौ, भीम ता संधि कौ चीरि डारचौ ।।

नृपनि कौं छोरि सहदेव कौं राज दियौ, देव नर सकल जय जय उचारचौ ।
सूर प्रभु भीम अरजुन सहित तहाँ तें, धर्म सुत देस कौं पुनि सिधारचौ ।।[3]

मारू रागिनी का जो चित्र प्राप्त हुआ है उसमें वीर रस तथा वीर वेषभूषा का चित्रण किया गया है ।[4] वीर रस से परिपूर्ण होने के कारण ही उक्त पद का गायन कवि ने वीर रस की रागिनी मारू मे किया है ।

---

1. "Nat—This melody is a symbol of the heroic and martial spirit in man. Although a female melody it is depicted as a hero fighting in battle and decapitating his enemies."
The Laud Ragamala Miniatures, Stooke and Khandelvala, Page 34

२. नट-रागिनी, चित्र सं० २

३. सूरसागर (द्वितीय खंड), पृ० १६८१–८२, पद सं० ४८३३

४. मारू-रागिनी, चित्र सं० ३, पृ० ३२४

कान्हरा वीर रस की रागिनी है। कान्हरा का जो चित्र मिला है उसमें भी वीर भावों का प्रदर्शन किया गया है।[1] सूरदास जी कुवलयापीड़ के प्रसंग में वीर रस का वर्णन कान्हरा में करते हैं जो रस-राग के सिद्धांत के अनुसार उचित है—

कान्हरो

सुनहि महावत बात हमारी।
बार-बार सकर्षन भाषत, लेत नहिं ह्यां तैं गज टारी ॥
मेरो कह्यो मानि रे मूरख, गज समेत तोहिं डारौं मारी।
द्वारे खरे रहे हैं कबके, जनि रे गर्व करहि जिय भारी ॥
न्यारो करि गयंद तू अजहूँ, जान देहि कै आपु सँभारी।
सूरदास प्रभु दुष्ट निकंदन, धरनी भार उतारनकारी ॥[2]

रस और भावों के साथ ही सूरदास ने भारतीय संगीत के समय सिद्धांत का भी विचार रखा है। प्रातःकाल का वर्णन कवि ने प्रातःकालीन गाए जाने वाले रागों तथा सायंकाल और रात्रिकालीन वर्णन क्रमशः संध्या तथा रात्रि के समय गाए जाने वाले रागों में किया है।

दिवस का आगमन हो गया है, चन्द्रमा की किरणें धूमिल हो गईं और तारे तेजहीन हो गये हैं, रवि को उदित जान कर मुर्गे बोलने लगे हैं, कुमुदिनी सकुचित हो गई है और कमल विकसित होकर हास्य कर रहे हैं, भ्रमर पराग और मकरन्द पर क्रीड़ा कर रहे हैं, नारियाँ मंगलगान करने लगी हैं किन्तु कृष्ण अभी सो ही रहे हैं। सूर का मातृ हृदय अपने कन्हैया को जगाने के लिए व्याकुल हो जाता है और तब वे प्रातःकाल गाए जाने वाले राग विलावल[3] के स्वरों में गा उठते हैं—

राग बिलावल

जागिए ब्रजराज कुँवर कमल कुसुम फूले।
कुमुद वृंद संकुचित भए, भृंगलता भूले।
तमचुर खग रोर सुनहु, बोलत बनराई।
राँभति गो खरिकनि में, बछरा हित धाई।

---

१ रागिनी कान्हरो, चित्र सं० ४,

२ सूरसागर, (द्वितीय खंड), पृ० १२६८, पद सं० ३६७०

३ संगीत मरकन्द, पृ० १५, संगीत दर्पण, पृ० ७७५, संगीत पारिजात, पृ० ९२

वेलावलो मा यशुद्धा गसवादिथवादिनी।
गनिवक्रा तथा पूर्णा प्रातरेव हि गीयते ॥ रागचंद्रिका, पृ० ३
सरी गमौ पधौ निसौ निधौ पमौ गमौ रिसौ।
शुद्ध वेलावलो धाशा मेया प्राहणे मनोहरा ॥ अभिनवरागमंजरी, श्लो० २६

विधु मलीन रवि प्रकास गावत नर नारी।
सूर स्याम प्रात उठौ, अंबुज-कर-धारी॥[1]

कलेवा-वर्णन कवि प्रात.काल राग भैरव[2] तथा विलावल मे करता है। यथा–

राग भैरव

उठिए स्याम कलेऊ कीजै। मनमोहन मुख निरखत जीजै॥[3]

तथा– राग विलावल

कमल नैन हरि करौ कलेवा।
माखन रोटी, सद्य जम्यौ दधि, भाँति-भाँति के मेवा॥[4]

प्रातःकाल दधि-मंथन का वर्णन कवि ने राग विलावल तथा आसावरी[5] में किया है जो समय के उपयुक्त है।

राग विलावल

प्रात समय दधि मथति जसोदा अति सुख कमल नयन गुन गावति।[6]

तथा– राग आसावरी

(एरी) आनँद सौं दधि मथति जसोदा घमकि मथनियाँ घूमै।[7]

यहाँ तक कि सूरदास ने कृष्ण की बाल-क्रीड़ाओं तक में समयानुकूल रागिनियों की सृष्टि की है। कृष्ण की प्रातःकाल की क्रीड़ा का चित्रण कवि ने प्रात.काल के विलावल राग में किया है–

राग विलावल

क्रीड़त प्रात समय दोउ बीर।[8]

---

१. सूरसागर, (प्रथम खंड), दशम स्कंध, पृ० ३२६, पद सं० ८२०
२. संगीत-मकरन्द, पृ० १५; संगीत-दर्पण, पृ० ७६; संगीत-पारिजात, पृ० ६२
सगौ मपौ धपौ मगौ रिगौ मपौ मगौ रिसौ।
भैरवौ नित्यपूर्णः स्याद्धैवतांशः प्रभातगः॥
अभिनवराग मंजरी, पृ० १६, छं० सं० ७५
३. सूरसागर, (प्रथम खंड), दशमस्कंध, पृ० ३३२, पद सं० ८२६
४. वही, पृ० ३३२, पद सं० ८३०
५. रागतरंगिणी, लोचन –
"इसके गाने तथा बजाने का समय दिन का दूसरा प्रहर है।"
संगीत-कौमुदी, (पहला भाग), निगम, पृ० १०७
६. सूरसागर, (प्रथम खंड), दशमस्कंध, पृ० ३११, पद सं० ७६७
७. वही, पृ० ३११, पद सं० ७६५
८. वही, पृ० ३१५, पद सं० ७७६

कृष्ण अब बड़े हो गये हैं। गोप सखाओ के साथ कान्हा भी वन में गाय चराने जाते हैं। दोपहर हो जाने पर वट-वृक्ष की छाँह में कृष्ण तथा गोप-ग्वाल छीन छीन कर दूध-फल आदि खा रहे हैं। सूरदास दोपहर का यह वर्णन राग सारग में करते हैं –

राग सारग

ग्वाल मडली में बैठे मोहन वट की छाँह, दुपहर बेरिया सखनि सग लीनें।
एक दूध, फल एक भर्गार चबेना लेत, निज-निज कामरी के आसननि कीने ।।
जेंवतऽरु गावत हैं सारँग की तान कान्ह, सखनि के मध्य छाक लेत कर छीनें।
सूरदास प्रभु को निरखि, सुख रीझिरीझि, सुर सुमननि बरषत रस भीने ।।[१]

सारग राग दोपहर में गाया जाता है।[२] इसी कारण सूर ने भी उक्त पद में दोपहर के समय का छाक-वर्णन सारग में किया है। पद के वर्णन से ज्ञात होता है कि कृष्ण खाते-खाते सारग राग भी गाते जा रहे हैं। दोपहर के समय कान्हा के मुख से सारग राग गवाकर सूर ने समयानुकूल राग-गायन को विशेष महत्व प्रदान किया है।[३]

इसी प्रकार अपने पदो में समय-सिद्धात का ध्यान रखते हुए सूरदास गो-पद-रज से मडित आनन लिए सध्या समय धेनु चराकर लौटते हुए कृष्ण की सुषमा का वर्णन सायकालीन राग गौरी[४] में करते हैं –

राग गौरी

बन तें आवत धेनु चराए।
सध्या समय साँवरे मुख पर गोपद रज लपटाए।[५]

जहा कवि ने कलेवा-वर्णन बिलावल तथा भैरव आदि प्रातःकालीन रागो में किया है वहाँ वह रात्रि के समय बियारी का वर्णन रात्रिकालीन गाये जाने वाले राग बिहागरो[६], कान्हरा[६] तथा केदारा[७] में करना भी नही भूलता –

---

१ सूरसागर, पृ० ४२०, पद स० १०८५

२ सगीत-पारिजात, पृ० ६३ । राग तरगिणी, लोचन,
"At noon exactly Sarang is played It is a bright melody"
Sangit of India, Atiya Begum, Page 58

३ -राग-तरगिणी, लोचन, सगीत-दर्पण, पृ० ७६

४ सूरसागर, (प्रथम खड), दशमस्कध, पृ० ४०१, पद स० १०३५

५ सगीत सुधा, पृ० १३

६ हिदुस्तानी सगीत-पद्धति क्रमिक पुस्तक मालिका, चौथी पुस्तक, पृ० ५६,
सगीतसुधा, पृ० ■

७ राग-तरगिणी, लोचन, सगीत-दर्पण, पृ० ७६

राग विहागरी

कमल नैन हरि करौ वियारी ।
लुचुई लपसी, सद्य जलेवी, सोइ जेंवहु जो लगै पियारी ॥[1]

राग कान्हरो

सूर स्याम कछु करौ वियारी पुनि राखौ पौढ़ाइ ।[2]

राग केदारो

चलौ लाल कछु करौ वियारी ।
रुचि नाहीं काहू पर मेरी तू कहि भोजन करौं कहारी ॥[3]

रात्रि हो गई है । गगन पर चन्द्र अपनी धवल ज्योत्स्ना विकीर्ण कर रहा है । कृष्ण अभी छोटे ही तो है । चाँद को खिलौना समझ कर लेने के लिए मचल उठते है । सूर कृष्ण की इस बाल छवि पर मुग्ध हो जाते हैं और तत्काल रात्रि के समय कृष्ण के हठ को चित्रित करते हुए रात्रिकालीन राग केदारा में गा उठते है –

राग केदारो

मैया, मैं तो चंद-खिलौना लैहौं ।
जैहौं लोटि धरनि पर अबहीं तेरी गोद न ऐहौं ।[4]

आश्विन की पीयूष वर्षिणी पूर्णिमा की रासलीला जो सूर-जीवन का पाथेय बन गई थी उसका वर्णन करता हुआ भक्त गायक कहता है –

राग अड़ाना

मोहन लाल के सँग ललना यौं सोहैं ज्यौं तमाल ढिग तरु सुभ सुमन जरद कौ ।
वदन अनूप कांति नीलाम्बर ईहि भांति, नवघन बीच ससि मानहु सरद कौ ॥
मुक्तालर तारागन, प्रतिबिम्ब बेसरि कौं, चूनै मिलि रंग जैसे होत है हरद कौ ।
सूरदास प्रभु मोहन गोहन छवि बाढ़ी मेटति निरखि दुख मैन के दरद कौ ॥[5]

सूरसागर के प्रसंग से ज्ञात होता है कि शरद-पूर्णिमा की रात्रि में रासनृत्य हो रहा है । आकाश में तारे और चन्द्र खिल रहे है । ऐसे समय में मंडलाकार नृत्य करते हुए श्याम वर्ण वाले कृष्ण के साथ गौरवर्णा गोपियाँ ऐसी सुशोभित होती है मानों बादलों के मध्य चन्द्र

---

१. सूरसागर, (प्रथम खंड), दशमस्कंध, पृ० ३३८, पद सं० ८४५
२. वही, पृ० ३३७, पद सं० ८४४
३. वही, पृ० ३४२, पद सं० ८५९
४. वही, पृ० ३२७, पद सं० ८११
५. वही, पृ० ६५५, पद सं० १७६८

उदित हो गया हो। मुक्ता की लरें ही तारे बन गई हैं। सम्पूर्ण पद रात्रिकालीन भावों से युक्त हैं। अत कवि के द्वारा प्रस्तुत पद का गायन रात्रिकालीन राग अडाना[1] में करना उचित ही है। ऊपर किए गए विवेचनात्मक अध्ययन से यह प्रकट होता है कि सूरदास जी ने अपने पदो में जिस समय का वर्णन किया है उसी के अनुकूल समय वाले रागो का सृजन किया है। वार्ताकार के कथन से इस तथ्य की भी पुष्टि हो जाती है कि सूर ने जिस समय जो पद गाया उसी के अनुकूल राग भी चुना। वार्ता में एक प्रसग दिया है—"और एक समय श्री गोकुल ते परमानद आदि सब वैष्णव दस पद्रह सूरदास जी से मिलिवे को और श्री गोवर्द्धन नाथ जी के दरसन को आये। सो सेन आरती के दरसन करि सूरदास जी के पास आये। तब सूरदास जी ने सगरे वैष्णवन को बहोत आदर सन्मान कियो और ताही समय कीर्तन गायो।

राग कान्हरो

(१) हरि सग छिनक जो होई।
(२) प्रभु जन पर प्रसन्न जब होई।
(३) हरि के जन की अति ठकुराई॥

राग हमीर

(१) जा दिन सत पाहुने आवें।[2]

राग का्हरा तथा हमीर[3] दोनों ही रात्रिकाल में गाए जाने वाले राग हैं। वार्ता से स्पष्ट है कि सूर ने इन पदो को शयन-आरती के उपरान्त रात्रि में ही गाया था। अत सूरदास का उस समय इन रागो का गाना सामयिक था।

एक अन्य स्थल पर वार्ताकार लिखता है—"ता पाछे चौथे दिन न्हाय के सूरदास जी प्रात काल मगला के दरसन को चले। तब सूरदास जी अपने मन में विचारे जो देखो या

१ राग-तरगिणी, लोचन—

रागो ऽडाण प्रसिद्धो मृदुनिगमयुतस्तीव्रधस्ती वरिरच।
तार' षड्‌जोऽत्र वादी सहचरति सदा पचमो मध्यसस्य॥
आरोहे दुर्बलौ तौ भवत् इह धगौ ध मृदु केचिदाहु।
कर्णाटस्यैव भेद सरससुमधुर गीयतेऽसौ निशीथे॥

रागकल्पद्रुमाकुर, पृ० २२

मपौ धसौ धनौ पश्च मपौ गमौ रिसौ तया।
तार षड्जाशकोऽड्डाणो रात्र्या तृतीययामके॥

अभिनवरागमजरी, पृ० २८ छ० १९०

२ ८४ वैष्णवन की वार्ता, स० परीख, (अष्टसखान-वार्ता प्रसग), पृ० २५

३ सगीत-सुधा, पृ० १६

वनियाँ को तीन दिन भये परंतु दरसन कों नाही गयो । तासों आज जो यह न चले तो याकों भय दिखावनो और दरसन करावनो। यह विचारि के सूरदास जी वा वनियाँ के पास आय के कह्यो जो तीन दिन वीत चुके मोकों फिरते परि तू दरसन कों नाही चल्यो जो आज तो चल । तव वा वनियाँ ने कह्यो जो कछू वोहनी करि सिंगार के दरसन करूँगो । तव सूरदास जी वा वनियाँ सों कही जो अव तो मैं तेरी वात सगरे वैष्णवन मे प्रगट करूँगो । जो यह वनियाँ झूठो वहोत है सो कवहूं याने श्रीनाथ जी को दरसन नाही कियो और यह वैष्णव हूँ नाही है । अव तेरे पास कोई वैष्णव सोदा लैन आवेगो तो मैं तेरे दोहा, चौपाई, पद कुटिलता के कराके वैष्णजन को सुनाऊँगो । सो या भांति कहिके भैरव राग में एक पद गायो ।

राग भैरव

आज काम कालि काम परसों काम करनो ।

'सो यह पद सूरदास जी ने वा वनिया कों वाही समय कीर्तन करिके सुनायो' ।[1]

वार्ताकार के कथन से यह ज्ञात होता है कि सूरदास ने राग भैरव के इस पद को मंगला के दर्शन करने के लिए जाते हुए गाया था। मंगला का समय प्रातः ५ वजे ७ वजे तक माना जाता था।[2] अतः सूरदास ने इस पद को प्रातः ५ से कुछ पूर्व ही गाया था। भैरव राग प्रातः काल गाया जाता है। अतः कवि का उस समय राग भैरव गाना उचित है।

सूर-साहित्य पर एक विहंगम विवेचनात्मक दृष्टि डालने के उपरान्त निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि कवि ने सर्वत्र रस, भाव और समय का ध्यान रखते हुए संगीत की रचना की है। सूरदास से पूर्व और उनके पश्चात् के न जाने कितने भक्तों ने सूरदास की ही भाँति अपनी वाणी के विलास से भगवान का यशगान किया है, न जाने कितनों ने तानपूरे सँभाल कर मंदिरों को अपने संगीत के स्वरों से गुंजायमान कर दिया है किन्तु आज उनकी क्षीण प्रतिध्वनि मात्र ही सुनाई पड़ती है। बहुतों की वाणी नीरवता में लीन हो चुकी है। सूरदास ही ऐसे हैं जिन्होंने अमरत्व प्राप्त कर लिया है। समय के साथ ही उनकी वाणी भी तीव्र होती जाती है। इसका कारण यही है कि सूर ने राग-रागिनियों के रस–भाव को देखकर, उसकी यथार्थ अनुभूति पा कर तदनुसार और तदनुकूल गीत-पद्य का चुनाव किया है। कवि ने तत्कालीन प्रचलित शास्त्रीय संगीत के रागों में जो पद गाये हैं उनके शब्द, अर्थ, भाव और रस और रागों तथा रागिनियों के रूप, रस और भाव के साथ संवादित हुए हैं। इसी गुण के कारण सूर का काव्य और संगीत मानव-जीवन के साथ एकाकार हो गया है। सूर की प्रतिभा ने काव्य और संगीत का इतना सुंदर समन्वय किया है कि वह काल की कठोर दीवारों को बेधकर आज भी अपना स्वर मुखरित कर रहा है और सदैव करता रहेगा। महाकवि के स्वरों को विश्व कैसे भुला सकता है।

---

१. ८४ वैष्णवन की वार्ता, स० परीख, (अष्टसखान-वार्ता), पृ० २३-२४

२. देखिए, प्रस्तुत ग्रंथ का तृतीय अध्याय, पृ० ११४

परमानददास

परमानददास ने अपने पदो में रागो के अनुकूल ही भावो की सृष्टि की है। कवि का निम्नलिखित पद अवलोकनीय है—

राग गौरी

या हरि को संदेश न आयो
बरस मास दिन बीतन लागे, बिन दरसन दुख पायो ॥
घन गरज्यो पावस ऋतु प्रकटी, चातक पीउ सुनायो।
मत्त मोर वन बोलन लागे, बिरहिन विरह सुनायो ॥
राग मल्हार सह्यो नहि जाई, काहू पथिकहि गायो।
'परमानद' कहा कीजै, कृष्ण मधुपुरी छायो ॥[1]

'राग मल्हार' बरसात में विशेष रूप से गाया जाता है।[2] कवि ने पद में पावस ऋतु का ही वर्णन किया है। इस कारण यद्यपि कवि ने स्वय इस पद को गौरी राग में गाया है किन्तु इस बात का स्पष्ट उल्लेख कर दिया है कि ऐसे पावस के दिनो में कोई राही मल्हार राग गा रहा है। प्राप्त चित्र[3] तथा सगीत-ग्रथो[4] के वर्णन से स्पष्ट है कि राग मल्हार आनद, हर्ष, प्रेम तथा शृगार का प्रतीक है। इसी कारण राही पथिक काले बादलो तथा बरसाती बूँदो के मध्य आनद में झूमकर मल्हार राग गा रहा है। किन्तु गोपिकायें विरह में सतप्त है। कृष्ण मथुरा में है। उनके पास से कोई पानी भी तो नही आई। प्रतीक्षा में नयन बिछाए वे कृष्ण का मार्ग देख रही है। वर्ष तथा महीने व्यतीत होते जा रहे है किन्तु श्याम का कोई सदेश नही आता। उनके रोते हुए हृदय में मिलन का उत्साह कहाँ, सयोग सुरति का आनद कहाँ ? एक क्षीण आशा लिए शायद कभी श्याम को हमारी सुध आ जाय। किसी प्रकार जीवन के सूने दिन काट रही है। घन का गरजना, चातक का पी-पी पुकारना, मोर का आनदित होकर नृत्य करना विरहिणी के विरह को और भी उद्दीप्त कर रहा है। ऐसी अवस्था में हर्ष तथा सुख का प्रकट करने वाला मल्हार राग वैरी सदृश्य जान पडता है। परमानद दास की गोपिया भी तो यही कहती है कि कृष्ण मधुपुरी में है, उनके विरह में हमें राग मल्हार कैसे सुहा सकता है।

---

१ पद-सग्रह, परमानददास, डा० दीनदयालु गुप्त, पद स० २३३

२ सगीत-दर्पण, पृ० ७५, सगीत पारिजात, पृ० १०२

३ राग मल्हार, चित्र स० ५

४ सगीत दर्पण, पृ० १०६

"The sonorous music of Megh Raga portrays the majesty of the clouds and expresses the joyful feeling caused by the advent of the rains '

The Laud Ragmala Miniatures, page 18

परमानंददास जी के काव्य में समस्त राग-रागिनियों का उचित रीति से निर्वाह हुआ है। वार्ता मे दिया है –

"सो जब जन्माष्टमी आई तब श्री गुसाईं जी आप परमानंददास जी को संग लेय के श्री गिरिराज सों श्री गोकुल पधारे। सो जन्माष्टमी के दिन श्री गुसाईं जी आपु श्री नवनीत प्रिय जी को अभ्यंग कराये। ता समय परमानंददास ने यह वधाई गाई –

राग धनाश्री

मिलि मंगल गावो माई।[1]

परमानंददास जी ने यह वधाई राग धनाश्री में गाई थी। संगीत-शास्त्र के अनुसार धनाश्री राग का गायन अधिकतर मागलिक प्रसंग पर किया जाता है।[2] कृष्ण जन्म से अधिक और कौन मांगलिक प्रसंग हो सकता है, जिसने दुष्टों का दमन करके भारतीय जीवन को कल्याण की ओर अग्रसर किया।

परमानंददास जी ने अपने पदों में समय-सिद्धांत का भी प्रायः सर्वदा पालन किया है। उदाहरणस्वरूप देखिए –रजनी व्यतीत हो गई और सूर्य किरणे चारों ओर विकीर्ण हो गई है। प्रातःकाल का आगमन हो जाने के कारण घर-घर मे दधि-मंथन किया जा रहा है किन्तु कृष्ण अभी सो ही रहे हैं। अतः परमानंददास कृष्ण को जगाने के लिये गाते हैं –

राग भैरव

ललित लाल श्री गोपाल सोइये न प्रातकाल,
यशोदा मैया, लेत वलैया, भोर भयो वारे।......
रवि की किरन प्रकट भई उठो लाल निशा गई,
दही मथत जहाँ तहाँ गावत गुन तिहारे।
नंदकुमार उठे विहँसि कृपा दृष्टि सब पै हरषि,
युगल चरण कमल पर परमानंद वारे।[3]

कवि ने उक्त पद में प्रातःकालीन वर्णन का गायन प्रातःकाल गेय राग भैरव ही में किया है जो सामयिक है।

विरह-वियोग में संतप्त गोपियाँ रात्रि में कृष्ण का स्मरण करती है–

राग विहाग

माई री चंद लग्यो दुःख देन,
कहाँ वे देस कहाँ वे मोहन कहाँ वे सुख की रैन।

---

१. ८४ वैष्णवन की वार्ता, सं० प्रभुदयाल मीतल, पृ० ५४

२. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० ३६५

३. हस्तलिखित पद-संग्रह, परमानंददास, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० ३६३

तारे गिनत गई री सब निसि नेंकु न लागे नैन,
परमानद प्रभु पिया बिछुरे तें पल न परत चित चैन ।[१]

सयोगावस्था में आनद प्रदान करनेवाली प्राकृतिक परिस्थितियाँ विरह में उद्दीपन बन रही हैं। चन्द्रमा की शीतल ज्योत्स्ना विरहाग्नि को प्रज्वलित कर रही है। तारे गिन-गिन कर रात व्यतीत हो रही है किन्तु नयनो में नींद कहाँ। सम्पूर्ण पद में रात्रि का वर्णन किया गया है। विहाग रात्रिकालीन गेय राग है इसीलिए परमानददास जी ने उक्त पद में निहित रात्रिकालीन भावो का गायन रात्रिकाल के राग विहाग[२] में किया है।

वार्ताकार के कथन से ज्ञात होता है कि क्षत्रिय कपूर-जलघरिया के प्रसग में रात्रि के समय परमानददास ने जो पद गाए थे वे राग बिहागरो, कान्हरो तथा सोरठ में थे।[३] बिहागरो,[४] कान्हरा[५] तथा सोरठ[६] ये तीनो ही रात्रि कालीन राग हैं और रात्रि के समय गाए जाते हैं। इसी कारण परमानददास जी ने एकादशी को सम्पूर्ण रात्रि-कीर्तन में अपने गायन के लिए इन रात्रिकालीन रागो ही को चुना है।

वार्ताकार ने एक प्रसग का उल्लेख किया है जिससे परमानददास के समयानुकूल राग गायन पर विशेष प्रकाश पड़ता है—

"पाछें श्री नदराय जी और गोपी ग्वाल वैष्णवन के जूथ अपने लालजी सग (को) लेके दधिकादो किये। तब परमानददास को चित्त आनद में विक्षिप्त होय गयो। ता समय परमानददास नाचन लागे और यह पद गायो। सो वा प्रेम में परमानददास राग को हू क्रम भूलि गए। सो रात्रि को सो समय और सारग में गाये। सो पद —

राग सारग

आजु नदराय के आनद भयो।

यह पद गाये पाछे परमानददास प्रेम में मुर्छा खाय भूमि में गिर पड़े।"[७]

कृष्ण के प्रेम-रस का पान करके परमानददास जी आनद में मत्त होकर नृत्य करने लगे। भगवान की रूप-माधुरी में छक कर कवि अपने आप को भूल गया और उसे यह भी

---

१ हस्तलिखित पद सग्रह, परमानददास, डा० दीनदयालु गुप्त, पद स० ३२४
२ राग-कल्पद्रुमाकुर, पृ० १७, राग-चद्रिका, पृ० ११, अभिनवराग-मजरी, पृ० १६
३ ८४ वैष्णवन की वार्ता, स० प्रभुदयाल मीतल, पृ० ३७
४ सगीत सुधा, (हाथरस), पृ० १३
5 Sangit of India, Atyia Begum, Page 38
६ सगीत सुधा, (हाथरस), पृ० १८
७ ८४ वैष्णवन की वार्ता, स० पारीख, पृ० ५४

ज्ञान न रहा कि वह किस समय किस राग को गा रहा है । राग सारंग दोपहर में गाया जाता है किन्तु कवि प्रेम में विक्षिप्त हो कर रात्रि के समय सारंग राग गाता है इससे यह ज्ञात होता है कि परमानंददास जी चैतन्य अवस्था मे सर्वदा अपने पदों का निर्माण समयानुकूल राग-रागिनियों ही मे किया करते थे ।

कुंभनदास

भक्तिशास्त्र मे स्त्री-पुरुष के रतिभाव जन्य आनंद को जिसे लोक-पक्ष मे शृंगाररस कहा जाता है 'मधुर रस' की सज्ञा दी जाती है । इसी मधुर भक्ति के संयोग-सुख को प्रकट करते हुए कुंभनदास जी कहते है –

राग विहाग

वह देखो वरत झरोखन दीपक
हरि पौढ़े ऊँची चित्र सारी ।
सुन्दर वदन निहारन कारण
राख्यो है वहुत जतन कर प्यारी ॥
कण्ठ लगाय भुज दे सिरहाने
अधर अमृत पीवत सुकुमारी ।
तन मन मिली प्राण प्यारे सों
नूतन छवि वाढ़ी अति भारी ॥
कुंभनदास दम्पती सौभाग सीवां
जोड़ी भली वनी एक सारी ।
नव नागरी मनोहर राधे
नवल लाल श्री गोवर्धनधारी ॥[१]

कुंभनदास जी ने इस पद को राग विहाग में गाया है । विहाग एक मनोहर राग है और हर्ष तथा आनंदमय भावों को उत्पन्न करता है ।[2] विहाग राग के आरोह में ऋषभ तथा धैवत स्वर वर्जित है अर्थात् नहीं लगते ।[३] अतः 'स' से 'ग' तथा 'प' से 'नि' पर जाने में एक प्रकार का उल्लास, चपलता तथा हर्ष सा प्रकट होता है । कुंभनदास जी के राग विहाग के इस पद मे राधा-कृष्ण के युगल सहवास में सुखद भावावलि है और प्रेम पुलकित रूप है ।

---

१. २५२ वैष्णवन की वार्ता, पृ० २१
2. Behag created a sense of gladness and joy, Sangit of India, Atiya Begum, Page 60.
३. कोमल मध्यम तीरव सव चढ़ते रिध को त्याग ।
गनि वादी संवादितें जानत राग विहाग ॥ राग-चंद्रिकासार, पृ० १५

सानिध्य तथा सयोग की अनुभूति के फलस्वरूप हर्ष, चपलता, उमग तथा उत्साह छा रहा है। वास्तव में कवि ने उक्त पद को राग-विहाग में गा कर सगीत तथा काव्य के रस का सुन्दर साम्य उपस्थित किया है।

प्रस्तुत पद में भगवान की रात्रिकालीन सयोग-लीला का सुखद वर्णन किया गया है। २५२ वैष्णवन की वार्ता से विदित होता है कि कवि ने इस पद को रात्रि में भगवान के शयन-समय गाया था।[1] कुभनदासजी द्वारा इस पद को रात्रि में गाना तथा पद के अन्तर्गत रात्रिकालीन भावो का वर्णन करना सामयिक है क्योकि विहाग रात्रिकालीन राग है और रात्रि के समय गाया जाता है।[2]

वर्षाऋतु में काले बादल गरज रहे है। शीतल पवन चल रहा है। चातक, पिक और कोयल की कूक वातावरण को गुजायमान कर रही है। मोर आनद में मग्न है। धीमी-धीमी फुहारें गिर रही हैं। मिलन-भावना को उद्दीप्त करने वाली वर्षा ऋतु की प्राकृतिक सुषमा का वर्णन कुभनदास जी वर्षाकालीन गेय राग मलार ही में करते है —

राग मलार

रिमझिम रिमझिम घन बरसैं री।
बोलत मोर कोकिला कूजति तैसोये दामिनी अति दरसैं री।
धाइ रहे बदरा जित-तित तें भूमि अपने पर परसैं री।
'कुभनदास' प्रभु गिरिधर पिय को तोहिं मिलन कों जिय तरसैं री।[3]

कुभनदास जी के पदो में प्राय सर्वत्र ही समयानुकूल गायन का विधान है। रात्रि कही और व्यतीत कर नायक प्रात काल घर आया है। प्रात काल के समय खण्डिता नायिका के प्रसग का गायन कवि प्रात काल राग विभास तथा विलावल में करता है—

---

१ "जब कुभनदास जी कूँ पोढवे के दर्शन होते हुते तब कुभनदासजी कीर्तन गायवे लगे। सो पद। दे देखो बरत झरोखन दीपक हरि पौढे ऊँची चित्र सारी।" २५२ वैष्णवन की वार्ता, पृ० २१

२ विहग इ ह गीयते मसृदुरन्यतीव्रस्वरो।
रिधौ त्यजति रोहणे स्पृशति चावरोहे पुन ॥
तथा निगदितौ गनौ रुचिरवादि सवादिनौ।
निशीथ समये सदा श्रुतिमनोहर गीयते। राग-कल्पद्रुमाकुर, पृ० १०
मृदुर्म इतरे तीव्रा वादिसवादिनौ गनौ।
आरोहे रिधहीनोऽय विहगस्तु निशीयग ॥ राग-चद्रिका, पृ० ११
निसौ गमौ पनौ सनौ धपौ गमौ पगौ मगौ।
रिसाविति विहग स्यान्नक्त रोहेऽरिधोऽन्ग ॥ अभिनवराग-मजरी, पृ० १६

३ कुभनदास, काँकरौली, पृ० ६२, पद स० २६२

राग विभास

सांझ जु आवन कहि गए लाल ! भोर भऐ देखे ।
गनत नछित्र नैन अकुलाने, चारि पहर मानों चार्‌यों जुग विसेखे ।।
कीनी भली जु चिन्ह मिटाए, अधरनि रंग अरु उर नख-रेखे ।
'कुंभनदास' प्रभु रसिक-सिरोमनि गिरिधर ! तुम्हारे कैसे लेखे ।।[1]

तथा –

राग विलावल

कहो धों कहां तुम रैनि गँवाई ? लाल ! अरुन उदय आए ।
कौन सँकोच घनस्याम सुंदर ! तमचुर बोलत उठि धाए ।।
आँखि देखि कहा साखि वूझिये ? रति के चिह्न तन प्रगट लाए ।
'कुंभनदास' प्रभु (सु) जान गिरिधर काहे कों दुरत पिय ! जानि पाए ।।[2]

रात्रि-समय रास-क्रीड़ा का वर्णन कुंभनदास जी रात्रिकालीन गेय राग केदारा में करते है –

राग केदारो

पूरत मधुरे वैनु रसाल
चारु धुनि वह सुनत स्रवननि, विमोही ब्रज-वाल ।।
राज रितु, गिरि गोवर्धन-तट रच्यो रास गोपाल ।।
देखि कौतुक चंद भूल्यौ, तजी पश्चिम चाल ।।
थकित सुर, मुनि, पवन, पसु, खग, सुधि न रही तिहि काल ।
'दास कुंभन' प्रभु हर्‌यो मन गोवर्द्धन-धर लाल ।।[3]

कवि के अन्य पदों में भी प्रायः रस-राग और समय-सिद्धांत का पालन किया गया है ।

कृष्णदास

८४ वैष्णवन की वार्ता में एक प्रसंग दिया है–

"जब सेन आरती श्री गोवर्द्धननाथ जी की होय चुकी तब कृष्णदास स्यामकुमार को लेके परासोली में चंद्रसरोवर है तहां आये । तहां देखें तो श्री गोवर्द्धनधर और श्री स्वामिनी जी सगरी सखीन सहित विराजे है । तब श्री गोवर्द्धनधर ने स्यामकुमार सों कही जो–तू तो मृदंग बजाव और कृष्णदास सों कह्यो जो–तू कीर्तन गाव । सो चैत्र सुद १५ पून्यो के दिन रात्रि डेढ़ गई उजियारी फैल गई सो अलौकिक रात्रि भई । तब स्यामकुमार ने मृदंग

---

१. कुंभनदास, कांकरौली, पृ० १०८, पद सं० ३२१
२. वही, पृ० १०८, पद सं० ३२४
३. वही, पृ० २०, पद सं० ३०

बजायो। सो वसत ऋतु के सुन्दर फूल लतान सो फूलि रहे हैं। सो श्री गोवर्द्धनधर श्री स्वामिनी जी सहित नृत्य करन लगे। ता समय कृष्णदास ने यह पद गायो। सो पद –

राग केदारो

श्री वृषभानननदनी नाचत लाल गिरिधरन सग,
लाग डाट उरप-तिरप रास रग राच्यो।

सो यह पद सुनि के श्री गोवर्द्धनधर प्रसन्न होय के अपने श्रीकठ की प्रसादी कुद कुसुमन की माला दीनो। सो कृष्णदास अपने परम भाग्य माने सो रोम-रोम में आनद भरि गयो। सो तब रस में मगन होय के यह पद गायो। सो पद–

राग मालव

(१) अलाग लागिन उरप तिरप गति नटवट व्रज ललना रासें,
अपने कठ की श्रमजल दलमलि माला देत कृष्णदासें।
(२) ततायेई रास मडल में।
(३) चद गोविंद गोपी तारागन।
(४) सिखवत पिय को मुरली बजावत॥

सो या प्रकार बहोत कीर्तन कृष्णदास जी गाये। तब स्यामकुमार मृदग बहोत सुदर बजायो। सो श्री गोवर्द्धनधर, श्री स्वामिनीजी सगरे व्रजभक्तन सहित रास अद्भुत नृत्य किये।"[1]

कृष्णदास ने इस समय जो पद गाये है वे राग मालव तथा राग केदारा में हैं। राग मालव मध्य रात्रि के अनतर गाया जाता है और यह सयोग शृगार का राग है।[2] मालव राग का जो चित्र मिला है वह सयोग शृगार का प्रतीक है। नायक-नायिका आलिगन पाश में बद्ध है और प्रेम के आनदमय भाव को प्रगट कर रहे हैं।[3]

---

१ ८४ वैष्णवन की वार्ता, पृ० ११४–१५

2 "He is represented as a glorified image of the rich, deep, passionate and mystic melody"
"The hour in which it should be performed is past midnight"
Sangit of India, Atiya Begum, Page 63
'Malva, Malavakausika, or Malkaus Rag'
Two lovers in intimate embrace provide the motive, the feeling expressed is the enjoyment of love II should be sung well past midnight'
The Laud Ragamala Miniatures, Page 38

३ मालवकौशिक, (मालव), चित्र स० ६

कृष्णदास ने इस समय मालव में जो पद गाये हैं वे संयोग-शृंगार के हैं। उनमें श्रीकृष्ण, राधा तथा गोपियों की रास-क्रीड़ा का वर्णन किया है। वार्ताकार के कथन से इस बात की पुष्टि हो जाती है कि कृष्णदास ने इन पदों को राग मालव में उस समय गाया था जब कि डेढ़ प्रहर रात व्यतीत हो चुकी थी और श्री गोवर्द्धनधर तथा श्री स्वामिनी जी जी संयुक्त रूप से नृत्य कर रहे थे। रासलीला प्रेम तथा आनंद की प्रतीक है। इस प्रकार कवि के द्वारा वर्णित पदों तथा राग मालव के भावों तथा उनमे निहित रस मे एकता है। कवि ने रस-राग तथा समय-सिद्धात का सकुशल पालन किया है।

जैसा कि पूर्व कहा गया है राग केदारा रात्रिकालीन गाया जाने वाला राग है। कवि ने अपने ऊपर लिखे पद को रात्रि के समय राग केदारा में गाकर अपने शास्त्रीय संगीत के ज्ञान का प्रमाण दे दिया है।

वार्ता साहित्य से ज्ञात होता है कि कृष्णदास ने जो पद वेश्या को श्रीनाथ जी के सम्मुख गाने के लिए सिखाया था वह पूर्वी राग मे था।[1]

राग पूर्वी

मेरो मन गिरधर छबि पर अटक्यो।
ललित त्रिभंगी अंगन परि चलि गयो तहांई ठटक्यो ॥१॥
सजल श्याम घन चरमनील ह्वै फिर चित अनित न आनि तन भटक्यो।
कृष्णदास कियो प्राण न्योछावरि यह तन जग सिर पटक्यो ॥२॥

श्रीनाथ जी के सम्मुख गाने के कारण संयोग का पुट है। किन्तु 'मेरो मन गिरधर छबि पर अटक्यो' पंक्ति में अपने आराध्य के प्रति अनन्य भाव दर्शाया है। आध्यात्मिक पक्ष को लेकर कह सकते है कि उक्त पद पूर्वराग-वियोग के अन्तर्गत है क्योंकि आध्यात्मिक जगत. मे साधक निकट होते हुए भी उससे निकटतर संबंध चाहता है। अतः उक्त पद में वियोग की भावना स्पष्ट झलक रही है। वार्ता[2] से भी ज्ञात होता है कि इस पद की अंतिम पंक्ति गाते हुए उस वेश्या के प्राण छूट गये और वह दिव्य रूप ग्रहण कर लीला मे प्राप्त हुई। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि वेश्या का भगवान से संयोग मृत्यु के उपरान्त ही हुआ था। पद गाने के समय तो वियोग ही था।

पूर्वी राग मे रे, ध कोमल तथा शुद्ध और तीव्र दोनो मध्यमों के प्रयोग से वियोग-

---

१. ८४ वैष्णवन की वार्ता, पृ० ३५३

२. "सो कृष्णदास ने पद करिके सिखायो हतो सो गायो। सो गावत-गावत जब छेली तुक आई 'जो कृष्णदास कियो प्रान निछावर यह तन जग सिर पटक्यो' या पद को गान करत ही वा वेश्या की देह छूट गई सो दिव्य देह होय लीला में प्राप्त भई।" **८४ वैष्णवन की वार्ता, सम्पादक द्वारकादास परीख, पृ० ११९**

शृंगार की अभिव्यक्ति होती है। विरह की व्याकुलता को प्रकट करने के लिए ही कृष्णदास ने पूर्वी राग को चुना होगा।

हरिराय प्रणीत वार्ता से ज्ञात होता है कि कृष्णदास ने उस वेश्या से पूर्वी राग के इस पद को भोग के दर्शन के समय गवाया था—

"ता पाछे उत्थापन के दरसन होय चुके तब भोग के दरसन के समय वा वैश्या को समाज सहित कृष्णदास परवत के ऊपर ले गये। पाछे भोग के किवाड़ खुले। तब वह वैश्या ने पहले नृत्य कियो ता पाछे गान करन लागी। सो कृष्णदास ने पद करिके सिखायो हतो सो गायो।"[1]

मध्याह्नोत्तर शयन से जगने के उपरान्त फल-फलादि से भोग लगाना भोग कहा जाता है। भोग का समय सायंकाल ५ बजे से माना जाता था।[2] पूर्वी राग का गायन सायंकाल (३ से ६) बजे तक किया जाता है।[3] अत भोग के समय पूर्वी राग का गायन शास्त्रीय दृष्टि से उचित है।

कृष्णदास के समस्त पदों में समय-सिद्धांत का पूर्णतया पालन किया गया है। वार्ता में दो प्रसंग दिए गए हैं—"पाछे उत्थापन तें सेन पर्यन्त की सेवा सो पहोचि के सेन आरती करि श्री गुसाईं जी आपु श्रीनाथ जी के सन्मुख कृष्णदास को दुसाला उढ़ाये और कहे जो—श्री गोवर्द्धनधर को अधिकार करो। तुम धन्य हो। तब वा समय कृष्णदास ने यह पद गायौ। सो पद—

राग कान्हरो

परम कृपाल श्री वल्लभनन्दन करत कृपा निज हाथ दे माथे।
सो यह पद कृष्णदास ने गायो।"[4]

तथा—

"ता पाछे श्री गुसाईं जी के संग कृष्णदास श्री गोवर्द्धन आये, तब सेन समय आरती को समो भयो। तब श्री गुसाईं जी न्हाय के सेन आरती किये। तब कृष्णदास ने यह पद गायो। सो पद—

राग कान्हरो

आज को दिन धनि-धनि री माई नैनन भरि देखे नदनदन।[5]

---

१ वही, पृ० ११८
२ देखिए प्रस्तुत ग्रंथ का तृतीय अध्याय, पृ० ११४
३ संगीत आफ इंडिया, अतिया बेगम, पृ० ५८
४ ८४ वैष्णवन की वार्ता, सम्पादक द्वारकादास पारीख, पृ० १३२
५. वही, पृ० १३४

व्यारू या शयन के पूर्व आरती-वंदन को शयन समय की आरती कहा जाता है। शयन समय रात्रि के ७ बजे से ८ बजे तक माना जाता था।[१] कवि ने दोनो पद शयन आरती के समय राग कान्हरा मे गाए है। राग कान्हरा का समय भी रात्रि का प्रथम पहर है।[२] अतः कवि का उस झाँकी मे राग कान्हरा का गायन समयानुकूल ही है।

नंददास

राधा-कृष्ण की रति-क्रीड़ा का गायन करते हुए नंददास कहते है –

राग विहाग

दम्पत्ति पौढ़ेई पौढ़े रस वतियाँ करन लागे दोउ नैना लागि गये,
सेज ऊजरी चन्दा हु ते निर्मल ता पर कमल छये।
फूकत दृग वृषभानु नन्दिनी झंपत खुलत मुरझात नये,
मानों कमल मध्य अलिसुत वैठे सांझ समय मानो सकुच गये।
आलस जान आप संग पौढ़ी पिय हिये उर लाय लये,
नन्ददास प्रभु मिलि श्याम तमाल ढिग कनक लता उलहये।[३]

तथा –

राग विहाग

केलि करि प्यारी-पिय, पौढ़े चारु चांदनी में,
नेह सों लिपट गए, जोवन के जोस में।
अँगिया दरक गई मानो प्रात देखिवे कों,
चोंच काढ़ि चक्रवाक काम-तर रोस में।
आरस सों मोर बाँह दोऊ, कुच गहे पिय,
रति के खिलौना मानों ढापि दिये ओस में।
रूप के सरोवर में 'नंददास' देखे आली,
चकई के छौना वेंधे कंचन के कोस में।[४]

प्रस्तुत पदों में रात्रिकालीन संयोग-सुख का वर्णन किया गया है जैसा कि पहले कहा जा चुका है राग विहाग संयोग-शृंगार रस का रात्रिकालीन गेय राग है इसीलिए कवि ने उक्त पदों को राग विहाग में गाया है।

१. देखिए प्रस्तुत ग्रंथ का तृतीय अध्याय, पृ० ११४

2. "Ragini Kanhra: The time for its performance is early Night."
Sangit of India, Atiya Begum, Page 65.
"It should be sung or played ········in the early hours of the night."
The Laud Ragamala Miniatures, Page 26.

३. नंददास, उमाशंकर शुक्ल, पृ० ४२२

४. पद-संग्रह, नंददास, डा० दीनदयालु गुप्त, पृ० १२

वर्षा-आगमन -- श्रावण मास में वर्षा की शोभा के मध्य केलि करते हुए युगल स्वरूप संबंधी पदों का गायन कवि वर्षा ऋतु के रूप तथा आनंद के प्रतीक राग मल्हार ही में करता है –

राग मल्हार

आयो आगम नरेश देश देश में आनंद भयो, मनमथ अपनी सहाय कूं बुलायो।
मोरन की टेर सुन कोकिला कुलाहल, तैसोई दादुर हिलमिल सुर गायो।
चढ्यो घन मत्त हाथी पवन महावत साथी, अंकुस बकुश दे दे चपला चलायो।
दामिनी ध्वजा पताका फहरात सोभा बाढ़ी, गरज-गरज धौं धौ दमामा बजायो।
आगे आगे धाय धाय बादर बर्षत आय, ब्यारन की बहुक्न ठोर-ठोर छिरकायो।
हरी हरी भूमि पर बूंदन की शोभा बाढ़ी, बरण रंग बिछौना बिछायो।
भाजे हैं बिरही चोर कीनो हैं जनम रोर, सजोगी साधन सो मिल अति सचु पायो।
नंददास प्रभु नंद नंदन को आज्ञाकारी, अति सुखकारी ब्रजवासी मन भायो।[1]

तथा –

राग मल्हार

जहँ तहँ बोलत मोर सुहाए।
साँवल रमन भवन बृंदावन घुमडि घुमडि घन आए।
नेन्हीं नेन्हीं बूंदन बरषन लागे, ब्रज मंडल पे छाए।
नंददास प्रभु सखा संग लिये मुरली कुंज बजाए।[2]

बसंत-बहार का वर्णन कवि ने बसंत राग में किया है –

राग-बसंत

डोल झुलावत सब ब्रज-सुंदरि, झूलत मदन-गुपाल,
गावत फागु धमार हरषि अरि, हलधर औ सब ग्वाल।
फूले कमल केतकी कुंजन गुंजन मधुप रसाल,
चंदन वंदन चोवा छिरकति उड़त अबीर गुलाल।
बाजत बेनु, बिवान बाँसुरी, डफ मृदंग और ताल,
'नंददास' प्रभु के संग बिलसति, पुंज पुंज ब्रज बाल॥[3]

प्रातःकाल कृष्ण को जगाने के प्रसंग में नंददास जी प्रातःकालीन गेय राग भैरव का प्रयोग करते हैं –

राग भैरव

चिरैया-चुहचानी, सुन चकई की बानी, कहत जसोदा-रानी जागो मेरे लाला।
रवि की किरन जानी, कुमुदनी सकुचानी, कमल बिकसे दधि मथत बाला।

---

१ वर्षोत्सव कीर्तन-संग्रह, (भाग २), पृ० २६३
२ नंददास, उमाशंकर शुक्ल, पृ० ३८१
३ हस्तलिखित पद संग्रह-नंददास, डा० दीनदयालु गुप्त, पृ० २४

सुवल श्रीदामा, लोक उज्जल वसन पहिरें, द्वारे ठाढ़े टेरत हैं वाल गुपाला ।
'नंददास' वलिहारी उठो, वैठो गिरिधारी, सव मुख देखन चहें लोचन विसाला ॥[1]

खंडिता प्रसंग मे प्रात.काल लौट कर आये हुए नायक की अस्तव्यस्त अवस्था का उल्लेख कवि प्रात.काल राग ललित मे करता है –

राग ललित

भले भोर आए नैना लाल ।
अपनों पट-पीत छाँड़ि, नीलाम्वर लै विलसै उरलाई नई रसिक-रसीली वाल ।
रति जय-पत्र सु लिख दीनों उर सोभित स्याम घन विनु गुन-माल ।
'नंददास' प्रभु सांची कहिये, फिर फिर प्यारे हमारे नंदलाल ।[2]

संध्या समय गौवें चराकर लौटते हुए कृष्ण की रूप-माधुरी का गायन कवि सायंकालीन गेय राग गौरी मे करता है –

राग गौरी

वन तें आवत गावत गौरी
हाथ लकुटिया, गायन पाछें ढोटा जसुमत को री ।
मुरली धरें अधर नंदनंदन मानों लगी ठगौरी,
याही ने कुलकान हरी है, ओढ़ै पीतपिछौरी ।
चढ़ि चढ़ि अटनि लखति व्रजवाला, रूप निरख भईं वौरी ।
'नंददास' जिन हरिमुख निरख्यौ, तिनको भाग वडौरी ।[3]

नंददास जी के अन्य पदों में भी इसी प्रकार रस-राग तथा समय-सिद्धांत का पालन किया गया है ।

चतुर्भुजदास

वर्षा ऋतु का वर्णन करता हुआ कवि कहता है –

राग मल्हार

स्याम सुन नियरो आयो मेहु
भीजेगी मेरी सुरंग चूनरी ओट पीत पट देहु ।
दामिनि ते डरपति हों मोहन निकट आपुनो देहु ।
दास चतुर्भुज प्रभु गिरधर सों वांध्यो अधिक सनेहु ।[4]

१. हस्तलिखित पद संग्रह, नंददास, डा० दीनदयालु गुप्त, पृ० १, पद सं० ६
२. वही, पृ० २, पद सं० ६
३. वही, पृ० ४८
४. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २८६, पद सं० ६२

तथा –

सावन तीज हरियारी सुहाई माई रिमझिम रिमझिम बरसत मेह भारी।
चुनरी को पाग बनी चुनरी पिछौरा कटि, चुनरी चोली बनी चुनरी को सारी ॥
दादुर मोर पपैया बोलत, कोयल सब्द करत किलकारी।
गरजत गगन दामिनी दमकत गावत मलार तान लेत न्यारी ॥
कुंज महल में बैठे दोऊ, करत विलास भरत अकवारी।
'चतुर्भुज' प्रभु गिरिधर छवि निरखत, तन मन धन न्योछावर वारी ॥[1]

तथा –

हिंडोरना माई झूलन के दिन आए।
गरज-गरज गगन दामिनी दमकत, राग मलार जमाए ॥
कंचन खंभ सुढार बनाए, बिच बिच हीरा लगाये।
डांडी चारि सुदेस सुहाई चौकिन हंस जराए ॥
रमकनीय झमकिनी पियारी, किंकिनि सब्द सुहाए।
'चतुर्भुज' प्रभु गिरिधर लाल सँग भामिनि मंगल गाए ॥[2]

तीनो पदो में सावन के दिनो का वर्णन किया गया है। काले घन उमड रहे है। बिजली चमक रही है। रिमझिम पानी बरस रहा है। कोयल, दादुर, पपीहा और मोर आनंदित हो कर शोर कर रहे है। हिंडोला झूलने के दिन आ गए है। शास्त्रीय नियमो के अनुसार ऐसे समय में राग मल्हार गाया जाता है। चतुर्भजदास जी ने भी शास्त्रीय परम्परा का निर्वाह करते हुए मल्हार राग का ही उल्लेख किया है।

चतुर्भुजदास जी का खंडिता भाव का एक पद देखिए –

राग ललित

अलस अनोद्यो ना आवत घूमत
मूंदे अति नीके लागत अरुन बरन
जानत हो सुंदर स्याम रजनी के
चारि जाम नेंकहु न पायें मानो पलक परन।
अधरनि रंग देख उराही चित्र
विसेष सिथिल अंग डगमगति चरन।
'चतुर्भुज' कहाँ बसन पलटि
आए साचौस कहो गिरराज धरन ॥

उक्त पद श्रृंगार रस से परिपूर्ण है नायक ने रात्रि कही और व्यतीत की है।

---

१ अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २८८, पद स० ५६

२ वही, पृ० २६३, पद स० ८०

प्रातःकाल होने पर वह घर आता है। नायक की अस्तव्यस्तता को देखकर उपेक्षिता नायिका उपालंभ दे रही है। उपेक्षित होने के फलस्वरूप मानिनी नायिका के स्वर करुणामय है। राग ललित श्रृंगारी है। इसमें रे (कोमल ऋषभ) तथा शुद्ध और तीव्र दोनों प्रकार के मध्यम लगाए जाते है। इन स्वरों के योग से राग ललित में करुणा तथा उपालम्भ के भाव स्पष्ट झलकते है। कवि ने राग ललित के इस पद मे श्रृंगार तथा उपालम्भ की योजना देकर रस-राग सिद्धांत के प्रति अपनी उत्कट अभिरुचि प्रकट की है।

भक्तिभाव मे कृष्ण-वंदना करते हुए चतुर्भुजदास जी कहते है –

राग भैरव

नैननि भरि देखो गिरधर कोमल मुख।
मंगल आरति करों प्रात ही परम सुख।
लोचन विसाल छबि संचु हृदे में धरों कृपा अवलोकनि चारु भृकुटी न सुख।
चतुर्भुजदास प्रभु आनंदनिधि रूप निरषि के दूरि करों सब रेनि को दुख।[1]

तथा –

राग भैरव

मंगल आरती गोपाल की
प्रात ही मंगल होतु निरखि के चितवनि नैन विसाल की।
मंगल रूप स्याम सुंदर को मंगल भृकुटि भाल की।
चतुर्भुजदास मंगल निधि बानक गिरिधर लाल की॥[2]

भैरव भक्ति रस का राग है।[3] भैरव राग की विशेषता है कि इसके गाने से कुछ समय के लिए मनुष्य को संसार से विरक्ति हो जाती है और भय दूर होकर हृदय को शांति मिलती है।[4] भैरव राग में यह शक्ति है कि वह क्षुद्र, अविनीत, चंचल तथा कामुक हृदय

---

१. हस्तलिखित पद-संग्रह, चतुर्भुजदास, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० ३
२. वही, पद सं० ४
३. भैरव लच्छन गाय गुनीवर।
कोमल सुरधर गमनी सुधकर।
प्रात समय रीझत नारी नर॥
धैवत होत प्रधान जीव सुर
रेखब सहचर होत पुरस्सर
मालव ठाठ लिखत अत सुन्दर
भक्ति रस सों गाय गुनी चतर॥
संगीत-शिक्षा, श्रीकृष्ण नारायण रातांजनकर, (द्वितीय भाग), पृ० ७७
4. "Bhairon should be played from early dawn to sunrise. It expresses a feeling of peace and harmony and is supposed to drive away fear."
The Laud Ragamala Miniatures, Page 28.

को मोडकर धार्मिक प्रवृत्ति में लीन कर देता है। भैरव राग धार्मिक स्थलों तथा सम्मानित स्थानों पर गाया जाता है।[1] यह गंभीर प्रकृति का राग है।[2] भैरव राग का वादी स्वर (ध) तथा सवादी ऋषभ (रे) है। अत इन स्वरों का प्रयोग अधिकता से होता है। गाते समय इन कोमल स्वरों की प्रकृति इतनी गंभीर हो जाती है कि मन को संसार से वैराग्य सा होने लगता है। भैरव राग का जो चित्र मिला है उसमें भी भैरव का स्वरूप एक सन्यासी के रूप में चित्रित है जिससे भक्ति रस का संकेत मिलता है।[3]

कवि के पदों में वर्णित भाव भैरव राग के लक्षणों से पूर्णतया मेल रखते हैं। कवि दीनवत्सल भगवान की उपासना में इन पदों को गा रहा है। इससे अधिक भक्तिपूर्ण तथा धार्मिक प्रसंग और क्या हो सकता है। चतुर्भुजदास जी नेत्रों से आग्रह करते हैं कि चचलता त्याग कर कृष्ण के रूप-माधुर्य का पान करो और उसी सुख में लीन रहो। पदों में प्रात काल की मंगल-आरती का वर्णन है। भैरव प्रात कालीन गेय राग है। अत स्पष्ट है कि कवि ने रस-राग के साथ ही समय सिद्धान्त का भी पूर्ण रूपेण निर्वाह किया है।

चतुर्भुजदास जी रागों के गुणों से भी परिचित थे। राग सारग में गाता हुआ कवि कहता है —

राग सारग

ऐसैंहि मोहू क्यों न सिखावहु।
जसे मधुर-मधुर कल मोहन, तुम मुरलिका बजावहु॥
सारग राग सरस नदनदन, तजि सप्तक सुर गावहु।
ता बधान सुजान सहज में, बहुत अनागत लावहु॥
श्रुति सगति करी परिमित तो ताहू में अतित बढावहु।
खग मृग पसु कुल-बधू देव मुनि, सब की गति बिसरावहु॥[4]

राग सारग

बेनु धर्यो कर गोविंद गुन निधान।
जाति हुति बन काज सखिन सग ठगी धुनि सुनि कान।

1 "It is a rich heavy Rag capable of creating deep mystic feelings, altering the attitude of flippant natures into that of serious mindedness Rag Bhairon is fit to be sung before high dignitories and in places of prestige and status"

Sangita of India, Atiya Bagum, Page 60

'Bhairon converted flippancy into serious devotion

The same Page 60

२ संगीत शिक्षा, (भाग २), श्री कृष्णराताजनकर, पृ० ७३

३ राग भैरव, चित्र स० ७

४ हस्तलिखित पद-संग्रह, चतुर्भुजदास, डा० दीनदयालु गुप्त

मोहन सहस कल खग मृग पसु बहु विवि सप्तक सुर बंधान ।
चतुर्भुजदास प्रभु गिरिधर तन मन चोरि लियो करि मधुर गान ।[१]

सारंग राग का जो चित्र प्राप्त है उसमें मुग्ध पशु-पक्षियों को एकत्रित दिखाया है ।[२] संगीत-ग्रंथों से भी विदित है कि सारंग राग की यह विशेषता तथा गुण है कि उसकी ओर पशु आकर्षित हो जाते है ।[३] यही कारण है कि मुरली की ध्वनि से आकर्षित पशुओं का वर्णन कवि ने सारंग राग में किया है ।

अतः यह निःसंदेह कहा जा सकता है कि चतुर्भुजदास जी संगीत-शास्त्र के ज्ञाता थे और भारतीय संगीत के नियमों के अनुसार रस, समय तथा प्रकृति का ध्यान रख कर रागों का प्रयोग करते थे ।

गोविंदस्वामी

कृष्ण के रासनृत्य का वर्णन करते हुए गोविंदस्वामी कहते हैं –

राग मालव

नाचत लाल गोपाल रास में सकल ब्रज वधू संगे ।
गिडगिड तत थुग तत थुग थेई थेई भामिनी रति रस रंगे ।।
सरद विमल उडुराज विराजत गावत तान तरंगे ।
ताल मृदंग झांझ अरु झालरि बाजति सरस सुघंगे ।।
सिव विरंचि मोहे सुर सुनि सुनि नर मुनि गति भंगे ।
'गोविंद' प्रभु रस रास रसिक मनि मानिनी लेत उछंगे ।।"[४]

प्रस्तुत पद का गायन कवि ने मालव-राग में किया है । जैसा कि पूर्व कहा गया है और प्राप्त चित्र[५] से भी स्पष्ट है कि मालव संयोग शृंगार का रात्रिकालीन गेय राग है । पद में गोपियों और कृष्ण की संयोग-लीला का वर्णन किया है । प्रेम में विभोर गोपियाँ कृष्ण के साथ रास-नृत्य में संलग्न हैं । 'सरद विमल उडुराज विराजत' से यह भी विदित हो जाता है कि रात्रि में चन्द्रमा की ज्योत्स्ना में रास-नृत्य हो रहा है । अस्तु पद में वर्णित भाव, रस और समय पद के ऊपर दिये गए मालव के भाव, रस और समय से साम्य रखते हैं ।

गोविंदस्वामी का संयोग शृंगार का एक अन्य पद विभास में है –

---

१. हस्तलिखित पद-संग्रह, चतुर्भुजदास, डा० दीनदयालु गुप्त
२. सारंग रागिनी, चित्र सं० ८
3. "Sangtt of India', Atiya Begum, Page 60
४. गोविंदस्वामी, कांकरोली, पृ० २६, पद सं० ५०
५. मालवकौसिक रागिनी (मालव), चित्र सं० ६

राग विभास

एक रसना कहा कहो सखी री लालन की प्रीति अमोली ।
हँसनि खेलनि चितवनि जु छबीली अमृत बचन मृदु बोली ॥
अति रस भरे री मदनमोहन पिय अपन कर कमल खोलत बद चोली ।
'गोविंद' प्रभु को जु बोहोत कहाँ लौं कहें जे बातें कही अपुनो हृदौ खोली ।[१]

विभास प्रातकालीन गेय रागिनी है और यह सयोग-शृगार के वर्णन के लिए अत्यधिक उपयुक्त है क्योकि यह रागिनी दो प्रेमियो के हर्ष, प्रेम, आनद तथा काम-क्रीडा की प्रतीक है ।[2] विभास रागिनी का जो चित्र प्राप्त हुआ है उसमें भी शृगारमय वातावरण तथा नायक-नायिका की सयोगमय अवस्था चित्रित की गई है ।[3] पद में भी सयोग-शृगार का वर्णन किया गया है । प्रस्तुत पद शृगार समय की सेवा के पदो के अन्तर्गत दिया हुआ है। वल्लभसम्प्रदायी आठ समय की सेवा से विदित है कि शृगार-सेवा का समय प्रातकाल है । अत यह पद भी गोविन्दस्वामी के द्वारा प्रातकाल ही गाया गया होगा । अत शृगार-सेवा में सयोग रस परिपूर्ण उक्त पद का राग विभास में गायन पूर्णतया उचित ही है ।

वर्षा ऋतु सबधी पदो का गायन गोविंदस्वामी ने प्राय वर्षाकालीन राग मल्हार में किया है । यथा–

राग मल्हार

आई जु श्याम जलद घटा । चहुँ दिसि तें घन घोरें –
दपति अति रस रग भरे बांह जोटी, विहरत कुसुम गलित कालिंदी तटा ॥
नेंहीं नेंहीं बूंदन बरखनि लाग्यो, तैसीये लहकन बीजु छटा ।
'गोविंद' प्रभु पिय प्यारी उठि चले, ओढें लाल रातो पट दौरि लियो जाइ बसीबटा ॥[४]

तथा–

राग मल्हार

देख सखि बरसन लाग्यो सावन ।
गरजत गगन् दामिनी चमकत रिमें लेहु मनभावन ॥
नाचत मोर रसिक मदमाते कोयल पिक बोलत है रिझावन ।
चहुँदिसि रागमलार सप्तसुर मगन भए सब गावन ॥

---

१ गोविंदस्वामी, काकरोली, पृ० १२४, पद स० २९८

2 Vibhas Ragini is an early morning melody The literal meaning of Vibhas is the 'Light of Shining Ragini or 'the radiance Ragini', expressing the Joyful feeling of two lovers," The Laud Ragamala Miniatures, page 24

३ विभास रागिनी, चित्र स० ६

४ गोविंदस्वामी, कांकरौली, पृ० ८६, पद स० १७३

सुनि राधे अब कठिन भई रितु बिनु ब्रजनाथ नाहिं सुखपावन ।
जाइ मिली 'गोविंद' प्रभु कों सब विरह विथा जु नसावन ॥[1]

वसंतोत्सव संबंधी पदो मे गोविंदस्वामी वसंत राग का गायन करते हैं यथा –

राग वसंत

रितु वसंत विहरन ब्रजसुंदरि साज सिंगार चली ।
कनक कलस भरि केसरि रस सों छिरकत घोख गली ॥
कुसुमित नव कानन जमुना तट फूली कमल कली ।
सुक पिक कोकिल करत कुलाहल गूंजत मत्त अली ॥
चोवा चंदन और अरगजा लिये गुलाल मिली ।
ताल मृदंग झांझ डफ महुवरि वाजत अरु मुरली ॥
मच्यो राग वसंत तिहि ओसर गावत तान भली ।
'गोविंद' प्रभु ग्वालनि संग डोलत सोभित संग अली ॥[2]

तथा –

राग वसंत

विहरत वन सरस वसंत स्याम । सँग जुवती जूथ गावें ललाम ॥
मुकुलित नूतन सघन तमाल । जाही जुही चंपक गुलाल ॥
पारिजात मंदार माल । लपटावत मधुकरनि जाल ॥
कुटज कदंब सुदेस ताल । देखत वन रीझे मोहन लाल ॥
अति कोमल नूतन प्रवाल । कोकिल कल कूजत अति रसाल ॥
ललित लवंग लता सुवास । केतकी तरुनी मानों करत हास ॥
यह विधि लालन करे विलास । वारने जाइ जन 'गोविंद' दास ॥[3]

वसंत अत्यधिक चित्ताकर्पक, मधुर तथा मनोहारी ऋतु-राग है । वसंत राग का गायन विशेष रूप से वसंत ऋतु में किया जाता है । उसमें वसंत ऋतु से संबंधित उपकरणों, लहलहाते हुए पीले कुसुमों की भीनी भीनी सुरभि तथा वसंती वस्त्रों से अलंकृत इधर-उधर लहराती हुई नारियों का वर्णन किया जाता है । वसंत राग आनन्द, हर्ष और आशा का

---

१. गोविंदस्वामी, कांकरौली, पृ० ६१, पद सं० १८०
२. वही, पृ० ५०, पद सं० १०३
३. वही, पृ० ५१, पद सं० १०६

प्रतीक है।[1] बसंत राग का जो चित्र प्राप्त है उसमें भी स्त्रियां के हाथों में मृदंग, मंजीरे आदि दिखाये गये है जो आनन्द, हर्ष और राग-रंग के भावों को प्रकट कर रहे हैं।[2]

गोविन्दस्वामी ने बसंत राग के इन पदों में ऋतुराज बसंत का आगमन होने पर श्याम और गोपियों के विहार का वर्णन किया है। चारों ओर पीले वर्ण वाले पुष्प खिल रहे हैं। भ्रमरो की गुंजार, कोयल की कुहू-कुहू वातावरण को गुंजायमान कर रही है। युवतियों के समूह श्याम के साथ क्रीड़ा में निमग्न हैं। बाँसुरी, मृदंग, ताल, डफ आदि वाद्ययंत्र बज रहे है जो उनके उल्लास को प्रकट करते हैं। चारों ओर हर्ष, प्रेम और आनन्द का साम्राज्य है। इस प्रकार कवि के द्वारा राग बसंत में वर्णित पद के भाव बसंत राग की प्रकृति, रस तथा समय के अनुकूल हैं।

गोविंदस्वामी के पदों में समय-सिद्धान्त का सर्वदा पालन किया गया है। प्रात काल कृष्ण को जगाने दधि-मथन, कलेऊ आदि प्रसंगों का वर्णन कवि ने प्रात कालीन गेय राग भैरव, ललित तथा असावरी आदि में किया है। यथा –

राग भैरों

उठ गोपाल भयो प्रात देखों मुख तेरो।
पाछें गृह काज करों नित्त नेम मेरो॥
उदित मिस बिंद तम दोसा।
विदित भयो भाव कमलनि सों भँवर उड़े जागो भगवान॥
ब्रजीजन द्वार ठाड़े करत हैं किलोल बसंते।

---

१ संगीत-दर्पण, पृ० ७७, संगीत-पारिजात, पृ० १२७

मद्रुरिरितरे तीव्रा पवर्ज्यश्च द्विमध्यम।
षड्जवादी भसम्वादी बस ततौं बसन्तक॥

रागचन्द्रिका, पृ० ११

"Basant Ragini is probably one of the earliest seasonal melodies connected with the spring carnival "

The Laud Ragmala Miniatures, Stooke and Khandalavala, Page 52

'Basant is the name of a Raga to be sung in the season of Basant, when the delicate yellow flowers scent the atmosphere and spread thickly like a luxurious carpet The maidens dressed in Basanti (yellow) move in grace in dance song and swing merrily There is gladness and joy of the spring of hope and wishes "

Sangit of India, Atiya Begum, Page 80

२ राग बसंत, चित्र नं० १०

प्रसंसा गावें लीला अवतार ए वलवीर राजें ॥
अज हो देखों री मनमोहन मदनमोहन पिय मान मंदिर तें, वैठे निकसि आइ छाजें।
लटपटी पाग मंदार माल लटपटात मधुप मधु काजें ॥
'गोविंद' प्रभु के जु सिथिल-अरुन दोऊ वियकित कोटि मदन साजें ॥[1]

राग ललित

प्रात समै कहा रोकि रहे जु होतु अवार विलोवन महियाँ।
अँचरा छाँडि देहु मेरे प्यारे करो कलेऊ कुँवर कन्हैया ॥
जो भावे सो लेहु मेरे प्यारे पीयो वहुकरि देउँ धैया।
करो सिंगार पलटि पट भूपन आँगन माँहि खेलो दोउ भैया ॥
ले कर कमल फिरावत सिर पर वदन निहारत जसोदा मैया।
'गोविंद' प्रभु जननी जीवन धन मन वच करम करि लेत वलैया ॥[2]

आसावरी

कलेऊ कीजिए नंदलाल।
खीर खांड माखन अरु मिसरी, लीजे परम रसाल ॥
सद्य दूध धौरी कौं ओंट्यो, तुम कों ही गोपाल।
वेनी वढ़े होय वल की सी, पीजे हो मेरे लाल ॥
हौं वारी या वदन कमल पर, चुंवो सुंदर गाल।
'गोविंद' प्रभु पिय भोजन कीनौं, जननी वचन प्रतिपाल ॥[3]

राजभोग-सेवा का समय दिन के दस वजे से मध्याह्न वारह वजे तक का है। छाक तथा राजभोग संवंधी अधिकांश पदों में गोविंदस्वामी ने प्रखर दुपहरी में गाए जाने वाले सारंग राग का ही प्रयोग किया है। यथा –

राग सारंग

छाक पठई जसुमति रानी।
अहो गोपाल लाल कित हो जु जवै सुनी यह वानी ॥
अहो सखा छाक ले आवहु गालनि सों रति मानी।
सघन कुंज में मिलो जाइ और कीनों मन मानी ॥
टेरत सखा भोजन कों वैठे प्रीति जो अंतर जानी।
'गोविंद' प्रभु पिय सव रस भोगी कमलनैन सुखदानी ॥[4]

---

१. गोविंदस्वामी, कांकरौली, पृ० १०७, पद सं० २२३
२. वही, पृ० १२६, पद सं० २८२
३. वही, पृ० ११०, पद सं० २३३
४. वही, पृ० १२६, पद सं० २८५

संध्या समय गोग्वाल सहित वन से आगमन का वर्णन कवि ने संध्याकालीन गेय राग गौरी में किया है —

राग गौरी

आवत बन तें चारें धेनु ।
सखा संग स्तुति बदत मधुपगन मुदित बजावत बेनु ॥
अमृत मधुर धुनि पूरत स्रवननि उठि धाईं सकल तजि ऐनु ।
हृदें लगाइ ब्रजेस्वर अंचल पट पोंछत मुख रेनु ॥
उन महँन मज्जन करवावति भूषन पीत बसेन ।
'गोविंद' प्रभु छटरस भोजन करि बिमल सेज सुख सेन ॥[1]

शयन-समय रात्रिकालीन सुषमा का वर्णन रात्रिकालीन गेय राग केदारा में किया गया है —

राग केदारा

तेरो मुख प्यारी अैसो सरद ससो ।
दसन ज्योति जुन्हाई बचन सीतलताई अमृतहास सुहाई बोलत नैन मसी ।
कस्तूरी तिलक भाल रति सक छबि नक्षत्र मालमनि मगल सो ।
'गोविंद' प्रभु मदसुवन चकोर बर पान करत बर मनमथ तापनसी ॥[2]

इसी प्रकार गोविंदस्वामी की प्राय समस्त पदावली रस-राग और समय-सिद्धांत की कसौटी पर खरी उतरती है ।

छीतस्वामी

श्री कृष्ण की वन्दना करते हुए छीतस्वामी कहते हैं —

राग रामकली

नवाऊँ शीश रिझाऊँ लालें आयो शरण यह जो प्रयोजन ।
गाऊँ श्री बल्लभ नंदन के गुण लाऊँ सदा मन अंग सरोजन ॥
पाऊँ प्रेम प्रसाद ततछिन गाऊँ गोपाल गहे चित चोजन ।
छीतस्वामी गिरधरन श्री विट्ठल छवि पर वारु कोटि मनोजन ।[3]

रामकली राग भैरव-ठाट से उत्पन्न होता है । भैरव-ठाट से उत्पन्न समस्त रागों में भक्ति, त्याग, दैवी उपासना, प्रार्थना तथा अहंत्याग की भावना निहित रहती है । उनके

---

१ गोविंदस्वामी, कांकरोली, पृ० १५१, पद स० ३६२
२ वही, पृ० १८१, पद स० ४६६
३ हस्तलिखित पद-संग्रह छीतस्वामी, डा० दीनदयालु गुप्त, पद स० ५२

विपय धार्मिक, गहन, रहस्यमय और बुद्धि को प्रकाश देने वाले होते है।[1] भैरव-ठाट का राग होने के कारण रामकली में भी ये गुण पाये जाते है। कवि इस पद के भावों के अनुसार अपने आपको भगवान की भक्ति मे लीन कर देना चाहता है। कृष्ण के चरणों में नतमस्तक होना, श्याम की रूप-माधुरी का पान करना, गोपाल की छवि का गुणगान करना तथा मनमोहन की माधुरी से अपने हृदय को प्रकाशित करना—ये ही पद में वर्णित विपय है। रामकली में गाये गये इस पद में भक्तिरस की स्रोतस्विनी वह रही है जो कि राग के रस, रूप, तथा भावो से पूर्णतया साम्य रखती है।

छीतस्वामी ने अपने पदों में जिस समय अथवा जिस समय से संबंधित दृश्यों का वर्णन किया है उसी के अनुकूल राग-रागिनियों की सृष्टि की है। यथा—

राग पूर्वी

गायन के पाछे-पाछे नटवर वपु काछें मुरली बजावत आवत है री मोहन।
अति ही छबीले पग, धरनी धरत, डगमग उपजत मग लागे जिय सोहन॥
खिरक निकट जान, आगे धरत स्याम ठठकी गाय लागीं सब गोहन।
छीतस्वामी गिरिधारी विट्ठलेश वपुधारी आवत निरखि-निरखि गोपी लागी जोहन॥[2]

छीतस्वामी ने इस पद मे गायों को चराकर, बाँसुरी बजाते हुए सायंकाल के समय लौटते हुए कृष्ण की सुपमा का वर्णन किया है और पद को राग पूर्वी में गाया है। पूर्वी राग सायंकाल का राग है।[3] इसका वादी स्वर गांधार है। गांधार के अधिक प्रयोग से इसका स्वरूप सायंकाल बहुत मधुर प्रतीत होता है। कवि ने इस पद को पूर्वी राग में गाकर संगीत के समय-सिद्धांत के ज्ञान का सुंदर परिचय दिया है।

---

1. "In all these melodies there is a great spirit of devotion, renunciation, Divine praises, prayers, self abnigation and annihilation. The themes are highly devotional, mystic, philosophic and soul strirring."
Sangit of India, Atiya Begum P.75.

२. हस्तलिखित पद-संग्रह छीतस्वामी, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० २४

३. मृदू रिधौ मध्यमौ द्वौ वादिसंवादिनौ गनी।
पूर्वी रागः सायमुक्त पूर्णारोहावरोहणः॥ राग-चंद्रिका, पृ० ७, श्लो० ७६
निसौ रिगौ मगौ मपौ धपौ मगौ मगौ रिसौ।
संपूर्णा पूर्विका सायं गांशा मद्वयभूपिता॥ अभिनवरागमंजरी, पृ० २०, श्लो० ६४
पूर्वीरागः सकलविदितः कोमलाभ्यां रिधाभ्यां।
मध्यस्तीव्रो मृदुरपि सदैवात्र तीव्रौ गनी स्तः॥
गों वाद्यत्र प्रविलसति तत्साहचर्ये निपादः।
संपूर्णाऽसौ सरसविबुधैः सायमेव प्रगीतः॥
रागकल्पद्रुमांकुर, संगीतकौमुदी, भाग १, विक्रमादित्यसिंह निगम, पृ० ६१-६२

इसी प्रकार रात्रि भर भगवान के विरह में सतप्त हुआ कवि प्रात काल कृष्ण के दर्शनो का आग्रह प्रात कालीन राग भैरव ही मे करता है —

भोर भए नीको मुख हसत देखाइए।
रात के दरश के बिछुरे दोउ पलक मेरे
वारि फेरि डारौं कै नक नैनन सिराइए॥
कोमल उन्नत बाहु ऊपर अमित भाव मेरी
तेरी छाति छवि अधिक बढाइए।
छीतस्वामी गिरधर सकल गुणनिधान
कहा कहू सुख करि प्राण ही लै पाइये॥[1]

बरसात के दिनो में रिमझिम बूदें बरसती है। घनघोर बादलो के गर्जन तथा बिजली की चमक से चौंक कर श्याम जग जाते हैं। नयनो में दर्शनो की अभिलाषा लिए द्वार पर प्रतीक्षा में व्याकुल खडी गोपियाँ कृष्ण के रूप-दर्शन का पान कर आनदित हो उठती है। छीतस्वामी का कवि हृदय भी इस अनुपम सुख का अनुभव कर वर्षा ऋतु में गाए जाने वाले ऋतु-राग मल्हार मे गा उठता है —

राग मल्हार

बादर झूम झूम बरसन लागे।
दामिनी दमकत, चौंकि चमकि स्याम, घन की गरजि सुन जागे॥
गोपी जन द्वारें ठाढीं, नारी नर भींजत, मुख देखति अनुरागे।
छीतस्वामी गिरधरनश्री विट्ठल, ओत प्रोत रस पागे।[2]

वसत ऋतु, उसके उपकरणो तथा उसमे सबधित केलि का वर्णन छीतस्वामी राग वसत में ही करते है —

राग वसत

आयो ऋतुराज साज पचमी बसत आज
बौरें द्रुम अति अनूप अम्ब रहे फूली।
बेली पट पीत माल, सेत पीत कुसुम लाल,
उडवति, सब स्यामभाम भँवर रहे भूलीं।
रजनी अति भई स्वच्छ, सरिता सब विमल पच्छ,
उडगन पति अति अकास बरखत रस मूली।

---

१ अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २६८, पद स० २०
२ हस्तलिखित पद-सग्रह छीतस्वामी, डा० दीनदयालु गुप्त, पद स० १

जती सती सिद्ध साध जित तितते उठे भाग,
विमन सभी तपसी भए मुनि मन गति भूली
जुवति जूथ करत केलि, स्याम सुखद सिन्धु भेलि,
लाज लोक दई पेलि, परसि पगन तूली।
बाजत आवत उपंग बांसुरी, मृदंग, चंग,
यह सब सुख 'छीत' निरखि, इच्छा अनुकूली।[1]

पद मे वर्णित 'रजनी अति भई स्वच्छ' तथा 'उड़गनपति अति आकास' शब्दों से यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि प्रस्तुत पद मे वसंत ऋतु की रात्रिकालीन सुषमा का गायन किया गया है। यों तो वसंत राग का गायन वसंत ऋतु में सर्वदा ही किया जाता है किन्तु शास्त्रीय दृष्टि से वसंत राग का गायन रात्रि के समय ही अधिक उपयुक्त है।[2] इससे सिद्ध होता है कि छीतस्वामी को शास्त्रीय संगीत का विधिवत् ज्ञान था।

गदाधर भट्ट

गदाधर भट्ट का राग मलार में एक पद है –

राग मलार

सुखद वृंदावन सुखद यमुना तट सुखद कुंज भवन रच्यो है हिंडोरी।
सुखद कलपतरु सुखद फलफूल सुखद बहति सीतल पवन झकोरी।
सुखद रंगीले संग सुखद रंगीली राधा सुखद करत केलि रतिपति जोरी।
सुखद सखी झुलावें, सुखद गीत गावें सुखद गरजि बरषत थोरी थोरी।
सुखद हरित भूमि सुखद बूंदनि रंग सुखद कोकिला कल मोर चकोरी।
सुखद बजावें बेनु सुजस सुनि सुखद गदाधर चित्त को चोरी।[3]

---

१. हस्तलिखित पदसंग्रह, छीतस्वामी, दीनदयालु गुप्त, पद सं० ५०
२. वसंततों गेयो मृदुलऋषभस्तीव्रसकलः।
पहीनो मद्वंद्वः समगपुनरावृत्तिरुचिरः॥
संवादी नामात्योऽप्यहनि निशिचाव्याहत गतिः।
स्थितस्तारे षड्जे स जगति वसंतो विजयते॥ रागकल्पद्रुमांकुर, पृ० २३
सगौ मधौ रिसौ रिश्च निधौ पमौ गमौ जगः।
निमौ गमौ गरौ सश्च वासंती सांशिका निशि॥ अभिनवरागमंजरी, पृ० २१
"शास्त्र-दृष्टि से वसंत राग गाने का समय रात्रि का अंतिम प्रहर ठीक है।"
हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति क्रमिक पुस्तक मालिका, चौथी पुस्तक, श्री विष्णुनारायण भातखंडे, पृ० ५३
३. श्रीगदाधर भट्ट जी महाराज की बानी, बालकृष्णदास जी की प्रति, पत्र सं० ३०, पद सं० ७

पद में सयोग शृगार का वर्णन किया गया है। वृंदावन के कुंज-कछारो में राधा-कृष्ण झूल रहे हैं। प्रेम में विभोर गोपियाँ गीत गाकर झुला रही हैं। मन्द समीर बह रही है। वृक्ष, फल, फूल और पत्र प्रफुल्लित होकर झूम रहे हैं। ऐसे समय में रिमझिम-रिमझिम बूँदें अत्यधिक सुहावनी प्रतीत हो रही हैं। वर्षा का आगम देखकर मयूर मस्त हो नृत्य कर रहे हैं। कोकिला और चकोर की हर्षित ध्वनि चारो ओर व्याप्त हो रही है। कवि ने स्पष्ट रूप से वर्षा ऋतु के उस सुहावने समय का वर्णन किया है जब कि नायक-नायिका के मिलन के फलस्वरूप सम्पूर्ण वातावरण आनद, हर्ष, उल्लास और प्रेममय दीख रहा है। कवि ने इस प्रकार के भावो का गायन मल्हार राग में किया है। जैसा कि पूर्व भी कहा गया है राग मल्हार प्रेम, आनद और हर्ष का प्रतीक है तथा वह वर्षा ऋतु में गाया जाता है। मल्हार राग का जो चित्र है उसमें भी सयोग अवस्था चित्रित की गई है। रिमझिम बूदो के कारण मोर प्रफुल्लित दिखाए गए हैं।[1] कवि का राग मल्हार में गाया हुआ पद भी इन्हीं भावो से परिपूर्ण है। अत उनके द्वारा राग मल्हार में उक्त पद का गायन सार्थक है।

कवि का एक अन्य पद है जो राग बसत में गाया गया है –

राग बसत

देखो प्यारी कुजविहारी मूरतिवत बसत।
गोरी तरुण तरुलता तन में मनसिज रस बरसत ॥
अरुण अधर नव पल्लव शोभा विहसनि कुसुम विकाश।
फूले विमल कमल से लोचन सूचित मन को हुलास ॥
चलपूर्ण कुन्तल अलिमाला मुरली कोकिल नाद।
वेलीयति गोपीजन बनराई मुदित मदन उनमाद ॥
सहज सुवास श्वास मलयानिल लागत सदाति सुहायो।
श्री राधामाधवी गदाधर प्रभु परसत सुखपायो ॥[2]

पद में राधाकृष्ण की बसत ऋतु की क्रीडा का वर्णन किया गया है। सम्पूर्ण वन सुन्दर पुष्पो से विभूषित है। पेडो पर नवीन पल्लव आ गये हैं। कृष्ण के रूप-सौंदर्य का पान करके गोपियाँ उन्मत्त हो रही हैं। कवि ने इस राधा कृष्ण के बसत-विहार का वर्णन बसत ऋतु में गाये जाने वाले राग बसत ही में किया है जो सामयिक है। साथ ही बसत ऋतु का जो चित्र प्राप्त हुआ है उसमें नायक-नायिका की सयोग अवस्था चित्रित की गई है।[3] सखियाँ उन्माद में लीन होकर मृदग, मँजीरे आदि द्वारा अपने हर्ष को प्रकट कर रही हैं। विकसित पुष्प तथा वृक्षों के पत्ते आनन्द के प्रतीक हैं। बसत राग के चित्र के द्वारा सयोग, प्रेम और

---

१ राग मल्हार, चित्र स० ५

२ श्रीगदाधर भट्ट जी महाराज की बानी, बालकृष्णदास जी की प्रति, पत्र स० २४
पद स० १

३ राग बसत, चित्र स० १०

उल्लास की व्यंजना हो रही है। प्रस्तुत पद में राधाकृष्ण गोपियों के मिलन, उल्लास, हर्ष तथा वसंत ऋतु से संबधित भावों का वर्णन होने के कारण ही उसे राग वसंत मे गाया गया है।

रस और राग-सिद्धांत के साथ ही गदाधर जी ने सदैव समय-सिद्धात का पालन भी अपने पदों मे किया है। गौरी राग सायंकालीन राग है। इसी कारण कवि गोधूलि के समय ग्वालवाल सहित कोलाहल करते, गौये चरा कर लौटते हुए तथा धूलधूसरित अंगो से परिपूर्ण कृष्ण के सौदर्य का वर्णन उसी समय के उपयुक्त राग गौरी मे करता है –

राग गौरी

आजु ब्रजराज को कुंवर वनते सखी देखि आवत मधुर अधर रंजित वेनु।
मधुर कल गान निजु नाम सुनि श्रवन युत परम प्रमुदित वदन फेरि हूकति धेनु
महर्षि घूणित नेंन मंद विहसति वेंनु कुटिल अलकावलि ललित गोप पद रेनु।
ग्वाल वालनि जाल करत कोलाहलनि संग दलताल धुन रचत चेन।
मुकुट को लटक अरु चटक पटपट प्रात प्रगट अंकुरि गोपो निकर मन मैनु।
कहि गदाधर जुयहन्याइ व्रज सुन्दरी विनल वनमाल के बीच चाहति एनु।[1]

तथा –

देखि री आवत गोकुल चंद।
नखसिख प्रति वन वेष विराजत हरत विरह दुख द्वंद।
आपुन ही जु वनाइ वनाए गायन के पद छंद।
तेइ मुरली मांझ वजावत मधूर मधुर सुर मंद।
अगनित वृज युवतीन मन वांधत दुहूं भौह दृढफंद।
पोषत तेन मधुप कुल ए कहि वदन कमल मकरंद।
सहज सुवास पास नहि छांडत गोप गाइ अलिवृंद।
अंग अंग वलि जाइ गदाधर मूरति मे आनंद॥[2]

इसी प्रकार चन्द्रमा की विहँसती ज्योत्स्ना में रास-नृत्य का वर्णन कवि रात्रिकालीन गेय राग हमीर मे करता है –

राग हमीर

करत हरि नृत्य नवरंग राधा संग लेत नवगति भेद चर्चरी ताल के।
परस्पर दरस समत्त भए तत्त थेई थेई वचन रचित संगीत सुर साल के।

---

१. श्रीगदाधर भट्ट जी महाराज की वानी, वालकृष्णदास जी की प्रति, पत्र सं० २१, पद सं० २२

२. वही, पत्र सं० २२, पद सं० २३

फरहरत वरह वरठहरत उरहार भरहरत भुमर वर बिमल वन मालके ।
पिसित सित कुसुम सिरह सत कुतल मनो लसत क्त भलमलत स्वेद क्न भाल के ।
अग अगनि लटक मटक भगुर भौह पटक पटतार कोमल चरन चाल के ।
चमकचल कुडलनि दमक दसनावली विविध व्यज भाव लोचन विशाल के ।
बजत अनुसार दमदम मृदग निनाद भमक झकार किकिनो जान के ।
नील नव जलद में तडित तडर्फात मनो यो विराजत प्रिया पास गोपाल के ।
ब्रज जुवति जूथ आनित वदन चद्रमा चद्र भयो मद उद्योत तिहि काल के ।
मुदित अनुराग सब राग रागिनि तान मान गतगर्व रसादि सुरदास के ।
भगन परस गनरस भगन वरषत फूल बारि डारत तन अतन भरि थाल के ।
एक रसना गदाधर न वरनत बनें चरित अद्भुत कुवर गिरिधरन लाल के ॥[1]

इसी प्रकार गदाधर जी के अन्य पदो में भी रस राग तथा समय-सिद्धात का उचित रीति से निर्वाह हुआ है ।

सूरदास मदनमोहन

वर्षाकालीन भावो का चित्रण करता हुआ कवि गाता है—

राग मलार

प्रीतम प्यारो राजत रग महल ।
गरजि गरजि रिमझिम रिमझिम,
बूदनि लाग्यो वरसनि घन ।
बोलत चातक मोर दामिनी दमकि,
आवें झूमि बादर अवनि परसन ।
तैसी हरियारी सावन मन भावन,
आनद उर उपजावन इन्द्र-वधू-दरसन ।
'मदनमोहन' प्रिया सग गावत 'राग मलार',
ललित लता लागी सुनि-सुनि सरसन ।[2]

कवि ने यह पद राग मल्हार में गाया है । उसने इस बात पर विशेष महत्व दिया है कि ऐसे सावन के महीने में जब कि घनघोर बादल उमड रहे हैं, बिजली चमक रही है, रिमझिम पानी बरस रहा है, चारो ओर की हरियाली नेत्रो को लुभा रही है और चातक तथा मोर ने रट लगा रखी है 'राग मल्हार' गाया जा रहा है ।

राग मल्हार वर्षा के दिनो में गाया जाता है । मल्हार राग में वर्षा, बादल तथा

---

१ श्री गदाधर भट्ट महाराज की बानी, बालकृष्णदास जी की प्रति, पत्र स० २३-२४, पद स० ३

२ वर्षोत्सवकीर्तन-सग्रह

वर्षा से उत्पन्न आनंद आदि भावों का मधुर गायन किया जाता है। मल्हार राग का जो चित्र प्राप्त होता है[1] उसमें भी चारों ओर का वातावरण भयानक तथा अंधकारमय चित्रित किया गया है; आकाश पर काले बादल छाये हुए है, बिजली चमक रही है तथा बादलों की कड़क से घन-गर्जन हो रहा है।

कवि ने भी अपने पद में इन सब विशेषताओं का उल्लेख किया है। अंधकार छाया हुआ है, बिजली चमक रही है और बादल उमड़-घुमड़ कर बरस रहे हैं जो हृदय को प्रफुल्लित करते हैं। वास्तव में कवि का पद मल्हार राग के सब लक्षणों से युक्त है।

सूरदास मदनमोहन जी का एक पद है–

राग हिंडोल

झूलत जुग कमनीय किसोर सखी चहुँ ओर झुलावत डोल।
ऊँची ध्वनि सुन चकित होत मन सब मिल गावत 'राग हिंडोल'।

एक वेष एक वयस एक सम नव तरुनी हरनी द्रिग लोल।
भाँति-भाँति कुंचकी कसें तन बरन बरन पहरें बलि चोल।

बन उपवन द्रुमवेली प्रफुल्लित अंब मोर पिकनि कर कलोल।
तैसे ही स्वर गावत ब्रजवनिता झूमक देख लेत मनमोल।

सकल सुगंध संवार अरगजा आई अपने-अपने टोल।
एक तक पिचकारिन छिरकत एकभरे भर कनक कचोल।

कबहुं स्याम पीय उतर डोलते कौतुक हेत देत झकझोल।
तब प्रिया डर भरि स्वास कंप तन बिरम म्रिदु बोल।

गिरत तरोना गह्यो स्याम कर स्रवन देन मित छुअत कपोल।
तब प्रिय ईषद मुसक मंद हस वक्रचिते कर मुंह सलोल।

भेरि झांझ दुंदुभी पखावज औ डफ आवज बाजत ढोल।
आए सकल सखा समूह गुर हो हो होरी बोलत बोल।

रत्न जटित आभूषण दीने मुक्ताहार अमोल।
सूरदास मदनमोहन प्यारे फगुआ दे राख्यो मन ओल॥[2]

प्रस्तुत पद में कृष्ण की हिंडोल-लीला का वर्णन किया गया है। 'सब मिल गावत राग हिंडोल' से स्पष्ट है कि हिंडोल राग गाया जा रहा है। हिंडोल राग राधा-कृष्ण के

---

१. राग मल्हार, चित्र सं० ५
२. कीर्तन-संग्रह, भाग २, वसंत और धमार के कीर्तन, पृ० २४३

झूला-उत्सव से सम्बंधित माना जाता है।[1] हिंडोल राग का जो चित्र[2] मिला है उसमें कृष्ण झूले पर सुशोभित हैं। उनको चारों ओर से गोपियों ने घेर रखा है। अलंकृत वेष भूषा से सुसज्जित गोपियाँ कृष्ण को हिंडोला झुला रही हैं और गा रही हैं। हिंडोल राग संयोग शृंगार, प्रेम तथा हर्ष का प्रतीक है।[3]

कवि का उपर्युक्त पद भी इसी भाव का है। चारों ओर संयोगमय वातावरण है। एकांत स्थल, वन, उपवन, शीतल मंद सुगन्धित समीर, मोर तथा पिक का शोर आदि प्रेम को और भी उद्दीप्त कर रहे हैं। प्रेम में मतवाली गोपियाँ कृष्ण को झूला झुला रही हैं। सूरदास मदनमोहन ने झूलन उत्सव से सम्बंधित संयोग शृंगार के इस पद को राग हिंडोल में गाकर यह सिद्ध कर दिया कि वे एक कुशल कवि-संगीतज्ञ थे।

कृष्ण को जगाने के लिये कवि प्रभाती गाता है—

राग प्रभाती

स्याम लाल प्रात भयो, जागौ बलि जाऊँ।
खुटिया सुरभाय बीच सुमन हौं गुथाऊँ॥
उगत सूर्य ज्योति भई कुलहिरी बनाऊँ।
पाय बाँधि घूघर सु चालिबो सिखाऊँ॥
'सूरदास मदनमोहन' गुन तिहारौ गाऊँ।
हरखि निरखि गोविंद छबि जीवन-फल पाऊँ॥[4]

प्रभाती प्रातःकाल के समय गाई जाती है। प्रभाती भक्ति रस की रागिनी है जो

---

1 'Hindola It was later affiliated with the jhulana festival of the Radha Krishna cult, a popular religious festival of the North West '
The Laud Ragamala Miniatures Page 36

२ राग हिंडोल, चित्र सं० ११

3 "In form it is like Krishna the god of love squatting on a Hindola, the mystic golden swing encircled by gaily dressed Gopis (maidens) who are swinging him in rhythm with the motion of the universe The liquid depths of his eyes are brimful of mirth and love
Sangit of India, Atiya Begum Page 64

"He is seated on the swing usually playing a musical instrument and surrounded by his Gopis (village girls, the friends of his youth), who swing him to the accompaniment of the music"
The Laud Ragamala Miniatures Page 36

४ बाणी श्री श्री सूरदास मदनमोहन की, प्रकाशक कृष्णदास, पृ० ४, पद सं० १०

हृदय पर गहरा प्रभाव डालती है।[1] पूरा पद भक्ति रस से ओत-प्रोत है। उसमें प्रातःकाल से संबंधित उपकरणों का वर्णन किया गया है। इसी कारण कवि ने प्रभाती का गायन किया है।

सूरदास मदनमोहन का एक पद भैरव राग में है—

राग भैरव

मधु के मतवारे स्याम खोलौ प्यारे पलकें।
सीस मुकुट लटा छुटी और छुटी अलकें॥
सुर नर मुनि द्वार ठाढ़े दरस हेतु किलकें।
नासिका के मोती सोहैं बीच लाल ललकें॥
कटि पीताम्बर मुरली कर श्रवन कुंडल झलकें।
सूरदास मदनमोहन दरस देहौ भल कैं॥[2]

कवि कृष्ण को प्रातःकाल जगा रहा है। कृष्ण के दर्शन के लिए सुर, नर, मुनि आ गए हैं और कृष्ण अभी सो ही रहे हैं अतः कवि आग्रह करता है कि श्याम उठें और अपने भक्तों को दर्शन दें। पद में प्रातःकाल का ही वर्णन किया गया है जो राग के समय से मेल खाता है।

सूरदास मदनमोहन के अन्य पद भी प्रायः राग-रस तथा समय-सिद्धान्त की कसौटी पर कसे जाने पर खरे उतरते हैं।

स्वामी हितहरिवंश

श्री स्वामी हितहरिवंशजी ने राधा कृष्ण की युगल उपासना की है अतः इनके पदों में राधा-कृष्ण के विहार और प्रेमलीला का शृंगारिक वर्णन तथा उस भाव की अनुभूति का आनंद वर्णित है। कवि राधा-कृष्ण की केलि-क्रीड़ा का वर्णन करते हुए कहता है—

राग विभास

आजु प्रभात लता मंदिर में, सुख बरषत अति जुगलवर।
गौर श्याम अभिराम रंग-रंग भरे, लटकि लटकि पग धरत अवनि पर।
कुच कुमकुम रंजित मालावलि, सुरत नाथ श्रीश्याम धामवर।
प्रिया प्रेम अंक अलंकृत चितृत, चतुर सिरोमणि निजकर।

---

1. Prabhat or Prabhavati is a Bhakti Marg, a highly devotional melody full of earnest and pathetic pathos."
Sangit of Indis, Atiya Begum, Page 74.
२. कीर्तन-संग्रह, भाग ३, नित्यपद के कीर्तन, पृ० १६, पद सं० १६

दम्पति अति अनुराग मुदित कल, करत मन हरत परस्पर।
जै श्री हित हरिवंश प्रसंस परायन, गाइन अलि सुर देत मधुरतर।[1]

तथा –

प्रात समय दोऊ रस लम्पट सुरति युद्ध जय युत अति फूल।
श्रम वारिज घन विन्दु वदन पर भूषण अंग-अंग प्रतिकूल॥
कछु रह्यो तिलक शिथिल अलकावलि वदन कमल पर अलिकूल मूल।
हितहरिवंश मदन रंग रंगि रहे नयन बैन कटि शिथिल दुकूल॥[2]

तथा –

आजु तो युवती तेरो वदन आनंद भरयो पिय के संगम के सूचत सुख चैन।
आलस वलित बोल सुरंग रंगे कपोल विथकित अरुण उनींदे दोऊ नैन॥
रुचिर तिलक लेस कीरत कुसुम केस शिर सोभन्त भूषित मानों तैन।
करुणाकर उदार राखत कछु न सार असन वसन लागति अब दैन॥
काहे को दुरत भीर पलटे पीतम चीर वश किये श्याम सखी शत मन।
गलित उरसि माल शिथिल किंकिणी जाल हितहरिवंश लतागृह सैन॥[3]

तीनों पदों में राधाकृष्ण, दम्पति की शृंगार केलि-लीला का वर्णन राग विभास में किया गया है। विभास राग संयोग रस का राग है।[4] अतः कवि का यह वर्णन राग विभास में करना उचित ही है। 'आजु प्रभात लता मंदिर में' तथा 'प्रात समय दोऊ रस लम्पट' से विदित होता है कि कवि प्रातःकाल का वर्णन कर रहा है। विभास राग प्रातःकाल गाया जाता है। अतः इन पदों में कवि ने रस राग तथा समय सिद्धांत का पूर्णतया पालन किया है।

बसंत ऋतु के राग-रंग का वर्णन कवि बसंत राग ही में करता है –

राग बसंत

मधुरित वृंदावन आनंद न थोर,
राजत नागरी नव कुशल किशोर।
जूथिका जुगल रूप मंजरी रसाल,
विथकित अलि मधुमाधवी गुलाल।
चंपक बकुल कुल विविध सरोज,
केतकी मेदिनी मद मुदित मनोज।
रोचक रुचिर बहैं त्रिविध समीर,
मुकुलित नूतन दित पिक कीर।

---

१ चौरासी पद, हितहरिवंश, (प्रयाग संग्रहालय), प्रति सं० ८५/२१६, पद सं० ५
२ वही, पद सं० ३
३ वही, पद सं० ४
४ देखिए इसी अध्याय में दूर दिया हुआ रागों के रसों का प्रसंग तथा रागिनी विभास चित्र सं० ६

पावन पुलिन घन मंजुल निकुंज,
किशलय सयन रचित सुख पुंज ।
मंजीर मुरज डफ मुरली मृदंग,
बाजत उपंग वीणा वर मुख चंग ।
मृग मद मलयज कुंकुम अबीर,
चंदन अगर शत सुरंगित चीर ।
गावत सुंदर हरि शरस धमारि,
पुलकित खग मृग बहत न बारि ।
जै श्री हितहरिवंश हंस हंसिनी समाज,
जैसे ही करोऊ मिली जुग-जुग राज ॥[1]

इसी प्रकार वर्षा ऋतु से संबंधित भावों का गायन हितहरिवंश जी ने वर्षा ऋतु के राग मल्हार में किया है –

राग मल्हार

नयो नेह नवरंग नयो रस नवल स्याम वृषभान किशोरी ।
नवपीतांबर नवल चूनरी नई-नई बूंदन भीजत गोरी ॥
नव वृंदावन हरित मनोहर नव चातिक बोलत मोर मोरी ।
नव मुरली जु मल्लार नई गति श्रवन सुनत आये घन घोरी ।
नवभूषण नव मुकट विराजत नई-नई उरप लेत थोरी-थोरी ।
जै श्री हितहरिवंश असीस देत मुख चिरंजीवो भूतल यह जोरी ।[2]

रात्रि-जागरण के फलस्वरूप प्रातःकाल राधिका के नेत्र अरुण तथा आलस्यमय हो रहे है । इन नयनों के सौदर्य का वर्णन कवि प्रातःकाल गेय बिलावल राग में करता है –

राग बिलावल

अति ही अरुण तेरे नयन नलिन री ।
आलस युत इतराय रंगमगे भये निसि जागरन खिन मलिन री ।
सिथिल पलक में उठति गोलक गति विधि यों मोहन मृग सकत चलिन री ।
जै श्री हितहरिवंश हंस कलगामिनि संभ्रम देत भवरनि अलिन री ॥[3]

किन्तु कवि के कुछ पदों में समय-सिद्धांत के पालन का अभाव भी मिलता है । एक पद है देखिये –

---

१. चौरासी पद-हितहरिवंश, प्रति सं० ३८/२१५ प्रयाग-संग्रहालय, पद सं० ८
२. वही, पद नं० ५४
३. वही, पद सं० ८

राग सारग

सरद विमल नभ चन्द विराजै । मधुर मधुर मुरली कल बाजै ॥
अतिराजत घनश्याम तमाला । कचन केलि बनी व्रज बाला ॥[२]

पद की पक्तियो से स्पष्ट है कि कवि रात्रिकालीन सुषमा में कृष्ण को क्रीडा का वर्णन कर रहा है । निर्मल आकाश में चन्द्र अपनी ज्योत्स्ना विकीर्ण कर रहा है और कृष्ण की मुरली मधुर स्वर में बज रही है । कवि इस पद में रात्रिकालीन भावो का उद्घाटन कर रहा है । उस ने इस पद को राग सारग में गाया है । राग सारग दिन के समय गाया जाता है ।[१] अत रात्रिकाल का वर्णन सारग राग में शास्त्रीय दृष्टि से अनुपयुक्त है । सभव है सग्रहकर्त्ताओ के द्वारा यह पद राग सारग के अन्तर्गत रख दिया गया हो क्योकि इनके समान पद सग्रहकर्त्ताओ के सग्रहो में विभिन्न रागो में मिलते है ।[३]

हितहरिवश जी ने रागो के गुणो की ओर भी इगित किया है –

राग तोडी

आजु मेरे कहें चलो मग मैंनी ।[४]

कवि ने इस पद का गायन तोडी रागिनी में किया है । तोडी की विशेषता है कि

---

१ चौरासीपद, हितहरिवश, प्रति स० ३८।२१५, प्रयाग सग्रहालय, पद स० २४
२ देखिए इसी अध्याय के अतर्गत सूरदास का प्रसग ।
३ "जोई जोई प्यारो करें सोइ सोई मोहे भावे' अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय में यह पद राग विभास में दिया गया है ।
अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, डा० दीनदयालु गुप्त, भाग १, पृ० ६७
सगीतरागकल्पद्रुम में यही पद राग विभास तथा राग देवगधार दोनों में मिलता है । (देखिए, सगीतरागकल्पद्रुम, द्वितीय भाग, पृ० १४१ तथा १८३)
सगीतरागकल्पद्रुम में हितहरिवश जी के निम्नलिखित एक समान ही पद दो विभिन्न रागों में भी मिलते है । यथा –

राग विभास

(क) आजु प्रभात लता मदिर में सुख वर्षत अति निरखि युगलवर ।
(ख) जोई जोई प्यारो करे सोई-सोई मोहि भावे ।
(ग) प्रात समय दोऊ रस लम्पट सुरति युद्धजय युत अति फूल ।
(घ) आज तो युवती तेरो वदन आनद भयो ।
सगीत राग-कल्पद्रुम, द्वितीय भाग,पृ० १४१, और पृ० १८३ पर पुन ये ही पद राग देवगधार के अतर्गत दिए हैं ।

४ चौरासी पद-हितहरिवश, प्रति स० ३८/२१५, प्रयाग सग्रहालय, पद स० १६

उसके गायन से मृग आकर्षित हो कर चले आते हैं ।[1] तोड़ी रागिनी का जो चित्र प्राप्त है उसमें भी वीणा-वादन से आकर्षित मृग-शावकों को दिखाया गया है ।[2] तोड़ी रागिनी की इस विशेषता की ओर संकेत करने के लिए ही हितहरिवंश जी ने तोड़ी में गाये गये इस पद में 'मृगनैनी' शब्द का सार्थक प्रयोग किया है ।

व्यास जी

राधा-कृष्ण की युगल केलि का वर्णन करते हुए कवि व्यास जी कहते हैं –

राग मारू

आजु अति कोपे स्यामा-स्याम ।
वीर खेत वृंदावन दोऊ, करत सुरत-संग्राम ।।
मर्मनि कंचुकी-वर्म, सुदृढ़ कुच चर्मनि, लट करवाल ।
अंग-अंग चतुरंग सैन (वर), भूषन-रव-दुंदुभि-जाल ।।
गौर-स्याम बानैत बने, निजु बिरदावलि प्रतिपाल ।
अंचल चंचल धुजा-पताका, (छवि) केस चमर विकराल ।।
भौंहैं-धनुष तें छूटत चहुँ दिसि, लोचन बान बिसारे ।
भेदत हृदय-कपाटनि निर्दय, तोवर उरज अन्यारे ।।
दसन-शक्ति नख सूलनि बरषति, अधर कपोल बिदारे ।
घूंघट-घुघी, मुकुट, टोपा, कवची, कंचुक भये न्यारे ।।
जीती नागरि, हारे मोहन, भुज संकट में घेरे ।
पीन पयोधर, हार नितंब प्रहार किये बहुतेरे ।।
प्रनय-कोप बोली कैतव, अपराध किये तैं मेरे ।
परम उदार 'व्यास' की स्वामिनि, छाँड़ि दिये करि चेरे ।।[3]

इस पद का गायन राग मारू में किया गया है । जैसा कि पूर्व बताया जा चुका है मारू वीर रस का राग है । प्रस्तुत पद में यद्यपि संयोग शृंगार का वर्णन है किन्तु वह वीर रस की भावना से परिपूर्ण है । राधा-कृष्ण की रति-क्रीड़ा को सुरत-संग्राम का रूप दे कर कवि ने वीर भावना, वीर रस तथा युद्ध से संबंधित उपकरणों का ही प्रस्तुत पद में उल्लेख किया है । वीर भावों से परिपूर्ण होने के कारण ही कवि ने उक्त पद का गायन मारू राग में किया है ।[4]

---

१. दि म्यूजिक आव् इंडिया, पापले, पृ० ६८
२. तोड़ी रागिनी, चित्र सं० १२
३. भक्त कवि व्यासजी, वासुदेव गोस्वामी, व्यास-वाणी, पृ० ३४८, पद सं० ५८८
४. देखिए इसी अध्याय में सूरदास का प्रसंग तथा चित्र सं० ३ रागिनी मारू

पावस, ऋतु की शोभा, मोर, कोयल, मृग, पशु, पक्षियों के आनंद, विद्युत की चमक, काली घटा और अँधेरी रजनी आदि वर्षा ऋतु के उपकरणों का वर्णन कवि वर्षाकाल के राग मलार में करता है –

राग मलार

मानो माई कुंजन पावस आयौ।
स्याम घटा देखत उनमद हो, मोरन सोर मचायौ॥
दामिनि दमकति, चमकति कामिनि, प्रीतम उर लपटायौ।
निसि अँधियारी, दिसि नहिं सूझति, काजु भयौ मन भायौ॥
डोलत बग बोलत घन धुनि सुनि, चातक बदन उठायौ।
बरखत धुरवा सीतल बदनि, तन मन-ताप बुझायौ॥
कुसुमित धरनि तरनि-तनया तट, चद बदन सुख पायौ।
'व्यास' आस सब ही की पूजी, सरिता सिंधु बढ़ायौ॥[1]

बसंत-वर्णन कवि बसंत राग में करता है –

राग बसंत

चलि चलहि वृंदावन बसंत आयौ।
भूलत फूलनि के भ्रमरा, मारुत मकरंद उड़ायौ।
मधुकर, कोकिल, कीर, कोक मिलि, कोलाहल उपजायौ।
नाँचत स्याम बजावत, गावत, राधा राग जमायौ।
चोवा, चंदन, बूका, बदन, लाल गुलाल उड़ायौ।
'व्यास' स्वामिनी की छवि निरखत रोम रोम सचु पायौ।[2]

तथा –

राग बसंत

खेलति राधिका, गावति बसंत।
मोहन संग रंग सो देखति सब सोभा, सुख को न अंत॥
बाजत ताल, मृदंग, झाँझ, डफ, आवज, बीना, बीन सुकंत।
चोवा, चंदन, बूका, बंदन, साखि गुलाल कुमकुम उड़त॥
मौरे आम काम उपजावत, गावत कोकिल मनौं मयमंत।
गुंजत मधुप कुंज कुंजनि पर, मंजु रैन मलयज बहत॥
गौर-स्याम तन छींटन की छवि, निरखि बिमोहे कमलाकंत।
'व्यास' स्वामिनी के बन बिहरत, आनंदित सब जीव-जंत॥[3]

---

१ भक्त-कवि व्यास जी, वासुदेव गोस्वामी, व्यास वाणी, पृ० ३७८, पद सं० ६८१
२ वही, पृ० ३६८, पद सं० ६४६
३ वही, पृ० ३६९, पद सं० ६४९

व्यास जी के पदों मे सारंग राग का प्रयोग प्रत्येक अवसर पर मिलता है। प्रातः सेज्याविहार संवंधी पद में सारंग राग का प्रयोग किया गया है –

राग सारंग

वनी वृषभान जान की वेटी।
निविड़-निकुंज-कुसुम-पुंजन पर, स्याम-वाम-अंग लेटी ॥
रति निसि जगी सोवत नहिं भोर, किसोर जोर गुजरेटी।
पियके हिय में जिय ज्यों राजति, नाहु-वाहु-वल भेटी।
विहँसनि नैननि की सैननि, मनु मनमथ-अनी खरवेटी।
लोभी लाभ 'व्यास' स्वामिनि, जनु कंचन-रासि समेटी ॥[1]

खंडिता-प्रसंग में प्रातःकाल कृष्ण का वर्णन करते हुए व्यास जी सारंग राग में कहते हैं –

राग सारंग

राख्यौ रंग कौन गोरी सों।
सुनहु स्याम फवि आइ कितव, तुमहिं जहाँ चोरी सों ॥
चंदन-विंदु ललाट इन्दु सम, सिर वंदन रोरी सों।
अधरनि अंजन-रेख न मेष, नैन अरुन तेरी सों ॥
भोर किसोर चोर लौं आये, प्रीति करत भोरी सों।
सौंह करत चीन्हें पर कछू वसाइ न वरजोरी सों ॥
नील निचोल प्रगट चोली, भूषन चूरा डोरी सों।
जानति सवै 'व्यास' के स्वामिहिं प्रीति टराटोरी सों ॥[2]

शरद की रात्रि मे रासोत्सव का वर्णन भी कवि सारंग राग में करता है –

राग सारंग

नाँचति गोरी, गोपाल गावैं।
कोमल पुलिन कमल-मंडल महँ रास रच्यो।
स्यामा स्यामल सखि, मोहन वैनु वजावैं ॥
सरद चाँदिनी, मंद पवन वहै दुहूँ दिसिफूल जानि परिमल मन भावै।
कनक-किंकनी-धुनि सुनि खग-मृग आकर्षत, वन मधु वरषावैं ॥
लटकति लट भुज मुकुट विराजति।
पटकति चरन धरनि सों कुमकुमहिं उड़ावैं ॥
उरप तिरप गति मान वढ़ायौ।
हस्तक मस्तक भेद जनावैं, अंगनि सरस सुघंग दिखावैं ॥

---

१. भक्त कवि व्यासजी, वासुदेव गोस्वामी, व्यास-वाणी, पृ० २६६, पद सं० ३०६
२. वही, पृ० ३६४, पद सं० ७३४

रूप राशि गुन गन की सीवा ।
भृकुटि बिलास हँसि के प्यारेंहि रिझावें ॥
बिच-बिच कच-कुच परसति हँसि करि ।
परिरम्भन-चुंबन दै रस सिंधु बढावें ॥
नव रँग कुंज बिहारी-प्यारी खेलति देखि ।
जाऊँ बलिहारी यह सुख 'व्यास' भागनि पावें ॥[१]

हितहरिवंश जी के पदो में सारग राग का प्रयोग रात्रिकालीन वर्णन में किया गया है। अष्टछाप के तथा अन्य कृष्ण भक्तो ने मध्याह्न समय सबधी पद सारग राग में गाए है। व्यास जी ने प्रात तथा रात्रि दोनो समय के वर्णन सारग राग में किए है। व्यास जी के अन्य सभी पद रस-राग और समय की कसौटी पर खरे उतरते है। अत प्रश्न उठता है कि सारग राग का प्रयोग उन्होने प्रात तथा रात्रि दोना समय क्या किया। 'कृष्णभक्ति-कालीन साहित्य में प्रयुक्त राग-रागिनियाँ' शीर्षक प्रकरण में यह सिद्ध किया गया है कि सारग कृष्णभक्ति-कालीन कवियो का सब से अधिक प्रिय राग रहा है अस्तु ऐसा प्रतीत होता है कि अत्यधिक लोकप्रिय होने के कारण सारग राग का गायन प्रत्येक समय मान्य था और हर समय के वर्णन सारग राग में प्रचलित थे। इस दृष्टिकोण से विचार करने पर व्यास जी के सभी पद रस-राग और समय सिद्धात के अनुकूल उतरते है।

हरिदास स्वामी

हरिदास स्वामी का एक पद राग विभास में है —

राग विभास

आलस भीन री नैंन जभाति आछी भाँति सुदेस ।
करसो कर टेकें अगुरिनि पेच मानो ससि मडल बैठे अति भाँति सुदेस ।
मन के हरिवे कों नाहिनें प्यारी कोऊ तो तैंन खसिखेत भाति सुदेस ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा छाति सों छाती लगायें अग-अग सुदेस ।[२]

जैसा विभास राग के चित्र सख्या ६ से स्पष्ट है कि यह प्रात-कालीन गेय सयोग शृगार का राग है, नायक-नायिका रति-क्रीडा में लीन है और प्रात काल का उदय देखकर कौआ शोर मचाता है जिसका वध करने के लिए नायक तीर चला रहा है। सगीत-ग्रथो में भी विभास राग का गायन प्रात काल मान्य है। हरिदास स्वामी ने प्रस्तुत पद में प्रात काल आलस्य से शिथिल राधा कृष्ण की सयोग क्रीडा का वर्णन किया है। इसीलिए उन्होने रस-भाव तथा समयानुकूल राग विभास में उक्त पद को बाँधा है।

---

१ भक्त कवि व्यासजी, वासुदेव गोस्वामी, व्यास वाणी, पृ० ३६२, पद स० ६२४

२ पद-सग्रह, प्रति स० ३७१/२६६, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, पृ० २१, पद स० २

इसी प्रकार बसंत ऋतु की सुषमा में नवीन पुष्प पल्लवों की शोभा के मध्य विचरण करते हुए गोपी-कृष्ण के हास-विलास, मिलन और संयोग सुख के भावों का वर्णन कवि ने वसंत ऋतु में गाए जाने वाले संयोग श्रृंगार रस से परिपूर्ण राग वसंत ही में किया है जो पद के भाव, रस और समय के पूर्णतया उपयुक्त है –

राग वसंत

कुंज बिहारी कौ वसंत चलहू न देखन जाहि।
नवनव-नव निकुंज नव पल्लव नव जुवितिनि मिलि मांहि।
वंसी सरस मधुर धुनि सुनियत फूली अंगनि मांहि।
सुनि हरिदासी प्रेम सौ प्रेमहि छिरकत छैल छुवाहि।[1]

वर्षाकालीन भावों का वर्णन करते हुए हरिदास स्वामी कहते हैं कि आकाश में काली घटा व्याप्त है, कोकिला और पपीहा के स्वरो से सम्पूर्ण वातावरण संगीतमय हो रहा है, मेघ का गर्जन ही मृदंग की सगत है और विद्युत का प्रकाश ही दीप-ज्योति के सदृश्य है। ऐसे सरस वर्षाकाल में कृष्ण मोरों के साथ नृत्य करते हुए राधा को रिझा रहे हैं –

राग गौडमल्लार

नाचत मोरनि संग स्याम मुदित स्यामहि रिझावत।
तैसी ये कोकिला अलापत पपीहा देत सुर तसोई मेघ गरजि मृदंग बजावत।
तैसीये स्याम घटानि सिसीकारी तैसीयै दामिनि कौंधि दीप दिखावत।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंजविहारी रीझि राधे हंसि कंठ लगावत।[2]

राग गौडमलार का गायन वर्षा ऋतु में किया जाता है जब कि आकाश में बादल छाये हों, विद्युत चमक रही हो, हर्षित हो कर मोर नृत्य कर रहे हो और पपीहा तथा कोयल गान करते हों। कवि का पद इन्हीं भावों से परिपूर्ण है इसलिए उक्त पद का गायन गौड-मलार में किया गया है।

कवि के पदों मे प्रायः सर्वत्र ही समयानुकूल रागो का गायन किया गया है। रात्रि-काल मे की गई क्रीड़ा का वर्णन कवि रात्रिकालीन गेय राग केदारा मे करता है –

राग केदारो

अद्‌भुत गति उपजत अति नाचत दोऊ मंडल कुंवर किसोरी।
सकल सुधंग अंग भरि भोरी प्रिय नृतत मुसकनि मुख मोरी परिरंभन रस रोरी।
ताल धरें वनिता मृदंग चडांगत घात बजें थोरी-थोरी।
सप्त भाइ भाषाविचित्र ललिता गाइनि चित चोरी।

---

१. पद-संग्रह, प्रति सं० १६२०/३१७०, हिन्दी-संग्रहालय, साहित्य-सम्मेलन प्रयाग।
२. वही, पृ० ३०, पद सं० १

श्री वृंदावन फूलनि फूल्यौ पूर्न ससि त्रिविध पवन बहै थोरी।
गति विलास रसहासि परस्पर भूतल अद्‌भुत जोरी।
श्री जमुना जल वियक्ति पहुपनि वरिषा रति पति डारत तून तोरी।
श्री हरिदास के स्वामी स्याम कुंजविहारी जू को रस रसना कहै कोरी।[1]

इसी प्रकार कवि के अन्य पदो में भी संगीत की राग-रागिनियों का शास्त्रीय रीति से ही गायन किया गया है।

विट्ठलविपुल

विट्ठलविपुल जी का एक पद राग विभास में है—

राग विभास

आजु बनी लाडिली प्रीतम संग आवति
सोधे भीजी लट छूटी पिय के अंस भुजा पाछैं सखी सुघर विभासहि गावति।
श्रमजल बिंदु निसि के सुख सूचि मोहन वदन सों वदन मिलावति।
श्री बीठलविपुल कल रसिक बिहारी आनंद समुद्रयपि मदन मिलावति॥[2]

प्रस्तुत पद में राधा-कृष्ण की संयोग-क्रीडा का वर्णन किया गया है। रात्रिकालीन संयोग समागम के फलस्वरूप राधा की दशा अस्तव्यस्त सी हो रही है। मुखारविंद पर जलकण झलक रहे हैं। प्रातःकाल का आगम होने पर राधा कृष्ण के साथ मिलन-क्रीडा करती हुई आ रही हैं। उनकी सखियाँ विभास राग का गायन कर रही हैं। जैसा पहले भी कहा जा चुका है और चित्र[3] से भी प्रकट है कि विभास संयोग शृंगार के लिए उपयुक्त प्रातःकालीन गेय राग है। प्रातःकाल के समय संयोग-लीला का वर्णन होने के कारण ही एक ओर विट्ठलविपुल जी ने राधा की सखियों द्वारा विभास राग के गायन की ओर संकेत किया है और स्वतः भी उक्त पद को विभास राग में बाँधा है।

वर्षा ऋतु का वर्णन करते हुये विट्ठलविपुल जी कहते हैं—

राग मल्हार

नीकैं द्रुम फूले सुभग कालिंद्री कूल इंद्र धनुष राजै स्याम घटानि में।
नीकैं गुहलता कुंजनीको आली अलि गुंजनी की राग रंग रह्यो पिकनि की रटनि में।

---

१ पद-संग्रह, प्रति सं० ३७१/२६६, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, पृ० १२, पद सं० ३
२ पद-संग्रह, प्रति सं० ३१७०।१६२० हिंदी-संग्रहालय, हिन्दी साहित्य-सम्मेलन प्रयाग, पद सं० २
३ रागिनी विभास, चित्र सं० ६

नीकी गति मंद मंद विहारी आनंद कंद नीको भेद बन्यो अरुन पीत पटनी में।
श्री बीठल विपुल रंग ललिता के फूल अंग मिले लें देखोंगी नैननि की विधि छूटनि में।[1]

प्रस्तुत पद में काले बादलो, आकाश में शोभित इंद्र-धनुष, भँवरों का गुंजन, पपीहा-कोयल की रटन, कृष्ण-राधा के संयोग-सुख आदि वर्षाकालीन उपकरणों का वर्णन किया गया है। इसीलिए कवि ने रस-भाव तथा समय-परंपरा का पूर्ण निर्वाह करते हुए प्रेमोल्लास तथा आनंद को व्यक्त करने वाले वर्षाकालीन गेय राग मल्हार में उक्त पद का गायन किया है।

कवि के अन्य पदों में भी इसी प्रकार प्रायः सर्वत्र संगीत के नियमों का पालन किया गया है।

विहारिनदास

विहारिनदास जी का एक पद राग विभास में है –

राग विभास

भोर ही कर सों कर जोरें अंग अंग मोरे आलस लेत जंभाई।
पिय के अंक निसंक सबै निसि हुलसि, हुलसि बिलासि आनंद में उनींदें ये उठि आई।
अंगराग अनुराग रही फबि छबि बरनी न जाई।
अति सुख भीर उमंगि विहारनिदासि सों कहति जैसे हो लाल लड़ाई।
धनि सुहाग अद्भुत सर्वोपरि राधे जू रानी।
नख सिख अंग अंग बानी प्रीतम प्रान समानी रसिक किसोर सुरत सुखदानी।
को जानें बरनें बपुरा कवि अद्भुत छबि न जात बरनानी।
श्री विहारीदासि पिय सों रति मानी में जानी सयानी तो सब निसि सुख सिरानी।[2]

प्रस्तुत पद में रात्रि-समय रति-क्रीड़ा में लीन रहने वाली राधा के संयोग-सुख को व्यक्त करने वाली प्रातःकालीन दशा का चित्रण किया गया है अतः उक्त पद को शृंगार रस के उपयुक्त प्रातःकाल गेय विभास राग में गाया गया है।

कवि ने सर्वत्र ही प्रातःकालीन संयोग-सुख का वर्णन विभास राग ही में किया है। यथा –

राग विभास

प्रात समै नवकुंज द्वार ह्वै ललिता ललित बजाई बीना,
पोढ़े सुनत स्याम श्री स्यामा दंपति चतुर प्रवीन प्रवीना।[3]

---

१. पद-संग्रह, प्रति सं० ३१७०।१६२० हिन्दी-संग्रहालय, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग, पत्र सं० ४२, पद सं० २८
२. पद-संग्रह, प्रति सं० ३७१।२६६, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, पत्र सं० १२१, पद सं० ६
३. वही, पत्र सं० १२१, पद सं० १

पावस ऋतु में गरजन बादलों, रिमझिम बरसती बूँदों, कोकिल पपीहा के गान, मयूर नृत्य आदि वर्षा के उपकरणों तथा ऐसे समय में राधा माधव की आनंद क्रीड़ा का वर्णन कवि ने पावस ऋतु में गाए जाने वाले आनंद-सुख के प्रतीक मल्हार राग में किया है जो पद के भाव, रस तथा समय की कसौटी पर खरा उतरता है—

मलार

घूमरे गगन गरजत घन मंद मंद बरषत वृंदावन सघन सरस पावस रितु सुहाई।
चातक पिक मोर मुदित नाचत गावत भरे निरखि निरखि वर्षति सब संपति सुखदाई।
तैसीयै सरस सरद निसि आई तैसोयै निकुंज कुसुमन छाई तैसीयै ललना लाल लड़ाई कंठ लपटाई।
श्री बिहारनिदासि गाई गूढ ओढ़नी उढाई रीझि रहे अंग औझि मिलि मलार गाई॥[1]

बिहारिनदास जी अधिकांश स्थलों पर जहाँ वे वर्षा की बूँदों का वर्णन करते हैं उसके उपर्युक्त मलार राग का ही प्रयोग करते हैं और कहीं-कहीं तो वे पद में इस ओर भी संकेत कर देते हैं कि ऐसी वर्षा ऋतु में मलार राग का गायन किया जा रहा है। यथा—

राग मलार

बिहरत बन बन बूंदनि में गावत राग मलार मिले मन।[2]

इसी प्रकार कवि बसंत ऋतु की प्राकृतिक सुषमा, बसंत ऋतु के उपकरणों तथा बसंत ऋतु में विहार करते हुए स्यामा-स्याम के विनोद के वर्णन का गायन उसी रस तथा भाव को व्यक्त करने वाले बसंत ऋतु के बसंत राग ही में करते हैं—

राग बसंत

नवल वृंदावन नवल बसंत।
नव द्रुम बेलि केलि नव कुंजनि नवल कामिनी कंत।
नव अलि अलक झलक नव कोकिल नव सुर मिलि बिलसंत।
नव रस रसिक बिहारनि दासी के नव आनंदहि न अंत।[3]

बिहारिनदास जी के पदों में समय सिद्धांत का सर्वत्र ही निर्वाह किया गया है। कवि का एक पद है—

राग केदारो

राजत रास रसिक रसरासे।
आस पास जुवती मुख मंडल मिलि फूले कमला से।

---

१ पद-संग्रह, प्रति सं० ३०१/२६६ काशी-नागरी प्रचारिणी-सभा, पत्र सं० १३१, पद सं० २

२ पद-संग्रह, प्रति सं० ३०१।२६४, काशी-नागरी प्रचारिणी-सभा, पत्र सं० १३१, पद सं० ३

३ वही, पत्र सं० १४४, पद सं० ४

मध्य मराल मिथुन मन मोहन चितवत आतुरता से ।
वचन रचन सुर सप्त नृत्य गति मदन मयंक विकासे ।
बाजत ताल मृदंग अंग संग मंद मधुर मृदु हासे ।
घूंघट मुकुट अटक लटकत नट अभिनय भृकुटि विलासे ।
वारति कुसुम सुगंध देखि सखि आनंद हियें हुलासे ।
त्रिनु तोरति रति रति जोरति छिन छिन विपुल विहारनि दासे ।[1]

प्रस्तुत पद में रात्रि के समय की गई रास-लीला का चित्रण किया गया है । रात्रि कालीन वर्णनों से युक्त होने के कारण ही उक्त पद का गायन रात्रिकालीन गेय राग केदारा में किया गया है ।

विहारिनदास जी के अन्य पदों में भी इसी प्रकार संगीत की परिपाटियों का समुचित पालन किया गया है ।

श्री भट्ट

प्रातःकाल राधाकृष्ण के संयोग का वर्णन करते हुए श्री भट्ट जी कहते है –

राग विभास

उठत भोरे लाल जू के संग तें कंचुकी कसत राधिका प्यारी ।
खिसि खिसि परत नील पट सिर तें ससि वदनी नवजोवन वारी ।
मनभावता लाल गिरिधर जू की रची है विधाता सुहय सवारी ।
जै श्री भट सुरत रंग भीनें प्रिया सहित देखे निकुंज विहारी ।[2]

कवि ने उक्त पद को राग विभास में गाया है जो राग के रस, भाव तथा समय के पूर्णतया उपयुक्त है ।

वर्षा ऋतु में प्रकृति की सुरम्य क्रोड़ में क्रीड़ा करते हुए राधा-कृष्ण तथा सखियों के विहार, प्रेम और आनंद का वर्णन कवि ने वर्षा ऋतु में गाए जाने वाले हर्ष तथा प्रेम के प्रतीक राग मलार ही में किया है –

राग मलार

हिंडोरें लाडिली लालै झकोरें बटी जुटी दोऊ ओरें ।
खंम अधारक डोल अमोलक नवल पाट की डोरें ।।

---

१. पद-संग्रह, प्रति सं० ३७१।२६६, काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभा, पत्र सं० १४८, पद सं० २२

२. युगलसत, श्री भट्ट, प्रति सं० ७१२।३२, काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभा, पत्र सं० १, पद सं० ८

जामें नवल किसोर किसोरी अपनी अपनी छोरें।
कारी घटा छटन के डोंरा मोरा बोलत जोरें॥
कोकिला कल कलकन वरषनथि रग नीर घन घोरें।
सबै ओरे सुदर तें सुदरि बनी सखीन को कोरें॥
देख दपति कूल झूलें दोऊ दामिनी वन मोर।
सनमुख बैठे उभें कुवरि हरि गावें सखीन सुर थोरें॥
स्यामा स्याम सखी सुखकारी झूलत सहज झकझोरें।
जिन जित कलडुलतति तितहो तित सखी अगन को मोरें।
तन मन दंत नमें भई वैता मोदर चित चित चोरें॥
रग भुजग हैं लहैं चित इछ बरनी असित तन गोरें।
श्री भट बशीवट नट निरखत उठि उर हरख हिलोर॥[1]

कवि के अन्य पदो में भी इसी प्रकार रस-भाव तथा समयानकूल राग गायन को महत्ता दी गई है।

परशुराम

वर्षा ऋतु से सबधित भावों का वणन परशुराम जी वर्षाऋतु में गेय राग मलार में करते हैं —

राग मलार

नुमायो बादल बरिषत आवै।
वेलि सघण घण अखिलि बरखति इद निसाण बजावै।
लागत बूदि बिषक पावक सम हरि विण तनहि जरावै।
क्यों सहिये दुख दसरन दुरलभ विरह भुवग सतावै।
गिरसिरसिहर सिर दामिन सोभित मोही न सुहावै।
सुदर सूज सरस घर सखम मोहन द्रिष्ट न आवै।
कविन परी सुखते दुख उपज्यो सो पति कोई ना मिलावै।
परसराम प्रभु अलससकत क्यों मोर मलार सुणावै॥[2]

प्रातःकाल उठ कर भगवद्भजन का गायन कवि प्रातःकालीन गेय राग ललित में करता है —

---

१ युगलसत, श्री भट्ट, प्रति स० ७१२।३२, काशी-नागरी प्रचारिणी-सभा, पत्र स० १४, पद स० १

२ रामसागर, परशुराम, प्रति स० ७८०/४६२, का० ना० प्र० स०, पृ० रा० सा० १०३, पद स० ३१७

राग ललित

गोविंद मैं बंदी जन तेरा।
प्रात समै उठि मोहन गाऊं तो मन मानै मेरा।
किर्तम कर्म भर्म कुल करणी ताका नांहिन आसा।
करु पुकार द्वार सिर नांउ गाउं ब्रह्म विधाता।
परसराम जन करत वानता सुणि प्रभु अविगत नाथा।[1]

इसी प्रकार रात्रिकालीन रास-क्रीड़ा का वर्णन कवि रात्रि के समय गाये जाने वाले केदारा राग में करता है –

राग केदारो

हरि रास रच्यो केलि करण कौं।
वृंदावन जमुना तट मोहोन प्रगट करण ब्रज सरण कौं।
लीनो कर मुरली हरि हितकरि हित सों ओसर अधर निजु धरण कूं।
सुंनि सुंनि धुंनि आई ग्रह ग्रह तें सब गोपी पति पाय परण कूं।
थकित पवन सुणि जाणि पर्मसुष जातनि चलि जल जल विभरण कूं।
मोहे पसु पंखी थिरचर सुर लोचन सफल सरोज चरण कूं।
सोभित अति सखी सरद निसा सुख देखौं स्याम सनेह वरण कूं।
परसराम प्रभु सव सुखदाइ कहरि मंगलपद ······ रण कूं।[2]

कवि के अन्य पदों में भी इसी प्रकार रस-राग तथा समय-सिद्धांत का पालन किया गया है।

राजा आसकरण

राजा आसकरण का निम्नलिखित पद राग विभास में है –

राग विभास

नंदकिशोर यह बोहनी करन न पाई।
गोरस के मिष रसहि ढंढोरत मोहन मीठी तानन गाई॥
गोरस मेरे घरहि विके हे क्यों वृंदावन जाय।
आसकरण प्रभु मोहन नागर यशोमति जाय सुनाय॥[3]

२५२ वैष्णवन की वार्ता में इस पद के गाने का निम्न प्रसंग दिया है –

"एक दिन राजा आसकरण दानघाटी पर जाते हते। उहां देखे तो श्रीनाथ जी

१. रामसागर, परशुराम, प्रति सं० ६८०।४६२, का० ना० प्र० स० ४२, पद सं० १
२. वही, पद सं० १
३. अकवरी दरवार के हिन्दी कवि, सरयूप्रसाद अग्रवाल, पृ० ४५२, पद सं० १२

कमली ओढ के हाथ में लकुटी लेके सखा मडली सग लेके ठाडे हैं और व्रजभक्त दही वेचने कू जात हैं और सब सखा देख के गोपिन कूं पकडत हैं और कहे हैं हमारो दहि का दान लगे है सो दे जाओ। गोपीजन कहें हैं जो दही का दान हमने सुन्यो नही हैं और तुम कब के दानी भये। जब आसकरण जी ने पद गायो। सो राग विभास – नदकिशोर यह बोहनो करन न पाई।" [1]

पद के वर्णन तथा वार्ताकार के कथन से स्पष्ट है कि प्रस्तुत पद में सयोग शृगार का वर्णन किया गया है। कवि ने यह पद राग विभास में गाया है। विभास रागिनी सयोग शृगार के वर्णन के लिए अत्यधिक उपयुक्त है। कवि के द्वारा राग विभास में गाये हुए इस पद में सयोग शृगार, गोपियां, कृष्ण और गोपसखाओं की आनदमय केलिक्रीडा तथा उनके हर्ष का वर्णन किया गया है जो राग के रस के सर्वथा उपयुक्त है।

दधि बेचने का कार्य प्रात काल किया जाता है। भोरे होते ही ग्वालिनें दधि की मटकी सिर पर रख कर निकल पड़ती हैं। पद में दधि बेचने का प्रसग आता है इससे ज्ञात होता है कि कवि प्रात काल का वर्णन कर रहा है। विभास रागिनी प्रात काल गाई जाती है। अत रस-राग-सिद्धात के साथ कवि ने समय-सिद्धात का भी पूर्णतया पालन किया है।

कवि ने अपने अन्य दो पदो में भी समयानुकूल राग-गायन की ओर ध्यान रखा है। वार्ताकार ने लिखा है –

"फेर एक दिन आसकरन जी साझ के समय गोविंद कुड के पास ठाडे हते। देखे तो व्रजभक्तन के जूथ चले आवें हैं और साथ के सब गोपीजन ठाडी भई। इतने में श्रीनाथ जी गाय चराय के घर में पधारने हैं। गायन के सग गोरज सु व्यापत है मुखारविंद जिनको। ऐसे प्रभु के दरशन कु रास्ता में गोपीजन आवें हैं। ऐसे दरशन आसकरन जी कु भये जब आसकरन जी नें ये पद गायो –

राग गौरी

मोहन देखि सिराने नैना।
रजनी मुख आवत गायन सग मधुर बजावत बैना॥
ग्वाल मडली मध्य बिराजत सुदरता को ऐना।
आसकरन प्रभु मोहन नागर वारों कोटिक मैना।[2]

सध्या का समय है। भगवान् श्रीकृष्ण धूलधूसरित आनन से वेणुनाद करते हुए अपने सखाओ सहित धेनु चराकर लौट रहे हैं। कवि ने इस पद को गौरी राग में गाया है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि गौरी सायकालीन राग है अत उपर्युक्त पद को गौरी राग में गाना शास्त्रीय दृष्टि से न्यायसगत है।

१ २५२ वैष्णवन की वार्ता, पृ० १७२
२ वही, पृ० १७०

संध्या के उपरान्त रात्रि का आगमन होता है। राजा आसकरण भगवान के शयन समय के दर्शन करते हैं–"पाछे सेन समय में दर्शन राजा आसकरन नें करे। ता पाछे राजा आसकरण ने श्री ठाकुरजी के नेत्रन में नींद झमक रही है ऐसो देख्यो। और एक सखी हाथ जोड़ के श्री ठाकुर जी के आगे ठाड़ी होय के वीनती करे हैं जो आपकुं नींद आय रही है सो पोढो। ये दर्शन लीला सहित राजा आसकरन कुं भये। जब राजा आसकरन नें ये पद गायो–

राग केदारो

(१) पोढिये पिय कुंवर कन्हाई।
युक्ति नवल विधि कुसुमावलि में अपने कर सेज बनाई॥
नाहिन सखी समय काहू को ग्वाल मंडली सब बोराई।
आसकरन प्रभु मोहन नागर राधा को ललिता ले आई॥

(२) तुम पोढो हौं सेज बनाउं।
चापूं चरन रहुं पायंनतर मधुरेस्वर केदारो गाउं॥
सहेचरि चतुर सब जुरि आईं दंपति सुख नयनन दरसाउं।
आसकरन प्रभु मोहन नागर यह सुख स्याम सदा हौं पाउं॥

(३) पौढ रहो घनश्याम बलैया लेहूं।
श्रमित भये हो आज गोचारत घोष परत है घाम॥
सीरी बियार झरोखन के मग आवत अति सीतल सुखधाम।
आसकरन प्रभु मोहन नागर अंग-अंग अभिराम॥[1]

आसकरण जी ने तीनों पद राग केदारा में गाये हैं। राग केदारा के गाने का समय रात्रि का प्रथम प्रहर है।[2] केदारा कल्याण-ठाट का राग है। इसमें तीव्र मध्यम (म॑)

---

१. २५२ वैष्णवन की वार्ता, पृ० १६८–६९

२. "केदारस्त्वभिर्वाणितो रिगनिर्वस्तीव्रः सदाऽलंकृतो।
वादी कोमलमध्यमो भवति संवादी च षटजस्वरः॥
तीव्रोऽपि क्वचिदत्र मध्यम इहारोहे रिगो वर्जितो।
यामे च प्रथमे निशासु मधुरं वीणारवैर्गीयते॥ — रागकल्पद्रुमांकुर, पृ० १७

द्विमस्तीव्रान्यको मशि आरोहे रिगवर्जितः।
क्वचित्कोमलनियमि केदारः प्रथमे निशिः॥ — रागचन्द्रिका, पृ० ८

समो मपो धपो मश्च पधो पमो पमो रिसौ।
केदार मांशको रात्र्यां प्रारोहे रिगदुर्बलः॥ — अभिनवरागमंजरी, पृ० १४

संगीत-कौमुदी, (दूसरा भाग), वी० एस० निगम, पृ० १४५–४६

का प्रयोग होता है अत उसका समय रात्रि के ६ से ९ बजे तक ठहरता है।[1] राजा आसकरण ने तीनो पद शयन समय के दर्शन में गाये है। श्री वल्लभसम्प्रदाय के आठ समय की कीर्तन-सेवा प्रणाली से विदित होता है कि शयन-समय रात्रि के ७ से ८ बजे तक माना जाता है।[2] अत वार्ता के कथन से यह निश्चित हो जाता है कि कवि ने ये पद [illegible] से [illegible] बजे के मध्य ही में गाये होगें जो कि राग केदारा के समय से पूर्णतया मेल खाता है। इसके अतिरिक्त *कवि ने तीनो पदो में रात्रि का ही वर्णन किया है। सुरभित कुसुमो से शय्या रच कर* कवि भगवान् से रात्रि के समय सोने का आग्रह कर रहा है। इस प्रकार रात्रि के समय इन पदो को रात्रिकालीन गाये जाने वाले राग केदारा में गा कर तथा उन पदो में रात्रिकाल का ही वणन कर कवि ने अपने सगीत ज्ञान का सुन्दर परिचय दिया है।

जिस प्रकार गायक-कवि सध्या तथा रात्रिकालीन वणन [illegible] सबधित पद क्रमश सध्या तथा रात्रि के समय गाये जाने वाले रागो में सध्या तथा रात्रि के समय गाता है उसी प्रकार वह प्रात काल के समय प्रात कालीन वर्णन समयानुकूल रागो में करता है–"फेर एक दिन श्री गुसाईं जी श्री नाथ जी कु जगायवे कु पधारे वाही समय अपने घर तें सब व्रजभक्त सब माखण और मलाई और दूध और अनेक प्रकार की सामग्री लैके सब पधारे है और गोपीजन यशोदा जी कु कहे है हे यशोदा जी लाल जी कु जगाओ। हम तुम्हारे लाल जी के दर्शन करके और सामग्री अरोगाय के जो दही बेंचवे जावें हे तो हमकु दसगुणो लाभ होवें हे याते हम तुमारे घर आई हे सो लालजी कु जगाओ तो इनको मुख देख के जावें। तब ऐसे दर्शन आसकरन जी कु भये। जब आसकरन जी ने पद गायो। सो पद–

राग विभास

(१) प्रात समय घर-घर तें देखन को आईं गोकुल की नारी।
अपनो कृष्ण जगाय यशोदा आनद मगल कारी॥
सब गोकुल के प्राण जीवनधन या सुत की बलिहारी।
आसकरन प्रभु मोहन नागर गिरि गोवर्धन धारी॥

(२) उठो मेरे लाल लाडिले रजनी बीती तिमिर गयो भयो भोर।
घर-घर दधि मथनिया घूमे अरु द्विज करत वेद की घोर॥
करिकलें उदधि ओदन मिश्री वादि परोसो ओर।
आसकरण प्रभु मोहन नागर वारों तुम पर प्राण अकोर॥[3]

दोनो पदों में कवि ने प्रात काल का वर्णन किया है। प्रथम पद में कवि ने कहा है

---

१ सगीत आफ इडिया, *अतिया बेगम*, पृ० ५८
२ देखिए प्रस्तुत ग्रथ का तृतीय अध्याय, पृ० ११४
३ २५२ वैष्णवन की वार्ता, पृ० १७०–७१

कि प्रभात का आगमन होने पर गोकुल की नारियाँ कृष्ण को देखने के लिए आ गई है इसीलिए यशोदा कृष्ण को जगाती है ।

दूसरे पद से विदित होता है कि रजनी वीत गई है, भोर हो गया है, घरों में दधि-मंथन का कार्य प्रारम्भ हो गया है और ब्राह्मण वेदमंत्रों का उच्चारण करने लगे है। इस समय कृष्ण सो रहे हैं। कवि कृष्ण को जगाने के लिए प्रभाती गाता है। वह कहता है कि हे लाल ! उठो और दधि-मिश्री का कलेऊ करलो। पदों की प्रत्येक पंक्ति में प्रातःकालीन वातावरण तथा प्रात.काल से संवंधित कार्य और भोजन का वर्णन किया गया है। वार्ता के प्रसंग से भी यहाँ ज्ञात होता है कि आसकरण जी ने ये पद उस समय गाये है जव उनके हृदय में इस लीला का स्फुरण होता है कि प्रातःकाल श्री गुसाईं जी श्रीनाथ जी को जगाने के लिए आए है। आसकरण जी ने ये पद राग-विभास में गाए है। राग-विभास के गाने का समय प्रातःकाल है। अतः कवि का प्रातःकाल से संवंधित पदों का राग-विभास में गायन उचित ही है।

एक दिन आसकरण जी गोकुल में श्री नवनीत प्रिया जी के दर्शन करने के लिए गए। वहाँ पर उन्हे इस लीला के दर्शन हुए कि माता यशोदा कृष्ण को पालना झुला रही है और गोपियाँ उठकर कृष्ण के दर्शन करने तथा उन्हें खिलाने आ रही है। इस लीला का अनुभव करके कवि राग रामकली मे एक पद गाता है –

"फेर एक दिन आसकरन जी श्री गोकुल में आये। श्री नवनीत प्रिया जी के दर्शन करवे कुं गये। तव आसकरण जी कुं ये लीला के दर्शन भये। श्री यशोदा जी श्री ठाकुरजी कुं पालने झुलावे हैं और गोपी जन मिल के यशोदा जी के पास आई हैं और गोपीजन कहे हैं जो हमारो ऐसो नेम है ज्यां सूधी तेरे लाल कुं हम खेलावें नही और हम पालना झुलावें नहीं तहां सूधी हमारो चित्त घर के काम में नही लगे है और जो कदाचित घर को काम करैं तो सव काम विगड़े हैं। जासुं हम सगरी सूती उठ के तुम्हारे लाल कुं खिलावन आई हैं। ऐसे सव गोपीजन कहे और यशोदा जी हँसे हैं। ऐसी लीला के दर्शन आसकरण जी कुं भये। जव आसकरण जी ने ये पद गायो।

राग रामकली

यह नित्य नेम यशोदा जू मेरें तिहारोई लाल लड़ावन कूं।
प्रात समय उठ पलना झुलाऊं शकट भंजन यश गावन कूं ॥
नाचत कृष्ण नचावत गोपी कर कटताल वजावन कूं।
आसकरण प्रभु मोहन नागर निरख वदन सचु पावन कूं ॥'[1]

रामकली भैरव-ठाट का राग है इसमें भी रे ध (कोमल) स्वरों का प्रयोग होता

---

१. २५२ वैष्णवन की वार्ता, पृ० १७२

है। अत रामकली का समय भी सर्व सम्मति से प्रातःकाल मान्य है।[1] इस प्रकार कवि ने प्रातःकालीन वर्णन से संबंधित पदों को प्रातःकालीन रागों ही में गाया है।

राजा आसकरण के अन्य पदों में भी इसी भाँति रस-राग और समय-सिद्धांत का प्रायः सर्वदा पालन किया गया है।

संगीत के सिद्धांतों के आधार पर की गई कृष्णभक्तिकालीन कवियों के पदों की समीक्षा पर एक सामान्य दृष्टि

यों तो पदों की संगीतमय रचना अर्थात् पदों का राग विशेष में गाने की परम्परा सिद्ध कवियों से ही चली आ रही है किन्तु इस परम्परा का सफलीभूत विकास कृष्णभक्ति-कालीन कवियों के काव्य में हुआ। सिद्धों तथा संतकवियों ने स्वांतः सुखाय अथवा साहित्यिक साधना के लिये काव्य-रचना नहीं की। उनको तो अपने धार्मिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन काव्य के द्वारा करना था। अतः जनसाधारण का अपनी ओर आकर्षित करने तथा अपने धार्मिक सिद्धांतों को जनता में प्रचलित करने के लिए इन कवियों ने काव्य में संगीत का पुट दिया और अपने पदों को विभिन्न रागों में संयुक्त करके गाया। किन्तु इन कवियों ने जितना प्रयास अपने धार्मिक भावों की अभिव्यक्ति के लिए किया है उतनी दूर तक वे गेयत्व के लिए नहीं गए हैं। धार्मिक सिद्धांतों का खंडन-मंडन करने के फलस्वरूप इनके काव्य-ग्रंथों में रस-राग तथा समय सिद्धांत का उचित निर्वाह नहीं हो सका है। समान भाव के पद विभिन्न राग तथा विभिन्न भाव के पद एक विशेष राग के अन्तर्गत गाये जाने के कारण सिद्ध तथा संत कवियों के समस्त पद रस और राग की कसौटी पर पूर्णतया खरे नहीं उतरते। राम-काव्य में तुलसी के काव्य में ही रागों की ओर विशेष आग्रह दिखाई पड़ता है किन्तु कृष्ण-भक्तिकालीन कवियों ने रस और राग का मणिकांचन संयोग कर संगीत का वह स्रोत प्रवाहित किया है जो अक्षय तथा अनंत है।

"सम्पूर्ण विश्व भगवान् की रस-सृष्टि का प्रतिबिंब है और गायक कवि का गीत इस रस के भाव की व्यंजना का प्रतिघोष है। रस में विभोर होते ही वाणी मुखरित हो उठती है तथा स्वर के आंदोलन जाग जाते हैं और तब साक्षात् रस काव्य में राग का आश्रय ले कर मूर्तिमान हो जाता है। कृष्णभक्तिकालीन कवियों की रचना किसी ऐसी ही दिव्य घड़ी में गूँज उठी है जिसमें राग स्वयं रस के प्रतीक बन गये हैं। जैसे शुद्ध भावनामय इन कवियों के पद हैं वैसा ही तन्मयकारी इनका संगीत भी है।"[2]

"वर्तमान समय के प्रचलित शास्त्रीय संगीत में जो गीत गाये जाते हैं उनके शब्द, अर्थ, भाव और रस रागों और रागिनियों के रस-भाव के साथ संवादित होते हुए नहीं

---

१ संगीत-कौमुदी, (चौथा भाग) पृ०, १७९
२ सूर-संगीत, (प्रथम भाग), प्राक्कथन, पं० ओंकारनाथ ठाकुर, पृ० ४

दीखते । राग और रागिनियों के रस भाव को देखकर, उसकी यथार्थ अनुभूति पाकर तदनुसार और तदनुकूल गीत पद्य का चुनाव होना चाहिये । किन्तु इस बात का अभाव प्रति पल खटकता है । आज के शास्त्रीय संगीत में वांछित रस का निर्माण नहीं होता । उसका मुख्यतः और मूलतः यही कारण है कि रसानुकूल शब्द नही होते और अर्थानुकूल स्वर नही होते । या तो अर्थानुकूल राग का चुनाव हो या राग के रसानुकूल काव्य का चुनाव हो ।"[1]

कृष्णभक्तिकालीन कवियों ने राग तथा रागिनियों के रस-भाव को देखकर, उसकी यथार्थ अनुभूति पाकर तदनुसार और तदनुकूल अपने गीत पद्यों का चुनाव किया है । उनके पद्यों के अर्थ, भाव और रस रागों और रागिनियों के रस तथा भाव के साथ संवादित हुए है ।

कृष्णभक्तिकालीन कवियों ने ऋतु तथा समय-सिद्धात का भी सुदर निर्वाह अपने पदों में किया है । वसंत ऋतु की सहज सुषमा पर मुग्ध हो कर इन भक्त गायकों के हृदय के भावुक उद्‌गार कोकिला के मादक संगीत की भाँति वसंत राग मे मुखरित हो जाते है । और उमड़ती हुई श्यामल घटाओ के कमनीय सौंदर्य को निरखकर इन कवियों के मनमयूर की प्रतिक्रिया मेघ राग का सृजन कर नृत्य कर उठती है । हमारे कृष्णभक्तिकालीन कवियों ने अपने काव्य का सृजन संगीत के द्वारा ही किया है । प्रभात मे उनके काव्य के स्वर भैरवी राग के द्वारा जागरण का संदेश सुनाते है, ऊषा की अगवानी आसावरी के मौन स्वरों में होती है, प्रखर दुपहरी में सारंग की तान सुनाई पड़ती है, ढलती संध्या में पूरिया की स्वरावली प्राणों में भर जाती है तथा निशाशेष में सोहनी को सुनकर कौन द्रवित नहीं हो जाता है ।

कृष्णभक्तिकालीन कवियों ने रागों के गुणों, माधुर्य, प्रभाव तथा विशेषताओं की ओर भी संकेत किया है । सारंग राग के द्वारा पशुओं को वशीभूत कर लेना, तोडी के गायन से मृगछौनों को मोहित कर लेना और मेघ राग के द्वारा वर्षा का आगमन इनके विशेष प्रिय विषय रहे है ।

कृष्णभक्तिकालीन काव्य पर एक विहंगम दृष्टि डालने के उपरान्त यह कहना पड़ता है कि इन कवियों के काव्य में रस-राग तथा समय-सिद्धात के अपूर्व संयोग से दिव्य संगीत की सृष्टि हुई है । इन कवियों ने शास्त्रीय संगीत के नियमों को अपनाकर भारतीय संगीत और साहित्य के समन्वय की धारा को अत्यधिक वेगवती कर दिया है ।

---

१. सूर-संगीत, प्रथम भाग, प्राक्कथन, पं० ओंकारनाथ ठाकुर, पृ० ५

सप्तम अध्याय

कृष्णभक्तिकालीन संगीत की भाषागत विशेषतायें

ब्रजभाषा का प्रयोग

कृष्णभक्तिकालीन कवियों के समय में हिन्दी साहित्य में डिंगल, अवधी तथा ब्रज भाषायें ही साहित्यिक मानी जाती थी। उस समय तक दिल्ली, मेरठ की खड़ी बोली साहित्यिक भाषा नहीं बनी थी। कृष्णभक्तिकालीन प्रायः सभी कवियों ने (मीरा के अतिरिक्त) अपने काव्य में ब्रजभाषा को अपनाया।

स्वरध्वनि की बहुलता –

संगीत के दृष्टिकोण से ब्रजभाषा विशेषतया उपयोगी रही है। कृष्णभक्तिकालीन कवियों के समय "भारत की आर्य बोलियों में स्वरध्वनि की बहुलता थी, ब्रजभाषा भी इस स्वरबहुलता के कारण (क्योंकि इसके सब शब्द स्वरांत होते थे) विशेषतया श्रुतिमधुर भाषा है।"[1]

विभक्तियाँ –

ब्रजभाषा की विभक्तियाँ माधुर्य में अतुलनीय हैं। "खड़ी बोली की हिं, कौं, सें, सो, कैंहैं आदि से समता की स्पर्द्धा नहीं कर सकती। खड़ी बोली में एक ही विभक्ति मधुर है 'में', परन्तु वह भी ब्रजभाषा की 'मँहैं' की श्रुति सरसता में फीकी पड़ जाती है।"[2]

क्रियाओं के रूप –

ब्रजभाषा में क्रियाओं के रूप भी विशेष श्रुतिमधुर हैं। "उधर ब्रजभाषा ने अपनी

---

१ निबंध-संग्रह, हजारीप्रसाद द्विवेदी, कविवर तानसेन, डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, पृ० ११०–११

२ प्रबंध-पद्म, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', पृ० १०१

क्रियाओं के रूपों में भी विशेष श्रुति कोमलता ला दिखलाई है । 'लाभ करते' की तुलना में 'लहत', 'मुड़ते' की तुलना मे 'मुरत', 'पाते' की अपेक्षा पावत विशेष श्रुतिमधुर है ।"[1]

शब्दों के लोचयुक्त रूप –

ब्रजभाषा के शब्दों मे रूपनिर्माण के संबंध मे भी मधुरता तथा कोमलता की प्रवृत्ति है । "कोमलता लचीलेपन से आती है । मक्खन इसलिये कोमल है कि उसमे लचक है, वह मौके के मुताबिक अपना रूप बना लेता है । यह गुण ब्रजभाषा मे सब से अधिक है । इसमें शब्दों के रूप को अवसरानुकूल फैलाकर, सिकोड़कर, घिसकर, मांजकर रखा जा सकता है । 'नवनीत' शब्द 'नौनीत,' नवनी, नौनी, लवनी, लौनी, लउनी में से कोई भी रूप ले सकता है । इसी प्रकार दृष्टि, दिष्टि, दीठ । अतः ब्रजभाषा सब भाषाओं मे मक्खन की भाँति है । यह ब्रजभाषा ही है जो कृष्ण का कृस्न, किसन, किशुन, कान्ह, कान्हा, कन्हैया, कंवैया, कन्हाई, कान आदि सभी रूपों मे आदर करती है और विशेष आदर उन रूपों का करती है जिनमे मिठास आ गयी है ।"[2] ब्रजभाषा के रूपों के परिवर्तित होकर मधुर बनने के इस गुण पर मोहित हो कर खड़ी बोली को भी इस गुण से सिक्त करने की आकांक्षा से महाकवि निराला कहते हैं –"ब्रजभाषा साहित्य के विचार से बड़ी मधुर भाषा है । उसके शब्द टूटते हुए इतने मुलायम हो गए है जिससे अधिक कोमलता आ नही सकती । ब्रजभाषा का प्रभाव तमाम आर्यावर्त तथा दाक्षिणात्य तक रहा है । सभी प्रदेशों के लोग उसकी मधुरता के कायल थे । बँगला, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं मे उसकी छाप मिलती है । ब्रजभाषा साहित्य के अंग के अपर प्रांत वाले लोग भी अपनी भाषा को ब्रजभाषा की तरह उसी तूलिका से मधुसिक्त कर देते हैं । यही साधना वर्तमान खड़ी बोली के लिए जरूरी है । पहले के अनेक मुसलमान कवि ब्रजभाषा के रंग में रँग गए थे । उनके पद्य हिंदू कवियों के पद्यों से अधिक मधुर हो रहे हैं । यही स्वाभाविक खिचाव खड़ी बोली की कोमलता तथा व्यापकता मे आना चाहिए ।"[3]

ब्रजभाषा के शब्दो के रूपनिर्माण में माधुर्य तथा कोमलता की प्रवृत्ति होने के कारण कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में शब्दों के लोचयुक्त प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुए हैं ।

काव्य और संगीत के क्षेत्र में किसी भी प्रचलित भाषा के स्वीकृत शब्द रूपों मे प्रायः नाना प्रकार के विकार देख पड़ा करते हैं जिनकी ओर लक्ष्य करके समय-समय पर साहित्य के आलोचक वर्ग ने कभी आपत्ति की है और कभी समर्थन भी किया है । आपत्ति के स्थलों पर दृष्टिकोण प्रधान रूप से शब्दों के स्वीकृत शुद्ध रूप पर ही आधारित रहता है। जहाँ इस प्रकार के विकारों का समर्थन किया गया है वहाँ किसी न किसी रूप में कवियों

---

१. प्रबंध-पद्म, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', पृ०, १०१

२. कला, कल्पना और साहित्य, सत्येन्द्र, ब्रजभाषामाधुरी शीर्षक लेख, पृ० २५५

३. प्रबंध-पद्म, निराला, पृ० १४-१५

के सबध में कही गई अति प्राचीन उक्ति 'निरकुशा कवय' का ही आधार लिया गया है अर्थात् छन्दवद्ध करने में तुक इत्यादि की जो पाबन्दियाँ हैं उनका सफल निर्वाह करने के लिए कवि को शब्दो के उच्चारण इत्यादि में थोडे बहुत परिवर्तन करने पड़ते है। ऐसी छूट केवल हमारे ही देश के साहित्य मे नही वरन् पाश्चात्य देशो में भी 'poetic licence' कह कर दी जाती है।

पाश्चात्य साहित्य में काव्य और सगीत का इतना घनिष्ट सबध प्राय नही मिलता जितना हिन्दी साहित्य के पूर्वमध्यकाल के भक्ति साहित्य में मिलता है। इसीलिए पाश्चात्य साहित्य में 'poetic licence' की स्थापना तो करनी पडी किन्तु 'musician's licence' की आवश्यक्ता नही पडी। इसी के विपरीत शब्दो के रूपो के सबध में हमारे साहित्य में जो समस्यायें सामने आती है उन्हे देखकर हमारे आलोचको को कवि और सगीतज्ञ दोनो को ही इस प्रकार की छूट देनी पडी। और यदि हम चाहे तो अपने आलोचको की तरह हम शायद कह सकते है कि 'निरकुशा कवय' की तरह ही 'निरकुशा गायका' की उक्ति भी स्वीकृत की जानी चाहिए किन्तु अपने यहाँ के साहित्य के गभीर विवेचन के उपरान्त बरबस हमारा ध्यान किन्ही अन्य परम आवश्यक तथ्यो की ओर चला जाता है। जैसा ऊपर माना जा चुका है कवि भाषा के शब्दों के स्वीकृत रूपो में विकार उत्पन्न करता है छन्द विषयक अनिवार्य एव वाछनीय पाबन्दियो की पूर्ति के लिए। किन्तु इसी प्रकार के विकार जब सगीत के द्वारा किए जाते हैं तो उसका कारण कवि का कारण नही होता क्योकि पूर्व ही बताया जा चुका है कि काव्य और सगीत के ढाँचो में ही मूल अन्तर है। सगीत युक्त पदावली काव्ययुक्त छदावली में न तो बँधी होती है और न काव्य-सिद्ध छदो की किसी अश में ही पाबन्दी करती है। तब सहमा प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि सगीत क्षेत्र में सिद्ध गायक शब्दो के स्वीकृत रूपो में विकार क्यो उत्पन्न करता है। इसका उत्तर स्पष्ट है कि सगीतज्ञ की चिर-साधना स्वरो में निहित ध्वनियो की साधना होती है। अत सगीताश्रयी ध्वनि सतुलन के लिए उसे शब्दो के रूपो में नही वरन् शब्दो के उच्चारण में ध्वनि विषयक सतुलित और अभीप्सित वैशिष्टय उपस्थित कर देना आवश्यक हो जाता है। गायक कवि को अपने पदो को विशेष राग के विशिष्ट स्वरो से मडित करके उन्हें ताल में बाँधना होना है—तालवद्ध रूप प्रदान करना पडता है। अत सगीत के कलात्मक पक्ष (टेक्निक) के आग्रह के कारण शब्दो में लोच लाना तथा परिवर्तन करना अनिवार्य हो जाता है। रागो का स्थूलस्वरूप, स्वरसगति, मुक्त स्वरो का निरूपण तथा उसकी स्थापना, विभिन्न अवयवो का साम्य स्थापन, किसी निश्चित स्वर से गीत के वाक्य को आरम्भ करके उसे रागात्मक वाक्य (musical sentence) का रूप प्रदान करना तथा इस प्रकार गीत के वाक्य को सगीतात्मक वाक्य का रूप प्रदान करते हुए एक-एक भावात्मक कल्पना को पूरा करते जाना, ताल के आघात के अनुसार गीत के वाक्यो का सौष्ठव बैठाना और रागात्मक वाक्यो की लम्बाई का ध्यान रखना—सगीत की इन कलात्मक विशेषताओ पर ध्यान रखने के कारण भ्रमर का भँवरा, माँह का महिया आदि विभिन्न उच्चारण बन जाना स्वाभाविक ही है।"[1]

---

१ सगीत, अप्रैल १९५०, सम्पादकीय, अखिल भारतीय रेडियो की भजन नीति, पृ० २६५

काव्यशास्त्र के दृष्टिकोण से जैसा कि डा० दीनदयालु जी गुप्त ने इंगित किया है – "यद्यपि बहुत अंश में छंदपूर्ति अथवा तुकान्त के लिए मूल भाषा के प्रचलित शब्दों को तोड़ना भाषा के प्रयोग का एक अवगुण ही होता है।"[1] किन्तु लेखिका का विनम्र निवेदन है कि शब्द परिवर्तन, शब्दो के लोचयुक्त प्रयोग तथा ह्रस्वस्वर को दीर्घ और दीर्घस्वर को ह्रस्व बनाने की इस प्रवृत्ति के मूल में भी संगीत ही निहित है। तुक, मात्राओं की पूर्ति, शब्द-समूह की गति तथा लय के प्रवाह द्वारा काव्य और संगीत के संबंध को पुष्ट करने के लिए ही प्रायः शब्द-रूपों में विकार किए जाते हैं। अब यदि इस दृष्टि से देखा जाय तो डा० गुप्त जी ने जिसे काव्यगत 'शब्दों का तोड़ना' माना है वह ऐसा नही प्रतीत होता वरन् वह सौंदर्य की अभिवृद्धि का साधन बन जाता है। अतः संगीत के माध्यम से काव्य-साधना करने वाले गायक कवियों के लिए इतनी स्वतन्त्रता अनिवार्य है।

कृष्णभक्तिकालीन कवियों ने काव्यशास्त्र के नियमों मे बद्ध होकर काव्य की रचना नही की अपितु भावना की तीव्रता में उनके हृदय से गाये गए मुक्त गान ही अपनी रसात्मकता, पवित्रता तथा सौन्दर्य चेतना के कारण स्वतः ही काव्य की संज्ञा से विभूषित हो गए।"...... मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य बहुत अंशों मे काव्य-साधना के लिए नही वरन् पतित मानवता को दैवी-संदेश सुनाने के लिए रचा गया था। काव्य-साधना साधन मात्र थी, उसमें प्राप्त काव्य-चमत्कार अनायास है। इस अमर साहित्य के विविध रचयिता अपने-अपने क्षेत्र के देवदूत थे। उनकी वाणी अपने इष्ट के द्वारा प्रदत्त वरदान से सिद्धवाणी थी।"[2] यही कारण है कि हमारे सभी कृष्णभक्तिकालीन गायक कवियों के काव्य मे शब्दों के लोच-युक्त रूप पर्याप्त मात्रा में प्रयुक्त हुए है। उदाहरणस्वरूप इन कवियों के निम्नलिखित कुछ स्थलों पर प्रयुक्त शब्दों के लोचयुक्त रूप दृष्टव्य होगे –

लोचयुक्त रूप	भाषा रूप	
पंगु	पंग	सूरदास कछु कहत न आवै गिरा भई गति 'पंगु'।[3]
महियां	माँहि	बिहरति फिरति सकल बन 'महियां' एकै एक भई।[4]
लपटेय	लपेट	श्री शंकर बहुरतन त्यागि कै विषहिं कंठ लपटेय'।[5]
भँवारे	भ्रमर	तुम कारे सुफलक सुत कारे, कारे मधुप 'भँवारे'।[6]

(सूरदास)

---

१. अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय, डा० गुप्त, भाग २, पृ० ८८१

२. मीरा-स्मृति-ग्रंथ, कृष्णभक्ति परंपरा और मीरा, आचार्य ललिताप्रसाद सुकुल, पृ० १८७

३. सूरसागर, (भाग १), पृ० ४८७, पद सं० १२५८

४. वही, पृ० ४७८, पद सं० १२३०

५. वही, (भाग २), पृ० १५६१, पद सं० ४५१३

६. वही, पृ० १५२०, पद सं० ४३८०

लोचयुक्त रूप	भाषा रूप	
कहियां	कहँ, को	बलि बलि जाउ चरन कमलनु को जाहि अपन घर 'कहियां।'[1]
गोपाला	गोपाल	इन मोरन की भाति देखि नाचें 'गोपाला'।[2]
चंद	चन्द्र	सहज प्रीति कमलनि अरु भानुहि सहज प्रीति — कुमुदिनी अरु चंद।[3]
बहियां	बाँह	नेक लाल ! टेकहु मेरी 'बहियाँ'।[4]
राई	राय	खेलन बन चले 'यदुराई'।[5] (परमानन्ददास)
बिरियां	बेला	कुंभनदास प्रभु वृथ बेचन को 'बिरियां' जात टरी।[6]
चैनमु	चैन	अब गिरिधर बिन निसि अरु बासर मन न रहत क्यो 'चैनमु'।[7] (कुंभनदास)
पनियां	पानी	कछु टोना सो डारि गयो री, कसे भरन जाऊँ 'पनिया'।[8]
लगनियां	लगन	लागी रे 'लगनिया', 'मोहना' सों। (कृष्णदास)
मोहना	मोहन	
मटुकिया	मटकी	'मटुकिया' मोरी मोहन दीजै।[10]
दरसना	दर्शन	भोर तमचोर बेगि दीजै जू 'दरसना'।[11]
रसालं	रसाल	नदराय जू को आनि दिखावें सुदर रूप 'रसाल'।[12]
नेन्हो	नन्हीं	'नेन्हो नेन्ही' 'दतियां' द्वै द्वै दूध की देखिए हँसत हरत दुख दलना।[13] (चतुर्भुजदास)
दतियां	दाँत	

१ हस्तलिखित पद-संग्रह, परमानन्ददास, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० ७८

२ वही, पद सं० ७०

३ वही, पद सं० १६७

४ वही, पद सं० ६०

५ वही, पद सं० ६३

६ अष्टछाप-परिचय, मीतल, पृ० ११६, पद सं० ५८

७ वही, पृ० १०७, पद सं० १५

८ वही, पृ० २३२, पद सं० २६

९ हस्तलिखित पद-संग्रह, कृष्णदास, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० १२३

१० अष्टछाप-परिचय, मीतल, पृ० २८१, पद सं० २८

११ वही, पृ० २८४, पद सं० ४१

१२ वही, पृ० २७८, पद सं० १३

१३ वही, पृ० २७६, पद सं० २

लोचयुक्त रूप	भाषा रूप	
पनियाँ	पानी	गोकुल की पनिहारी 'पनियाँ' भरन चली ।[1]
मगना	मगन	फूली सखी चहुँ ओर थोरें थोरें, नंददास फूले जहाँ मन भयो 'मगना'.[2] (नंददास)
कुमारें	कुमार	गोविंद प्रभु पिय दासी तिहारी सुंदर घोप 'कुमारें, ।[3]
किसोरें	किशोर	गोविंद प्रभु कों देखि ललितादिक निरखि हँसत बन-नवल 'किसोरें' ।[4]
मंझारी	मांझ (मध्य)	निसदिन हू घर घेरो फरत है, वालक जूय 'मँझारी' ।[5] (गोविंदस्वामी)
अनुकूली	अनुकूल	यह सब सुख 'छीत' निरखि इच्छा 'अनुकूली' ।[6]
परसिवो	स्पर्श	दधि के दान मिस, व्रज की वीथिन में झकझोरन अंग अंग को 'परसिवो' ।[7] (छीतस्वामी)
गोपरायनि	गोपराय	झुलहिं कुंवरि 'गोपरायनि' की मध्य राधा सुन्दरि सुकुमारी ।[8]
आकासे	आकाश	नंदकुल चंद वृषभानु कुल कौमुदी, उदित वृंदावनविपिन विमल 'आकासे' ।।[9] (गदाधर भट्ट)
मुरलिका	मुरली	नव पीतांवर लकुट 'मुरलिका' ओर अखंड बनायो- प्रीतसहित अवलोक ग्रहत हरि मात पिता के पाय ।[10]
नयना (नैना)	नयन	नयन सों 'नयना' प्रानन सों प्रान अरुझि रहे चटकीली छवि देख लटपटात स्यामघन ।[11] (सूरदास मदनमोहन)

---

१. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल. पृ० ३२३, पद सं० २४
२. वही, पृ० ३२६, पद सं० ३६
३. वही, पृ० २५८, पद सं० ५६
४. वही, पृ० २५३, पद सं० ३३
५. वही, पृ० २५१, पद सं० २६
६. वही, पृ० २६७, पद सं० १७
७. वही, पृ० २६६, पद सं० २३
८. मोहिनी वाणी श्री गदाधर भट्ट जी की, प्रकाशक कृष्णदास, पृ० ५६ झूलन के पद ।
९. वही, पृ० २२, पद सं० ६
१०. अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, सरयूप्रसाद अग्रवाल, पृ० ४४६, पद सं० १०
११. वही, पृ० ४४८, पद सं० ५

लोचयुक्त रूप	भाषा रूप	
राई	राय	मोहन 'रसिक राई' री माई तासों जु मान करै — ऐसो कौन कामिनी ।[1]
नामिनी	नाम	लागि कटुर उरप सप्त सुर [illegible] सुलप लेति सुदरि सुघर राधिका 'नामिनी, ।[2]
जुवतीनि	युवती	देखो सुघग राग रग नीको ब्रज 'जुवतीनि' की भोर री सजनी ।[3] (हितहरिवंश)
नटवा	नट	नाचत 'नटवा' मोर सुघग अग, तैसें बाजत मेह मृदग ।[4]
मोहनियाँ	मोहन	मदनमोहन माई मन–'मोहनियाँ ।'[5] (व्यास)
मोरनि स्यामाहि	मोर स्यामा	नाचत 'मोरनि' सग स्याम मुदित 'स्यामाहि रिझावत ।'[6]
करनि	कर	बनी री तेरै चारि चारि चूरी करनि' ।[7] (हरिदास)
छाहियाँ	छाह	कुजन बन के छारैं बाडे कुवर कदब की 'छाहियाँ ।'[8]
बाहियाँ	बाँह	सुनत बचन हरसि विलम न कीनों चली अली गहि 'बहियाँ' ।[9] (विट्ठलविपुल)
इष्टा	इष्ट	ऐसो को बडभागी अनुरागी जो आराधै 'इष्टा' ।[10]
छाहियाँ बाहियाँ	छाह बाह	इन उनि मे बडरनि की 'छाहियाँ' गई 'बहियाँ' बोलत डोलत बन बन तें सोई सग सब ही को ।[11]
राइ	राय	विहरत राज रितु बन 'राइ' ।[12] (विहारिनदेव)
मोरा	मोर	कारी घटा छटन के डोरा 'मोरा' बोलत ओरैं ।[13]

---

१ हित चौरासी, हितहरिवंश, प्रति स० ३८ । २१५, प्रयाग-सग्रहालय, पद स० २

२ वही, पद स० ६८

३ वही, पद स० २४

४ भक्त कवि व्यास जी, वासुदेव गोस्वामी, पृ० ३७८, पद स० ६८०

५ वही, पृ० २७६, पद स० ३७८

६ पद-सग्रह, प्रति स० १६२० । ३१७०, हिन्दी-सग्रहालय, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग, पृ० ३०, पद सं० १

७ वही, पृ० १७, पद स० १६

८ वही, पृ० ४१, पद स० २१

९ वही, पृ० ४१ पद स० २१

१० वही, पद स० १५

११ पद-सग्रह, प्रति स० ३७१।२६६, काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा, पत्र स० १३१, पद स० [illegible]

१२ वही, पत्र स० १४२, पद स० ५

१३ जुगलसतक, श्रीभट्ट २०६६।१६६६, का० ना० प्रा० स०, पत्र स० २३, पद स० ८५

संस्कृत रूप	भाषा रूप		
नवल्लहि	नवल	नवल वसंत नवल वृंदावन 'नवल्लहि' फूले फूल।[1]	(श्रीभट्ट)
वंशिका	बंसी	नाना धुनि 'बंसिका' बजावत।[2]	
श्याम	सूमि	गउर रंग 'सांम' दै आवत हरि ओढें रिगिरैंत।[3]	(परसुराम)
मणिमया	मणनी	घर घर दीप 'मणनियां' घूमे अरु द्विज पढ़त वेद की घोर।[4]	
सैना	सैन	आसकरण प्रभु मोहन नागर वारौं कोटिक 'सैना'।	(आसकरण)

कोमल शब्द विन्यास –

काव्य को नाद-सौंदर्य से अलंकृत करने के लिए भाषा को मधुर, कोमल और सुकुमार बनाना आवश्यक है। कठोर तथा कर्णकटु अक्षरों का न्यूनतम प्रयोग और द्वित्व तथा संयुक्त अक्षरों का यथाशक्ति बहिष्कार संगीत के उपादान हैं। कृष्णभक्तिकालीन कवियों की भाषा मृदुल, मंजुल, मधुर और सरस है। उनकी रचनाओं में अधिकतर कोमल शब्द-विन्यास होता है क्योंकि ब्रजभाषा का प्रधान गुण माधुर्य है। 'देशी और विदेशी सभी व्यक्तियों ने मुक्त कंठ से यह बात मानी है कि ब्रजभाषा सब भारतीय भाषाओं में मधुर है। ...ब्रजभाषा की वर्णमाला में मधुर वर्णों का ही प्राधान्य है। 'ण' ब्रज में 'न' हो जाता है। 'ल' बहुधा 'र' हो गया है। 'श' और 'ष' का स्थान 'स' ने ले रक्खा है। 'ऋ' ने 'रि' का रूप ग्रहण कर लिया है। इस प्रकार समस्त वर्णमाला की प्रवृत्ति कोमलता और मधुरता की ओर हो गई है।'[6] संगीत की कोमलता उत्पादन के लिए कृष्णभक्तिकालीन कवियों ने कर्णकटु वर्णों का यथाशक्ति बहिष्कार किया है। उनकी रचनाओं में ब्रजभाषा के स्वाभाविक माधुर्य के अनुकूल प्रायः अधिकांश स्थलों पर ष, श>स; तथा ड, ट और ल>र का प्रयोग मिलता है। उदाहरण स्वरूप –

आशा>आसा, निशिकर>निसिकर (सूरदास)[7]; मिश्री>मिसिरी (परमानंददास)[8]; मणि>मनि (कृष्णदास)[9]; बिछुड़>बिछुरि (कुंभनदास)[10]; भूषण>भूषन (नंददास)[11];

1. जुगलसतक, श्रीभट्ट, ७१२।३९, का० ना० प्र० स०, पत्र सं० १३, पद सं० १
2. राम-सागर, परशुराम, ६८०।८६२, रा० साग० ६८, पद सं० १४८
3. वही, १००, पद सं० १६१
4. अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, सरयू प्रसाद अग्रवाल, पृ० ४५१, पद सं० ६
5. वही, पृ० ४५१, पद सं० ७
6. कला, कल्पना और साहित्य, सत्येन्द्र, ब्रजभाषा-माधुरी शीर्षक लेख, पृ० २२५
7. सूर-सागर, भाग २, पद सं० ३७२६ तथा ३७८३
8. हस्तलिखित पद-संग्रह, परमानंददास, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० ३३
9. अष्टछाप-परिचय, मीतल, पृ० २३४, पद सं० ४२
10. कुंभनदास, विद्याविभाग कांकरोली, पद सं० १६७
11. अष्टछाप-परिचय, मीतल, पृ० ३२७, पद सं० ४३

अतिशय>अतिसय (चतुर्भुजदास)[1], कलश>कलस (गोविंदस्वामी)[2], मुड>मुरि (छीतस्वामी)[3], शरद>सरद (सूरदास मदनमोहन)[4], शिरोमणि>सिरोमनि, चूड़ी>चुरी (हितहरिवंश)[5], शरण>सरन (व्यास जी)[6], थोड़ी>थोरी (हरिदास)[7], विवश>विवस (विहारिन देव)[8], किशोर>किसोर (श्रीभट्ट)[9], यश>जस (रामचरण)[10]

संयुक्त वर्णों का अभाव –

भावों की कोमलता को व्यक्त करने के लिए कृष्णभक्तिकालीन कवियों ने शब्दों को मधुर तथा कोमल बनाने का निरन्तर प्रयास किया है। सुकुमारता तथा मधुरता का विशेष ध्यान रखने के कारण इन कवियों की रचनाओं में संयुक्तवर्ण न्यून मात्रा ही में आए हैं। यदि संयुक्त वर्ण आ भी जाते हैं तो स्वरागम द्वारा उनको असंमिलित कर दिया गया है। उदाहरण-स्वरूप निम्नलिखित प्रयोग देखे जा सकते हैं –

समदर्शी>समदरसी, दुर्लभ>दुरलभ (सूरदास)[11], वर्ष>बरस, मार्ग>मारग (परमानददास)[12], पूर्ण>पूरन, सर्वस्व>सरवसु (कुंभनदास),[13] सर्वस्व>सरबस (कृष्णदास)[14], पिपासा>पियास, प्रिय>पियारे (नददास)[15], मूर्ति>मूरति, स्वरूप>सुरूप (चतुर्भुजदास)[16], दर्शन>दरसन, स्वप्न>सुपन (गोविन्दस्वामी)[17], मार्ग>मारग

---

१ अष्टछाप परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २७८, पद स० १३

२ गोविंदस्वामी, ब्रजभूषण शर्मा, पृ० ११, पद २१

३ हस्तलिखित पद-सग्रह, छीतस्वामी, डा० दीनदयालु गुप्त, पद स० १७

४ कीर्तन-सग्रह, वर्षोत्सव के कीर्तन

५ चौरासी-पद, (हस्तलिखित पद-सग्रह, प्रयाग-सग्रहालय), प्रति स० ३८/२१५ पद स० १० व १३

६ भक्त कवि व्यास जी, वासुदेव गोस्वामी, पृ० २५७, पद सख्या २६१

७ पद-सग्रह, (हस्तलिखित), हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग, प्रति स० १६२०/३१३०, पृ० १३, पद ३

८ वही, पद २०

९ जुगलसतक, श्रीभट्ट, प्रति स० २७६६/१६६६, का० ना० प्र० स०, पत्र २३, पद स० ८५

१० दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता

११ सूरसागर, (भाग १) पृ० ७२, पद स० २२०

१२ हस्तलिखित पद-सग्रह, परमानददास, डा० दीनदयालु गुप्त, पद स० २३३ व ४२७

१३ कुंभनदास, विद्याविभाग, कांकरौली, पद स० ४४, २२२

१४ अष्टछाप-परिचय, मीतल, पृ० २३७, पद स० ५७

१५ वही, पृ० ३२३, पद २५ व २८

१६ हस्तलिखित पद-सग्रह, चतुर्भुजदास, डा० दीनदयालु गुप्त, पद स० ३४ तथा ३६

१७ गोविन्दस्वामी, ब्रजभूषण शर्मा, पद स० २३१ तथा ३६३

(छीतस्वामी)[१]; स्वर>सुर, पूर्ण>पूरन, वर्णन>वरनन (गदाधर भट्ट)[२]; पूर्ण>पूरन (सूरदास मदनमोहन)[३]; स्पर्श>परस (हितहरिवंश)[४]; भ्रमर>भँवरन (व्यासजी)[५]; सर्वदा>सरवदा, स्वर>सुर (हरिदास)[६]; हर्ष>हरसि (विट्ठलविपुल)[७]; सर्वस्व> सरवस (विहारिनदेव)[८]; नृत्यत>निरतत, स्पर्श>परस (श्री भट्ट)[९]; हृदय>हिरदै, कल्पतरु>कलपतरु (परशुराम)[१०]।

मीरा की भाषा

यहाँ पर मीरा की भाषा तथा उसकी विशेषताओं की ओर इंगित कर देना अनिवार्य है। यों तो मीरा के पदों के जो अनेकों संग्रह प्राप्त होते है उनमें राजस्थानी, ब्रजभाषा, खड़ीबोली, अवधी, गुजराती आदि सभी का सम्मिश्रण देख पड़ता है। किन्तु यह तो निश्चित है कि मीरा की भाषा विशुद्ध ब्रजभाषा नही थी।[११] हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर बंगीय हिन्दी परिषद् द्वारा संपादित 'मीरा पदावली' मे मीरा की भाषा राजस्थानी रूप में प्रगट हुई है और पदावली परिचय में भी इसी तथ्य की पुष्टि की गई है।[१२]

---

१. हस्तलिखित पद-संग्रह, छीत-स्वामी, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० १७
२. श्री गदाधर भट्ट महाराज की बानी, हस्तलिखित प्रति बालकृष्णदास जी की, पत्र २१, पद २३; पत्र २३, पद सं० १; पत्र २३–२४, पद सं० ३
३. अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, सरयूप्रसाद अग्रवाल, पृ० ४४६, पद सं० ७
४. चौरासी पद, प्रयाग संग्रहालय, प्रति सं० ३८/२१५, पद सं० १०
५. भक्त कवि व्यास जी, वासुदेव गोस्वामी, पृ० १९६, पद सं० ४०३
६. पद-संग्रह, प्रति सं० १६२०/३१७०, हिन्दी-संग्रहालय प्रयाग, पृ० २८, पद सं० २, पृ० ३०, पद १
७. पद-संग्रह (हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग), संख्या ३१७०, वेष्ठन संख्या १६२०, पृ० ४१, पद सं० २१
८. वही, पद सं० २०
९. जुगलसतक, श्रीभट्ट, प्रति सं० ७१२।३२, का०ना०प्र०स०, पत्र १३, पद १, पत्र १ पद सं० ७
१०. रामसागर, परशुराम, प्रति सं०६८०।४९२, का०ना०प्र०स०, रा०साग०४२, पद सं० १,८
११. "मीरां की मातृभाषा राजस्थानी थी, अतः मीरा के नाम से प्रचलित पदों की भाषा में राजस्थानीपन पर्याप्त है किन्तु ब्रज तथा गुजरात में रहने के कारण इन प्रदेशों में प्रचलित पदों में प्रादेशिक बोलियों की छाप भी पर्याप्त है। जो हो मीरा की रचना विशुद्ध ब्रजभाषा कभी भी सिद्ध न हो सकेगी।"
ब्रजभाषा-व्याकरण, धीरेन्द्र वर्मा, पृ० ३०
१२. "संग्रहों में प्राप्त उन [मीरा] के पदों के रूप यदि कोई देखे तो शायद उन्हें राजस्थान की मानने में भी संकोच होने लगे। दो चार टूटे फूटे, औंधे-सीधे इधर उधर आनेवाले राजस्थानी शब्दों और मुहावरों को छोड़कर ब्रजभाषा, अवधी और कहीं-कहीं तो खड़ी

अन्य कृष्णभक्तिकालीन कवियो की भाँति मीरा के पदो में भी शब्दो के लोचयुक्त रूप प्रचुरमात्रा में आए है। उदाहरणस्वरूप निम्नलिखित उद्धरण दृष्टव्य होगे –

लोचयुक्त रूप	भाषा रूप	
मुरडिया	मुरली	'मुरडिया' बाजा जमणा तीर।[1]
गोविन्दा	गोविंद	माई री म्हा लियां 'गोविन्दा' मोल।[2]
घुघरया	घुघरू	पग बांध 'घुघरया' णाच्यां री।"[3]
हरचदा	हरिश्चन्द्र	सतवादी 'हरचदा' राजा डोम घर णीरा भर्यां।[4]
पपैया	पपीहा	'पपैया' म्हारो कब रो बैर चितायां।[5]

मीरा ने भी अपने काव्य में सयुक्त वर्णो को परिष्कृत करके अमीलित रूप में प्रचुर मात्रा में प्रयुक्त किया है। उदाहरणस्वरूप निम्नलिखित प्रयोग दृष्टव्य होगे –

अमृत>इमरत – 'इमरत' पाइ विषा क्यू दीज्यां कूण गाँव री रीत।[6]

मार्ग>मारग – थ्य निहारा डगर मझारा ऊभी 'मारग' जोय।[7]

प्रभात>परभात – घटाणा जोडया मुखाणा जोडया साझ भया 'परभात'।[8]

कीर्ति>कीरत – 'कीरत' काई णा किया घणा करम कुमाणी जी।[9]

कृपानिधान>किरपानिधान – गिरधारी शरणा थारी आया राख्या 'किरपानिधाण'।[10]

बोली की भी खिचडी मिलती है। कारण स्पष्ट है कि इन विविध सग्रहो के पद गली-गली गाये जाने वालों से सुनकर बटोर लिये गये है। किन्तु प्रस्तुत सग्रह में जो पदावली दी गयी है और जिसका इतिहास भी दे दिया गया है उसमें यदि कुछ भी सच्चाई हो जो पदो में प्रयुक्त ओत-प्रोत राजस्थानी से भी प्रतिपादित होती है तो कम से कम मीराबाई की रचनाओं के विविध प्रकार के अध्ययन की कठिनाई बहुत सुलझ जाती है।" मीरा-स्मृति ग्रथ,पदावली-परिचय, ललिताप्रसाद सुकुल, पृ० य और व

१ मीरा स्मृति-ग्रथ, मीरा-पदावली, पृ० २७, पद स० ६४

२ वही, पृ० ४, पद स० १३

३ वही, पृ० १३, पद स० ४७

४ वही, पृ० १५, पद स० ५४

५ वही, पृ० ११, पद स० ३८

६ वही, पृ० ३, पद स० ९

७ वही, पृ० ६, पद स० २१

८ वही, पृ० ७, पद स० २४

९ वही, पृ० ७, पद स० २५

१० वही, पृ० ९, पद स० ३१

नृत्य>निरत	–	काड़िन्दी दह णाग णाथ्यां काड़ फण-फण 'निरत' करंत ।[1]
प्रतिज्ञा>परतग्या	–	प्रहड्डाद 'परतग्या' राख्यां हरणांकुस णों उदर विदारण ।[2]
श्री>सिरी	–	छप्पण कोटां जणां पधारयां दूल्हो 'सिरी' व्रजनाथ ।[3]
हृदय>हिरदां	–	मा 'हिरदां' वस्या सांवरो म्हारे णींद णा आवां ।[4]

जहाँ तक कर्णकटु अक्षरों के प्रयोग करने का प्रश्न है मीरा की स्थिति अन्य कृष्णभक्तिकालीन पदकारों से भिन्न है। 'ट' वर्ग की कर्कशता से लोगों के कान फट जाते हैं। मीरा में 'ट' वर्ग की प्रधानता है। 'ड' का भी मीरा में बाहुल्य है। उदाहरणस्वरुप कतिपय पद दृष्टव्य होंगे –

म्हां मोहण रो रूप लुभाणी।
सुंदर वदण कमड़ दड़ लोचन बांकां चितवण नैणा समाणी।
जमणा किणारे कान्हा धेणु चरावां बंसी वजावां मीट्ठां वाणी।
तण मण धण गिरधर पर वारां चरण कंवड़ मीरां विलमांणी ॥[5]

म्हारो जणम-जणम रो शाथी थाणे ना विशरयां दिण रांती।
थां देख्यां विण कड़ ना पड़तां जाणे म्हारी छांती।
ऊचां चढ-चढ पंथ निहारयां कड़प-कड़प अखयां रांती।
भोसागर जग वंधण झूठां झूठां कुड़ रां णयाती।
पड़ पड़ थारां रूप निहारां णिरख णिरख मदमांती।
मीरां रे प्रभु गिरधर नागर हरि चरणा चितरांती ॥[6]

मण थें परस हरि रे चरण।
सुभग सीतड़ कंवड़ कोमड़ जगत ज्वाड़ा-हरण।
इण चरण प्रहलाद परस्यां इन्द्र पदवी धरण।
इण चरण ध्रुव अटड़ करस्यां सरण असरण सरण।
इण चरण ब्रह्मांड भेट्यां णखखसिखां सिरि भरण।
इण चरण कालियां णाथ्यां, गोपड़ीड़ा करण।
इण चरण धारयां गोवरधण गरब मघवा हरण।
दासि मीरां लाल गिरधर अगम तारण तरण ॥[7]

---

१. मीरा-स्मृति-ग्रंथ, मीरा-पदावली, पृ० ९, पद सं० ३०
२. वही, पृ० १०, पद सं० ३४
३. वही, पृ० १०, पद सं० ३६
४. वही, पृ० ११, पद सं० ३७
५. वही, पृ० २, पद सं० ३
६. वही, पृ० १२, पद सं० ४३
७. वही, पृ० ४, पद सं० १४

किन्तु 'ट' वर्ग का प्रयोग मीरा के काव्य में स्वच्छन्द संगीत उत्पन्न करता है जो कृष्णभक्तिकालीन अन्य कवियों के काव्य में कोमल शब्दों द्वारा उत्पन्न संगीत से कम मधुर नहीं है। जायसी के 'डा' के संगीत माधुर्य पर मुग्ध होकर पं० रामचन्द्र शुक्ल ने कहा था—"सदेसडा शब्द में स्वार्थे 'डा' का प्रयोग भी बहुत ही उपयुक्त है। ऐसा शब्द उस दशा में मुँह से निकलता है जब हृदय प्रेम माधुर्य, अल्पता, तुच्छता आदि में से कोई भाव लिये हुए होता है।"[1] मीरा के पदों में ऐसे भावव्यंजक स्वार्थे 'डा' आदि न जाने कितने भरे पड़े हैं। यथा—

प्रभु जी थे कह्या गया 'नेहड़ा' लगाय।[2]
चित चढ़ो म्हारे माधुरी मूरत, 'हिवड़ा' अणी गड़ी।[3]
स्याम म्हां बाँहड़िया जी गह्या।[4]
स्याम सुंदर पर वारा 'जीवड़ा' डारा स्याम।[5]
जोसीड़ा णे लाख बधाया रे आस्या म्हारो स्याम।[6]
प्रीतम दया सणेसड़ा म्हारों घणो णेवाजा हो।[7]
'नीदड़ी' आवा णा सारा रात कुण विध होय प्रभात।[8]
जणम जणम रो काण्हड़ो म्हारी प्रीत बुझाय।
घायड़ री गत घायड़ जाण्या 'हिवड़ो' अगण सजोय।[9]
म्हारा पिया म्हारे 'हीयड़े' बसता ना आवा ना जाती।[10]

नेहड़ा, हिवड़ा, बाँहड़िया, जीवड़ा जोसीड़ा, सणेसड़ा, नीदड़ी, काण्हड़ो, हिवड़ा और हीयड़े शब्दों में कितनी स्वाभाविक रमणीयता तथा अकृत्रिम संगीत निहित है। अनगढ और बीहड़ चट्टानों पर उछलती, टकराती, बढ़ती हुई जल की धारा जिस प्रकार अपूर्व मधुर संगीत

---

१ जायसी-ग्रंथावली, रामचन्द्र शुक्ल, भूमिका पृ० ४७
२ मीरा-स्मृति ग्रंथ, मीरा-पदावली, पृ० ४, पद सं० ११
३ वही, पृ० ५, पद सं० १५
४ वही, पृ० ६, पद सं० २२
५ वही, पृ० ८, पद सं० २७
६ वही, पृ० १३, पद सं० ६४
७ वही, पृ० २२, पद सं० ७६
८ वही, पृ० २३, पद सं० ८१
९ वही, पृ० २५, पद सं० ८६
१० वही, पृ० ६, पद सं० १६
११ वही, पृ० ३, पद सं० १०

उत्पन्न करती है, मीरा के हृदय की वेदना, टीस, बेचैनी तथा व्याकुलता भी स्वाभाविक विवशतावश स्वत: निकले हुए अनगढ़ और अकृत्रिम शब्दों द्वारा उसी प्रकार का संगीत उत्पन्न करती है।

मीरा के काव्य में कहीं-कहीं र, ल > ड़ तथा स > श का प्रयोग किया गया है। यथा –

नेहरा>नेहड़ा – प्रभुजी थे कठ्यां गयां 'नेहडा' लगाय।[1]
बादल>बादड़ – 'बादड़ा' रे थें जड़ भरां आज्यो।[2]
बिसरा>बिशरचा – म्हारो जणम जणम री शाथी थाणे ना 'बिशरचा' दिण रांती।[3]
तरसावो>तरशावां – क्यूं 'तरशावां' अन्तरजामी आय मिड़ो दुख जाय।[4]

किन्तु इस प्रकार के प्रयोग मीरा की भाषा की मधुरता बढ़ाने में कम सहायक नहीं हुए है। इन शब्दों से माधुर्य की वर्षा सी प्रतीत होती है।

'ड' के पश्चात् 'या' का प्रयोग और स्वार्थे डया भाषा में संगीत-सौंदर्य की वृद्धि ही करते हैं। मीरा में पग-पग पर ऐसे ही प्रयोग भरे हुए है। यथा –

भाया 'छांड्या' बंधा 'छांड्या' 'छांड्या' सगां सूयां।[5]
मीरां रे प्रभु गिरधर नागर 'क्रीडचां' संग बलवीर।[6]
'छोडचा' म्हा बिसवास संगाती प्रीत री बाती जड़ाय।[7]
स्याम म्हां 'बांहडियां' जी गह्यां।[8]

सारांश में कहा जा सकता है कि–"मीरां देवी की रचनायें भाषा अथवा काव्य चातुर्य की दृष्टि से विशेष महत्व नहीं रखतीं। भाषा अथवा काव्यकला का उसमें कोई विशेष चमत्कार नहीं। फिर भी उनके पदों में विशेष आकर्षण है, उनमें पुलकित तथा गद्‌गद करने की शक्ति है; कम से कम श्रोताओं के हृदय पर वे प्रभाव उत्पन्न करते है।...... उनके शुद्ध, सरल तथा मंजुल भाव उनकी निश्छल अनुरक्ति, तल्लीनता एवं मादकता उनके शब्दों में भी छलकती सी जान पड़ती है। साधिका के प्रगाढ़ भक्तिभाव से उसके शब्दों में

---

१. मीरा-स्मृति-ग्रंथ, मीरा-पदावली, पृ० ४, पद सं० ११
२. वही, पृ० १५, पद सं० ५२
३. वही, पृ० १२, पद सं० ४३
४. वही, पृ० २५, पद सं० ६०
५. वही, पृ० १, पद सं० १
६. वही, पृ० ३, पद सं० ७
७. वही, पृ० ४, पद सं० ११
८. वही, पृ० ६, पद सं० २२

भी उसकी आत्मा का विशेष स्पन्दन एव सौरभ प्रकट हो गया । यदि शब्दो, वाक्यो, पदो आदि का कौशल अथवा पद्यो की विपुलता मात्र ही काव्य, कवित्त अथवा कवि की महानता या हीनता का प्रमाण समझा जाय तो सभवत मीरा का स्थान नगण्य सा माना जायगा । यदि भावावेश, हृदयावेग, तीव्र भावुकता तथा तन्मयता से विगलित शब्द-विन्यास को कविता का विशेष लक्षण माना जाय तो मीराँ के कवयित्री होने में सदेह नही । यही नही, उनकी पदावली में भावोन्मेषकता एव सगीत के विशेष गुण है जिनसे उनके काव्य का उत्कर्ष बहुत बढ जाता है ।"[१]

री, अरी, एरी आदि शब्दो का प्रयोग

सगीत-माधुर्य तथा नाद-सौंदय की वृद्धि के लिए ही कृष्णभक्तिकालीन कवियो के काव्य में री, अरी, एरी, रे, जी, हो, हे, हा, ए आदि शब्दो का प्रयोग-बाहुल्य दीख पडता है । इन शब्दो के प्रयोग से एक तो भाषा में सुकुमारता आ जाती है, मात्राओ की पूर्ति हो जाती है, ताल और लय सरलता से बँध जाती है, भावो में स्पष्टता आती है और साथ ही अर्थ की रक्षा करते हुए भावानुकूल सगीत-कुशलता दिखाने की स्वतन्त्रता भी प्राप्त हो जाती है । अत सगीत-प्रकाशन सबधी स्वतन्त्रता, तान, लय एव प्रवाह की सरलता के लिए कृष्ण-भक्ति कालीन कवियो ने अधिकाश स्थलो पर इन शब्दो का प्रयोग किया है । उदाहरण-स्वरूप इन कवियो की कतिपय पक्तियाँ द्रष्टव्य होगी —

सूरदास —

देखो री राधा उत अँटकी ।[२]
अरी अरी सुदरि नारि सुहागिनि, लागै तेरे पाउँ ।[३]
रे मन समुझि सोच विचार ।[४]
ए अलि कहा जोग में नीको ।[५]

परमानददास —

रहि री ! ग्वालिन जोबन मदमाती ।[६]

---

१ मीरा-स्मृति-ग्रथ, भूमिका, रामप्रसाद त्रिपाठी, पृ० [१–]
२ सूरसागर, दूसरा खड, पृ० ८६१, पद स० २३८२
३ वही, प्रथम खड, पृ० २००, पद स० ४८८
४ वही, पृ० १०२, पद सं० ३०६
५ वही, दूसरा खड, पृ० १५००, पद स० ४३१५
६ हस्तलिखित पद-सग्रह, परमानददास, डा० दीनदयालु गुप्त, पद स० २४

मेरो मन कमल हरयो री नागर ।[1]

गावत सुनत लोकत्रयी पावन बलि परमानंददास हो ।[2]

कुंभनदास –

एरी ! यह फेंटा ऐंठवा सीस धारें ।[3]

रंगीले री ! छबीले नैना रस भरे, नाचत मुदित अनेरे रे ।[4]

अब ए नैनांई तेरे करत बसीठी ।[5]

कृष्णदास –

लागी रे लगनियां मोहना सोंलागी रे लगनियां ।[6]

पिय को मुख देख्यो री नैननि लागी चटपटी ।[7]

कुछ टोना सों डारि गयो री कैसे भरन जाऊँ पनियां ।[8]

नंददास –

छबीली राधे पूजि लै री गनगौर ।[9]

देखो देखो री नागर नट निरतत कालिंदी तट ।[10]

जागिए मेरे लाल हो चिरैयां चुहचुहानी ।[11]

चतुर्भुजदास –

तोकों री स्याम कंचुकी सोहै ।[12]

---

१. हस्तलिखित पद-संग्रह, परमानंददास, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० २४०
२. वही, पद सं० ३३६
३. कुंभनदास, विद्याविभाग, कांकरौली पृ० ७२, पद सं० १८८
४. वही, पृ० ६० पद सं० १५०
५. वही, पृ० ८८, पद सं० २४६
६. हस्तलिखित पद-संग्रह, कृष्णदास, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० १२३
७. वही, पद सं० ४५
८. वही, पद सं० १२३
९. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० ३२६, पद सं० ३८
१०. वही, पृ० ३२५, पद सं० ३३
११. वही, पृ० ३१७, पद सं० २
१२. वही, पृ० २८४, पद सं० ४०

अब हौं कहा करौं री माई ।[१]
ये को है री, जाय दान जु देहूँ गोवरधन के मेंडे

गोविंदस्वामी –

मेरो मन मोह्यो री इन नागर ।[३]
अति रसमाते री तेरे नैन ।[४]
लालन सिर घालो हो ठगोरो ।[५]

छीतस्वामी –

प्रीतम प्यारे ने हों मोही ।
अरी हौं स्याम रूप लुभानी[७]
आगैं कृष्न पाछैं कृष्न इत कृष्न उत कृष्न,
जित देखो तित कृष्न ही मई री ।[८]

गदाधर भट्ट –

देखि री आवत गोकुल चंद ।[९]
पटह निसान भेरी सहनाई महा-गरज की घोर रे ।[१०]
लाड़िलो गिरिधरन पिया पिय नैननि आनंद देत री ।[११]

सूरदास मदनमोहन –

तेरे गुन रूप की सम नाहिं कोउ आवे री उपमा को तुहि अंत न पावत ।[१२]
बरन बरन कुसुम प्रफुलित अब मोर ठौर ठौर लागे री कोकिला कूजन ।[१३]

---

१ अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २८७, पद सं० ५१
२ वही, पृ० २८१, पद सं० २६
३ हस्तलिखित पद-संग्रह, गोविंदस्वामी, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० २०४
४ वही, पद सं० १५३
५ वही, पद सं० ६६
६ हस्तलिखित पदसंग्रह, छीतस्वामी, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० १२
७ वही, पद सं० १७
८ वही, पद सं० ३३
९ गदाधर भट्ट जी महाराज की बानी, बालकृष्णदास, पत्र २१, पद सं० २३
१० वही, पत्र २२,
११ वही, पत्र १८, पद सं० १४
१२ अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, सरयूप्रसाद अग्रवाल, पृ० ४४६, पद सं० ८
१३ वही, पृ० ४४६, पद सं० ११

हितहरिवंश –

अपनी वात मों सो कहो री भामिनी ।[1]

आजु गुपाल रास रस खेलत पुलिन कलप तरु तीर री सजनी ।[2]

दानु दे री नवल किसोरी ।[3]

हरिराम व्यास –

प्यारी री ! मोपै कही न जाइ तेरे रूप की निकाई ।[4]

आवो रे आउ भैया, से हे हेरी दीजै ।[5]

ऐसे हाल कीने री नागर नट ।[6]

हरिदास –

आजु तृन टूटत है री ललित त्रभंगी पर ।[7]

जों लों जीवै तोलौं हरि भजि रे मन और वात सव वादि ।[8]

रावै चलि री हरि बोलत कोकिला अलापत सुरदेत पंछी राग वन्यो ।[9]

विट्ठलविपुल –

प्यारी तेरे नैना री अति वांके ।[10]

सुनि री सखी हों सांच कहति हौं तुव जल ए मीन तेरे रस व स्याम सुन्दर वर जाचित ज्यों दीन ।[11]

---

१. हित चौरासी, हितहरिवंश, प्रति सं० ३८।२१५, प्रयाग-संग्रहालय, पद सं० १५

२. वही, पद सं० २४

३. वही, पद सं० ५१

४. भक्त कवि व्यास जी, वासुदेव गोस्वामी, पृ० ३७६, पद सं० ६८५

५. वही, पृ० ३८५, पद सं० ७०५

६. वही, पृ० ३८६, पद सं० ७११

७. पद-संग्रह, प्रति सं० १६२०।३१७०, हिन्दी-संग्रहालय, पृ० ८, पद सं० १८

८, पद-संग्रह, प्रति सं० ३७१।२६६, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, पत्र श्रीस्वा० ४, पद सं० १६

९. वही, पत्र श्रीस्वा० ७, पद सं० १४

१०. पद-संग्रह, प्रति सं० १६२०।३१७०, हिन्दी-संग्रहालय, पृ० ४१, पद सं० २४

११. वही, पद सं० १६

बिहारिनदास –

रे तू बहुरि कहा फिरि आयो ।[1]
बोलै कौंन भलाई रे माई ।[2]

श्री भट्ट –

कहे श्रीभट बहुर जो हठिहो हो हों न आनिहों पतिया ।[3]

परशुराम –

अतरवसी री मेरे ।[4]
हो सुनि ब्रजराज रागसारग सुर गावत गुण ब्रजनारी ।[5]
जन्म गवायो रैंग रे मूरिख अघा ।[6]

मीरा –

मीरा रे प्रभु गिरधर नागर आस मह्यां थे सरणारी ।[7]
मीरा रे प्रभु हरि अविणासो कब रे मिळस्यो आय ।[8]
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर मिळ बिछुरण मत कीज्यो जी ।[9]
मीरां रे प्रभु हरि अविणासो तण मण स्याम पढ्या री ।[10]

आसकरण –

कीजे पान लला रे ओट्यो दूध लाई जसोदा मैया ।[11]
तुम पौढ़ो हौं सेज बनाऊँ ।[12]

---

१ पद-सग्रह, प्रति स० १६२०।३१७०, हिंदी-सग्रहालय, पद स० ४६
२ वही, पद स० २५
३, जुगलसतक, श्री भट्ट, ७१२।३२, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, पत्र १०, पद स० १
४ रामसागर, परशुराम, प्रति स० ६८०।४६२, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, पत्र रा० सा० ७६, पद स० १३
५ वही, पद स० १५
६ वही, पत्र ५३, पद स० ४
७ मीरा-स्मृति-ग्रथ, मीरा-पदावली, पृ० २८, पद स० ८६
८ वही, पृ० २५, पद स० ८१
९ वही, पृ० १८, पद स० ६६
१० वही, पृ० १६, पद स० ५८
११ अकबरी दरबार के हिंदी कवि, सरयूप्रसाद अग्रवाल, पृ० ४५०, पद सं० १
१२ वही, पृ० ४५१, पद स० ५

अनुस्वारयुक्त दीर्घ स्वरों का प्रयोग

अनुस्वार युक्त दीर्घ स्वरों के प्रयोग से भाषा में अत्यधिक संगीतात्मकता आ जाती है। संगीत की इस श्रुति-मधुरता को अपनाने के कारण कृष्णभक्तिकालीन कवियों के काव्य में दीर्घ स्वर अनुस्वार-योग के साथ प्रचुर मात्रा में आये हैं। अनुनासिक वर्णों से युक्त स्वरों के संयोग से कवियों ने भाषा के नाद-सौंदर्य को बहुत कुछ अंशों में बढ़ा दिया है। उदाहरणस्वरूप देखिए –

सूरदास –

काहे कौं पिय भोर हीं मेरें गृह आये।[1]
हौं संग साँवरे के जैहौं।[2]
कहा करौं मोसौं कहौं सब हीं।[3]

परमानंददास –

नैंकु पठै गिरधर को मैया।[4]
जब तें प्रीति स्याम सों कीनी।
ता दिन तें मेरे इन नैननि नैंकहुँ नींद न लीनी।[5]

कुंभनदास –

कान्ह तिहारी सौं हौं आउंगी।[6]
ग्वालिनि! तैं मेरी गेंद चुराई।[7]

कृष्णदास –

प्यारी लाड़िली पालनैं झूलैं।[8]
तैं गोपाल हेत कसूंभी कंचुकी रंगाय लई।[9]

---

१. सूर सागर, (भाग २), पृ० ११४३, पद सं० २६८८
२. वही, (भाग १), पृ० ८३६, पद सं० १६६८
३. वही, पृ० ७५२, पद सं० १४२३
४. हस्तलिखित पद-संग्रह, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० २६३
५. वही, पद सं० १०२
६. कुंभनदास, विद्याविभाग कांकरोली, पृ० ५६, पद सं० १३७
७. वही, पृ० ५७, पद सं० १४०
८. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २३०, पद सं० २०
९. वही, पृ० २३६, पद सं० ५४

नंददास –

छबीली राधे पूजि लें री गनगौर ।[1]

धन्य जसोदा धन्य, तैं कौन पुन्य कीनें ।[2]

मुख पर वारौं सुंदर टौना ।[3]

चतुर्भुजदास –

अपने बाल गुपालैं रानी जू, पालने झुलावें ।[4]

तेरे माई लागत हौं री पैयां ।[5]

गोविंदस्वामी –

गिरिधर कैसें बस्यो ब्रज लालन पियारे ।[6]

हौं बलि बलि जाऊँ जसोऊ लाल कोजें ।[7]

छीतस्वामी –

प्रीतम प्यारे नें हौं मोही ।[8]

अरी हौं स्याम रूप लुभानी ।[9]

गदाधर भट्ट –

भौंरी तरुनि तरुन ता तन में मनसिज रस बरसत ।[10]

सखी हौं स्याम रंग रँगी ।[11]

---

१ अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० ३२६, पद सं० ३८

२ वही, पृ० ३२७, पद सं० ४६

३ वही, पृ० ३२४, पद सं० २६

४ वही, पृ० २७६, पद सं० ३

५. वही, पृ० २८६, पद सं० ४७

६ गोविंदस्वामी, विद्या-विभाग कांकरौली, पृ० ३६, पद सं० ७६

७ वही, पृ० ११५, पद सं० २३४

८ अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २६६, पद सं० १४

९ वही, पृ० २६२, पद सं० १२

१० श्री गदाधर भट्ट जी महाराज की बानी, (हस्तलिखित), बालकृष्णदासजी, पत्र २४, पद सं० १

११ मोहनी बानी, श्री गदाधर भट्टजी जी की, प्रकाशक कृष्णदास, पृ० २९

सूरदास मदनमोहन –

कनियां कनियां अइयां अइयां यों कहि लाल लड़ावे ।[१]
सखियन संग राधिका कुंवरि वीनति कुसुम कलियां ।[२]

हितहरिवंश –

तू तो सखी सयानी तें मेरी एकौं न मानी ।
हों तो सौं कहति हारी जुवति जुगती सौं ।[३]
दानु दें री नवल किशोरी ।[४]

व्यास –

क्यौं मन मानें गोरी कैसें इन वातनि ।[५]
जमुना जाति हो हौं पनियां ।[६]

हरिदास –

जौं लौं जीवे तो लौं हरिभजि रे मन और वात सब वादि ।[७]
कुंजविहारी नाचत नीकें लाड़िली नचावत नीकें ।[८]

विट्ठलविपुल –

सुनि री सखी हों सांच कहति हौं तुव जल ए मीन ।
तेरे रस व स्याम सुंदर वर जाचित ज्यौं दीन ॥[९]

---

१. अकवरी दरवार के हिन्दी कवि, सरयूप्रसाद अग्रवाल, पृ० ४४७, पद सं० १
२. वही, पृ० ४४८, पद सं० ३
३. चौरासी पद, हितहरिवंश, प्रति सं० ३८।२१५, प्रयाग-संग्रहालय, पद सं० ५८
४. वही, पद सं० ५१
५. भक्त कवि व्यास जी, वासुदेव गोस्वामी, पृ० ३२६, पद सं० ५२०
६. वही, पृ० ३८७, पद सं० ७१४
७. पद-संग्रह, प्रति सं० ३७१।२६६, का०ना०प्रा०सभा, पत्र श्री स्वा० ४, पद सं० १६
८. वही, पत्र १७, पद सं० ८
९. वही, १६२०।३१७०, प्रयाग-संग्रहालय, पृ० ४१, पद सं० १६

विहारिनदास –

द्वै ही किये न बात बनै ।
द्वैते दस ही ही घट छूटे हटकत क्यों न मने ।[1]
जैसे कचन पाई कृपन धन ।
गनत रहों न बिसारों ।[2]

श्री भट्ट –

हिडोरें लाडिलो लाल झकोरें वटी जुटी दोऊ ओरें ।[1]
सहचरी सब सौंज सजिविधि सो हरि नैन नेहविधि सो भेवें ।

परशुराम –

हरि रास रच्यो केलि करण कों ।[3]
परसा प्रभु सौं करि मित्राई ।[4]

मीरा –

गणता गणता घिश गर्यां रेखा आगरिया री सारी । आया णा री मुरारी ।[5]
म्हा गिरधर आगा नाच्या री ।
णाच-णाच म्हा रसिक रिझावा प्रीत पुरातण जाच्या री ।
स्याम प्रीत रो बाध घूघरया मोहण म्हारो साच्या री ।
लोक लाज कुडर्या मरज्यादा जग मा णेक णा राख्या री ।
प्रीतम पल छण णा बिसराबां मीरा हरि रग राच्या री ।।[6]

आसकरण –

तुम पोढ़ो हों सेज बनाऊँ
चापूं चरन रहूं पायन तर मधुरे स्वर केदारो गाउ ।[7]

---

१ पद-सग्रह, प्रति स० १६२०।३१७०, प्रयाग सग्रहालय, पृ० ४१, पद स० २४
२ वही, पद स० २७
१ जुगलसतक, श्री भट्ट, प्रति स० ७१२।३२, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, पत्र १४, पद स० १
२ वही, पत्र ५, पद स० ३०
३. रामसागर, परशुराम, प्रति स० ६८०।४९२, का० ना० प्र० स०, पद स० २०
४ वही, रा० सागर ५१, पद स० ३
५ मीरा-स्मृति-ग्रथ, मीरा पदावली, पृ० २९, पद स० १०२
६ वही, पृ० १६, पद स ५९
७ अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, सरयूप्रसाद अग्रवाल, पृ० ४५१ पद स० ५

शब्दों की ध्वनि-शक्ति

भाषा के शब्दों मे अर्थ-गौरव के साथ- साथ ध्वनि-विन्यास संबंधी विशेषता भी निहित रहती है। काव्य मे शब्द-संगीत से ही (शब्दों के अर्थ जाने विना शब्दों की ध्वनि द्वारा ही) थोड़ी सी अर्थ-व्यंजना हो जाती है। "शब्दों में एक प्रकार का पारस्परिक आकर्षण रहता है। पत्ते-पत्ते मिलकर मर्मर ध्वनि उत्पन्न करते हैं। तरंगों के पारस्परिक आघात से कलकल नाद उत्पन्न होता है। इसी प्रकार शब्दो के मिलने से काव्य में एक अपूर्व संगीत ध्वनि उत्पन्न होती है।"[1] शब्दों में अपना संगीत तत्व रहता है और शब्द-संगीत की झंकार अपरिमित होती है। प्रत्येक शब्द को बोलता हुआ बनाकर, शब्दों के पारस्परिक संगठन और मेल द्वारा उनके अन्तर्हित संगीत को झंकृत कर देना वांछित होता है अतः संगीत को प्रगट कर देना ही, जिससे हृत्तंन्त्री के तार-तार बज उठे सफल कलाकार का कर्तव्य है। शब्दो का चयन कुछ इस प्रकार क्रमवद्ध करना चाहिए कि संगीत विशेष उत्पन्न हो जाय। शब्दो की ध्वनि-शक्ति के आधार पर ही काव्यगत अन्त: संगीत प्रकट होता है। शब्दों की ध्वनि-शक्ति दो रूपों मे प्रथम –

काव्य के रस, भाव तथा गति के अनुकूल कोमल तथा कर्कश शब्दों के प्रयोग द्वारा; और द्वितीय –

शब्दालंकारों[2] के सामंजस्य द्वारा, काव्य की भाषा के अन्तः संगीत को प्रकट करने मे समर्थ होती है।

भाषा में भावात्मकता

काव्यगत भाव और उनमें प्रयुक्त शब्दों से उत्पन्न ध्वनि एक दूसरे की पूरक तथा एक दूसरे से पूर्णतया सम्वद्ध व आवद्ध होती है क्योकि शब्दों की ध्वनि के विशिष्ट तथा अनुकूल सामंजस्य से वातावरण निर्मित होता है। अतः कविता की भाषा में भावानुकूल कोमलता तथा परुषता होनी चाहिये। भाषा का प्रयोग करते समय कवि को रस भाव और गति का सर्वदा ध्यान रखना चाहिए। "कविता एक अपूर्व रसायन है। उसके रस की सिद्धि के लिए बड़ी मनोयोगिता और बड़ी चतुराई की आवश्यकता होती है। रसायन सिद्ध करने

---

१. प्रदीप, पदुमलाल पन्नालाल बख्शी, पृ० २३४

२. "अलंकार प्रधानतः दो भागों में विभक्त है—शब्दालंकार और अर्थालंकार। शब्द को चमत्कृत करने वाले अनुप्रास आदि अलंकार शब्द के आश्रित हैं अतः वे शब्दालंकार कहे जाते है। ... जो अलंकार किसी विशेष शब्द की स्थिति रहने पर ही रह सकता है और उस शब्द के स्थान पर उसी अर्थ वाला दूसरा शब्द रहने पर नहीं रह सकता वह शब्दालंकार है" –

काव्यकल्पद्रुम, कन्हैयालाल पोद्दार, (द्वितीय भाग), अष्टम स्तवक, पृ० ३

में आँच के न्यूनाधिक होने से जैसे रस बिगड़ जाता है वैसे ही यथोचित शब्दों का उपयोग न करने से काव्यरूपी रस भी बिगड़ जाता है। किसी-किसी स्थल विशेष पर रूक्षाक्षर वाले शब्द अच्छे लगते हैं। परन्तु और सर्वत्र ललित और मधुर शब्दों का ही प्रयोग करना उचित है। शब्द चुनने में अक्षर-मैत्री का विशेष विचार रखना चाहिए।"[1] यदि किसी स्निग्ध, मृदुल भाव से परिपूर्ण विषय के वर्णन में 'ट' वर्ग के सदृश कर्णकटु वर्णों का आधिक्य हो तो वह शब्द मगीन के उस वातावरण के उपयुक्त नहीं प्रतीत होगा। अत कोमल रसों और भावनाओं का चित्रण कोमल, सरस तथा सरल शब्दों द्वारा तथा अकोमल रसों और कठोर भावनाओं की अभिव्यक्ति कणकटु तथा कठोर शब्दों के द्वारा ही सफलतापूर्वक हो सकती है। साहित्य में इसीलिए उपनागरिका, परुषा तथा कोमला वृत्तियों[2] का विधान किया गया है। रामचरित-मानस में जब तुलसीदास कहते हैं –

---

१ रसज्ञरंजन, महावीरप्रसाद द्विवेदी, पृ० ६

२ "भिन्न-भिन्न रस के वर्णन में भिन्न भिन्न वर्णों के प्रयोग करने का नियम है। ऐसे नियमबद्ध वर्णों की रचना को वृत्ति कहते हैं। वृत्ति तीन प्रकार की होती है –(१) उपनागरिका (२) परुषा और (३) कोमला। वामन आदि आचार्यों ने इनके (१) वैदर्भी, (२) परुषा और (३) पांचाली नाम माने हैं। उपनागरिका वृत्ति – माधुर्य गुणव्यंजक वर्णों की रचना को उपनागरिका वृत्ति कहते हैं। जिस गुण के कारण अन्त करण आनन्द से द्रवीभूत हो जाता है उसे माधुर्य कहते हैं। सम्भोग शृंगार से करुण रस में, करुण से विप्रलम्भ शृंगार रस में और विप्रलम्भ शृंगार से शान्त रस में, माधुर्य गुण क्रमश अधिकाधिक होता है। यहाँ सम्भोग शृंगार का कथन उपलक्षण मात्र है, वास्तव में सम्भोग के आभास आदि में भी माधुर्य होता है। ट, ठ, ड, ढ के बिना स्पर्श (क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म,) वर्ण और ङ, ञ, ण, न, म, से युक्त वर्ण अर्थात अनुस्वार वाले वर्ण (जैसे अङ्क, रञ्जन, कान्त, कम्प) ह्रस्व 'र' और 'ण', समास का अभाव अथवा दो या तीन अथवा अधिक से अधिक चार पद मिला हुआ समास और मधुर रचना ये सब माधुर्य गुण व्यंजक हैं।

परुषावृत्ति–'ओज' प्रकाशक वर्णों की रचना को 'परुषा' वृत्ति कहते हैं। जिसके सुनने से मन में तेज उत्पन्न होता है वह 'ओज' गुण है। कवर्ग आदि के पहिले और तीसरे वर्णों का, दूसरे और चौथे वर्णों के साथ क्रमश योग होना अर्थात् क, च आदि का ख, छ आदि के साथ योग (जैसे कच्छ, पुच्छ) और ग, ज आदि के साथ योग (जैसे दिग्घ, जुज्झ) और 'र' का योग (जैसे चक्र, अर्थ, निद्र।) तथा ट, ठ, ड, ढ, की अधिकता, बहुत से पद मिले हुए लंबे समास और कठोर वर्णों की रचना ये सब ओज गुण को व्यक्त करते हैं।

कोमलावृत्ति –जहाँ माधुर्य और ओज प्रकाशक वर्णों के अतिरिक्त वर्ण हों उसे कोमला वृत्ति कहते हैं। इसे ग्राम्या वृत्ति भी कहते हैं। यहाँ माधुर्य और ओज गुण प्रकाशक वर्णों को छोड़कर शेष वर्णों की ही अधिकता और ल, स, प, भ आदि वर्णों की कई आवृत्ति है।"

काव्यकल्पद्रुम, कन्हैयालाल पोद्दार, पृ० २१७–२१ तथा पृ० २३७–३६

घन घमण्ड नभ गरजत घोरा ।
प्रियाहीन डरपत मन मोरा ।।[1]

तो प्रथम पंक्ति में वादलों के गर्जन का आभास होने लगता है और दूसरी पंक्ति के कोमल शब्दों से हृदय की कातरता प्रत्यक्ष हो उठती है । इसी प्रकार देवी की वंदना करते हुए मैथिल कोकिल विद्यापति कहते हैं –

जय-जय भैरवि असुर-भयाउनि पसुपति-भामिनि माया ।
सहज सुमति वर दिअओ गोसाउनि अनुगति गति तुअ पाया ।
वासर-रैनि सवासन सोभित चरन, चन्द्र-मनि चूड़ा
कतउक दैत्य मारि मुंह मेलल कतओ उगिल कैल कूड़ा
सामर वरन, नयन अनुरंजित, जलद जोग फुल फोका ।
कट कट विकट ओठ-पुट पाँड़रि लिधुर-फेन उठ फोका ।।
घन-घन घनए घुघुर कत वाजए, हन हन कर तुअ काता
विद्यापति पद तुअ पद सेवक, पुत्र विसरु जनि माता ।।[2]

इस पद में ध्वनि-अनुकरणात्मक शब्दों के द्वारा 'पशुपति भामिनि माया' का दैत्य – संहारकारी नृत्य सजीव होकर आँखों के सामने आ जाता है । यही नही एक अन्य स्थल पर विद्यापति की भाषा की भावानुकूल संगीत-योजना अपूर्व हो गई है । ऋतु वसंत में रास-क्रीड़ा का चित्र प्रस्तुत करता हुआ कवि कहता है –

वाजत द्रिगि द्रिगि धौद्रिम द्रिमिया ।
नटति कलावति मति श्याम संग
कर करताल प्रवन्धक ध्वनिया ।।
डम-डम डंफ डिमिक डिम मादल
रुनु झुनु मंजिर वोल ।
किंकिन रनरनि वलआ कनकनि
निधुवन रास तुमुल उतरोल ।। .....[3]

यहाँ पर विद्यापति ने रास-चित्रण में इतनी संगीतमय शब्द-योजना की है कि शब्दों के उच्चारण में घुंघरू की झंकार स्पष्ट रूप से झंकृत होने लगती है । 'वाजत द्रिगि द्रिगि धौद्रिम द्रिमिया' तथा 'डम-डम डंफ डिमिक डिम मादल' से ऐसा प्रतीत होता है मानो वास्तव में डफ, डमरू आदि वाद्य वज रहे हों । ये वोल डमरू के वोल के सदृश ही हैं ।

१. श्री रामचरितमानस, तुलसीदास, किष्किन्धाकाण्ड, पृ० ७७२
२. विद्यापति-पदावली, श्री रामवृक्ष वेनीपुरी, पृ० ५–६, पद सं० ३
३. वही, पृ० २४५, पद सं० १८४

किन्तु कवि का वास्तविक भाषा प्रयोग का कौशल देखिए। इसके पश्चात्, तत्काल ही वह कहता है 'रुन झुन मजिर बोल'। मँजीरे की ध्वनि में माधुर्य होता है और डमरू की ध्वनि में ककशता। डमरू के सदृश्य कठोर नाद को उत्पन्न करके कवि उसी में लीन नही हो जाता वरन् मँजीरे शब्द के प्रयोग के साथ ही उसकी भाषा मधुर, मजुल और कोमल हो जाती है।

कृष्णभक्तिकालीन कवि सगीतशास्त्र के तीनो अगो अर्थात् गायन, वादन तथा नृत्य के ज्ञाता थे। अत उनके प्राय सभी पदो में निश्चयात्मक ढग से ध्वनि का प्रयोग हुआ है। उदाहरणस्वरूप देखिए, रासलीला का वर्णन करते हुये सूरदास कहते हैं –

मानौ माई घन घन अतर दामिनि।
घन दामिनि दामिन घन अतर सोभित हरि ब्रज भामिनि।
जमुन पुलिन मल्लिका मनोहर सरद सुहाई जामिनि,
सुदर ससि गुन रूप राग निधि अग अग अभिरामिनि।
रच्यो रास मिलि रसिक राइ सौं मुदित भईं ब्रजभामिनि,
रूप निधान स्याम सुदर घन आनद मन बिस्रामिनि।
खजन, मीन, मयूर, हस, पिक भाइ भेद गजगामिनि,
को गति गनै सूर मोहन सँग काम बिमोह्यौ कामिनि॥[1]

पद की प्रथम पक्ति से नृत्य के उपयुक्त वातावरण, ताल और गति की अभिव्यक्ति होने लगती है। 'घन घन अतर दामिनि' शब्दो से यहाँ एक ओर रात्रि के वातावरण का भास होता है वही दूसरी ओर श्यामवर्ण कान्हा तथा गौरवर्णा गोपियो का रूप भी साकार हो जाता है। 'मानौ माई' दो अक्षर वाले समविराम शब्दो से नृत्य के प्रारभ होने से पूर्व किन्तु नृत्य करने के लिए पूर्णतय प्रस्तुत नृत्यकार के नृत्य की ठहरी हुई मुद्रा झलकती है। 'घन घन' शब्दो के द्वारा ऐसा प्रतीत होता है मानो धीरे धीरे मद ताल तथा गति में नृत्य का आरभ हो रहा हो। 'अतर दामिनि' शब्दो से नृत्य को तीव्रता का सकेत होने लगता है। द्वितीय पक्ति से कृष्ण तथा व्रजवनिताओ के सयोग के द्वारा रास-नृत्य का सकेत मिलता है। दोनो पक्तियो में 'न' ध्वनि की अधिकता विश्व में व्याप्त नाद-ध्वनि तथा घुँघुरू की मधुर, धीमी, महीन तथा नृत्य की मद गति को व्यक्त करती है। तृतीय पक्ति में तीन अक्षर वाले समविराम के शब्दो द्वारा नृत्य की गति तथा ताल में तीव्रता आती है। 'म' ध्वनि के प्राधान्य से अगो की भावभगिमा, उनके मोड तथा झुकने का आभास होता है। शब्दो की गति में चरणो की चचल तीव्र गति स्पष्ट परिलक्षित होती है। यहाँ पर आकर प्रथम पक्ति के 'घन-घन' शब्द अत्यधिक सार्थक हो जाते हैं। अवरोह में लौटकर प्रथम पक्ति के 'घन घन' शब्द के आने पर ऐसा प्रतीत होता है मानो दुगन में नृत्य करते हुए तिया लेकर सम पर आ गए हो। प्रथम घन तक मानो किनारे पर लहर टकराती है, मुडती है और दूसरे घन पर उतर कर विलीन हो जाती है। आगे की तीन पक्तियो में सूरदास रासलीला का सम्पूर्ण

१ सूरसागर, (पहला भाग), दशमस्कध, पृ० ६२१, पद स० १६६६

वातावरण और कृष्ण-गोपियों के आनंद तथा उल्लास का प्रदर्शन करते हैं। यही नहीं इसके आगे की पंक्ति में कवि खंजन, मीन, मयूर, हंस और पिक शब्दों के द्वारा रास-नृत्य की विशेषताओं – चंचलता, माधुर्य तथा सरसता, नृत्य-कौशल, गति की सुकुमारता और स्वर का भी संकेत कर देता है। इस प्रकार शब्दों की ध्वनियों के संयोग से रास-नृत्य का पूर्ण चित्र अंकित हो जाता है।

विरह-वर्णन में सूरदास जी गोपियों के मुख से कहलाते हैं –

'वरु ये वदराऊ वरसन आए'।[1]

ये पंक्तियां माधुर्य और भावना की तीव्रता में अद्वितीय हैं। अक्षर-अक्षर म संगीत मुखरित हो उठा है। 'वरु' और 'वदराऊ' के 'ऊ' मे कितना करुण संगीत है। ऐसा प्रतीत होता है मानो हृदय में व्याप्त कसक, वेदना, दर्द, करुणा, मलिनता, खीझ और उपालम्भ, सब एक साथ साकार हो गए हों।

प्रेम के भावावेश में मीरा कोमल शब्दों में गा उठती है –

मतजा, मतजा, मतजा जोगी पांव पड़ूँ में तोरे।
प्रेम भक्ति को पंथ ही न्यारो, हमको गैल वताजा।
अगर चन्दन की चिता रचाऊँ, अपने हाथ जलाजा।
जल बल भई भस्म की ढेरी अपने अंग लगाजा।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, ज्योति में ज्योति मिलाजा।।[2]

पद के प्रत्येक शब्द के साथ मीरा की करुणा क्रमशः बढ़ती जाती है और अंतिम पंक्ति में अपने चरमतम रूप पर पहुँच कर मौन हो जाती है। मानो व्यथा की तीव्रता में संगीत में विभोर मीरा गान के अन्त में आराध्यदेव को अपनी आत्मा अर्पित कर देती है। और गूंजता रह जाता है संगीत का उच्च आदर्श। वास्तव में पद के प्रत्येक शब्द में इतना तन्मयकारी, हृदयस्पर्शी संगीत निहित है कि वह सहृदय पाठक को वरवस रुला देता है।

कृष्ण में एकाग्रचित्त होकर मीरा ने अपने आराध्य की भिन्न-भिन्न मुद्राओं एवं रूपों का सरल भावपूर्ण शब्दों में इतना सजीव वर्णन किया है कि पढ़ते-पढ़ते ऐसा प्रतीत होता है मानो पास ही मीरा आनन्दातिरेक मे छक कर गा रही है। उदाहरणस्वरूप देखिये –

म्हारो परनाम वांके विहारी जी।
मोर मुगट माथां तिड़क विराज्यां कुंडड़ अटकां कारी जी।

---

१. सूरसागर, (दूसरा खंड), दशमस्कंध, पृ० १३८२, पद सं० ३९२६
२. मीरां-माधुरी, ब्रजरत्न दास, पृ० ९०, पद सं० २४१

अधर मधुरधर बसी बजावा रीझ रिझावा ब्रजनारी जी ।
या छब देख्या मोह्या मीराँ मोहण गिरवरधारी जी ॥[1]

साधिका की गहरी अनुभूति और साध्य की मनोहारिणी मूर्ति स्निग्ध भावुकता मिश्रित शब्दो के माध्यम से नेत्रो के सम्मुख अंकित हो जाती है ।

इसी प्रकार कृष्णभक्तिकालीन सभी कवियो ने प्राय भावानुकूल शब्द-चयन किया है । बाल-वर्णन करने में उन्होने गमजात, नन्ही नन्ही एडियन, लकुटिया, कटोरे, गुइयाँ, छइया, नन्हैयाँ, अरबराइ, पैंजनियाँ, छगन-मगन आदि ऐसे शब्दो का प्रयोग किया है जिसमे बाल जीवन की अनुभूतियो और मातृहृदय के दुलार को वे साकार कर सके है । ओजपूर्ण स्थलो पर उन्होने वीर, भयानक आदि भावो को व्यक्त करने वाले तमकि, दमकि, धमकि, झमकि, वहरात, भहरात, दररात, थहरात, झपटि आदि शब्दों का चयन किया है । रामलीला प्रसग में उन्होने लटकनि, मटकनि, चपलनैननि, उरप, तिरप, लागदाट, गिड गिड, थुग थुग, धीलाग, रुनझुन, सुघग, पटवार आदि ऐसे अक्षर एकत्र किए है जो नृत्य का यथा-तथ्य आभास देते है । रति तथा वात्सल्य भावों की व्यंजना में यदि उनकी भाषा सुकुमार, मधुर तथा मृदुल होती है तो ओजपूर्ण भावो के प्रकाशन में उनकी शब्दावली कर्णकटु तथा कठोर हो जाती है । रासलीला के प्रसग में कवियों की शब्दलहरी नृत्य की गति तथा लय के अनुकूल होती है तो सयोग शृगार तथा उन्मादपूर्ण स्थलो पर भाषा का रूप उन्मत्त-उमग-उल्लास भरा होता है और विरह के पदो में उनके शब्द हृदय की दीनता, व्यथा, गम्भीरता, शोक, बेचैनी तथा व्याकुलता के द्योतक हो जाते है । कहने का तात्पर्य यह है कि प्राय अधिकाश स्थलो पर प्रयुक्त ध्वनियो से जिस अत सगीत की सृष्टि होती है वह भावो के वातावरण के पूर्णतया अनुकूल रहती है और विषय से नितात सामजस्य रखती है । उदाहरण-स्वरूप निम्नलिखित पदो में कृष्णभक्तिकालीन कवियो की भाषा की यह शक्ति देखी जा सकती है ।

वात्सल्य भाव की द्योतक शब्दावली

सिखवति चलन जसोदा मैया ।
अरबराइ कर पानि गहावत, डगमगाइ धरनी धरे पैया ।
कबहुँक सुदर बदन बिलोकति, उर आनँद भरि लेति बलैया ।
कबहुँक बल कौं टेरि बुलावत, इहिं आँगन खेलौ दोउ भैया ।
सूरदास स्वामी की लीला, अति प्रताप बिलसत नँदरैया ।[2] (सूरदास)

माई मीठे हरि के बोलना,
पाँय पंजनिया रुनझुन बाजे आँगन आँगन डोलना ।

१ मीरा-स्मृति ग्रथ, मीरा-पदावली, पृ० २, पद स० ४
२ सूरसागर, (पहला खड), दशमस्कध, पृ० ३०६, पद स० ७३३

कज्जर तिलक कंठ कठुला मनि पीताम्बर को चोलना ।
परमानंददास को ठाकुर गोपी झुलावत मो ललना ॥[1] (परमानंददास)

अपने सुतहिं जगावति रानी ।
उठो मेरे लाल मनोहर सुंदर, कहि-कहि मधुरी वानी ॥
माखन मिश्री और मिठाई, दूध मलाई आनी ।
छगन मगन तुम करहु कलेऊ, मेरे सब सुखदानी ॥
जननी वचन सुनत उठि बैठे कहत बात तुतरानी ।
'नंददास' प्रभु निरखि जसोदा, मन ही मन हरषानी ॥[2] (नंददास)

पीरीसी झगुली झीनी, कंठ सोहैं मोती मनियां रुनुकु-झुनुकु पांय बाजत पैजनियां ।
ताथेई ताथेई नाँचत आगँनियां, निरखि-निरखि हँसे नंद जू की रनियां ॥
गृह-गृह तें जुरि आई गोपी धनियां, मैया जू उठाय लीनों लाइ दुरि कनियां ।
करत न्योछावर धन अरु धोनियां, प्यारे पर वारि वारि पीवे सब पनियां ॥
ललित लढ़ैते सिर सोहैं सोंधे सनियां, मानहुँ जल जलागे अलि-अलि घनियां ।
कुंडल की झलक ससि की फिरनियां, गावै जन 'गोविंद' चतुर सुजनियां ॥[3]
(गोविंदस्वामी)

जसोदा मैया लाल को झुलावे ।
आछे वार कान्ह कों हुलरावे ॥
कनिया-कनिया अईया-अईया यों कही लाड लडावे ।
हुलुलुलु हुलुलुलु हां हां हां हां कहि के गोद लीये खेलावे ॥
दोउ कर पकर जसोदा रानी ठुमकी पाय धरावे ।
घननन-घननन घुंघरु बाजे झांझरीयां झंमकावे ॥
सूरदास मदनमोहन को ये ही भांत रीझावे ।
मंमंमंमं पप् पप् पप् पप् चच्चच् चच् चच् तत् ताथेई ।
यहि विधि लाड लड़ावे ॥[4] (सूरदास मदनमोहन)

मंगल बधाई की परिचायक शब्दावली

रतन जटित कनक-थाल मध्य सोहै दीप-माल,
अगरादिक चंदन अति, बहु सुगंध माई ।

---

१. हस्तलिखित पद-संग्रह, परमानंददास, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० २२
२. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० ३१७, पद सं० १
३. वही, पृ० २४६, पद सं० ३
४. अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, सरयूप्रसाद अग्रवाल, पृ० ४४७, पद सं० १

घननन घन घटा घोर, झननन झालर टकोर,
तननन तत थेई थेई, करत है एकदाई ।
तननन तन तान पान, राग रग स्वर-बधान,
गोपी जन गावें गीत मगल बधाई ।
'चतुर्भुज' गिरिधरन लाल, आरती बनी विसाल,
वारत तन मन प्रान जसोदा नदराई ।[1] (चतुर्भुजदास)

आरति करत जसोमति मुदित लाल को ।
दीप अद्‌भुत जोति प्रगट जगमग होति प्रगट वारि वारत फेरि अपने गोपाल को ।
बजत घटा ताल झालरी सख धुनि निरखि ब्रज सुदरी गिरिधरन लाल को ।
भई मन में फूल गई सुधि बुधि भूली छीतस्वामी देखि जुवती जन जाल को ।[2]

ओजपूर्ण भावों की द्योतक शब्दावली

भहरात भहरात दवा (नल) आयौ ।
घेरि चहुँ ओर, करि सोर अदोर बन, धरनि आकास चहुँ पास छायौ ।।
बरस बन-बाँस, थरहरत कुस काँस, जरि उडत हैं भाँस, अति प्रबल धायौ ।
झपटि झपटत लपट, फूलफल चट-चटकि,फटत, लटलटकि द्रुम-द्रुम नवायौ ।।
अति अगिनि-झार, भभार धुधार करि, उचटि अगार झभार छायौ ।
बरत बन पात भहरात झहरात अररात तरु महा, धरनी गिरायौ ।।
भए बेहाल सब ग्वाल ब्रज बाल तब, सरन गोपाल कहि कै पुकारयौ ।
तृना केसी सकट बकी बक अघासुर, बाम कर राखि गिरि ज्यौं उबारयौ ।।
नकु धीरज करौ, जियहि कोउ जिनि डरौ, कहा इहि सरौ लोचन मुँदाए ।
मुठी भरि लियौ, सब नाइ मुखहीं दियौ, सूर प्रभु पियौ ब्रज-जन बचाए ।।[3]
(सूरदास)

देखि नृप तमकि हरि चमक तहँई गए, दमकि लीन्हौ गिरह बाज जैसे ।
धमकि मारयौ घाव, गुमकि हिरदै रह्यौ, झमकि गाहि केस लै चले ऐसे ।।
ठेलि हलधर दियौ, झेलि तब हरि लियौ, महल के तरें धरनी गिरायौ ।
अमर जय धुनि भई, धाक त्रिभुवन गई, कस मारयौ निदरि देवरायौ ।।
धन्य बानी गगन, धरनि पाताल धनि, धन्य हो धन्य वसुदेव ताता।
धन्य अवतार गुर धरनि उपकार कौं, सूर प्रभु धन्य बलराम भ्राता ।।[4]
(सूरदास)

१ अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २८१, पद स० २४
२ हस्तलिखित पद-सग्रह, छीतस्वामी, डा० दीनदयालु गुप्त, पद स० ३३
३ सूरसागर, (प्रथम खड), दशमस्कध, पृ० ५७२, पद स० १२१४
४ वही, (दूसरा खड), दशमस्कध, पृ० १३१०, पद स० ३६६७

मेघ-दल-प्रवल व्रज-लोग देखें।
चकित जहाँ-तहँ भए, निरखि वादर नए, ग्वाल गोपाल डरि गगन पेखें॥
ऐसे वादर, सजल, करत अति महावल, चलत घहरात करि अंध काला।
चकित भए नंद, सब महर चक्रित भए, चकित नर-नारि हरि करत ख्याला।
घटा घनघोर घहरात, अररात, दररात, थररात व्रज लोग डरपे।
तडित आघात तरराल, उतपात सुनि, नारि-नर सकुचि तन प्रान अरपे।
कहा चाहत होन, भई कवहूँ जो न, कवहुँ आँगन भौन विकल डोलें।
मेटि पूजा इंद्र, नंद-सुत गोविंद, सूर प्रभु आनँद करि कलोलें॥'[1] (सूरदास)

स्वच्छन्द यौवन की उन्मुक्त उमंग की द्योतक शब्दावली

नृत्यत स्याम स्यामा-हेत।
मुकुट-लटकनि, भृकुटि-मटकनि, नारि-मन सुख देत॥
कवहुँ चलत सुधंग गति सौं, कवहुँ उघटत वैन।
लोल कुंडल गंड-मंडल चपल नैननि सैन॥
स्याम की छवि देखि नागरि, रही इकटक जोहि।
सूर-प्रभु उर लाइ लीन्ही, प्रेम-गुन करि पोहि॥[2] (सूरदास)

गावति गिरिधरन-संग परम मुदित रास-रंग
उरप तिरप लेत तान नागर नागरी॥
सरि-गम-पध-धनि, गम-पधनि, उघटति सप्त सुरनि,
लेति लाग, दाट, काल अति उजागरी॥
चर्वन ताम्बूल देत, ध्रुव तालहिं गति हिं लेत,
गिडिगिडि तत-थुंग-थुंग अलग लाग री॥
सुरति केलि रास-विलास वलि-वलि 'कुंभनदास'
श्री राधा नंद-नँदन वर सुहागरी॥[3] (कुंभनदास)

आली री दाम दाम दाम वाजत मृदंग गति उपजत अनेक भांत।
तौकी झंकन झुं झुंतन झगता धीलांग धीलांग तागर डोगावत दुलहिन दूलो जोत पांत॥
पिया के रिझाइवे कों न्यारी न्यारी गति तामें लेत ही सुघर
वनाइ 'गोविंद' प्रभु पिया अंग संग ए निर्त्तत भामनी संग॥[4] (गोविंदस्वामी)

---

१. सूरसागर, (पहला खंड), दशमस्कंध, पृ० ५२८, पद सं० १४७३

२. वही, पृ० ६५५, पद सं० १७६६

३. कुंभनदास, कांकरौली, पृ० २२, पद सं० ३५

४. गोविंदस्वामी, कांकरौली, पृ० २७, पद सं० ५९

प्यारे नांचत प्रान-अधार
रास रच्यो बसीवट, नट नागर वर सहज सिंगार ॥
पाइनि की पटकार मनोहर, पजनि की झनकार ।
रुनझुन किंकिनि-नूपुर बाजत, सग पखावज तार ॥
मोहन धुनि मुरली सुनि कर तब, मोहे कोटिक मार ।
स्थावर जगम की गति भूली भूले तन व्योपार ॥
अग सुधग अनग दिखाइ रीझि सरबसु दोऊ देत उदार ।
'व्यास' स्वामिनी पिय सो मिलि, रस राच्यो कुंज-विहार ॥[1] (व्यास जी)

नवल किसोर नवल नागरिया
अपनी भुजा स्याम-भुज ऊपर, स्याम भुजा अपने उर धरिया ॥
क्रीड़ा करत तमाल-तरुन-तर स्यामा स्याम उमँगि रस भरिया ॥
यौं लपटाई रहे उर-उर ज्यौं, मरकत मनि कचन म जरिया ॥
उपमा काहि देउँ, को लायक, मन्मय कोटि वारने करिया ।
सूरदास बलि-बलि जोरी पर, नद कुँवर वृषभानु कुँवरिया ॥[2] (सूरदास)

खेलत गिरधर रँगमगे रग ।
गोप सखा बनि आए हु हरि हलधर के सग ।
बाजत ताल मृदग झाँझ डफ मुरली मुरज उपग,
अपनी अपनी फेंटन भरि भरि लिये गुलाल सुरग ।
पिचकाई नीकें करि छिरकत गावत तान तरग,
उत आई ब्रजबनिता बनि बनि मुक्ताफल भरि मग ।
अँचरा उरसि कचुकी कसिकसि राजत उरज उतग,
चोवा चदन बदन लै मिलि भरत भामते अग ।
किशोर किशोरी दोउ मिलि बिहरत इत रति उतहि अनग,
परमानन्द दोऊ मिलि बिलसत केलि कला जू निसग ।[3] (परमानन्ददास)

झूलत लाल गोवरधनधारी सोभा बरनि न जाई हो ।
बाम भाग वृषभानु-नदिनी, नव सत अग बनाई हो ॥
अति सुकुमारी नारि डरपति हैं, मोहन उर सों लाई हो ।
नील पीत पट मिलि फहरत हैं, घन दामिनि जुरि आई हो ॥
मानहुँ तरुन तमाल मिलन कों अग-अग मुरझाई हो ।
गौर स्याम मरकत तन परसत, कनक बेलि छवि पाई हो ॥

---

१ भक्तकवि व्यास जी, वासुदेव गोस्वामी, पृ० ३६४, पद स० ६३४
२ सूरसागर, (पहला खड), दशमस्कध, पृ० ५०२, पद स० १३०६
3 कीर्तन-सग्रह, भाग ३, वसन्त धमार, देसाई, पृ० ३५

सुरति सिन्धु मिलि विलसे दोउ जन, सब सहचरि सुख पाई हो।
'चतुर्भुजदास' लाल गिरिधर-जस, सुर-नर-मुनि मिल गाई हो ॥[1] (चतुर्भुजदास)

देखो प्यारी कुंजविहारी मूरतिवंत वसंत।
मोरी तरुण तरुलता तनमें मनसिज रस वरसंत ॥
अरुण अधर नव पल्लव शोभा विहसनि कुसुम विकाश।
फूले विमल कमल से लोचन सूचित मन को हुलास ॥
चल चूर्ण कुन्तल अलिमाला मुरली कोकिल नाद।
देखीयति गोपीजन वनराई मुदित मदन उनमाद ॥
सहज सुवास स्वास मलयानिल लागत सदानि सुहायो।
श्री राधामाधवी गदाधर प्रभु परसत सुख पायो ॥[2] (गदाधर भट्ट)

नवल वृंदावन नवल वसंत।
नव द्रुम वेलि केलि नव कुंजनि नवल कामिनी कंत ॥
नव अलि अलक झलक नव कोकिल नव सुर मिलि विलसंत।
नव रस रसिक विहारनि दासी के नव आनंदहि न अंत ॥[3] (विहारिन दास)

नवल वसंत वृंदावन नवलहि फूले फूल
नवलहि कान्ह नवल सब गोपी निरतत ताकहि तूल।
नवलहि साख जवादि कुमकुमा नवलहि वसन अमूल
नवलहि छींट वनी केसरि की मेटत मनमथ सूल
नवल वाल गुलाल उडवें रंग वुका नवल पवन के भूल
नवलहि वाजे वाजें श्री भट कालिंदी कूल ॥[4] (श्री भट्ट)

रंगभरी रागभरी राग सूं भरी री।
होड़ी खेड़्या स्याम संग रंग सूं भरी री।
उड़त गुलाड़ ड़ाड़ वादड़ रो रंग ड़ाड़।
पिचकां उडावां रंग रंग री झरी री।
चोवा चंदण अरगजां म्हां केसर णो गागर भरी री।
मीरां दासी गिरधर नागर चेरी चरण धरी री ॥[5] (मीरा)

---

१. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ २९३, पद सं० ८३
२. श्री गदाधर भट्ट जी महाराज की वानी, वालकृष्णदास जी की प्रति, पत्र सं० २४, पद सं० १
३. पद-संग्रह प्रति सं० ३७१।२६६, का० ना० प्र० स० पत्र सं० १४, पद सं० ७
४. जुगलसतक, श्री भट्ट, प्रति सं० ७१२।३२, का० ना० प्र०स०, पत्र सं० १३, पद सं० १.
५. मीरा-स्मृति-ग्रंथ, मीरा-पदावली, पृ० २१, पद सं० ७३

विरह की करुण कथा की सरल शब्दावली

किते दिन भए रैनि सुख सोए,
कछू न सुहाय गोपाल बिछूरे, रहे पूंजी सी खोए।
जबते गए नन्दलाल मधुपुरी चीर न काहू धोए,
मुख न तँबोर, नैन नहिं कज्जर विरह समीर जिगोए।
ढूढत बाट घाट बन पर्वत जहाँ जहाँ हरि खेल्यों,
परमानंद प्रभु अपनो पीताम्बर मेरे सिर पर मेल्यो ॥[1] (परमानन्दवास)

कारी निसि में दामिनि कोंधति
हरि समीप बिनु सूनो सेज अकेलें माई हौं डरपति चोंघति।
ज्यों ज्यों स सुरति होति प्रीतम की नैननि ढरति जब ज्यों गगरी औंघति।
कुंभनदास प्रभु गिरिधर बिनु अब नींद गई छिनु छिनु छतियाँ रौंधति ॥[2]
(कुंभनदास)

शब्दालंकार

अनुप्रास अलंकार –

शब्दालंकारों के अन्तर्गत शब्द-संगीत को उत्पन्न करने में अनुप्रास[3] शब्दालंकार विशेष रूप से सहायक होता है। यों तो भाव-सौंदर्य के निमित्त साहित्य-जगत में अन्य शब्दालंकार भी प्रयुक्त किए जाते हैं किन्तु भाषा के नाद-सौंदर्य की वृद्धि में शब्दालंकारों के अन्तर्गत अनुप्रास अलंकार ही विशेष महत्वपूर्ण है। अनुप्रास के संयोग से कविता में संगीत की छटा अनुपम हो जाती है। "हमारे (अर्थात् भारतीय) साहित्य-शास्त्र में स्वीकृत शब्दालंकार दो प्रकार के हैं, एक वे जो मुख्यतः संगीत का विधान करते हैं जैसे अनुप्रास।

१ हस्तलिखित पद-संग्रह, परमानन्ददास, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० १६५
२ हस्तलिखित पद-संग्रह कुंभनदास, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० ४६
३ अनुप्रास–

अनुप्रासः शब्दसाम्यं वैषम्येऽपि स्वरस्ययत् ॥

स्वर की विषमता रहने पर भी शब्द अर्थात् पद पदांश के साम्य (सादृश्य) को 'अनुप्रास' कहते हैं। स्वरों की समानता हो चाहे न हो परन्तु अनेक व्यंजन जहां एक से मिल जायें वहां अनुप्रास अलंकार होता है। अनुप्रास शब्द का अक्षरार्थ बताते हैं – रसेति-रस भावादि के अनुगत प्रकृष्ट न्यास को अनुप्रास कहते हैं। यहां 'अनु' का अर्थ 'अनुगत' और 'प्र' का प्रकृष्ट एवं 'आस' का अर्थ न्यास है। रस की अनुगामिनी प्रकृष्ट रचना का नाम अनुप्रास है। इससे यह भी सिद्ध हुआ कि रस के प्रतिकूल वर्णों की समता को अनुप्रास नहीं माना जाता।

साहित्य दर्पण, विश्वनाथ, हिन्दी-व्याख्या शालिग्राम शास्त्री कृत, पृ० ८०

अनुप्रासों का समावेश वही अच्छा लगता है जहाँ वह संगीत को पुष्ट करता है।"[1] श्री वख्शी जी भी अनुप्रास को शब्द-संगीत का साधन मानते हुए अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करते हैं। "अलंकार दो प्रकार के माने गए हैं"[2] –शब्दालंकार और अर्थालंकार। शब्दालंकारों मे अनुप्रास मुख्य है और अर्थालंकारों में उपमा[3]। "सच पूछिए तो इन्हीं दो से अन्य सभी अलंकारों का उद्भव हुआ है और उक्ति में विलक्षणता लाने के ही लिए उनकी सृष्टि हुई है।"[4] अनुप्रास अलंकार कवितावधूती के अंग-प्रत्यग को सँवारकर उसे कोमलकांत रूप, माधुर्य तथा स्वर और गतिमय अमरत्व प्रदान करते हैं। आधुनिक आलोचक प्रायः अनुप्रास को व्यर्थ तथा शब्दाडम्बर मात्र मानते है। किन्तु यह भ्रम मात्र ही है क्योकि यदि अनुप्रास का प्रयोग सार्थक और उपयुक्त है तो कविता के लिए यह अनिवार्य है कि शब्दों की ध्वनिमात्र से ही कविता का मूलगत अर्थ स्पष्ट हो जाय। अनुप्रास अलंकार वाणी का वह कौशल है जिसके साहचर्य से संगीत ध्वनि उत्पन्न कर कविता के भावों को बहुत कुछ व्यक्त किया जा सकता है। स्वाभाविक रूप से अनुप्रास के प्रयोग भाषा के नाद-सौंदर्य के उत्कर्षक होते हैं। सफल कवियों के काव्य में अनुप्रास बिना प्रयास स्वतः आ जाते हैं। उन्हें ढूंढ़ना नही पड़ता। हाँ यदि कवि का सम्पूर्ण प्रयास अनुप्रास की योजना के लिए होने लगता है अथवा अनुप्रासगत चमत्कार प्रदर्शन के मोह में आकर कवि आलंकारिक उक्तियों की झड़ी लगा देता है तब वे अवश्य भार रूप बन जाते हैं और कविता अलंकार-बोझिल होकर शब्द-आडम्बर बन उत्कर्ष के धरातल मे नीचे गिर जाती है।

कृष्णभक्तिकालीन कवियों के काव्य मे अनुप्रास अलंकार की प्रयास रहित स्वाभाविक अभिव्यंजना मनोहारिणी है। इन कवियों ने कविता करने के उद्देश्य से काव्य रचना नही की थी। उनकी कविता उनके हृदय का स्वर है, बुद्धि का चमत्कार नहीं। भगवत् प्रेम में एकाकार होकर इन कवियों ने जिस अमर संगीत का सृजन किया उसमें स्वाभाविक रूप से अनुप्रास का ही क्या आवश्यकतानुसार प्रायः सभी अलंकारों का समावेश हो गया है। भावोन्मेष के क्षणों मे उमड़े हुये उनके शब्दों मे अनुप्रास ढूंढ़ने नही पड़ने। किसी-किसी स्थल पर अनुप्रास इस तरह स्वाभाविक रीति से चले आते है मानो इनके शब्दभंडार में अनुप्रास युक्त शब्दो के अतिरिक्त अन्य कोई शब्द ही नहीं था। किन्तु अनुप्रास का नाद-सौंदर्य शब्दों के भाव को कही भी दबने नही देता। कृष्णभक्तिकालीन कवियों के काव्य में कहीं कहीं अनुप्रास का भव्य विन्यास तो अवश्य है किन्तु वह विन्यास इतना भड़कीला नहीं है

१. साहित्य-चिंता, डा० देवराज, पृ० १५
२. हमारे यहाँ अलंकार-योजना में तीन कोटियाँ मानी गई है –
(१) शब्दालंकार (२) अर्थालंकार (३) उभयालंकार
३. वख्शी जी का यह मत शायद सर्वथा मान्य नहीं है।
४. प्रदीप, पदुमलाल पन्नालाल बख्शी, पृ० २३४

कि पाठकों का ध्यान वण्यवस्तु को छोड़कर अलकारों की छटा की ओर आकृष्ट हो जाय। उस अनुप्रास-योजना से काव्य में कुछ स्थल अत्यधिक श्रुति-मधुर और माधुर्य-व्यजक हो गए हैं। यों तो कृष्णभक्तिकालीन सभी कवियों ने अनुप्रास के प्रयोग से भाषा के नाद-सौंदर्य को अत्यधिक बढा दिया है किन्तु नददास की रासपचाध्यायी में अनुप्रास की छटा दर्शनीय है। मीरा में काव्य-कला का प्रदर्शन कराना उनके साथ घोर अन्याय करना है किन्तु इसका यह तात्पर्य नही कि उनमें काव्य-कला सबधी अलकार आदि का सर्वथा अभाव है। उनके हृदय से उमडे हुए शब्दों में स्वाभाविक रूप से अनुप्रास अलकार आए हैं। कृष्णभक्तिकालीन सभी कवियो के काव्य में अनुप्रास की सुन्दर छटा दर्शनीय है। उदाहरणस्वरूप इन कवियों के कुछ स्थल दृष्टव्य होंगे—

चरन रुनित नूपुर कटि किंकिनि, कनन करतल ताल।
मनु तिय-तनय समेत, सहज-सुख, मुखरित मधुर मराल॥[1]
चटकीलो पट लपटानो कटि पर, बसीवट जमुना के तट राजत नागर नट।
मुकुट की लटक, मटक भृकुटी की लोल कुडल चटक आछी सुबरन की लुकट॥[2]
पचमि पच शब्द करि साजें सजि बादित्र अपार।
रुज मुरज ढफ ताल बाँसुरी झालर की झकार॥[3] (सूरदास)
रैनि पपीहा बोल्यौ री माई
नींद गई चिता चित बाढी सुरति स्याम की आई।[4]
कुडल लोल कपोल लोल मधु, लोचन चारु चलावनि।
कुतल कुटिल मनोहर आनन, मीठे बेनु बुलावनि॥[5] (परमानददास)
नव बन, नव घन, नव चातक पिक, नवल कसूमी सारी।
नवल किसोर श्याम अग सोभित, नव वृषभान दुलारी।[6]
कुतल, बकुल, मालती, चपा, कितकी नवल निवारे।
जाही, जुही, केवरो, कूजो, रायबेलि मेंहकारे॥[7] (कुभनदास)
रसमय रसिक रसिकिनी मोहन रसमय बचन रसाल रसीलो
नवरग लाल नवल गुन सुदर नवरँग भाँति नव नेह नवीलो।

---

१ सूरसागर, भाग १, पृ० ६५१, पद स० ११३७, १७५४
२ वही, पृ० ७४०, पद स० १४०१, २०१६
३ सूरसारावली, पृ० ३७, पद स० १०७२
४ हस्तलिखित पद-सग्रह, परमानददास, डा० दीनदयालु गुप्त, पद स० ३२३
५ अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० १९८, पद स० ७५
६ वही, पृ० १११, पद स० ३२
७ वही, पृ० १११, पद स० ३३

नव सिख सीव सुभगता सीवां सहज सुभाइ सुदेस सुहीलो
कृष्णदास प्रभु रसिक मुकट मनि सुभग चरित रिपुदलन हठीलो ।[1]

नूपुर रुनित कुनित मनि कंकन, जुवति-जूथ रस-रासि वढ़ावैं ।
सुरति देत मधु मत्त मधुप-कुल एक ताल सब के जिय भावैं ।।[2]
(कृष्णदास)

नवल कुंज नव कुसुमित दल, नव नव वृषभानु दुलारी ।
नवल हास, नव नव छवि क्रीड़त, नवल विलास करत-सुखकारी ।।[3]

इति महकति मालती, चारु चंपक चित-चोरत ।
उत घनसार, तुसार, मिली मंदार-झकोरत ।।[4]

ललित लवंग लतन की छाँहीं, हँसि बोलो टोलो गलबाहीं ।[5] (नंददास)
मोहन मूरति मन हर लीनों नहिं समुझत कछु काहू की कही री ।[6]

ललित लिलाट लर लटकन सोहै, लाड़िले ललन कों लड़ावें ललना ।
प्रान प्यारे प्रानपति उपजत अति रति, पल पल पौढ़े प्रेम पलना ।।[7]
(चतुर्भुजदास)

श्रीकृष्न कृपालु कृपानिधि, दीन-बंधु दयाल......
गोचारी गोविंद गोपपति, भावन मंजुल ग्वाल ।[8]

लाल ललित ललितादिक संग लिएँ
वहरें री वन वसंत रितु कला सुजान ।[9] (छीतस्वामी)

नैक निहारि नागरी नारी, पैंयाँ परत मुरारि[10]
मोर मुकुट मंजुल मुरली मुख, पीत वसन उरमाला[11] (गोविंदस्वामी)
तब चली चरन मंथर विहार

---

१. हस्तलिखित पद-संग्रह, कृष्णदास, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० १०१
२. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २३२, पद सं० ३३
३. वही, पृ० ३२२, पद सं० २३
४. रासपंचाध्यायी, नंददास
५. विरहमंजरी, वलदेवदास करसनदास, छन्द सं० ५६
६. हस्तलिखित पद-संग्रह, चतुर्भुजदास, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० ३४
७. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २७६, पद, सं० २
८. वही, पृ० २७०, पद सं० २७
९. वही, पृ० २६७, पद सं० १६
१०. वही, पृ० २५८, पद सं० ६१
११. वही, पृ० २५२, पद सं० २६

बाजे रुनझुनुनु नूपुर झंकार ।[1]
देखो प्यारी कुंजबिहारी मूरतिवत बसत
गौरी नरनि तरुनता तन में मनसिज रस बरसत ।
अरुन अधर नव पल्लव सोभा बिहसनि कुसुम विकास ।
फूले विमल कमल से लोचन सूचत मन उल्लास ।
चल चूरन कतुल अलिमाला मुरली कोकिल नाद ।
देखत गोपी जन बनराई मदन मुदित उनमाद ।[2]   (गदाधर भट्ट)

सखियन संग राधिका कुंवरि बीनति कुसुम कलिया ।[3]
अरुझीं कुंडल लट बेसरि सों पीत पट
बनमाला बीच आन अरुझें हूं दोउ जन ।
नयन सो नयना प्रानन सो प्रान अरुझि रहे
चटकीली छवि देख लटपटात स्याम घन ।[4]   (सूरदास मदनमोहन)

पुलिन पवित्र सुभग यमुना तट मोहन बेनु बजायो
कलककन किंकिणी नुपुर धुनि सुनि खग मृग सचुपायो ।[5]
नवल नागरी नवल नागर किशोर मिलो
कुंज कोमल कमल दल निसि जा रची ।[6]
सरद बिमल नभ चंद बीराजत रोचक त्रिविधि समीर री सजनी
चंपक बकूल मालती मुकलित मत्त मुदित पिक पीर री सजनी ।[7]
(हितहरिवंश)

रसिक, सुंदरि बनी रास-रंगे
सरद ससि जामिनी, पुलिन अभिरामिनी, पवन सुख भवन बन बिहंगे ।
चरन नुपुर रुनित, कटि किंकिन क्वनित, कर कंकन चुरीरव भंगे ।
चरन धरनी धरत, लेत गति सुलप अति, तत्त थेई थेई नवति मन मृदंगे ।[8]
सैनन बिसरे नैननि भोर
बैन कहत कासो पिय हिय ते, बिहँसत कितव किसोर ।[9]

---

१ श्री गदाधर भट्ट की महाराज की बानी, बालकृष्णदास की प्रति, पत्र २५, पद स० २
२ वही, पत्र २४, पद स० १
३ अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, सरयूप्रसाद अग्रवाल, पृ० ४४८, पद स० ३
४ वही, पृ० ४४८, पद स० ५
५ चौरासी पद, हितहरिवंश, प्रति स० ३८|२१५, प्रयाग-संग्रहालय, पद स० ३६
६ वही, पद स० ५०
७ वही, पद स० २४
८ भक्त कवि व्यास जी, वासुदेव गोस्वामी, पृ० ३६०, पद स० ६१६
९ वही, पृ० २७४, पद स० ३२५

झूलत कुंजनि कुंज किसोर……
सिथिल पलक मँह वंक विलोकनि, विहसनि चित-वित-चोर।[1] (व्यास)

नव वन नव निकुंज नव पलव नव जुवतिन मिलि मांहि
वंसी सरस मधुर धुनि सुनियत फूली अंगनि मांहि।[2]

अद्भुत गति उपजत अति नाचत दोऊ मंडल कुँवर किसोरी
सकल सुधंग अंग भरि भोरी पिय नृतत मुसकनि मुख मोरी परिरंभन रस रोरी।[3]
(हरिदास)

प्रिया पग धारियै पिय पहियां
कुंजन वन के छारै वाढ़े कुंवर कदंब की छहियां।[4]

नव नव नव निकुंज नववाला
नव रंग रसिक रसीलो मोंहन विलसत कुंजविहारी लाला।[5] (विट्ठल विपुल)

राजत रास रसिक रस रासे
आस पास जुवती मुख मंडल मिलि फूले कमला से
मध्य मराल मियुन मन मोहन चितवत आतुरता से।[6]

नवल वृंदावन नवल वसंत
नवद्रुम वेलि केलि नव कुंजनि नवल कामिनी कंत।[7] (विहारिनदास)

कारी घटा छटन के डोरा मोरा वोलत जोरैं
कोकिला कल जलकन वरपन रंग नीर घन घोरैं।[8]

फूली कुमदनि सरद सुहाई
जमुना तीर धीर दोऊ विहरत कमल नील पीत कर माई[9] (श्री भट्ट)

मन मोहन मन में वसि रह्यो सखी दिष्ट अचानक आई री।
सोई हरि सुमन विवस भयो भावत अव कैसें करि जाइ री॥[10]

---

१. भक्त कवि व्यास जी, वासुदेव गोस्वामी, पृ० २७१, पद सं० ३१५
२. पद-संग्रह, प्रति सं० ३७१।२६६, काशी नागरी प्रचारणी सभा, पत्र सं० २५, पद सं० २
३. वही, पत्र सं० १२, पद सं० ३
४. पद-संग्रह, प्रति सं० १६२०।३१७०, हिन्दी-संग्रहालय, पद सं० २१
५. वही, पद सं० ३६
६. पद-संग्रह, प्रति सं० ३७१।२६६, का० ना० प्र० सभा, पत्र सं० १४८, पद सं० २२
७. वही, पत्र सं० १४४, पद सं० ७
८. जुगलसतक, प्रति सं० ७१२।३२, का०ना०प्र० सभा, पत्र १४, पद सं० १
९. वही, पत्र सं० १७
१०. रामसागर, प्रति सं० ६८०।४६२, का०ना०प्र० सभा, रा०सा० ७६, पद सं० १६

नाना धुनि बंसिका बजावत
निर्तत अति मन मोद बढावत।[१] (परशुराम)
रंगभरी रागभरी राग सूं भरी री।
होरी खेल्या स्याम संग रंग सूं भरी री।
उड़त गुलाल लाल बादलां री रंग लाल
पिचकां उडावां रंग रंगरी भरी री।
चोवा चंदण अरगजा म्हा केसर णो गागर भरी री।
मीरां दासी गिरधर नागर चेरी चरण धरी री।[२]
म्हारो परनाम बांके बिहारी जी
मोर मुगट माथा तिलक बिराज्यां कुंडल अलका कारी जी।
अधर मधुरधर बंसी बजावां रीझ रिझावां ब्रजनारी जी।
या छब देख्यां मोह्या मीरा मोहण गिरवरधारी जी।[३]
मोहन देखि सिराने नैना
रजनी मुख आवत गावन संग मधुर बजावत बैना।[४]
खुरमा खाजा गुंजा मठरी पिस्ता दाख बदाम
दूध भात घ्रित सानि थारभरि लै आई ब्रजबाम।[५] (आसकरण)

कृष्णभक्तिकालीन साहित्य की संगीतमय भाषा पर एक सामान्य दृष्टि

कृष्णभक्तिकालीन कवियों ने अपने साहित्य में पूर्णतया संगीत से सिक्त भाषा का सृजन किया है। इससे पूर्व चारणकाल में वीर-काव्य पर डिंगलभाषा का पर्याप्त प्रभाव था। डिंगल रण की भाषा थी। उसमें शक्ति थी, नाद था और वह परुष भावों को प्रकट करने में समर्थ थी किन्तु उसमें संगीत की कोमलता और श्रुति-माधुर्य के गुण का अभाव था। संत कवियों में कुछ को छोड़ कर अन्य कवियों की उक्तियों को देखने से ऐसा जान पड़ता है कि कदाचित् सर्वांगीण विकासोन्मुखी भाषा पर उनका न तो विशेष अधिकार था और न शायद वे उस ओर सचेष्ट ही थे। भाषा के अपरिष्कृत होने के कारण उनकी भाषा को सधुक्कड़ी भाषा कह कर संबोधित किया गया। विभिन्न प्रदेशों की भाषाओं के शब्दों के अत्यधिक मेल के कारण संत कवि अपनी रचनाओं में उस परिष्कृत संगीतमाधुर्य को न ला सके जो अपेक्षित था। सूफी काव्य की भाषा में संगीत का समावेश प्रचुर मात्रा में हुआ।

---

१ रामसागर, प्रति सं० ६८०।४६२, का० ना० प्र० स०, रा० सा० ६८, पद सं० १४८
२. मीरा-स्मृति ग्रंथ, मीरा-पदावली, पृ० २१, पद सं० ७३
३ वही, पृ० ३, पद सं० ४
४ अकबरी दरबार के हिंदी कवि, सरयूप्रसाद अग्रवाल, पृ० ४५१, पद सं० ७
५ वही, पृ० ४५०, पद सं० ३

उन्होंने मात्रिक वृत्त अपनाये जिनमें गेयता का गुण भी था। भाषा के संगीत-माधुर्य को प्रस्फुटित करने के लिए सूफी कवियों ने अवधी के परिमार्जित सुसंस्कृत और सर्वथा साहित्यिक रूप को न ले कर उसके सरल, ठेठ, ग्रामीण रूप का प्रयोग किया किन्तु अवधी का यह संगीत-माधुर्य, व्रजभाषा की स्वाभाविक संगीत-मधुरता, कोमलता तथा मृदुलता की समता न कर सका। प्रधान रूप से अवधी में ही राम का चरित्र वर्णन करने वाले तुलसीदास जी भी व्रजभाषा के काव्य और संगीतगत् वैशिष्ट्य से परिचित थे और उनकी कृतियों से यह स्पष्ट है कि जहाँ रामचरितमानस जैसा उत्कृष्ट ग्रंथ उन्होंने अवधी में लिख कर अवधी भाषा के उत्कर्ष को सीमा पर पहुँचा दिया वहाँ अपनी विनयवाणी को पूर्ण सफलता प्रदान करने के लिए उन्होंने संगीतमयी तरल व्रजभाषा को ही अपनाया। इसी प्रकार राम का शैशव वर्णन करते समय यह प्रत्यक्ष हो जाता है कि कृष्णगीतावली और गीतावली में तुलसी केवल व्रजभाषा का प्रयोग ही करते हैं। सूर द्वारा प्रवाहित कृष्णलीला की वात्सल्य-मन्दाकिनी की सारभूमि सरलता से सराबोर है। भाषागत संगीत के विचार से कृष्णभक्तिकालीन कवियों की प्रतिभा अद्वितीय है। कृष्णभक्तिकालीन कवियों ने अपने काव्य में कर्णकटु शब्दों के परिष्कार, संयुक्त वर्णों के अभाव, शब्दों के लोचयुक्त रूपों तथा व्रजमंडल के लोक प्रचलित ग्रामीण प्रयोगों री, अरी, एरी आदि शब्दों के प्रयोग-बाहुल्य, अनुस्वार युक्त दीर्घ-स्वरों के संयोग, ध्वनिसौंदर्य, देशज तथा अनुप्रास के सुन्दर समावेश से स्वभाव से ही अत्यधिक मधुर व्रजभाषा के द्वारा जिस अपूर्व संगीत की झंकार पैदा की है उसकी लहरियाँ चिरकाल तक वांछित भावावेग उत्पन्न करने में समर्थ रहेंगी।

अष्टम अध्याय

लय, ताल और गायन प्रणाली के आधार पर कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में प्रयुक्त पदो की समीक्षा

कृष्णभक्तियुगीन साहित्य में प्रयुक्त पद-शैली

प्राय सभी कृष्णभक्तिकालीन कवियो ने अपने प्रेमाधिक्य से हृदयगत भावनाओ को ही वाणी के रूप में घनीभूत कर दिया है। भक्त जब अपने आराध्य की मोहिनी छवि में पूर्णत अनुरक्त और लीन होकर उसकी उपासना करने लगता है तो उस समय वह इस लौकिक ससार तथा स्वय को विस्मृत कर आराध्य के साथ एकाकार होकर गा उठता है। कृष्णभक्तिकालीन कवियो का ध्येय अपने आराध्यदेव की उपासना करना था। भक्ति की तन्मयता में ये कवि मौज में आकर कृष्ण की लीलाओ का अनुभव करते हुए उनकी छवि का गान किया करते थे। यही नही ये भक्त कवि प्रेम के पुजारी थे। आध्यात्मिक विरह-वाण से बिंधे इनके व्यथित हृदय मे गाए बिना रहा नहीं जाता था। अत प्रिय-मिलन की आशा में वे जीवन पर्यन्त गुनगुनाते रहे। उनका गान उनके हृदय का वह अमर सगीत है जिसमें सघर्ष, वेदना, समर्पण तथा आनद के विभिन्न स्वर मधुर लय में गुजरित हो रहे है।

आध्यात्मिक भावना से परिपूर्ण तथा सगीत प्रधान होने के कारण प्राय सभी कृष्णभक्तिकालीन कवियो के हृदय के उद्‌गार अधिकतर पिंगल अथवा काव्य-शास्त्र के नियमो में बद्ध छदो के रूप में नही प्रकट हुए वरन् गीत-पद्धति में ढल कर पदो के रूप में सम्मुख आए।

पदो का सगीत से विशेष सबध है। यो तो दोहा, चौपाई आदि छद भी गाए जा सकते है और गाए जाते है किंतु छदो को बिना यति भग किए रागानुसार गाना, लय के अनुसार मनमाना खीचना तथा ताल में बद्ध रखना सभव नही है। इसके विपरीत पदो में

राग-ताल का बंधान बांधना अत्यधिक सुगम है। उसमें मात्रा तथा यति संबंधी कोई विशिष्ट अपरिवर्तनशील बंधन नहीं होता। भावना की तीव्रता में पदों को गाते हुए इच्छानुसार संगीत में प्रयुक्त अकार के द्वारा मात्राओं को घटा बढ़ा कर लय तथा ताल में बिठाया जा सकता है। कृष्णभक्तिकालीन कवियों के समस्त काव्य की रचना गा-गा कर हुई है इसीलिए उसमें पदों का बाहुल्य है।

पदों के स्वरूप –

कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में जो पद प्रयुक्त हुए हैं वे लिपिबद्ध रूप में तीन प्रकार से मिलते है (१) समान मात्रा वाले पद (२) टेक वाले पद (३) असमान मात्रा वाले पद।

समान मात्रा वाले पद –इन पदों में सभी पंक्तियों में समान मात्रायें होती है। उदाहरणार्थ कवि सूर का एक पद द्रष्टव्य होगा –

IIII S IISI SI II SIIS IISI IS = ३०
बिछुरत श्री ब्रजराज आज सखि नैनन की परतीति गई।
IIIIS II SIISII S IIS IISI IS = ३०
उड़ि न मिले हरि संग विहंगम ह्वै न गये घनस्याम मई।
SS SI III II SII IS IS II SI IS = ३०
याते क्रूर कुटिल सह मेचक वृथा मनो छवि छीन लई।
SI III SIS ISII S IIS II S I IS = ३०
रूप रसिक लालची कहावत सो करनी कछु तो न भई।
II SS SII II SII III IS II SI IS = ३०
अब काहे सोचत जल मोचत समय गये नित सूल नई।
SISI SS S II II II S IIII IS SI = ३०
सूरदास याही ते जड़ भए, जब तें पलकन दगा दई।[1]

उपर्युक्त पद की प्रत्येक पंक्ति में समान रूप से ३० मात्रायें है।

टेक वाले पद–इन पदों में पद की प्रथम पंक्ति अन्य पंक्तियों की अपेक्षा छोटी होती है जिसे स्थायी पद अथवा टेक कहते है। प्रत्येक दो चरणों के पश्चात् प्रथम पंक्ति की आवृत्ति की जाती है अन्य सब पंक्तियों में मात्राएँ समान होती है। एक निश्चित अन्तर के उपरान्त बार बार टेक की आवृत्ति होने से पद में संगीत की अपूर्व झंकार तथा ध्वनि सौंदर्य प्रकटित होने लगता है। उदाहरणस्वरूप सूरदास का निम्नलिखित पद देखिए –

SS SI IS IISS = १६
ऊधौ होत कहा समुझाए।
IIII IS SIS SII SI IS IISS = २८
चित चुभि रही सांवरी मूरति जोग कहा तुम लाए।

---

१. सूरसागर, (दूसरा खंड), दशमस्कंध, पृ० १२८०, पद सं० ३६१४

SSS IIS II S S III SI II SS = २८
पालागौं कहियो हरि जू सौं दरस देहु इक बेर।
SISI II S IIS II IS ISS SS = २८
सूरदास प्रभु सौं विनती करि यहं सुनैयो टेर ।[1]

टेक में केवल १६ मात्रायें हैं तथा वह सब पंक्तियों में छोटी है। शेष सभी पंक्तिया में २८ मात्रायें है।

असमान मात्राओं वाले पद –इन पदों में मात्राओं का कोई बंधन नहीं है। प्रत्येक पंक्ति में विभिन्न मात्रायें होती हैं। पंक्तियों में मात्राओं का कोई क्रम नहीं रहता। भावों के अनुरूप ही मात्राओं की गति परिवर्तित होती रहती है। यथा हरिदास स्वामी का एक पद है –

SIISIISI SI III SSI ISII = २७
नाचत मोरनि सग स्याम मुदित स्यामाहि रिझावत
SSS SIS ISIIISS SIIISSSSIISIISIISII = ४८
तैसीयें कोकिला अलापत पपीहा देत सुर तसोई मेघ गर्जित मृदंग बजावत।
SSS SI IS IISS SS S SII SI SI ISII = ३६
तैसीयें स्याम घटा निसिकारी तैसो ये दामिनि कोंधि दीप दिखावत।
S IISIS SS SS SI ISS SI SS II SI ISII = ४२
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंज बिहारी रीझि राधे हँसि कंठ लगावत।[2]

पद की प्रथम पंक्ति में २७ मात्रायें, द्वितीय पंक्ति में ४८ मात्रायें, तृतीय पंक्ति मे ३६ मात्रायें और चतुर्थ पंक्ति में ४२ मात्रायें है। इस प्रकार प्रत्येक पंक्ति की मात्राओं में कोई साम्य नहीं है। मीरा का एक पद है –

SS S S IS SIS SI = १६
माई री म्हा लियां गोविंदा मोल।
S IS SS S S SS IS IIS SI = २८
थे कह्यां छाणे म्हा का चोड़े लियां बजता ढोल।
S ISISI S IS IS IS S ISS SI = ३०
थे कह्यां मुहोंघ म्हा कह्यां सुस्तोंलियां री तराजा तोल।
II SS S SII SS SS ISII SI = २८
तण वारां म्हा जीवण वारां वारां अमोलक मोल।
SS IIIIII SS III III S SI = २५
मीरा प्रभु दरसण दीज्यां पुरब जणम को कोल।[3]

---

१ भ्रमरगीतसार, प० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ६२, पद स० २४०
२ पद-संग्रह, प्रति स० ३७१।२६६, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, पृ० २४, पद स० १
३ मीरा-स्मृति-ग्रंथ, मीरा-पदावली, पृ० ४, पद स० १३

पद की प्रत्येक पंक्ति मे विभिन्न मात्रायें हैं। प्रथम पंक्ति में १६ मात्रायें, द्वितीय में २८, तृतीय में ३०, चतुर्थ में २८ और पंचम पंक्ति में २५ मात्रायें है।

कृष्णभक्तिकालीन साहित्य के अन्तर्गत लिखित रूप में यद्यपि पीछे कहे गये तीनों प्रकार के पद प्राप्त होते हैं किंतु उनमें असमान मात्रा वाले पदो का बाहुल्य है और समान मात्रा वाले पदों की संख्या अत्यधिक न्यून है। असमान मात्राओं वाले पदो के अधिक होने का प्रमुख कारण यही है कि कृष्णभक्तिकालीन कवि गाते समय संगीत के स्वरो तथा अकार आदि के द्वारा अपने पदों को ताल तथा लय मे बिठा लेते थे अतः लिखित रूप में उन पदो की पंक्तियों में मात्राओं की विभिन्नता का रह जाना स्वाभाविक ही है।

लय

भावानुकूल विलम्बित, मध्य तथा द्रुतलय का प्रयोग –

काव्य मे संगीत-माधुर्य को प्रस्फुटित करने के लिए जिस प्रकार भावानुकूल कोमल तथा परुष शब्दों का चयन करना अनिवार्य है उसी प्रकार लय[1] का भी विवेकपूर्ण प्रयोग होना चाहिये। भाव की जहाँ जैसी गति हो वहाँ वैसी ही लय प्रयुक्त की जानी चाहिए। प्रत्येक छंद की अलग-अलग गति होती है इसलिये विभिन्न भावों को प्रकट करने के लिये विभिन्न छंदों का प्रयोग किया जाता है। कुशल कवि रस तथा भावानुकूल छंद-चयन द्वारा संगीत के अनुकूल वातावरण उपस्थित करने में समर्थ होता है। उदाहरण स्वरूप देखिए –

रामचरितमानस मे राम के राज्याभिषेक का समय सब के लिए सुखद और आनंदप्रद है। जिस समय राम गद्दी पर आसीन होते है उस समय नाना वाद्य बजाए जाते है और मंगलगान आयोजित किये जाते हैं। राम के गद्दी पर बैठते ही –

सिंहासन पर त्रिभुवन साँई, देखि सुरन्ह दुंदुभी बजाई।[2]

लिखने के उपरान्त तुलसी तत्काल ही चौपाई छंद को छोड़कर हरिगीतिका छंद पकड़ लेते है –

नभ दुंदुभी बाजहिं बिपुल गंधर्व किन्नर गावहीं।
नाचहिं अप्सरावृन्द, परमानंद सुर मुनि पावहीं॥[3]

---

१. "स्वर की एक गति होती है। जिस गति से स्वर चलते है उसको 'लय' कहते हैं। यह लय कभी विलम्बित, कभी मध्य और कभी द्रुत होता है। संगीत का पूरा आनंद लेने के लिये स्वर के साथ लय का भी ध्यान रखना चाहिये।" सारंग, ७ दिसंबर १९५४ ई०, संगीत के सुनने की कला, ठा० जयदेव सिंह, पृ० ४

२. रामचरितमानस, टीकाकार हनुमान प्रसाद पोद्दार, पृ० १०३२

३. वही, पृ० १०३२

तुलसी जानते थे कि राजगद्दी का मंगला सब अत्यधिक संगीतपूर्ण होता है, इसे पढ़ते ही भक्त आनन्द-विह्वल हो उमग से झूमने लगेगा, इसीलिए उन्होंने तत्काल उस छंद का प्रयोग किया जो वातावरण को संगीत की ध्वनि से गुंजायमान कर दे। कवि चौपाई में भी दुंदुभी बजवा सकता था तथा किन्नरा का गान और अप्सराओं का नृत्य भी करा सकता था किंतु संगीत की जो तीव्र ध्वनि, संगीत का जो लययुक्त प्रवाह, हरिगीतिका में सुनाई पड़ रहा है वह चौपाई में कहाँ होता ?

इसी प्रकार कवि चन्दवरदायी की छंद-चयन संबंधी निपुणता ने उन्हें संगीत के उपयुक्त भावमय वातावरण के चित्र प्रस्तुत करने में अत्यधिक सहायता प्रदान की है। "कवि ने अपने छंदों का चुनाव बड़ी दूरदर्शिता के साथ किया है। कथा के मोड़ों को भली प्रकार पहचान कर वर्ण और मात्रा की अद्भुत योजना करने वाला रासो का रचयिता वास्तव में छंदों का सम्राट था।"[1] राजा जयचंद की सभा में नृत्य-वर्णन के प्रसंग के अन्तर्गत नमस्कार की मुद्रा में नृत्यारंभ करते हुए कवि कहता है –

दूहा– पहुपजलि दिसि वाम कर। फिर लग्गी गुरपाइ ॥
तरुनि तार सुर धरिय चित। परनि लग्गी गुरपाइ ॥[2]

मंगल आलाप के उपरान्त गान, वाद्य के साथ तीव्र लय में नृत्य होने लगता है –

उभ अलाप मद्धिता सुर सु ग्रामपंचम।
षड्ज तप्प मूरछ मनुत मान सचम।
निमग धारत अलप्य जापते प्रसंसई।
दरस्स भाव नूपुर इतष्प तान ने लई।
सुरसपत्त तत्र कंठ बोधि राग साभर।
हहा [illegible] निरखि तार रन चित्त ताहर।
ततग थेइ ततथेइ ततथेइ ततये सुमंडिय।
थयुंग थुंग थुंगये विराम काम भंडय।
सरग्गमप्प धुन्निधा धुन धुन निरप्पिय।
भवंति ओति अंग मानु अंग अंग सप्पिय।
कल कल सुसब्यन सुभेदन मत मन।
रननिक झंकि नूपर बुलत झम्मन भन ॥[3]

वातावरण को संगीतमय और शान्त बनाने के लिए नृत्य प्रारम्भ करते हुए नमस्कार तथा मंगल आलाप मन्द लय में किया जाता है। इसके उपरान्त नृत्य में गति और तीव्रता आ जाती है। हाव-भाव दिखाते हुए तीव्र गति के साथ नृत्य-कला का प्रदर्शन होने लगता

१ रेवातट, स० डा० विपिनबिहारी त्रिवेदी, भूमिका, पृ० ४२
२ पृथ्वीराजरासो, चंदवरदायी, नागरी प्रचारिणी सभा संस्करण, समय ६१
३ वही, समय ६१

है। कवि ने नृत्य की समस्त मुद्राओं का सजीव यथातथ्य आभास देने के लिए पहले दूहा छंद का प्रयोग किया है। लय मन्द गति से चलती है किंतु नृत्य का आरंभ होने के उपरान्त तत्काल ही कवि चंद दूहा छंद को त्याग कर नाराच छंद पकड़ लेते हैं जिसकी गति के द्वारा तीव्र लय में होते हुए नृत्य, नूपुरों की झनकार और विविध वाद्ययंत्रों की ध्वनि का चित्र नेत्रों के सम्मुख अंकित हो जाता है।

पदों में यद्यपि छंदों की भाँति मात्रा, यति आदि के प्रयोग करने का कोई निश्चित नियम नहीं है किंतु पदों के द्वारा भी कम-अधिक मात्राओं और छोटे बड़े चरणों के प्रयोग तथा लघु-गुरु वर्णों की आवृत्ति के द्वारा द्रुत, मध्य और विलम्बित लय की सृष्टि करके भावानुकूल नाद-सौंदर्य प्रवाहित किया जा सकता है। उदाहरणस्वरूप कवि विद्यापति का एक पद देखिये –

सुंदरि चललिहु पहु घर ना।
चहु दिश सब कर घर ना।
जाइतहु लागु परम डर ना।
जइसे ससि काँप राहु डर ना।
जाइतहि हार टुटिए गेल ना।
भूखन वसन मलिन भेल ना।
रोए रोए काजर दहाए देल ना।
अदर्काहि सिंदुर भेटाए देल ना।
भनइ विद्यापति गाओल ना।
दुख सहि सहि सुख पाओल ना॥[1]

यहाँ पर कवि को कोमल और मधुर भावों का प्रकाशन करना था इसलिए उसने द्रुत लय में छोटे-छोटे चरणों से युक्त पद का सृजन किया है। किंतु घनघोर गर्जन करते हुए बादलों और उससे जागरित हुई विरहिणी के हृदय की सुप्त स्मृति तथा व्यथा के चित्रण में मेघ के भयानक गर्जन और घनीभूत व्यथा के प्रकट करने के लिए छोटे-बड़े चरणों के प्रयोग, लघु-दीर्घ वर्णों की आवृत्ति के द्वारा कवि ने एक ही पद में द्रुत तथा विलम्बित लय की सृष्टि करके संगीत की अपूर्व ध्वनि अंकृत की है –

सखि हे हमर दुखक नहि ओर।
इ भर बादर माह भादर, सून मंदिर मोर।
झंपि घन गरजंति संतत भुवन भरि बरसंतिया।
कंत पाहुन काम दारुन सघन खर सर हतिया।
कुलिस कत सत पात मुदित मयूर नाचत मातिया।
मत्त दादुर डाक डाहुक फाटि जायत छातिया।

१. विद्यापति-पदावली, रामवृक्ष बेनीपुरी, पृ० १०३, पद सं० ७२

तिमिर दिग भरि घोर यामिनि अथिर बिजुरिक पाँतिया ।
विद्यापति कह कइसे गमाओब हरि बिना दिन-रातिया ॥[1]

यो तो कृष्णभक्तिकालीन प्राय सभी कवियो के पदो में लय का भावानुकूल सफल निर्वाह किया गया है किंतु मीरा के पद इस दृष्टिकोण से अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। लघु गुरु वर्णो की आवृत्ति, उतार-चढाव तथा समन्वित संतुलन और न्यूनाधिक मात्राओ से युक्त छोटी-बडी पंक्तियो के सहयोग से भावानुकूल द्रुत तथा विलम्बित लय की योजना द्वारा मीरा के पदो में संगीत की धारा सुन्दरतम रूप में प्रवाहित हुई है। उदाहरणस्वरूप देखिए— सयोग के क्षणो में कृष्ण के अनुराग-रस से भीज-भीज कर मतवाली मीरा होली की उन्मत्त उमग तथा हर्षोल्लास का यथातथ्य आभास देने के लिए द्रुत लय में छोटे-छोटे चरणो से युक्त पद का गायन करती हैं—

रग भरी रागभरी राग सू भरी री ।
होडी खेल्या स्याम सग रग सू भरी री ।
उडत गुलाल लाल बादला रो रग लाल ।
पिचका उडावा रग रग री झरी री ।
चोवा चदण अरगजा म्हा केसर णो गागर भरी री ।
मीरा दासी गिरधर नागर चेरी चरण धरी री ॥[2]

किंतु सयोगावस्था में आनद प्रदान करने वाली होली की क्रीडायें कृष्ण के वियोग में विरह-वेदना की उद्दीपक बन असहनीय हो रही हैं। अस्तु हृदय की खीझ उपालभ और कसक को प्रकट करने के लिए मीरा गुरुवर्णो के प्रयोग-बाहुल्य द्वारा विलम्बित लय का आश्रय ग्रहण करती है—

होडी पिया बिण लागा री खारो ।
सूणो गाव देस सब सूणो सूणी सेज अटारी ।
सूणी बिरहण पिव बिण डोडा तज गया पीव पियारो ।
बिरहा दुख भारी ॥
देस विदेसा णा जावा म्हारो अणेसा भारी ।
गणता गणता घिस गया रेखा आगरिया री सारी ।
आया णा री मुरारी ॥
बाज्या झाझ मिरदग मुरलिया बाज्या कर इकतारी ।
आया बसत पिया घर णा री म्हारी पीडा भारी ।
स्याम मण क्या री बिसारी ॥[3]

---

१ विद्यापति-पदावली, रामवृक्ष बेनीपुरी, पृ० ३६२, पद स० १९९
२ मीरा-स्मृति ग्रथ, मीरा-पदावली, पृ० २१, पद स० ७३

ठाढ़ी अरज करां गिरधारी राख्यां ड़ाज हमारी ।
मीरा रे प्रभु मिड़स्यो माधो जणम जणम री क्वांरी ।
मणे लागी दरसण तारी ॥[1]

तथा –

होड़ी पिया विण म्हाणे णा भावां घर आंगणां णा शुहावां ।
दीपां जोयां चोक पुरावां हेड़ी पिया परदेस शजावां ।
शूणी शेजा व्याड़ बुझावां जागा रेण वितावां ।
णीद नेणा णा आवां ॥

कब री ठाढ़ी म्हा मग जोवां णिश दिण विरह जगावां ।
क्या शूं मण री विथा बतावां हिवड़ो म्हां अकुड़ावां ।
पिया कब दरश दखावां ॥

दीख्यां णा कांई परम सणेही म्हारो सणेशा लावां ।
वां विरयां कब होशी म्हारो हंस पिय कण्ठ ड़गावां ।
मीरा होड़ी गावां ॥[2]

तुक अथवा अन्त्यानुप्रास –

लय पर नियंत्रण करने और पदों की संगीतात्मकता तथा नाद-सौंदर्य की वृद्धि में तुक अथवा अन्त्यानुप्रास अत्यधिक सहायक होता है । पद्य के चरणांत की अक्षर-मैत्री को तुक या अन्त्यानुप्रास कहते है ।[3]

---

१. मीरा-स्मृति-ग्रंथ, मीरा-पदावली, पृ० २६, पद सं० १०२

२. वही, पृ० २०, पद सं० ७०

३. व्यंजनं चेद्यथावस्थं सहाद्येन स्वरेण तु ।
आवर्त्यतेऽन्त्ययोज्यत्वादन्त्यानुप्रास एव तत् ॥ ६ ॥

"पहिले स्वर के साथ ही यदि यथावस्थ व्यंजन की आवृत्ति हो तो वह अन्त्यानुप्रास कहलाता है । इसका प्रयोग पद अथवा पाद आदि के अंत में ही होता है । अतः इसे अन्त्यानुप्रास कहते हैं ।"

साहित्य-दर्पण, विश्वनाथ शालिग्राम शास्त्री की टीका, पृ० ८२

"प्रत्येक पद के चार चरण होते हैं । इन चरणों के अन्त्याक्षरों को तुकांत कहते हैं ।" छंदः प्रभाकर, जगन्नाथप्रसाद, 'भानु' पृ० २३६

"तुकांत पर दो ढंग से विचार हो सकता है । एक तो चरण के अंत में पड़ने वाले स्वरों और अक्षरों के आधार पर और दूसरे प्रत्येक चरण के अन्य चरणों के समन्वय के विचार से होने वाले स्वरूप के आधार पर । पहले को तुक का अंतर्वर्ती और दूसरे को तुक का बहिर्वर्ती प्रकार कह सकते हैं । अन्तर्वर्ती तुक तीन प्रकार के माने गए हैं – उत्तम, मध्यम, अधम । ······ इन तीनों के भिन्न-भिन्न प्रकार के तीन-तीन भेद और माने गये

है, जिनके नाम ये हैं—उत्तम – सममरि, विषमसरि, कष्टसरि, मध्यम – असयोगमीलित, स्वरमीलित, दुर्मिल , अधम – अमिलसुमिल, आदिमत्तअमिल, अतमत्तअमिल ।

जहा तुकात में जितने वर्ण मात्रा सहित दिखाई दें उनका स्वरूप सब स्थानो में एक सा रहे और तुकात में पडनेवाले शब्द स्वत पूर्ण हो वहाँ 'सममरि' उत्तम तुकात होता है, जैसे – चलना, पलना, पालना, आदि –

आनन - कलानिधि में डूबी कला देख देख ,
चाहक चकोरों के उदास उर ऊलेंगे ।
दाडिम के दानो फल दाने उगलेंगे नहीं ,
कुद - कलियो के झुड झाड में न भूलेंगे ॥

जहाँ सभी तुकानो में शब्द एक से न हो, कोई तुक बडे शब्द का खड हो तो कोई पूर्ण, वहाँ 'विषमसरि' उत्तम तुकात होता है, जैसे –

त्यों अभिमान को कूप इतै ,
उतै कामना रूप सिलान की ढेरी ।

तू चल मूढ सभारि अरे मन ,
राह न जानी है रन अँधेरी ॥

यहाँ 'ढेरी' का तुकात 'अँधेरी' रखा गया है । जहा कुछ तुकात खडित और कुछ पूर्ण हो वहाँ 'कष्टसरि उत्तम तुकात होता है, जैसे 'निलाकिए', 'तिलोकिए', के साथ 'को किए' और 'रोकिए' । (कवितावली - सुदरकाड)

जहाँ सयुक्त वर्ण के तुकान में कोई असयुक्त वर्ण हो वहाँ 'असयोगमीलित' मध्यम तुकात होता है, जैसे –

बरसती है खचित मणियो की प्रभा ,
तेज में डूबी हुई है सब सभा ।

यहाँ प्रभा में 'प्र' सयुक्त वर्ण है और सभा में 'भ' असयुक्त वर्ण । यदि सभा के स्थान पर 'स्वभा' होता तो यह उत्तम तुकात कहा जाता ।

जहाँ तुकान में केवल स्वर मिलता हो वहाँ 'स्वरमीलित' मध्यम तुकात होता है, जैसे – जियँ, सुनै, मैं, कै, आदि । यहा केवल 'ऐं' स्वर का साम्य है ।

जहा अत का वर्ण या स्वर मिलता तो हो पर उसके पूर्व के स्वर-व्यजन एकदम भिन्न हो और विजातीय हो वहाँ 'दुर्मिल' मध्यम तुकात समझना चाहिए, जैसे – 'सरलपन ही था उसका मन । निराला पर था आभूपन' इसमें 'का मन' और 'भूपन' दुर्मिल है ।

जहाँ सरलतापूर्वक मिलनेवाले तुक के साथ एक आध शब्द बेमेल भी पडे हो वहाँ

'अमिलसुमिल' अधम तुकांत माना जाता है; जैसे – पलकें, अलकें, झलकें का तुकांत 'न छकैं' रखना।

जहाँ ऐसे तुकांत हों कि छंद के अंत की मात्राएँ और वर्ण तो मिलते हों पर तुकांत के आदि में स्वर विभिन्न हों वहाँ 'आदिमत्त अमिल' अधम तुकात माना जाता है। जैसे –

मृदु बोलन तोय सुधा श्रवती।
तुलसी वन-बेलिन में भंवती॥
नहिं जानिय कौन अहै युवती।
वहि तें अब औध है रूपवती॥

यहाँ 'वती' का तुकांत तो मिल गया है किंतु इसके पहले के स्वर एक से नहीं है।

जहाँ तुक की अंतिम मात्रा अमिल हो, केवल व्यंजन मिलता हो वहाँ 'अंतमत्त अमिल' तुकांत होता है; जैसे –

गंगे बढ़कर विष हुआ,
सुधा सदृश तव अंबु।
जीवन पाकर खो रहे,
जीवन जीव - कदंब॥

चरणों के समन्वय के आधार पर तुकांत छः ढंग के होते हैं –

(१) **सर्वान्त्य** – जिस छंद के चारों चरणों के अन्त्याक्षर एक से हों। यथा --
न ललचहु। मद तजहु। हरिभजहु। यमकरहु।

(२) **समान्त्य विषमान्त्य** – जिस छंद के सम से सम और विषम से विषम पद के अन्त्याक्षर मिलें। यथा –
जिहि सुमिरत सिधि होय, गणनायक करिवर वदन।
करहु अनुग्रह सोय, बुद्धि राशि शुभ गुण सदन॥

(३) **समान्त्य** – जिस छंद के सम चरणों के अन्त्याक्षर मिलते हों परन्तु विषम चरणों के नहीं। यथा –
सब तो। शरणा। गिरिजा। रमणा।

(४) **विषमान्त्य** –जिस छंद के विषम चरणों के अन्त्याक्षर मिलते हों परन्तु सम चरणों के नहीं। यथा –
लोभहि प्रिय जिमि दाम, कामिहि नारि पियारि जिमि।
तुलसी के मन राम, ऐसे ह्वै कब लागि हो॥

(५) **समविषमान्त्य** – जिस छंद के प्रथम पाद का अन्त्याक्षर दूसरे पद के अन्त्याक्षर से और तीसरे का चौथे से मिले। यथा –
जगो गुपाला। सुभोर काला।·कहै यशोदा। लहै प्रमोदा।

तुक के संयोग से संगीत की धारा स्वाभाविक गति से आगे बढ़ती जाती है। "तुकान्त का प्रभाव भी कुछ ऐसा होता है कि वह चरण के मध्य की स्वरभिन्नता को दबाकर अन्त में स्वर को एक ताल पर बैठा देता है। हृदय की लयात्मक प्रवृत्ति से अन्त्यानुप्रास या तुकांत का इतना सामंजस्य है कि पदोच्चारण के पहले ही विवक्षित पदांत की कल्पना से सम पर मस्तक झुक जाता है। ऐसा नहीं कि पाठक या श्रोता थके मजदूर की तरह घर पहुँचकर सर का बोझा धम्म से पटक देते हैं।"[1] तुक के प्रभाव और महत्व का प्रतिपादन करते हुए श्री सुमित्रानन्दन पंत कहते हैं — "तुक राग का हृदय है। जहां उसके प्राणों का स्पन्दन विशेष रूप से सुनाई पड़ता है। राग की समस्त-छोटी बड़ी नाड़ियाँ मानो अन्त्यानुप्रास के नाड़ी चक्र में केन्द्रित रहती हैं, जहाँ से नवीन बल तथा शुद्ध रक्त ग्रहण कर वे छंद के शरीर में स्फूर्ति संचार करती रहती हैं। जो स्थान ताल में सम का है वही स्थान छंद में तुक का। वहाँ पर राग शब्दों की सरल-तरल ऋजु-कुंचित 'परनों' में घूम फिर कर विराम ग्रहण करता उसका शिर जैसे अपनी ही स्पष्टता में हिल उठता है। जिस प्रकार अपने आरोह अवरोह में रागवादी स्वर पर बार-बार ठहर कर अपना रूप विशेष व्यक्त करता है, उसी प्रकार वाणी का राग भी तुक की पुनरावृत्ति से स्पष्ट तथा परिपुष्ट होकर लययुक्त हो जाता है।"[2] प० रामचन्द्र शुक्ल ने भी तुक का विधान नादसौंदर्य की वृद्धि के लिए आवश्यक माना है — "श्रुति कटु मान कर कुछ वर्णों का त्याग, वृत्त विधान, लय, अन्त्यानुप्रास आदि नादसौंदर्य साधन के लिए ही हैं।"[3]

संगीत पूर्ण होने के कारण कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में तुकों का सर्वत्र प्रयोग हुआ है। कृष्णभक्तिकालीन कवियों के पदों में सर्वान्त्य तुकान्त, समविषमान्त्य तुकांत, समसरि उत्तम तुकांत और विषमसरि उत्तम तुकांत का बाहुल्य है। उदाहरणस्वरूप इन प्रकारों की तुकों के कतिपय पद द्रष्टव्य होंगे —

सर्वान्त्य तुकांत —

सुंदर सखा की सोवा नैन।
परम स्वच्छ चपल अनियारे, सहज लगावत सैन॥

---

(६) भिन्न तुकांत — जिस छंद के सम से सम और विषम से विषम पदों के अन्त्याक्षर न मिलें। इसके तीन भेद हैं —
(क) प्रतिपद भिन्नांत्य — रामा जू। ध्यावोरे। भक्तों को। पावोगे।
(ख) पूर्वार्द्ध तुकांत — श्री रामा। विश्रामा। दै दीजे। दाया कै।
(ग) उत्तरार्द्ध तुकांत — दै दीजै। दाया कै। श्री रामा। विश्रामा।"
छंद प्रभाकर, जगन्नाथप्रसाद भानु, पृ० २३७ - ३८

१ जीवन के तत्व और काव्य के सिद्धांत, लक्ष्मीनारायण सुधांशु, पृ० १६८,
२ पल्लव, सुमित्रानंदन पंत, भूमिका, पृ० ४०
३ चिन्तामणि, प्रथम भाग, प० रामचन्द्र शुक्ल, स० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृ० १७६

कमल-मीन मृग खग आधीनहिं, तजि अपने सुख सब चैन ।
निरखि सबनि सखि, एक अंस पर सब सुख के ये दैन ॥
जब अपने रस गूढ़ भाव करि, कछुक जनावत सैंन ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवरधन-घर, जुवतिन मन हरि ऐंन ॥[1] (कुंभनदास)

ग्वालिन कृष्ण दरस सों अटकी ।
बार बार पनघट पर आवत, सिर यमुना जल मटकी ॥
मन मोंहन को रूप सुधानिधि, पिवत प्रेम रस गटकी ।
'कृष्णदास' धन्य धन्य राधिका, लोक लाज सब पटकी ॥[2] (कृष्णदास)

सब व्रज गोपी रहीं तकि ताक ।
कर कर गाँठि लसत सबहिन के, बन कों चलत जब छाक ॥
मधु मेवा पकवान मिठाई, घर घरतें लै निकसी थाक ।
'नंददास' प्रभु को यह भावत, प्रेम प्रीति के पाक ॥[3] (नंददास)

डगमगात आए नट नागर ।
कछु जँभात अलसात भोर भए, अरुन नैन झूमत निसि जागर ॥
रसिक गुपाल सुरति-रन को जस, सकल चिह्न लाए उर कागर ।
'चतुर्भुजदास' प्रभु गिरिधरन कुंज गढ़ रतिपति जीत्यौ रस सुख सागर ॥[4]
(चतुर्भुजदास)

लाडिलौ लड़ाइ बुलावत धैन ।
चढ़ि कदंब, धौरि धूंमरि काजर अरु पीयरी पूरत मधुर सुन बैन ॥
पुचकारत, पौंछत सुंदर कर, सकल सुभग सुख-ऐंन ।
'गोविंद' प्रभु को मुख देखि हूंकि-हूंकि, सबै स्रवत पय-फैन ॥[5]
(गोविंदस्वामी)

प्रीतम प्यारे ने हौं मोही ।
नैंक चितै इन चपल नैंन सों, कहा कहूँ तोही ॥
कहा कहूँ मोहि रह्यो न जावै, जब देख्यो चित गोही ।
'छीतस्वामी' गिरधरन निरखि के, अपनी सुधि हौं खोही ॥[6]
(छीतस्वामी)

---

१. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० १०६, पद सं० १०.
२. वही, पृ० २३२ पद सं० २८
३. वही, पृ० ३१९, पद सं० ८०
४. वही, पृ० २९२, पद सं० ७८.
५. वही, पृ० २४९, पद सं० १८.
६. वही, पृ० २६६, पद सं० १४.

युगल वर आवत हैं गठ जोरें ।
संग सोभित वृषभान नंदिनी ललितादिक तृणतोरे ।।
सीस सेहरो बन्यों लाल के निरख हसत मुख मोरें ।
निरख निरख बल जाय गदाधर छबिन बढ़ी कछु थोरें ।।[१]
(गदाधर भट्ट)

सखिन संग राधिका कुंवरि बीनति कुसुम कलियाँ ।
एक ही बानिक एक वेस क्रम स्याम लाल के हाथन रँगीली डलियाँ ।।
एक अनूपम माल बनावत एक परस्पर बेनी गुथत सोभित कुन्द कलियाँ ।
सूरदास मदनमोहन आय अचानक ठाड़े भये मानो हैं रंगरलियाँ ।।[२]
(सूरदास मदनमोहन)

अति ही अरुन तेरे नयन नलिन री ।
आलस युत इतरात रँगमगे भये निसि जागरन खिन मलिन री ।।
सिथिल पलक में उठति गोलक गति विधि यौ मोहन मृग सकत चलिन री ।
जै श्री हितहरिवंश हंस कल गामिनि सभ्रम देत भवरनि अलिन री ।।[३]
(हितहरिवंश)

अधिक हूतें अधिक उरज की चोट ।
अनी अयोर बाम धनुष बिनु, तकि बेधत तन ओट ।।
मोहन मृग मोह्यौ बिनु नाहिं, लगत न जानत चोट ।
'व्यास' बराबस हाव कियौ हठि, चपल अचल ओट ।।[४] (व्यास जी)

नाचत मोरनि संग स्याम मुदित स्यामाहि रिझावत ।
तैसीय कोकिला अलापति सुर देत तैसीई मेघ गर्जित मृदंग बजावत ।।
तैसीयै स्याम घटा निसिकारी तैसीये दामिनि कौंधि दीप दिखावत ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी रीझि राधे हँसि कंठ लगावत ।।[५]
(हरिदास स्वामी)

सजनी नव निकुंज द्रुम फूले ।
अलि कुल मनमथ करत कुलाहल सौरभ मनमथ भूले ।।
हरषि हिंडोरें रसिक रासिवर जुगल परस्पर भूले ।
श्री वीठल विपुल विनोद देखि नभ देव विमाननि भूले ।।[६]
(विट्ठलविपुल)

---

१ मोहिनीवाणी श्री श्री गदाधर भट्ट जी की, प्रकाशक कृष्णदास, प० ३९
२ अकबरी दरबार के हिंदी कवि, सरयूप्रसाद अग्रवाल, पृ० ४४८, पद स० ३
३ चौरासी पद, हितहरिवंश, प्रति स० ३८।२१५, प्रयाग-संग्रहालय, पद स० ८
४ भक्त कवि व्यास जी, वासुदेव गोस्वामी, व्यासवाणी, पृ० २८३, पद स० ३५६
५ पद संग्रह, प्रति स० ३७१।२६६, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, पृ० २४, पद स० १
६ पद संग्रह, प्रति स० १६२०।३१७०, हिंदी-संग्रहालय प्रयाग, पृ० ३९-४०, पद स० १३

ब्यारू की वेर अवेर न कीजियै वलि जाऊं थर थोरी ।
कवते वाट देखि नंद नंदन तव ही तें मिश्री फोरी ॥
हठ न करौं वैठौ चौकी पे संग लियें रावा गोरी ।
श्री भट्ट जुटि वैठे दोऊ तन देखि जीवै जुग जीवो जोरी ॥[1] (श्री भट्ट)

साँवरी शूरत मण रे वशी ।
गिरधर ध्यान धरां निश वासर मूरत मोहण म्हारे वशी ॥
कहा करां कित जावां सजणी म्हा तो स्याम डशी ।
मीरा के प्रभु कवरे मिड़ोगां णित णव प्रीत रशी ॥[2] (मीरा)

मोहन लाल वियारू कीजै ।
व्यंजन मीठे खाटे खारे रुचियों भाग जननी पे लीजै ॥
मधु मेवा पकवान मिठाई ता पर तातो पय पीजै ।
सखा सहित मिलो जेमो रुचि सों जूठन आसकरन को दीजै ॥[3]
(आसकरण)

समविषमान्त्य तुकांत –

तुम अलि वात नहीं कहि 'जानत' ।
निरगुन कथा वनाइ कहत नहि, विरह विथा उर 'आनत' ॥
प्रफुलित कमल देखि उड़ि धावत, सव कुल संग 'लिए' ।
और सुमन सौं मधु जाँचत हौ, फाटि न जात 'हिए' ॥
चातक स्वाति वूंद को गाहक, सदा रहत इक 'रूप' ।
कह जानै दादुर जल को व्रत, सागर औ सम 'कूप' ॥
वात कहौ अव ऐसी जासौं ताके मन तुम 'भावहु' ।
सूर वचन जैसो उपदेसत, तैसोई तुम 'पावहु' ॥[4] (सूरदास)

राधा रसिक गोपालहि भावै ।
सव गुन निपुन, नवल अंग सुंदर, प्रेम मुदित कोकिल स्वर गावै ॥
पहरि कुसूंमि कटाव की चोली, चंद्रवधू सी ठाढ़ी सोहै ।
सावन मास भूमि हरियारी, मृग-नैनी देखत मन मोहै ॥

---

१. जुगलसतक, श्री भट्ट, प्रति सं० ७१२।३२, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, पृ० ८, पद सं० १
२. मीरा-स्मृति ग्रंथ, मीरा-पदावली, पृ० २२, पद सं० ७७
३. अकवरी दरवार के हिंदी कवि, सरयूप्रसाद अग्रवाल, पृ० ४५१, पद सं० ३
४. सूरसागर, (भाग २), दशमस्कंध, पृ० १५६६, पद सं० ४६३२

उपमा कहा देउँ को लाइक, केहरि को वाही मृग लोचनि ।
'परमानंद' प्रभु प्रान-वल्लभा, चितवनि चारु काम-सर-मोचनि ॥'[1]

(परमानंददास)

दूलह गिरिधर लाल छबीलो, दुलहिन राधा गोरी ।
जिन देखत जिय में मन लाजत, ऐसी बनी है जोरी ॥
रतन जडित को बन्यो सेहरो, गज-मोतिन की माला ।
देखत बदन स्याम सुंदर को, मोहि रहीं ब्रज बाला ॥'[2] (नंददास)

ग्वालिनि तोहि कहत क्यों आयौ ।
मेरो कान्ह निपट बालक, क्यों चोरि माखन खायौ ॥
बूझि विचार देखि जिय अपुने, कहा कह्यो हौं तोहि ।
कचुकि-बंद तोरै यह कैसें, सो समुझि परत नहिं मोहि ॥
'चतुर्भुजदास' लाल गिरिधर सो, भूठी कहति बनाय ।
मेरो स्याम सकुच को लरिका, पर घर कबहूँ न जाय ॥'[3] (चतुर्भुजदास)

चितवत रहति सदा की गोकुल तन ।
बारबार खिरक ह्वै झाँकत, अति आतुर पुलकित मन ॥
नन्द सखा सुख संगहि चाहत, भरत कमल दल लोचन ।
ताही समै मिले 'गोविंद' प्रभु, कुंवर बिरह दुख मोचन ॥'[4]

(गोविंदस्वामी)

अरी हौं स्याम रूप लुभानी ।
मारग जाति मिले नँद नंदन, तन की दसा भुलानी ॥
मोरमुकुट सीस पर बाको, बाँकी चितवनि सोहै ।
अंग अंग भूषन बने सजनी, जो देखै सो मोहै ॥
मो तन मुरिके जब मुसिकाने, तब हौं छाकि रही ।
'छीतस्वामी' गिरिधर की चितवनि, जाति न कछू कही ॥'[5]

(छीतस्वामी)

सखी हौं स्याम रंग रँगी ।
देखि बिकाइ गयी वह मूरति, सूरति माँहि पगी ॥
संग हुतो अपनो सपनो सो, सोई रही रस खोई ।
जागेहु आगे दृष्टि परै सखि, नेकु न न्यारो होई ॥

---

१ अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० १६७, पद सं० ६६
२ वही, पृ० ३२०, पद सं० १८
३ वही, पृ० २७६, पद सं० १६
४ वही, पृ० २५७, पद सं० ५१
५ वही, पृ० २६६, पद सं० १२

एक जु मेरी अँखियनि में निसि द्योस रह्यो करि भौन ।
गाइ चरावन जाति सुन्यो सखि, सो धौं कन्हैया कौन ॥[१]

(गदाधर भट्ट)

जोवन मोर रोमावली सुफल फली कंचुकी वसंत ढाँपि ले चली वसंत पूजन ।
वरन वरन कुसुम प्रफुलित अंब मोर ठौर ठौर लागे री कोकिला कूजन ।
विविध सुगन्ध संभारि अरगजा गावत रितुराज राग सहित ब्रजवधू वन ।
सूरदास मदनमोहन प्यारी ओ पिय सहित चाहत कुसल सदा दोऊ जन ।[२]

(सूरदास मदनमोहन)

फिरत संग अलिकुल-मोर-चकोर ।
घनरु जुन्हाई सरद वसंत मनहुँ है जुगलकिसोर ॥

निकट कुरंग-कुरंगिनि आवत, सुनि मुरली-धुनि घोर ।
'व्यास' आस करि त्रास तजत सर, चक्रवाक भरि भोर ॥[३] (व्यास जी)

जन्म गवायो रैंन रे मूरिप अंधा ।
हरि विण कविण कटे क्यों फंधा ॥

पर घर रहै कहै मैं मेरा ।
आवागवण वहै भ्रम फेरा ॥[४] (परशुराम)

समसरि उत्तम तुकांत –

ऊधौ विरही प्रेम करै ।
ज्यौं विनु पुट पट गहत न रँग कौं, रँग न रसै परै ॥

ज्यौं घर दहै बीज अंकुर गिरि, तौ सत फरनि फरै ।
ज्यौं घट अनल दहत तन अपनौ, पुनि पय अमी भरै ॥

ज्यौं रन सूर सहै सर सन्मुख, तौ रवि रथहुँ अरै ।
सूर गुपाल प्रेम पथ चलि करि, क्यौं दुख-सुखनि डरै ॥[५] (सूरदास)

माई री ! चंद लग्यौ दुख दैन ।
कहाँ वे देस, कहाँ वे मोहन, कहाँ वे सुख की रैन ॥

---

१. मोहिनी वाणी श्री श्री गदाधर भट्ट जी की, प्रकाशक कृष्णदास, पृ० २५

२. अकबरी दरबार के हिंदी कवि, सरयूप्रसाद अग्रवाल, पृ० ४५०, पद सं० ११

३. भक्तकवि व्यास जी, वासुदेव गोस्वामी, व्यासवाणी, पृ० ३०८, पद सं० ४४३

४. रामसागर, परशुराम, प्रति सं० ६८०।४६२, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, रा० साग० ५३, पद सं० ४

५. सूरसागर, (भाग २), दशमस्कंध, पृ० १५८८, पद सं० ४६०४

तारे गिनत गई री सबै निसि, नैंक न लागे नैन ।
'परमानद' पिया बिछुरे तें, पल न परत चित चैन ॥[1] (परमानददास)

रूप देखि नैंननि पलक लागें नहीं ।
गोवरघन-घर अग-अग प्रति जहाँ हो परति दृष्टि रहति तहीं ॥
कहा कहौं कछु कहत न आयो चोर्यो मन माँगिबे दही ।
'कुंभनदास' प्रभु के मिलन को, सुदरि बात सखीनु सौं कही ॥[2]
(कुंभनदास)

तोकौं री स्याम कचुकी सोहैं ।
लहँगा पीत रगमगो सारी, उपमा कौं तहाँ कोहैं ॥
चिबुक बिंदु, वर नैंन, सु अजन, धरिकै जब जोहैं ॥
'चतुर्भुज' प्रभु गिरिघर नागर कौं, चितै चतुर मन मोहैं ॥[3]
(चतुर्भुजदास)

मोहन नैंनन तें न्हँह टरत ।
बिन देखें तलाबेली सी लागत, देखत मन जो हरत ॥
असन बसन सैन न सुधि आवै, अब मन कछु न करत ।
'गोविंद' बलि इमि कहत पियारी, सिख देरी कैसेक आवै भरत ॥[4]
(गोविंदस्वामी)

ललन की बतियाँ चोज सनी ।
परम कृपाल चितै करुनामय, लोचन-कोर-अनी ॥
उमगि हरे दोऊ सुरत सेज पै, टूटी तरकि तनी ।
परम उदार 'व्यास' की स्वामिनि, बकसति मौज घनी ॥[5] (व्यास जी)

नव नव नव निकुज नव बाला ।
नव रग रसिक रसीलो मोहन विलसत कुज बिहारी लाला ॥
नव मराल भाँति अवनि घरत पग कूजित नूपुर किंकिन जाला ।
श्री बीठल विपुल बिहारी के गर यौं राजत जैसे चपे की माला ॥[6]
(विट्ठलविपुल)

री म्हा बैठ्या जागां जगत सब सोवा ।
बिरहण बैठ्या रग महल मा णेणा लड्याँ पोवा ॥

---

१ अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २०२, पद स० ६६
२ वही, पृ० २०७, पद स० ११
३ वही, पृ० २८४, पद स० ४०
४ वही, पृ० २५५, पद स० ३६
५. भक्त कवि व्यास जी, वासुदेव गोस्वामी, व्यास वाणी, पृ० ३४३, पद स० ५७०
६ पद-सग्रह, प्रति स० १६२०।३१७० हिंदी-सग्रहालय प्रयाग, पद स० ३६

तारां गणता रेण विहावां शुख घड़यां री जोवां ।
मीरां रे प्रभु गिरधर नागर मिड़ विछड़यां णा होवां ॥[१] (मीरा)

मोहै दधि मथन दे वलि गई ।
जाउं वलवल वदन ऊपर छांड मथनी रई ॥
लाल देउंगी नवनीत लौंदा आर तुम कित ठई ।
सुत हित जान विलोक जसोमति प्रेम पुलकित मई ॥
लै उछंग लगाय उरसो प्रान जीवन जई ।
वालकेलि गुपाल जू की आसकरन नित नई ॥[२] (आसकरण)

विषमसरि उत्तम तुकांत –

जाकै लागी होइ सु 'जानै' ।
हौं कासों समुझाइ कहति हौं मधुकर लोग 'सयाने' ॥[३] (सूरदास)

पतियां वांचेहू न आवै ।
देखत अंक नैन जल पूरे, गदगद प्रेम जनावै ॥[४] (परमानंदास)

जगाई माई ! वोल बोल इन मोर ।
वरसत मेह अंधियारी चौमासे की, कैसै करौं नंदकिसोर ॥[५] (कुंभनदास)

आरती करत जसोदा प्रमुदित फूली अंग न मात ।
वलि-वलि कहि दुलरावति, आंगन मगन भई पुलकात ॥[६] (कृष्णदास)

हिडोंरे माई झूलत गिरिवर लाल ।
सँग राजत वृषभानु नंदिनी, अंग-अंग रूप रसाल ॥[७] (नंददास)

मैया मोहि माखन मिश्री भावै ।
मीठो दधि मधु घृत अपने कर, क्यों नहि मोहि खवावै ॥[८] (चतुर्भुजदास)

प्रीतम प्रीति ही तें पैयै ।
जदपि रूप, गुन, सील, सुघरता, इन वातन न रिझैयै ॥[९]
(गोविंदस्वामी)

---

१. मीरा-स्मृति-ग्रंथ, मीरा पदावली, पृ० २७ पद, सं० ६६
२. अकवरी दरवार के हिंदी कवि, सरयूप्रसाद अग्रवाल, पृ० ४५२, पद सं० १०
३. सूरसागर, (भाग २), दशम स्कंध, पृ० १५७७, पद सं० ४५६८
४. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २०४, पद सं० १०१
५. वही, पृ० १११, पद सं० ३२
६. वही, पृ० २२६, पद सं० २
७. वही, पृ० ३२१, पद सं० १६
८. वही, पृ० २७८, पद सं० ११
९. वही, पृ० २५७, पद सं० ५४

करत कलेऊ मोहन लाल।
माखन, मिश्री, दूध मलाई, फल मेवा परम रसाल ॥[1] (छीतस्वामी)
राधे रूप अद्भुत रीति।
सहज जे प्रतिकूल नो तन, रहे छाँडि अनीति ॥[2] (गदाधर भट्ट)
झूलत जुग कमनीय किसोर सखी चहुँ ओर झुलावत डोल।
ऊँची ध्वनि सुन चकित होत मन सब मिल गावत राग हिंडोल ॥[3]
(सूरदास मदनमोहन)
मधुरित वृंदावन आनंद न थोर।
राजत नागरी नव कुशल किशोर ॥[4] (हितहरिवंश)
रूप तेरौ री, मोपै बरन्यौ न जाइ।
रोम रोम रसना पावों, तौ गाऊँ तेरो गुन अघाइ ॥[5] (व्यास जी)
राजत रास रसिक रस रासे।
आस पास जुवती मुख मंडल मिलि फूले कमला से ॥[6] (बिहारिनदास)
अंतरवसी री मेरैं।
प्रीति परम दयाल पीव की लागि रही हियरैं ॥[7] (परशुराम)
बाड़ा मण न जमणा का तीर।
बा जमणा का निरमड पाणी सीतड होया सरीर ॥[8] (मीरा)
प्रात समय घर घरतें देखन को आई गोकुल की नारी।
अपनो किसन जगाय यसोदा आनंद मंगलकारी ॥[9] (आसकरण)

कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में प्रयुक्त ताल और उनकी समीक्षा

कृष्णभक्तिकालीन साहित्य के अधिकांश पदों के ऊपर तालों का उल्लेख नहीं मिलता। सूर, कृष्णदास, नंददास तथा छीतस्वामी के कुछ पदों के ऊपर अवश्य कुछ तालों का उल्लेख हुआ है। इन कवियों के पदों की तालानुसार संख्या निम्नलिखित प्रकार से है –

१ अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २६४, पद सं० २
२ मोहिनी वाणी श्री श्री गदाधर भट्ट जी महाराज की, प्रकाशक कृष्णदास, पृ० २६
३ अकबरी दरबार के हिंदी कवि, सरयूप्रसाद अग्रवाल, पृ० ४५०, पद सं० १२
४ चौरासी पद, हितहरिवंश, प्रति सं० ३८।२१५, प्रयाग-संग्रहालय, पद सं० २७
५ भक्त कवि व्यास जी, वासुदेव गोस्वामी, व्यास वाणी, पृ० ३०२, पद सं० ४२४
६ पद-संग्रह, प्रति सं० ३७१।२६६, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, पृ० १४८, पद सं० २२
७ रामसागर, परशुराम ६८०।४६२, का० ना० प्र० स०, पद सं० १३
८ मीरा-स्मृति-ग्रंथ, मीरा-पदावली, पृ० २, पद सं० ७
९ अकबरी दरबार के हिंदी कवि, सरयूप्रसाद अग्रवाल, पृ० ५११, पद सं० ८

सूरदासकृत सूरसागर में प्रयुक्त ताल

ताल	पदसंख्या
तिलाला	५

डा० दीनदयालु गुप्त के कृष्णदास के हस्तलिखित पद-संग्रह में प्रयुक्त ताल

ताल	पदसंख्या	ताल	पदसंख्या
रूपक	५	जतिताल	१२
चर्चरी	३	एकताल }	११
पटताल	७	इकताल }	
		कुलपद	३८

डा० दीनदयालु गुप्त के नंददास के हस्तलिखित पद-संग्रह में प्रयुक्त ताल

ताल	पदसंख्या	ताल	पदसंख्या
चौताल	१	इकताल	१
चंपक	२		
		कुलपद	४

डा० दीनदयालु गुप्त के छीतस्वामी के हस्तलिखत पद-संग्रह में प्रयुक्त ताल

ताल	पदसंख्या
चर्चरी	२

तालों की मात्राओं, गति और उनके विभाजन के रूप में विभिन्नता होती है जिसके फलस्वरूप प्रत्येक ताल की गति, चलन तथा लय में अन्तर रहता है अतः एक विशिष्ट पद को इच्छानुसार प्रत्येक ताल में बद्ध नही किया जा सकता वरन् जिस पद की जो गति, लय और चाल होती है उसी से साम्य रखने वाली ताल में ही उस पद का गायन संभव है।

कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में प्रयुक्त पदो के ऊपर जिन तालों का उल्लेख हुआ है वे प्रायः समीक्षा करने पर खरे उतरते हैं अर्थात् पदों के ऊपर लिखित तालों में ही वे पद सुविधापूर्वक, सुगमता से विना अधिक खींचतान किये गाये जा सकते हैं। उदाहरणस्वरूप कृष्णभक्तिकालीन कवियों के तालबद्ध रूप में कतिपय पद दृष्टव्य होंगे जिससे यह स्पष्ट प्रकट हो जायेगा कि कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में प्रयुक्त पद के ऊपर जिस ताल का उल्लेख किया गया है वह पद उसी ताल में गाया जा सकता है।

तिताला

हमारे प्रभु, औगुन चित न धरो।
समदरसी है नाम तुम्हारो, सोई पार करो॥

इक लोहा पूजा में राखत, इक घर बधिक परो ।
सो दुविधा पारस नहिं जानत, कचन करत खरो ॥
इक नदिया इक नार कहावत, मैलो नीर भरो ।
जब मिलि गए तब एक बरन ह्वै, गगा नाम परो ॥
तन माया ज्यौं ब्रह्म कहावत, सूर [illegible] मिलि बिगरो ,
कै इनको निरधार कीजियै, कै प्रन जात टरो ॥[1] (सूरदास)

त्रिताल में १६ मात्रायें होती हैं जो चार बराबर भागों में विभाजित होती है, पहली, पांचवी और तेरहवी मात्राओं पर ताली तथा नवीं मात्रा पर खाली होती है। ताल लिपि इस प्रकार है –

त्रिताल

मात्रा	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
ठेका	धा	धिन्	धिन्	धा	धा	धिन्	धिन्	धा	धा	तिन्	तिन्	ता	ता	धिन्	धिन्	धा
ताल	×				२				०				३			

पद "हमारे प्रभु औगुन " की तालबद्ध रचना

स्थाई

							ह	मा	रे	प्र	भु	ऽ	औ	गु	न
								२				०			
चि	त	न	ध	रौ	ऽ	ऽ	ह	मा	रे	प्र	भु	ऽ	औ	गु	न
३				×				२				०			

अतरा १ला

म	म	द	र	सी	ऽ	है	ऽ	ना	ऽ	म	तु	म्हाऽ	ऽ	रौ	ऽ
०				३				×				२			
सो	ऽ	ई	ऽ	पा	ऽ	र	क	री	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
०				३				×				२			
इ	क	लो	ऽ	हा	ऽ	पू	ऽ	जा	ऽ	में	ऽ	रा	ऽ	ख	त
०				३				×				२			
इ	क	घ	र	ब	धि	क	प	रौ	ऽ	ऽ	ह	मा	रे	प्र	भु
०				३				×				२			
ऽ	औ	गु	न	चि	त	न	ध	रौ							
०				३				×							

१ सूरसागर, (भाग १), प्रथमस्कध, पृ० ७२, पद स० २२०

अंतरा २ रा

सो	ऽ	दु	वि	धा	ऽ	पा	ऽ	र	स	न	हिं	जाऽ	ऽ	न	त
०				३				×				२			
कं	ऽ	च	न	क	र	त	ख	री	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
०				३				×				२			
इ	क	न	दि	या	ऽ	इ	क	ना	ऽ	र	क	हा	ऽ	व	त
०				३				×				२			
मैं	ऽ	लो	ऽ	नी	ऽ	र	भ	री	ऽ	ऽ	ह	मा	रे	प्र	भु
०				३				×				२			
ऽ	औ	गु	न	न्नि	त	न	ध	री							
०				२				×							

अंतरा ३ रा

त	न	मा	ऽ	या	ऽ	ज्यौ	ऽ	ब्र	ऽ	ह्म	क	हाऽ	ऽ	व	त
०				३				×				२			
ऽ	सू	र	सु	मि	लि	वि	ग	री	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
०				३				×				२			
कँ	ऽ	इ	न	कौ	ऽ	नि	र	धा	ऽ	र	की	ऽ	जि	यैं	ऽ
०				३				×				२			
कँ	ऽ	प्र	न	जा	ऽ	त	ट	री	ऽ	ऽ	ह	मा	रे	प्र	भु
०				३				×				२			
ऽ	औ	गु	न	चि	त	न	ध	री							
०				२				×							

रूपक ताल

कही न परति तेरे वदन की ओप ।
झलकनि नव मोतिनहि लजावत निरखत ससि सोभा भई लोप ।
पलक न लागत चाहत पिय तन उन्नत भौंह मानो घटा टोप ।
चलल कटाच्छ कुसुम सर तानति फरकत अधर कछु प्रेम प्रकोप ॥
प्रात समें आए स्याम मनोहर तोहि लड़ावत अपनी चोप ।
कृष्णदास प्रभु गोवरधन धन तू नागरी वे नागर गोप ॥[1] (कृष्णदास)

ताल रूपक में ७ मात्रायें होती हैं जो तीन भागों में विभक्त होती हैं । पहले भाग में ३ मात्रायें तथा दूसरे एवं तीसरे भाग में दो दो मात्रायें होती हैं । ताल लिपि इस प्रकार है —

---

१. हस्तलिखित पद संग्रह, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० १०

ताल रूपक

१	२	३	४	५	६	७
ती	ती	ना	धी	ना	धी	ना
×			२		३	

पद– 'कहि न परति तेरे बदन की ओप' की ताल बद्ध रचना

स्थाई

प	र	ति	ते	ऽ	रे	ऽ	ब	द	न	क	हिं	ना	ऽ
×			२		३		×			२		३	
ओ	ऽ	प	क	हि	ना	ऽ	प	र	ति	की	ऽ	ऽ	ऽ
×			२		३		×			२		२	

अंतरा पहला

न	व	मो	ति	म	हि	ल	जा	य	ति	भ	ल	क	ति
×			२		३		×			२		३	
स	सि	सो	भा	ऽ	म	ई	लो	ऽ	प	नि	र	ख	त
×			२		३		×			२		३	

अंतरा दूसरा

ला	ग	त	चा	ऽ	ह	त	पिय	त	न	प	ल	क	न
×			२		३		×			२		३	
भो	ऽ	ह	मा	नो	घ	टा	टो	ऽ	प	उ	ऽ	घ	त
×			२		३		×			२		३	

इकताल

तेरे चपल नैन जुग खंजन लागत नीके।
ताप हरन अति विदित विश्व में देखत शतदल लागत नीके॥
स्याम सेत राते अनियारे गिरिधर कुमर सुख जीके।
सुनि कृष्णदास सुरति कौतिक बस प्यारी दुलराए अपने पीके॥[1]

इकताल में १२ मात्रायें होती हैं जो ६ बराबर भागों में विभाजित होती हैं। पहली, पांचवी, नवी और ग्यारहवी पर ताली तथा तीसरी और सातवी पर खाली होती हैं। ताल लिपि इस प्रकार है –

---

१ हस्तलिखित पद-संग्रह, कृष्णदास, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० १४

इकताल

मात्रा	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
बोल	धीन्	धीन्	धागे	तिरकिट	तू	ना	क	त्ता	धागे	तिरकिट	धी	ना
ताल	×		०		२		०		३		४	

पद–'तेरे चपल नैंन जुग खंजन' की ताल वद्ध रचना

स्थाई

ते	रे	च	प	ल	नै	ऽ	न	जु	ग	खंऽ	ऽ
×		०		२		०		३		४	ऽ
ज	न	ला	ऽ	ग	त	नी	ऽ	के	ऽ	ऽ	ऽ
×		०		२		०		३		४	

अंतरा–१

ता	ऽ	प	ह	र	न	अ	ति	वि	दि	त	ऽ
×		०		२		०		३		४	
वि	ऽ	स्व	में	ऽ	ऽ	देऽ	ऽ	ख	त	श	त
×		०		२		०		३		४	
इ	ल	ला	ऽ	गऽ	त	नी	ऽ	ऽ	के	ऽ	ऽ
×		०		२		०		३		४	

इकताल

खेलत रास रसिक रस नागर ।
मंडित नव नागरी निकर-वर परम रूप कौ आगर ।।

विकच वदन वनिता वृंद अतिसै अमल सरद सी राजत ।
एका सुभग सरोवर में जैसे फूले कमल विराजत ।।

नव किसोर सुंदर सांवर अंग वलित ललित व्रजवाला ।
मानौं कंचन खचित नील मनि मंजुल पहिरी माला ।।

या छवि की उपमा कहिवे को ऐसौ कौन पढ्यौ है ।
'नंददास' प्रभु को कौतुक लखि कामहि काम वढ्यौ है ।।'[1]

(नंददास)

१. हस्तलिखित पद-संग्रह, नंददास, डा० दीनदयालु गुप्त, पृ० ५१

पद—'खेलत रास रसिक रस नागर' की ताल बद्ध रचना

स्थाई

खे	ऽ	ऽ	ल	ऽ	त	रा	ऽ	ऽ	स	ऽ	र
×		०		२		०		३		४	
सि	ऽ	क	र	ऽ	स	ना	ऽ	ऽ	ग	ऽ	र
×		०		२		०		३		४	

अन्तरा पहला

म	ऽ	ऽ	डि	ऽ	त	न	व	ऽ	ना	ऽ	ग
×		०		२		०		३		४	
री	ऽ	नि	क	र	ऽ	व	ऽ	र	प	र	म
×		०		२		०		३		४	
रू	ऽ	प	की	ऽ	ऽ	आ	ऽ	ऽ	ग	ऽ	र
×		०		२		०		३		४	

ताल चौताल

प्रातकाल नंदलाल पाग बनावत बाल दिखावत दर्पन रह्यो लसि ।
सुंदर भरन में मंजु मुकुर की छबि रही फबि,
मानो बिबि कमलन गहि आन्यो ससि ।।
बीच बीच चित्त के चोर मोर चंदवा दियें,
ता पर रतन पेंच बांधत हैं कसि ।
नंददास ललितादिक ओट भयें अवलोकत,
अतुलित छबि रही फबि फूल डारि हँसि ।।[1]

चौताल में १२ मात्रायें होती हैं जो ६ भागों में विभाजित होती हैं। यह पखावज पर बजाई जाती है और केवल ध्रुपद अथवा धमार गायन के साथ बजाई जाती है। ताल लिपि इस प्रकार है—

स्थाई

मात्रा	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
बोल	धा	धा	दिन्	ता	किट	धा	दिन्	ता	किट	तक	गदि	गन
ताल	×		०		२		०		३		४	

१ हस्तलिखित पद-संग्रह, नंददास, डा० दीनदयालु गुप्त, पृ० ५१

पद—'प्रातकाल नंदलाल पाग बनावत' की ताल बद्ध रचना

स्थाई

प्रा	ऽ	त	का	ऽ	ल	नं	ऽ	द	ला	ऽ	ल
×		०		२		०		३		४	
पा	ग	व	ना	व	त	वा	ला	दि	खा	व	त
×		०		२		०		३		४	
द	र	ऽ	प	ऽ	न	र	ह्यो	ऽ	ल	ऽ	सि
×		०		२		०		३		४	

अंतरा

सु	ऽ	ऽ	न्द	ऽ	र	क	र	न	में	ऽ	ऽ
×		०		२		०		३		४	
मं	ऽ	ऽ	जु	ऽ	ऽ	मु	कु	र	की	ऽ	ऽ
×		०		२		०		३		४	
छ	वि	र	ही	ऽ	ऽ	फ	वि	मा	ऽ	नौ	ऽ
×		०		२		०		३		४	
वि	ऽ	वि	ऽ	क	म	ल	ऽ	न	ग	ऽ	हि
×		०		२		०		३		४	
आ	ऽ	ऽ	न्यौ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	स	सि
×		०		२		०		३		४	

कृष्णभक्तिकालीन कवियों की गायन-प्रणाली

८४ वैष्णवन की वार्ता से ज्ञात होता है कि कृष्णभक्तिकालीन कवियों के द्वारा ख्याल की गायकी हेय तथा निम्न कोटि की मानी जाती थी।[1] अतः प्रश्न उठता है कि इन कवियों को कौन सी गायन शैली मान्य थी और इन्होंने अपने पदों में किस प्रकार की गायकी को अपनाया था ?

ध्रुवपद—कृष्णभक्तिकालीन कवियों के समय में ध्रुपद की गायकी का प्रचलन हो गया था।[2] "ध्रुवपद का अर्थ है ध्रुव, अर्थात् निश्चित पद। इसके निश्चत बँधे हुए पद

---

१. देखिए प्रस्तुत ग्रंथ के प्रथम अध्याय के अन्तर्गत कृष्णदास के संगीत-ज्ञान का परिचय।

२. "राजा मानसिंह ग्वालियर का शासक था और उसका संगीत-शास्त्र विषयक ज्ञान

होते है। इसके चार अवयव होते हैं। स्थायी, अन्तरा, संचारी और आभोग। कुछ ध्रुवपद ऐसे भी मिलते हैं जिन में स्थायी और अन्तरा केवल दो ही अवयव होते हैं। ध्रुवपद प्रबंध का रूपान्तर मालूम पडता है। आजकल के गवैये इसको धुरपद कहते हैं। यह अधिकतर चौताल, सूलफाकताल, झपा, गजताल, तीव्रा, ब्रह्मा, रुद्र इत्यादि तालों में गाया जाता है। ध्रुवपद गाने के लिए अच्छा दम चाहिये और आवाज में बडी कस चाहिए। ध्रुवपद में तानों, मुर्की इत्यादि नही प्रयोग करते। इस में राग की शुद्धता बहुत ही सुरक्षित रहती है। इसमें वीर, शृंगार और शान्त रस की प्रधानता रहती हैं। मध्यकाल में ध्रुवपद के गानेवाले 'कलावन्त कहलाते थे।"[1]

तथा कीर्ति अनुपम है। कहते हैं कि सबसे पहले ध्रुवपद का आविष्कार राजा मानसिंह ने किया था।" मानसिंह और मानकुतूहल, हरिहरनिवास द्विवेदी, राग-दर्पण, फकीरुल्ला, पृ० ५८

"मैं चाहता हूँ कि ग्वालियर के संगीत सम्प्रदाय पर मैं कुछ विस्तृत और स्पष्ट विवरण आपके सामने प्रस्तुत करूँ। यह सम्प्रदाय अकबर के सिंहासनारूढ होने के पहले ही एक महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण कर चुका था। इसके अग्रणी स्वयं ग्वालियर के राजा मानसिंह थे। ऐसा माना जाता है कि वे ही वर्तमान ध्रुपद शैली के प्रवर्तक हैं।" उत्तर भारतीय संगीत का संक्षिप्त इतिहास, भातखंडे, पृ० २३

"ध्रुवपद का गायन कब से प्रारम्भ हुआ यह आज ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता। फिर भी वह गये पाँच सो वर्षों से उत्तर की ओर लोकप्रिय है ऐसा कहने के लिए ऐतिहासिक आधार है। अकबर के दरबार में जो प्रसिद्ध गायक होने थे वे सारे ध्रुवपदिये अर्थात् ध्रुवपद गाने वाले ही होते थे।" हिंदुस्तानी-संगीत-पद्धति, क्रमिक पुस्तक मालिका चौथी पुस्तक, भातखंडे, पृ० ४५

" संगीत रत्नाकर के समय में प्रबन्ध, वस्तु, रूपक इत्यादि गान गाए जाते थे। प्रबन्ध के निम्नलिखित अवयव होते थे–उदग्रह, मेलापक, ध्रुव, अन्तरा और आभोग। जयदेव के गीतगोविंद के गान प्रबन्ध में ही हैं। परन्तु जयदेव के प्रबन्ध में दो ही अवयव मिलते हैं–ध्रुव और आभोग। कालांतर में प्रबन्ध की गायकी बिल्कुल उठ गई। आजकल उसका कोई उदाहरण नहीं मिलता। उसके स्थान में १५ वीं शताब्दी से ध्रुवपद की गायकी प्रचलित हुई।

ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर (१४८६–१५२६ ई०) ने ध्रुवपद की गायकी का का उत्थान कर उसे बहुत प्रोत्साहित किया। कुछ विद्वानों का मत है कि ध्रुवपद की गायकी का इन्होंने आविष्कार किया। ..... " विक्रम-स्मृति-ग्रंथ, भारतीय संगीत का विकास, श्री जयदेवसिंह, पृ० ७८५, तथा ६६१

१ वही, पृ० ७८२

'अनूप संगीत रत्नाकर' के रचयिता भाव भट्ट ने ध्रुवपद की परिभाषा निम्नलिखित प्रकार से दी है –

अथ ध्रौपद लक्षणम्
गीर्वाणमध्यदेशीय भाषासाहित्यराजितम् ।
द्विचतुर्वाक्यसंपन्नं नरनारीकथाश्रयम् ॥ १६५ ॥
श्रृंगाररसभावाढ्यं रागालापपदात्मकम् ।
पादांतानुप्रासयुक्तं पादांतयमकं च वा ॥ १६६ ॥
प्रतिपादं यत्रवद्धमेवं पादचतुष्टयम् ।
उद्ग्राहध्रुवकाभोगोत्तमं ध्रुवपदं स्मृतम् ॥ १६७ ॥[1]

फ़कीरुल्ला ने राग-दर्पण में ध्रुवपद की व्याख्या करते हुए कहा है – "इस में चार पंक्तियाँ होती हैं और सारे रसों में बाँधा जाता है। नायक मञ्जू, नायक बख्शू और 'सिंह' जैसा नाद करने वाला महमूद तथा नायक कर्ण ने ध्रुपद को इस प्रकार गाया कि इसके सामने पुराने गीत फीके पड़ गए। इसके दो कारण थे। पहला यह कि ध्रुवपद देशी भाषा में देशवारी गीत था तथा मार्गी में संस्कृत थी। इस लिए मार्गी पीछे हट गया और ध्रुवपद आगे बढ़ गया। दूसरा कारण यह था कि मार्गी एक शुद्ध राग था और ध्रुवपद में सब रागों का थोड़ा थोड़ा लिया गया है।"[2]

भातखंडे संगीत-शास्त्र में कहा गया है – "ध्रुवपद के बहुधा चार भाग होते हैं जिन्हें गायक तुक कहते हैं। इन भागों के नाम अस्थाई, अंतरा, संचारी तथा आभोग हैं। राग में विशेष महत्व का भाग अस्थाई अंतरा है। अंतिम भाग को आभोग कहते हैं। अस्थाई तथा आभोग के बीच में अंतरा आता है। संचारी में इन तीनों भागों में आये स्वरों का मिश्रण होता है। इन चारों भागों में से प्रत्येक भाग में कितने चरण रखे जायें यह गायक की इच्छा पर निर्भर है। वैसे तो प्रत्येक भाग में नियमानुसार चार चरण होते हैं परंतु आगे चल कर यह नियम उपेक्षित होता गया। प्राचीन ध्रुपदों में शब्द अत्यधिक होते थे। उन्हें याद रखने में गायकों को असुविधा होने लगी फलतः ध्रुवपद संक्षिप्त की जाने लगी। अनेक बार तुम्हें ध्रुवपद में अस्थाई तथा अंतरा ये दो ही भाग दृष्टिगोचर होंगे। ध्रुपद के साथ जो वाद्य बजाया जाता है उसे पखावज कहते हैं। ध्रुपद अधिकतर चौताल, सूलफाक, झंपा आदि, तीवरा इत्यादि तालों में गाये जाते हैं।"[3]

अष्टछाप के कवि नंददास का एक पद मिलता है जिसके ऊपर 'ध्रुवपद' शब्द लिखा है और जो ध्रुवपद की गायकी में गाया जा सकता है –

---

१. उत्तर भारतीय संगीत का संक्षिप्त इतिहास, भातखंडे, पृ० २३
२. मानसिंह और मानकुतूहल, हरिहरनिवास द्विवेदी, पृ० ९०–९१
३. भातखंडे संगीत-शास्त्र, (प्रथम भाग), श्री विष्णुनारायण भातखंडे, प्रकाशक संगीत कार्यालय हाथरस, पृ० ५२

(ध्रुव-पद)

अनत रति मान आए हो जू मेरे ग्रह, अरसीले नैन, बैन तोतरात,
अजन अधर धरे, पीक-लीक सोहै आछी, काहे को लजात झूँठी सौंह खात ।
पेंचहू सँवारत, पै पेचहू न आवत, एते पै तिरछी-भौंह करि चितै गात,
'नददास' प्रभु जो हिय में बसत प्यारो, ताही में भूलि नाम वाही को निकसि जात ।[1]

इस पद के अतिरिक्त नददास तथा अन्य कृष्णभक्तिकालीन कवियो के कुछ ऐसे पद प्राप्त होते है जिनके ऊपर यद्यपि 'ध्रुवपद' शब्द का उल्लेख नहीं किया गया है किन्तु वे ध्रुवपद की गायकी में गाये जा सकते है। उदाहरणस्वरूप इन कवियो के कुछ पद दृष्टव्य होगे जो ध्रुवपद की गायकी में गाए जा सकते हैं –

भले जू भले आए, मो मन भाए, प्यारे, रतिके चिह्न दुराए ,
सरबस दै आए, अजन लीक लाए, अधरन रँग लाए कहाँ आइ ठगाए ।
हौं हो जानत, और नाहि पहिचानत, घर छोरि बतियाँ बनाइ तुम लाए ,
'नददास' प्रभु तुम बहु नाइक, हम गँवारि, तुम चतुर कहाए ॥[2]

गोकुल की पनिहारी, पनियाँ भरन को चाली, बडे-बडे नैनि तामें खुभि रह्यो कजरा ,
पहिरे कसूमी-सारी अँग-अँग छबि भारी, गोरी गोरी बाँहन में मोतिन के गजरा ।
सखी सग लिये जात हँसि हँसि के करत बात, तनहूँ की सुधि भूली सीस धरे गगरी ।
'नददास' बलिहारी बीच मिले गिरिधारी, नैननि की सैननि में भूलि गई डगरी ॥[3]

(नददास)

आलस उनीदों नो आवन घूमत मूदे अति नीके लागत अरुन बरन ।
जानति हौं सुदर स्याम रजनी के चारियाम नेकहु न पाये मानौं पलक परन ।
अधरनि रग रेख उरहि चित्र विलेप सिथिल अग डगमगति चरन ।
चतुर्भुज प्रभु कहा बसन पलटि आए साचीए कहो गिरिराज धरन ॥[4] (चतुर्भुजदास)

आजु लाल अतिरामें बैठेअ निकसि छाजें सुधि न कछू री गात प्यारी प्रेम भगनाँ ।
लटपटी पाग सिर सिथिल चिकुर चारु उपटत उर हार प्यारी कठ लगनाँ ॥
आलस अरुन अति खरेई विलोचन भरि भरि आवत पिय सी अनुरगनाँ ।
'गोविंद' प्रभु पिय जानि सिरोमनि सुरति रग रस भोर लों जंगनाँ ॥[5] (गोविंदस्वामी)

---

१ हस्तलिखित पद-सग्रह नददास, डा० दीनदयालु गुप्त, पद स० १३
२ वही, पद स० १४
३ वही, पद स० २०
४ वही, चतुर्भुजदास, पद स० १५
५ गोविंदस्वामी, काकरौली, पृ० १२२, पद स० २७२

राधिका रवन गिरिवरधरन गोपीनाथ मदनमोहन कृष्ण नटवर बिहारी ।
रास क्रीड़ा रसिक ब्रज जुवती प्रानपति सकल दुख हरन गोगणनचारी ।।
सुखकरन जगत करन नंदनंदन नवल गोपपति नारि वल्लभ मुरारी ।
छीतस्वामी सकल जीव उधरन हित प्रकट वल्लभ सदन दनुजहारी ।।[1] (छीतस्वामी)

आइ हुं अकेली आज सांझी के कुसुम लेन भलो मिल गयो तू मोपें जात घर गाय ले ।
वरखत घनघोर मेह तामें कछू नहिं सूझत चुन्दरी चटक रंग नीरतें वचाय ले ।।
चपला चमक अचक चोधीं ते करत हो अरे वीर मोह अंग संग क्यों न लगाय ले ।
सूरदास मदनमोहन तुम कहावत सुजान छोड़ मान तज सयान कामरी उढ़ाय ले ।।[2]
(सूरदास मदनमोहन)

जोई जोई प्यारो करै सोई मोहि भावे भावे मोहि जोई सोई सोई करें प्यारे ।
मोको तो भावती ठौर प्यारे के नैनन में, प्यारो भयो चाहै मेरे नैननि के तारे ।।
मेरे तो मन तन प्राण हूं में प्रीतम प्रिय अपने कोटिक प्राण प्रीतम मोसों हारे ।
जै श्री हितहरिवंस हंस हंसिनी सांवल गौर कहो कौन करे जल तरंगनि न्यारे ।।[3]
(हितहरिवंश)

निसि अँधियारी दामिनि कौंधति, राधिका प्यारी विनु कैसें रहें वृन्दावन ।
घुमरि घुमरि घन-धुनि सुनि दादुर, मोर, पपीहा सुघर मलार सुनावन ।।
उनमद मदन महीपति दलसज, विरही को वल धीर हलावन ।
कोटिक कहि-कहि मैं समुझाई 'व्यास' स्वामिनी मान न कीजे सुनि स्त्रावन ।।[4]
(व्यास जी)

राधे चलि री हरि बोलत कोकिला अलापत सुरदेत पंछी राग वन्यों ।
जहां मोर काछ बांधे नृत्य करत मेघ पखावज बजावत वंधान गन्यों ।।
प्रकृति की कोऊ नाही यातें श्रुति के उनमान गहि हौं आई मैं जन्यों ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंज विहारी को अटपटी औरे कहत कछु औरै भन्यों ।।[5]
(हरिदास)

नीकै द्रुम फूले फूल श्रुभग कालिन्द्री कूल ईन्द्र धनुष राजै स्याम घटानि में ।
नीकै गृह लता कुंज नीकी आली अलि गुंज नीको राग रंग रह्यो पिकनि की रटनि में ।।
नीकी गति मंद मंद विहारी आनंद कंद नीको भेद वन्यों अरुन पीतपटनि में ।
श्री बीठल विपुल रंग ललिता के फूल अंग मिले लै देखोंगी नेननि की विधि छटनि में ।।[6]
(विट्ठलविपुल)

---

१. हस्तलिखित पद-संग्रह, छीतस्वामी, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० १०
२. अकवरी दरवार के हिंदी कवि, डा० सरयूप्रसाद अग्रवाल, पृ० ४४८, पद सं० ४
३. हित चौरासी, हितहरिवंश, प्रति सं० ३८।२१५, प्रयाग संग्रहालय, पद सं० १
४. व्यास-वाणी, वासुदेव गोस्वामी, पृ० २७५, पद सं० ६६६
५. पद-संग्रह, प्रति सं० ३७१।२६६, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, पद सं० १४
६. पद-संग्रह, प्रति सं० १६२०।३१७०, हिंदी-संग्रहालय प्रयाग, पृ० ४२, पद सं० २८

घूमरे गगन गरजत घन मद मद बरषत वृन्दावन सघन सरस पावस रितु सुहाई।
चातक पिक मोर मुदित नाचत गावत भरे निरखि दपति सब सपति सुखदाई॥
तैसोयै सरस सरदनिसि आई तैसोयै निकुज कुसुमनि छाई तैसोयै ललनालाल लडाई कठलपटाई।
श्री विहारनिदासि गाई गूढ ओढनी उठाइ रहे अग भीजि मिलि मलार गाई॥[1]
(विहारिनदास)

जैसा कि पूर्व दिखाया जा चुका है कृष्णभक्तिकालीन कवियो ने अपने पदो में 'ध्रुवपद' शब्द का उल्लेख किया है।[2]

ध्रुपद गायन के साथ मृदग अथवा पखावज की सगत की जाती है।[3] वार्तासाहित्य से ज्ञात होता है कि कृष्णभक्तिकालीन कवियो के गान के साथ मृदग बजाया जाता था।

इन उपर्युक्त कारणो तथा आधारो से यह सकेत मिलता है कि कृष्णभक्तिकालीन कवियो को ध्रुवपद की गायकी का पूर्ण ज्ञान था और सभवत वे अपने कुछ पदो को ध्रुवपद की गायकी में अवश्य गाते रहे होगे।

धमार—कृष्णभक्तिकालीन कवियो में धमार[4]-गायन का विशेष चलन था। वार्ता साहित्य में निम्नलिखित दो प्रसग दिए है —

"और फागन के दिन हते। सैन भोग सराय कें गुसाई जी बीडी अरगावत हते। तब गोविंदस्वामी धमार गावत हते। सो धमार—श्री गोवरधन राय लाला — ये धमार पूरी

---

१ पद-सग्रह, प्रति स० ३७१।२६६, काशी नगरी प्रचारिणी सभा, पत्र स० १३१, पद स० २
२ देखिए प्रस्तुत ग्रथ के चतुर्थ अध्याय के अन्तर्गत 'गायन के प्रकारों का उल्लेख'।
३ भातखडे सगीत-शास्त्र, प्रथम भाग, श्री विष्णुनारायण भातखडे, पृ० ५२
४ "होरी—होरी को धमार ताल में गाते है। इसको ध्रुवपद के कलावन्त ही गाते है। इसकी कविता में अधिकतर कृष्ण और गोपियों की लीला का वर्णन रहता है। धमार ताल में होने के कारण कभी-कभी लोग इसे केवल धमार ही कहते हैं। गायक इसे पहिले विलम्बित लय में गाते हैं फिर द्विगुन, तिगुन, चौगुन लय में गाते है। इसमें भी तानें नहीं लेते।

परम्परा से होरी को धमार ताल ही में गाते चले आये हैं और गायको की परिभाषा में होरी से यही समझा भी जाता है परतु आजकल जिस किसी कविता में होली का वर्णन होता है चाहे वह किसी भी ताल में हो 'होरी' कह बैठते है।" विक्रम-स्मृति-ग्रथ, श्री जयदेवसिंह, पृ० ७८५

करे विना गोविंदस्वामी चुप कर रहे । जव श्री गोसांईं जी ने आज्ञा करी गोविंददास धमार पूरी करो । तव गोविंदस्वामी ने कही महाराज धमार तो भाज गई है । वे तो घर में जाय घुसे । खेल तो वंद भयो अव कहा गावूं । ये सुन के श्री गुसांईं जी चुप कर रहे । पाछे वैठक में पधारे । जव एक तुक आपने वनाय के गोविंदस्वामी के नाम की वा धमार में धरी वा दिन सूं गोविंदस्वामी की धमार लोक में साढ़े वारह कही जाय है ।"[1]

तथा – "एक दिन राजा आसकरण न्हायवे जाते हते । सो श्री ठाकुर जी ने मुरली वजाई । सो राजा आसकरन जी सुन के श्री ठाकुर जी की आडी दौड गये । उहां श्री ठाकुर जी ठाडे हैं और अलौकिक सव लीला है और सव व्रजभक्त आवें हैं और होरी को खेल होवे हैं ऐसे दर्शन राजा आसकरण जी कुं भये । तव राजा आसकरन जी देहदशा भूल गये और दर्शन करके धमार गायवे लगे । सो धमार –

यो गोगुल के चौहटे रंगराची ग्वाल ।
मोहन खेले फाग नैन सलोने री रंगराची ग्वाल ॥

ये धमार में जैसे दर्शन करत गये तैसे गाते गये । ऐसे तीन दिन सूधी गायो करे और कुछ सुध न रही ।"[2]

इन प्रसंगों से ज्ञात होता है कि कृष्णभक्तिकालीन कवि धमार गाते थे और गोविंदस्वामी की धमार विशेष विख्यात थी । कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में 'धमार' शब्द का उल्लेख भी हुआ है ।[3]

ताल की कसौटी पर भी कृष्णभक्तिकालीन कवियों के धमार संबंधी अधिकांश पद खरे उतरते हैं । उदाहरण स्वरूप ऊपर के प्रसंग में दी गई राजा आसकरण की धमार दृष्टव्य होगी जिसका गायन धमार ताल में किया जा सकता है ।

ताल धमार में १४ मात्रायें होती हैं जो चार भागों में इस प्रकार विभक्त होती हैं कि पहले भाग में ५ मात्रायें, दूसरे में २, तीसरे में ३ और चौथे में ४ मात्रायें होती हैं । ताल लिपि इस प्रकार है –

ताल धमार

मात्रायें	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
वोल	क	धि	ट	धि	ट	धा	ऽ	ग	ति	ट	ति	ट	ता	ऽ
ताल	×					२		०			३			

१. २५२ वैष्णवन की वार्ता, पृ० ८
२. वही, पृ० १७२
३. देखिए प्रस्तुत ग्रंथ के चतुर्थ अध्याय के अन्तर्गत 'गायन के प्रकारों का उल्लेख' ।

पद – "या गोकुल के   " की ताल बद्ध रचना –

स्थाई

या	ऽ	गो	ऽ	ऽ	कु	ल	के	ऽ	ऽ	चो	ह	टे	ऽ
×					२		०			३			
ऽ	र	ग	ऽ	ऽ	रा	ऽ	चो	ऽ	ऽ	ग्वा	ऽ	ऽ	ल
×					२		०			३			

अतरा

मो	ऽ	ह	न	ऽ	खे	ऽ	ले	फा	ऽ	ग	नै	ऽ	न
×					२		०			३			
स	लो	ऽ	ने	ऽ	र	ऽ	ग	रा	ऽ	धी	ग्वा	ऽ	ल
×					२		०			३			

किंतु यहाँ यह उल्लेखनीय है कि कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में प्राप्त होली से सम्बद्ध सभी पदों का धमार ताल में गायन समव नही है। उदाहरणस्वरूप नददास का निम्नलिखित पद देखिये –

राग ललित

कुंज-कुटीर, मिलि जमुना तीर, खेलत होरी रस भरे बीर।
एक ओर बल-बीर धीर हरि, एकु ओर जुबतिन की भीर।
केकी, कीर, कल गुन गभीर पिक, डफ, मृदग, धुनि करि मंजीर।
पग मजीर कर लै अबीर, केसर के तीर, छिरकत हैं चीर।
कहूँ गये अधीर, रति पथ के तीर, आँनद-समीर परसत सरीर,
'नददास' प्रभु पहिरें हीर - नग मिटत पीर गहि सुख कौं सीर।[1]

प्रस्तुत पद होली के रूप में निम्नलिखित प्रकार से रूपक ताल में गेय है।

ताल रूपक में सात मात्रायें होती है जो तीन भागो में विभक्त होती हैं। पहले भाग में ३ मात्रायें, दूसरी में २ और तीसरी में भी २ मात्रायें होती हैं। ताल लिपि इस प्रकार है –

ताल रूपक

मात्रायें	१	२	३	४	५	६	७
बोल	ती	ती	ना	धी	ना	धी	ना
ताल ×				२		३	

पद – 'कुंज - कुटीर, मिलि जमुना तीर·········' की ताल-वद्ध रचना –

स्थाई

कुं ऽ	ज कु	टी ऽ र	मि लि	जमु ना	ती ऽ र
२	३	×	२	३	×
खे ऽ	ल त	हो ऽ री	र स	भ रे	वी ऽ र
२	३	×	२	३	×

अंतरा १

ए क	ओ र	व ऽ ल	भी र	धी र	ह ऽ रि
२	३	×	२	३	×
ए क	ओ र	जु व ति	न ऽ	की ऽ	भी ऽ र
२	३	×	२	३	×

अंतरा २

के ऽ	की ऽ	की ऽ र	क ल	गु न	गं भी र
२	३	×	२	३	×
पि क	ढ फ	मृ दं ग	धु नि	करि मं	जी ऽ र
२	३	×	२	३	×
प ग	मं ऽ	जी ऽ र	क र	ले अ	वी ऽ र
२	३	×	२	३	×
के स	र के	ती ऽ र	छि र	कत है	ची ऽ र
२	३	×	२	३	×

भजन कीर्तन

कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में ऐसे पदों का वाहुल्य है जो भजन और कीर्तन[1] पद्धति में गाये जा सकते हैं। "भगवान् के नाम, गुण, माहात्म्य, लीला, धाम तथा भगवद्भक्ति के यश का, प्रेम और श्रद्धा के साथ कथन, स्तुति, उच्चस्वर से पाठ तथा गान, 'कीर्तन' कहलाता है।......कीर्तन के अन्तर्गत भगवान् के गुण, लीला तथा नाम का कथन अनियमित स्वर से नहीं होता वरन् वह गान कला के सहारे पर होता है।"[2] भजन, कीर्तन

---

१. "भारतीय संगीत के इतिहास में भजन गायन प्राचीन माना जाता है। भिन्न-भिन्न प्रांतों में इसे भिन्न-भिन्न प्रकार से गाते हैं। भिन्न-भिन्न प्रांतों के लोग भजन को ही कीर्तन, हरिकथा, कालक्षेप, आभंग और नगर कीर्तन कहते हैं।" भजन संगीत, (पहला भाग), श्री पद वन्दोपाध्याय, पृ० २०

२. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, (भाग २), डा० दीनदयालु गुप्त, पृ० ५६२–६३

मे एक ही इष्ट की आराधना करने वाले जन कुछ वाद्ययत्रो यथा– करताल, झाँझ, मृदंग, मजीरे, एकतारा आदि की सगत में गायन करते हैं। विविध वाद्ययत्रों की सगत में गाये जाने के कारण भजन तथा केकीर्तन साधन में विशेष कष्ट नही होता। कीर्तन गायन की विशेषता यह है कि उसमें शब्द प्रधान होने के कारण अधिक स्वर विन्यास नही होता। प्राय समान तथा एक से ही स्वर समुदाय की पुनरुक्ति होती जाती है जिसके कारण साधारण जनता भी गायन में सहयोग दे लेती है। भजन में एक मात्र परमार्थिक विषयो, ईश्वर भक्ति अथवा उसकी महिमा का ही वर्णन किया जाता है। इसमें करुण, प्रेम, शान्त तथा वात्सल्य भावो की प्रधानता रहती है।

जैसा पूर्व कहा जा चुका है कि वार्ता तथा अन्य बाह्य आधारो से ज्ञात होता है कि बहुधा समस्त कृष्णभक्तिकालीन कवि कृष्ण के शुद्ध और प्रगाढ प्रेमानुराग, भक्ति और ध्यान में भजन तथा कीर्तन किया करते थे और कीर्तन करते करते यहाँ तक लीन हो जाते थे कि उन्हें अन्तर्सौदय प्राप्त हो जाता था।

यो तो कृष्णभक्तिकालीन सभी कवियो के भजन सगीत की अलौकिक निधि है जिनसे अनेक गायको को महान प्रगति मिली है और प्रसिद्ध सगीतज्ञो ने प्राय सभी के भजनो को अपनाया है –"प्रात स्मरणीय पूज्यपाद गुरुदेव, श्री विष्णु दिगम्बर जी ने कुछ बेसमझ गायको के 'पडित जी तो अब गायक नही रहे, भजनीक बन गये' ऐसे उलाहने मह कर भी सूर, मीरा आदि के पदो को अपने सगीत में हेतुपूर्वक स्थान दिया था और जीवन भर उसे निबाहा था। उनके शिष्य-प्रशिष्यो में भी वही सस्कार अवतरित हुए हैं और वे इन महाकवियो के पद-लालित्य का पूर्ण भाव अपने कण्ठ से ललकार कर जनता की आत्मा तक पहुँचाने का प्रयास कर रहे हैं।"[1] किंतु मीरा के भजन सगीतज्ञो में विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं और उनका अत्यधिक चलन है। "मीरा के 'भजन' बगाल में बहुत प्रसिद्ध हैं। यहाँ तक कि 'कीर्तन गान' इत्यादि प्रसगो में 'भजन' शब्द का व्यवहार जब हम करते हैं तो हमारा अभिप्राय मीरा के ही भजनो से होता है। यदि प्रसिद्ध गायक से भजन गाने के लिए कहा जाय तो वह उसका अर्थ मीरा के भजन ही समझता है और गायक लोग जब भजन गाना सीखना प्रारम्भ करते हैं तो पहले मीरा के ही भजन सीखते है।"[2]

मीरा के भजन गेयता, सरसता, सरलता और माधुर्य में अतुलनीय हैं। मीरा समाज की उपेक्षा कर प्रेम के सगीत राज्य में दीवानी हो कर विचरण करती थी और अपने घायल हृदय की पीडा, वेदना, प्रेम तथा विरह की कसक को सगीत के स्वर तथा लय में बाँध कर कहती जाती थी। यही कारण है कि उनके भजनो में मुक्त सगीत की स्वच्छन्द धारा इतनी तीव्र गति से प्रवाहित होती है कि वह सबको बरबस अपनी ओर आकर्षित कर अरसिक को भी रसलीन कर देती है।

---

१ सूर सगीत, (प्रथम भाग), प्राक्कथन, प० ओंकार नाथ ठाकुर, पृ० ६

२. मीरा स्मृति-ग्रथ, मीराबाई, प्रो० शशिभूषणदास गुप्त, पृ० ७८

विष्णु पद

वार्ता साहित्य से ज्ञात होता है कि कृष्णभक्तिकालीन कवि 'गाया करते थे।'[1] फ़कीरुल्ला 'विष्णुपद' का वर्णद करते हुए कहते हैं —"मथुरा में एक राग और गाया जाता है जिसे विष्णुपद कहते है। उसमें चार वोल से लेकर आठ वोल तक होते है। इसमें कृष्णजी की स्तुति होती है। इसमें पखावज वजाई जाती है।"[2]

सोरीन्द्रमोहन ने गीतावली में 'विष्णुपद' की व्याख्या करते हुए लिखा है—'जिस गाने में सेरेफ रामजी का और श्री कृष्ण जी का स्तुत वर्णन होता है उसका नाम विष्णुपद। इसमें रचना करुण रस मिला होना चाहिये। विष्णुपद का चरण या तुक का कुछ ठिकाना नाहि। इसमें इच्छाधीन वहुत तुक रहते हैं। सुरदास वावा जी नाम करके एक साधु ने ऐसा नया तरह को गाना का सृष्टि किया था।'[3]

किस प्रकार की गायन-प्रणाली को विष्णुपद कहा जाता था। इसका निश्चित रूप से ज्ञान नही होता। संभवतः कृष्णभक्तिकालीन गायक कवियों के भजनों को विष्णुपद कहा जाता रहा हो।

१. वार्ता साहित्य में वर्णित विष्णुपद संवंधी प्रसंग, देखिए, प्रस्तुत ग्रंथ का प्रथम अध्याय
२. मानसिंह और मानकुतूहल, हरिहरनिवास द्विवेदी, पृ० ९७
३. गीतावली, सोरीन्द्र मोहन टैगोर, पृ० १५

परिशिष्ट

हस्तलिखित ग्रंथ

(क) एशियाटिक सोसाइटी से प्राप्त–

पंचम संहिता, नारद
रागमाला, मेघकरण

(ख) डा० दीनदयालु जी गुप्त के सौजन्य से प्राप्त–

हस्तलिखित पद-संग्रह, कृष्णदास
वही, कुंभनदास
वही, गोविंदस्वामी
वही, चतुर्भुजदास
वही, छीतस्वामी
वही, नंददास
वही, परमानंददास

(ग) नागरी - प्रचारिणी - सभा, काशी से प्राप्त–

जुगलसतक, श्री भट्ट, प्रति सं० २५१।३२
वही, प्रति सं० ७१२।३२
वही, प्रति सं० २७६६।१६६६
पद-संग्रह, हरिदास, विट्ठलविपुल, बिहारिनदास, प्रति सं० ३७१।२६६
रामसागर, परशुराम, प्रति सं० ६८०।४६२
श्री चौरासी जू, हितहरिवंश, प्रति सं० २८६६।१७८१
श्री चौरासी पद, हितहरिवंश, प्रति सं० २८८७।१७९०
श्री मच्चोरासी, हितहरिवंश, प्रति सं० २८००।१७८२

हितहरिवंश चौरासी, प्रति सं० १०५।५५
वही, प्रति सं० ५०२।५५
वही, प्रति सं० ७०५।५३०

(घ) श्री व्रजरत्नदास जी वनारस के सौजन्य से प्राप्त–

दान लीला, गंग ग्वाल
मोती लीला, गंग ग्वाल
राधाजी की जन्म लीला, गंग ग्वाल

(च) श्री वालकृष्णदास जी, चौखम्वा वनारस के सौजन्य से प्राप्त–

श्री गदाधर भट्ट जी महाराज की वानी

(छ) व्यास-स्मारक-हस्तलिखित-ग्रंथालय, प्रयाग-संग्रहालय से प्राप्त–

चौरासी पद, हितहरिवंश, प्रति सं० ३८।२१५
वही, प्रति सं० ८५।२१६
वही, प्रति सं० २१७।१०३
रागमाल, प्रति सं २०६।२१६
वही, प्रति सं० २३२।२१६
श्री कृष्ण लीला, प्रति सं० १६५।२१६
संगीत प्रवंध सार भाषा, हरिवल्लभ प्रति सं० १०७।२१०

(ज) हिन्दी-संग्रहालय, हिंदी-साहित्य,-समेलन प्रयाग से प्राप्त–

उत्सव के पद, प्रति सं० १४५५।२५५५
चौरासी पद, हितहरिवंश, प्रति सं० १३६१।२१६०
पद-संग्रह, हरिदास, विट्ठलविपुल, विहारिनदास, प्रति सं १६२०।३१७०
राग रत्नाकर, राधाकृष्ण
संगीतदर्पण, भर्त विहारीलाल

प्रकाशित ग्रंथ

हिन्दी–

ग्रंथ नाम– विशेष विवरण–

अष्टछाप: प्रकाशक विद्याविभाग कांकरौली, संस्करण सं० १६६८ वि०

अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रादाय : डा० दीनदयालु गुप्त, प्रकाशक हिंदी साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग, संस्करण संवत २००४ वि०

अष्टछाप परिचय प्रभुदयाल मीतल, प्रकाशक अग्रवाल प्रेस मथुरा, सस्करण सवत् २००६ वि०

अकबरी दरबार के हिंदी कवि डा० सरयूप्रसाद अग्रवाल, प्रकाशक लखनऊ विश्वविद्यालय, सस्करण सवत् २००७ वि०

आधुनिक कवि (२) सुमित्रानदन पत, प्रकाशक हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, चतुर्थ सस्करण सवत् २००६ वि०

उत्तरभारतीय सगीत का सक्षिप्त इतिहास प० विश्णुनारायण भातखडे, प्रकाशक लक्ष्मीनारायण गर्ग, सगीत कार्यालय हाथरस, उत्तर प्रदेश, सस्करण सन १६५४ ई०

कबीर-ग्रथावली सपादक श्यामसुन्दर दास, प्रकाशक नागरी प्रचारणी सभा, काशी, सस्करण सन् १६४७ ई०

कला, कल्पना और साहित्य सत्येन्द्र, प्रकाशक साहित्य रत्नभडार, आगरा, प्रथम सस्करण सवत् २००७ वि०

कविता कौमुदी, तीसरा भाग सम्पादक रामनरेश त्रिपाठी, प्रकाशक नवनीत प्रकाशन लिमिटेड, तारदेव बबई, दूसरा सस्करण सन् १६५५ ई०

काव्य कल्पद्रुम सेठ कन्हैयालाल पोद्दार, प्रकाशक प० जगन्नाथप्रसाद शर्मा, मथुरा, मुद्रक सत्यव्रत शर्मा, शाति प्रेस, आगरा

काव्यचर्चा . आचार्य ललिताप्रसाद सुकुल, प्रकाशक साहित्य-सौध, १५ बकिमचटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता, सस्करण सवत् २००८ वि०

काव्याग कौमुदी प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, प्रकाशक नवकिशोर एड ब्रदर्स, बुकसेलर्स, बनारस, सिटी, प्रथमावृत्ति सवत् १६६१ वि०

कीर्तन सग्रह भाग १, २, तथा ३ प्रकाशक लल्लूभाई छगनलाल देसाई, व्यवस्थापक "श्री भक्तिग्रन्थमाला" कार्यालय, रीचीरोड, न ५७, मेडाउपर, अहमदाबाद

कुभनदास · प्रकाशक विद्याविभाग, कांकरौली

गद्यपथ सुमित्रानद पत, साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग

गीताजलि रवीन्द्रनाथ ठाकुर, अनुवादक श्री लालधर त्रिपाठी, प्रथम सस्करण सन् १६४६ ई०

गीतावली सौरीन्द्र मोहन टैगोर

गोविंदस्वामी प्रकाशक विद्याविभाग काकरौली, सस्करण सवत् २००८ वि०

चद वरदायी और उनका काव्य डॉ विपिन विहारी त्रिवेदी, प्रकाशक हिंदुस्तानी एकेडमी, प्रयाग, १६५२ ई०

चितामणि प० रामचन्द्र शुक्ल, प्रकाशक इडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग

चौरासी वैष्णवन की वार्ता : प्रकाशक गंगाविष्णु श्री कृष्णदास जी, लक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस, कल्याण, मुंबई, संस्करण संवत् १९८५ वि०

चौरासी वैष्णवन की वार्ता : गो० श्री हरिराय जी प्रणीत सम्पादक द्वारिकादास परीख, प्रकाशक अग्रवाल प्रेस मथुरा, प्रथम संस्करण सवत् २००५ वि०

छंदः प्रभाकर : जगन्नाथप्रसाद भानु, प्रकाशक जगन्नाथ प्रेस, विलासपुर, आठवाँ संस्करण संवत् १९९२ वि०

जायसी-ग्रंथावली : संपादक पं० रामचन्द्र शुक्ल, प्रकाशक नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पंचम संस्करण संवत् २००८ वि०

जायसी-ग्रंथावली : संपादक डॉ० माताप्रसाद गुप्त, प्रकाशक हिंदुस्तानी एकेडमी, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण सन् १९५१ ई०

जीवन के तत्व और काव्य के सिद्धांत : लक्ष्मीनारायण सुधांशु, जनवाणी प्रकाशन, १६१।१ हरिसन रोड कलकत्ता, द्वितीय संस्करण सन् १९४१ ई०

दर्शन और जीवन : डॉ० सम्पूर्णानंद, प्रकाशक श्री परिपूर्णानंद वर्मा, कानपुर सन् १९४१ ई०

दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता : सम्पादक श्री व्रजभूषण शर्मा व श्री द्वारिकादास पारीख, प्रकाशक शुद्धाद्वैवत् एकेडेमी, काँकरौली

नंददास (दो भाग) : सम्पादक श्री उमाशंकर शुक्ल, प्रकाशक प्रयागविश्वविद्यालय, प्रथम, संस्करण सन् १९४२ ई०

नृत्य अंक : प्रकाशक संगीत-कार्यालय हाथरस, तृतीय संस्करण सन् १९५४ ई०

नृत्यशाला, प्रथम भाग : प्रकाशक श्री प्रभुलाल गर्ग, संगीत कार्यालय, हाथरस, अंक १

नागर समुच्चय : नागरीदास, प्रकाशक ज्ञानसागर प्रेस, मुंबई, संस्करण संवत् १९५५ वि०

निबंध संग्रह : संकलनकर्त्ता डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, प्रकाशक श्रीकृष्णलाल, साहित्य-भवन लिमिटेड, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण १९५३ ई०

पल्लव : श्री सुमित्रानंदन पंत, प्रकाशक इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग, द्वितीय वृत्ति, सन् १९३१ ई०

प्रबंध पद्म : श्री सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', संपादक तथा प्रकाशक श्री दुलारे लाल भार्गव, गंगापुस्तकमाला, कार्यालय, लखनऊ, प्रथम आवृत्ति संवत् १९९१ वि०

प्रदीप : श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, प्रेमा पुस्तक माला, इंडियन प्रेस लिमिटेड, जबलपुर, प्रथम संस्करण दिसम्बर १९३३ ई०

पृथ्वीराजरासो : चन्दवरदायी, नागरी प्रचारिणी सभा, संस्करण सन् १९०१–५ ई०

पाश्चात्य साहित्यालोचन के सिद्धांत श्री लीलाधर गुप्त, प्रकाशक हिंदुस्तानी एकेडेमी, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण १९५२ ई०

ब्रजभाषा व्याकरण डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, प्रकाशक रामनारायण लाल इलाहाबाद, संस्करण सन् १९५४ ई०

बिहारी सतसई टीकाकार श्री रामवृक्ष बेनीपुरी, प्रकाशक पुस्तक-भंडार लहेरिया सराय, चतुर्थ संस्करण

भक्तकवि व्यास जी वासुदेव गोस्वामी, प्रकाशक अग्रवाल प्रेस, मथुरा, प्रथम संस्करण सं० २००९ वि०

भक्तनामावली ध्रुवदास, संपादक श्री राधाकृष्णदास, प्रकाशक इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग, संस्करण १९२८ ई०

भक्तमाल टीका टीकाकार प्रियादास, प्रकाशक श्री लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, कल्याण, मुंबई, संवत १९६८ वि०

भक्तमाल, भक्तकल्पद्रुम टीका टीकाकार श्री प्रतापसिंह, प्रकाशक, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, संस्करण सन् १९२६ ई०

भक्तमाल, भक्तिसुधास्वादतिलक टीकाकार श्री सीताराम शरण भगवान प्रसाद, रूपकला, प्रकाशक नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, संस्करण १९३७ ई०

भक्तमाल रामरसिकावली टीकाकार महाराज रघुराजसिंह, प्रकाशक, वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बंबई, संस्करण संवत १९७१ वि०

भक्तमाल हरिभक्ति प्रकाशिका प्रकाशक लक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस, संस्करण संवत् १९८१ वि०

भजन संगीत, पहला भाग श्री पदवंदोपाध्याय, मुद्रक शर्मा ब्रादर्स, इलेक्ट्रिक प्रेस, अलवर, संस्करण सन् १९४१ ई०

भ्रमर गीतसागर संपादक आचार्य रामचंद्र शुक्ल, प्रकाशक गोपालदास सुंदरदास, साहित्य सेवा सदन, बनारस सिटी, चतुर्थ संस्करण संवत् १९९९ वि०

भातखंडे-संगीत शास्त्र विष्णुनारायण भातखंडे, अनुवादक विश्वम्भर नाथ भट्ट तथा श्री सुदामाप्रसाद दुबे, प्रकाशक प्रभुलाल गर्ग, संगीत कार्यालय, हाथरस, संस्करण प्रथम भाग, सितम्बर १९५१, दूसरा भाग, मार्च १९५३ ई०

भाषा की शक्ति और अन्य निबंध सम्पूर्णानंद, प्रकाशक उमाशंकर सिंह, मुद्रक इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग, संस्करण सन् १९५४ ई०

मानसिंह और मानकुतूहल श्री हरिहर निवास द्विवेदी, प्रकाशक विद्यामंदिर प्रकाशन, मुरार (ग्वालियर), प्रथम संस्करण संवत २०१० वि०

मिश्रबंधुविनोद मिश्रबंधु, प्रकाशक हिंदी ग्रंथ प्रसारक मण्डली खंडवा व प्रयाग, संस्करण संवत् १९७० वि०

मीरा माधुरी : सपादक व्रजरत्नदास, प्रकाशक हिंदी साहित्य कुटीर, काशी, संस्करण संवत् २००५ वि०

मीरा-स्मृति-ग्रंथ : प्रकाशक वंगीय हिंदी परिषद, कलकत्ता, संस्करण संवत् २००६ वि०

मोहनी वाणी श्री श्री गदाधर भट्ट जी की : प्रकाशक कृष्णदास, कुसुम सरोवर (गोवर्धन), संस्करण संवत् २००० वि०

यशोधरा : श्री मैथिलीशरण गुप्त, प्रकाशक और मुद्रक साहित्य प्रेस, चिरगांव (झाँसी), संस्करण संवत् २०१० वि०

यामा : महादेवी वर्मा, प्रकाशक किताविस्तान, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण सन् १९४७ ई०

रसज्ञ रंजन : महावीर प्रसाद द्विवेदी, प्रकाशक राष्ट्रीय हिंदी मंदिर, जवलपुर, प्रथम संस्करण वैशाख संवत् १९७९ वि०

राग चंद्रिकासार : पं० विष्णु शर्मा, प्रकाशक निर्णय सागर प्रेस, वम्बई, संस्करण संवत् १८३३ वि०

राग दर्पण : एम० एस० टैगोर

राग रत्नाकर : खेमराज श्री कृष्णदास, श्री वेंकटेश्वर प्रेस, वम्वई, संस्करण संवत् १९७८ वि०

राजस्थान का पिंगल साहित्य : पं० मोतीलाल मेनारिया, प्रकाशक हितैषी पुस्तक भण्डार, उदयपुर, प्रथम संस्करण १९२५ ई०

रामचरित मानस : तुलसीदास, टीकाकार हनुमान प्रसाद पोद्दार, प्रकाशक गीता प्रेस, गोरखपुर, पंचम संस्करण संवत् २००९ वि०

रेवातट (पृथ्वीराजसो) २७वाँ समय : महाकवि चंदरवरदायी कृत, सम्पादक डॉ० विपिन विहारी त्रिवेदी, प्रकाशक हिंदी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, सन् १९५३ ई०

व्यासवाणी : प्रकाशक राधाकिशोर गोस्वामी, वृन्दावन, संस्करण संवत् १९९४ वि०

वाङ्मयविमर्श : विश्वनाथ मिश्र, प्रकाशक हिंदी साहित्य कुटीर, वनारस, द्वितीय संस्करण संवत २००५ वि०

विक्रमस्मृति ग्रंथ :

विद्यापति पदावली : टीकाकार श्री कुमुद विद्यालंकार, प्रकाशक, रीगल बुक डिपो, दिल्ली, संस्करण संवत् २०११ वि०

विद्यापति की पदावली : टीकाकार श्री रामवृक्ष वेनीपुरी, पुस्तक भंडार, पटना, लहरिया सराय

शिवसिंह सरोज : शिवसिंह इंसपेक्टर पुलिस, मुंशी नवलकिशोर प्रेस, संस्करण नवम्बर सन् १८८३ वि०

श्री गोवर्धननाथ जी के प्राक्टय की वार्ता : श्री गोवर्द्धनाथ जी, संपादक तथा प्रकाशक, मोहनलाल विष्णुलाल पाण्ड्या, वेंकटेश्वर प्रेस, वम्बई

संगीत कौमुदी विक्रमादित्य सिंह निगम, मुद्रक लक्ष्मीप्रसाद पांडेय, लक्ष्मी प्रिंटिंग प्रेस, दुगावा, लखनऊ

संगीत तरंग राधामोहन सेन

संगीत रागकल्पद्रुम संपादक कृष्णानंद व्यास, प्रकाशक, बंगीय साहित्य परिषद मंदिर, कलकत्ता

संगीत शिक्षा, भाग २ श्री कृष्णनारायण रातांजनकर, प्रिंसिपल मैरिस कालेज आफ हिन्दुस्तानी म्यूज़िक, लखनऊ, प्रकाशक महादेवप्रसाद श्रीवास्तव, संस्करण संवत् १९९२ वि०

संगीत सागर संपादक और प्रकाशक प्रभुदयाल गर्ग, संगीत कार्यालय, हाथरस, चतुर्थ संस्करण

संगीत सीकर श्री विश्वम्भरनाथ भट्ट तथा श्री हरिश्चन्द्र श्रीवास्तवा, प्रकाशक प्रभुलाल गर्ग, संगीत कार्यालय, हाथरस, द्वितीय संस्करण अक्टूबर १९५२ ई०

समाज और साहित्य आनंदकुमार, प्रकाशक हिंदी मंदिर, प्रयाग, प्रथम संस्करण जुलाई १९३८ ई०

साकेत मैथिलीशरण गुप्त, प्रकाशक साहित्य सदन, चिरगांव (झांसी)

साहित्य का मर्म आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, लखनऊ विश्वविद्यालय व्याख्यानमाला १, प्रकाशक विश्वविद्यालय लखनऊ, प्रथमावृत्ति

साहित्यचिंता डा० देवराज, प्रकाशक गौतम बुक डिपो, नई सड़क दिल्ली, प्रथम संस्करण १९५० ई०

साहित्य जिज्ञासा आचार्य ललिताप्रसाद सुकुल, प्रकाशक रामलाल पुरी, आत्माराम एंड संस, काश्मीरी गेट, दिल्ली, संस्करण सन् १९५२ ई०

सिद्धांत और अध्ययन बाबू गुलाबराय, प्रकाशक प्रतिभा प्रकाशन मंदिर, दिल्ली मुद्रक साहित्य प्रेस, आगरा, प्रथम संस्करण

सूर संगीत (प्रथम भाग) प्रकाशक श्री प्रभुलाल गर्ग, संगीत कार्यालय हाथरस, प्रथम संस्करण अगस्त सन् १९५२ ई०

सूरसागर सूरदास, प्रकाशक नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, प्रथम संस्करण, पहला खंड संवत् २००५ वि०, दूसरा खंड संवत् २००७ वि०

सूरसारावली सूरदास, प्रकाशक वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई

स्कंदगुप्त विक्रमादित्य जयशंकरप्रसाद, प्रकाशक भारती भंडार लीडर प्रेस, इलाहाबाद, आठवां संस्करण संवत् २००२ वि०

सौन्दर्य शास्त्र डा० हरद्वारी लाल शर्मा, प्रकाशक साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद, संस्करण सन् १९५३ ई०

हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संछिप्त विवरण : संपादक डा० श्यामसुंदरदास, प्रकाशक नागरी प्रचारणी सभा, काशी, पहला संस्करण संवत् १९८० वि०

हिंदी प्रेमगाथा काव्य संग्रह : श्री गणेशप्रसाद द्विवेदी, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद।

हिंदी भाषा और साहित्य : डा० श्यामसुंदरदास, प्रकाशक इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग, प्रथम संस्करण संवत् १९८० वि०

हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास : डा० रामकुमार वर्मा, प्रकाशक रामनारायणलाल पब्लिशर एंड बुकसेलर, इलाहाबाद

हिंदी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ,प्रकाशक नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संस्करण संवत् २००५ वि०

हिंदुई साहित्य का इतिहास : गार्सां द तासी, अनुवादक लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय

हिंदुस्तानी संगीत पद्धति क्रमिक पुस्तक मालिका : पं० विष्णुनारायण भातखंडे

संस्कृत–

अभिनवराग मंजरी : पं० विष्णु शर्मा, प्रकाशक भालचंद्र सीताराम सुकथनकर, मुद्रक आर्य भूषण प्रेस, पूना, संस्करण सन् १९२१ ई०

काव्यादर्श : दंडी, प्रकाशक डा० वी० एस० सुकथनकर, मुद्रक, भाण्डा प्राच्य विद्या मंदिर मुद्रणालय, सन् १९३८ ई०

काव्यालंकार : भामह, संपादक पं० बटुकनाथ शर्मा व पं० बलदेव उपाध्याय, प्रकाशक जयकृष्णदास, विद्याविलास प्रेस, बनारस, सन् १९२८ ई०

काव्य प्रकाश : मम्मट, संस्कृत टीका बालबोधनी, प्रकाशक रघुनाथ दामोदर करमरकर, मुद्रक आर्य भूषण प्रेस, पूना, चतुर्थ संस्करण सन् १९२१ ई०

काव्य मीमांसा : राजशेखर, प्रकाशक बन्यतोष भट्टाचार्य, ओरियन्टल इन्स्टीटयूट बड़ौदा से प्रकाशित, मुद्रक निर्णयसागर प्रेस, तृतीय संस्करण सन् १९३४ ई०

चतुर्दण्डी प्रकाशिका : श्री वेंकटमखि, संपादक एस० सुब्रह्मण्य शास्त्री, टी० वी० सुब्बरावाय वेंकटरामाय, मुद्रक भद्रपुरी संगीत विद्वतसभा, संस्करण सन् १९३४ ई०

नाट्य शास्त्र: भरत, संपादक बटुकनाथ शर्मा तथा बलदेव उपाध्याय, प्रकाशक जयकृष्णदास हरिदास गुप्त, विद्याविलास प्रेस, बनारस, सन् १९२९ ई०

निरोध लक्षण : षोडश ग्रंथ, श्री वल्लभाचार्य, संपादक भट्ट रमानाथ शर्मा, मुद्रक निर्णयसागर प्रेस, बंबई, संस्करण संवत् १९७९

नीतिशतकम् : भर्तृहरि, चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय

बृहद्देशी : मतंग मुनि, संपादक के० साम्बशिव शास्त्री, राजकीय मुद्रणयंत्रालय, त्रावंकोर

श्री मद्भागवत् महापुराण वेदव्यास, प्रकाशक घनश्यामदास जालान, गीता प्रेस, गोरखपुर

मेघदूत कालिदास, अनुवादक एच० एच० विलसन, द्वितीय संस्करण

राग कल्पद्रुमांकुर प्रकाशक विष्णुनारायण भातखंडे, मुद्रक निर्णय सागर प्रेस, बंबई, संस्करण सन् १९११ ई०

राग चंद्रिका प्रकाशक विष्णुनारायण भातखंडे, मुद्रक निर्णय सागर प्रेस, बंबई, संस्करण सन् १९११ ई०

राग तत्वविबोध श्री निवास पंडित, प्रकाशक मालचन्द्र सीताराम सुक्थनकर, आर्य भूषण प्रेस, पूना, संस्करण सन् १९१८ ई०

राग मंजरी श्री पुंडरीक विट्ठल, प्रकाशक मा० सी० सुक्थनकर, आर्य भूषण प्रेस, पूना, संस्करण सन् १९१८ ई०

राग तरंगिणी : लोचन, प्रकाशक मालचन्द्र सीताराम सुक्थनकर, आर्य भूषण प्रेस, पूना, संस्करण सन् १९१८ ई०

रामायण वाल्मीकि, टीकाकार श्री गोविंदराज, प्रकाशक टी० आर० कृष्णाचार्य, मुद्रक निर्णय सागर प्रेस, सन् १९१२ ई०

संगीत दर्पण दामोदर पंडित अनुवादक विश्वम्भरनाथ भट्ट, प्रकाशक प्रभुलाल गर्ग, संगीत कार्यालय, हाथरस, प्रथम संस्करण जुलाई सन् १९५० ई०

संगीत पारिजात अहोबल पंडित, भाष्यकार पं० 'कलिन्द जी', प्रकाशक प्रभुलाल गर्ग, संगीत कार्यालय, हाथरस, प्रथमावृत्ति अगस्त सन् १९४१ ई०

संगीत मकरन्द नारद, संपादक मंगेश रामकृष्ण तैलंग, मुद्रक, निर्णय सागर प्रेस, सन् १९२० ई०

संगीत रत्नाकर शार्ङ्गदेव, संपादक पं० एस० सुब्रह्मण्य शास्त्री, मुद्रक वसंत प्रेस, अदयार (Adyar) मद्रास, सन् १९४३ ई०

संगीत राज कालसेन (महाराणा कुम्भा), सम्पादक डा० सी० कुनहनराजा, अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर सन् १९४६ ई०

संगीत समयसार · पार्श्वदेव, प्रकाशक महामहोपाध्याय, त० गणपति शास्त्री, मुद्रक राजकीय मुद्रणयन्त्रालय, त्रिवन्द्रम सन् १९२५ ई०

संगीत सुधा श्री रघुनाथ भूप, संपादक श्री पी० एस० सुन्दरम अय्यर व पं० एस० सुब्रह्मण्य शास्त्री, प्रकाशक तथा मुद्रक संगीत विद्वत्सभा, मद्रास, सन् १९४० ई०

स्वरमेल कलानिधि रामामात्य, अनुवादक पं० विश्म्भरनाथ भट्ट, प्रकाशक, प्रभुलाल गर्ग, संगीत कार्यालय, हाथरस, संस्करण मई १९५० ई०

साहित्य दर्पण विश्वनाथ, टीकाकार श्री शालिग्राम शास्त्री, प्रकाशक श्री श्यामसुन्दर शर्मा, मुद्रक नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, सं० १९७८ वि०

हरिवंश पुराण : टीकाकार नीलकण्ठ, पूना प्रकाशन, प्रथम संस्करण सन् १६३६ ई०

गुजराती–

राग अने रस : पं० ओंकारनाथ ठाकुर, प्रकाशक गो० ह० भट्ट प्राच्य विद्या-मंदिर, वड़ोदा, मुद्रक पटवा प्रिंटिंग प्रेस, वड़ोदा, प्रथम आवृत्ति संवत् २००८ वि०

मराठी–

मराठी : हिंदुस्तनी संगीत पद्धति क्रमिक पुस्तकमालिका, सहावें पुस्तक, पं० विष्णुनारायण भातखंडे, संपादक प्रोफेसर श्री कृष्णनारायण रातांजनकर, संस्करण सन् १६३७ ई०

पत्र पत्रिकायें–

आलोचना : राजकमल प्रकाशन दिल्ली

खोज रिपोर्ट : नागरी प्रचारिणी सभा काशी

जनभारती : कलकत्ता

नवनीत : मुम्बई

नागरी प्रचारिणी पत्रिका : काशी

नाद : मैरिसकालिज, लखनऊ

प्रतीक : सरस्वती प्रेस बनारस द्वारा प्रकाशित

माधुरी : लखनऊ

रजत जयंती पत्रिका : मैरिस कालेज, लखनऊ

राजस्थानी : कलकत्ता

विशाल भारत : कलकत्ता

सरस्वती : इंडियन प्रेस, इलाहाबाद

सारंग : पब्लिकेशन्स डिवीजन, कर्जन रोड, नई दिल्ली

साहित्य संदेश : आगरा

संगीत : हाथरस

हिंदी साहित्य सम्मेलन पत्रिका : प्रयाग

ENGLISH BOOKS —

A Comparative System of some of the Leading Music Systems of the 15th, 17th and 18th centuries. V. N Bhatkhande.

A Dictionary of Music and Musicians: Grove.

A History of Music. Percy C. Buck.

Ain-I-Akbari Abul Fazi Allami, translated by H Blochmann
Ain-I Akbari Abul Fazi Allami, translated by H S Jarret
Akbarnama Translated by H Beveridge
A Short Account of the Hindu System of Music Anne C Wilson
Essays on Poetry and Music as they Effect the Mind Beattie
Golden Treasury Pal Grave
Hindu Music from various authors S M Tagore
History of Auragnzib J N, Sarkar
Indian Music B A Pingle
Introduction to the study of Indian Music E Clements
Lectures on Indian Music E Clements
Masterpieces of Rajput Paintings O C Gangoli
Mathura Memoirs F S Growse
M E Mohan s General Knowledge Encyclopedia
Milton, Book V
Mirati Sikhandari Sikandar, translated, by Fazlullah, Lutfullah Faridi
Music Thomas Russel
Music and its Appreciation Joseph Williams Ltd
Music and Religion Brian Wibberly
Music and Sound L L S LLoyd
Music of India Popley
Philosophy of Fine Art Hegel
Poets and Music E W Naylor
Psychology of Music Carl E Seashore
Sangit Bhava Maharana Vijayadeve ji of Dharampur
Sangit of India Atiya Begum
Six Principal Ragas - With a briet view of Hindu Music S M Tagore
The Appeal in Indian Music Mani Sahukar
The Dance of Shiva Anad Coomarswami
The Encyclopedia Britanica
The Krishna Pushkaram Souveneir, People Press, Bezwada
The Laud Rangmala miniatures Herbert J Stooke and Karl Khandelavala
The Merchant of Venice Shakespeare, edited by A W Verity
The Music of Hindustan A H Fox, Strang Ways
The Music Of India Atiya Begum
The New Dictionary Of Thoughts Tryon Edwards
The Origin Of Raga Sripad Bondopadhyaya

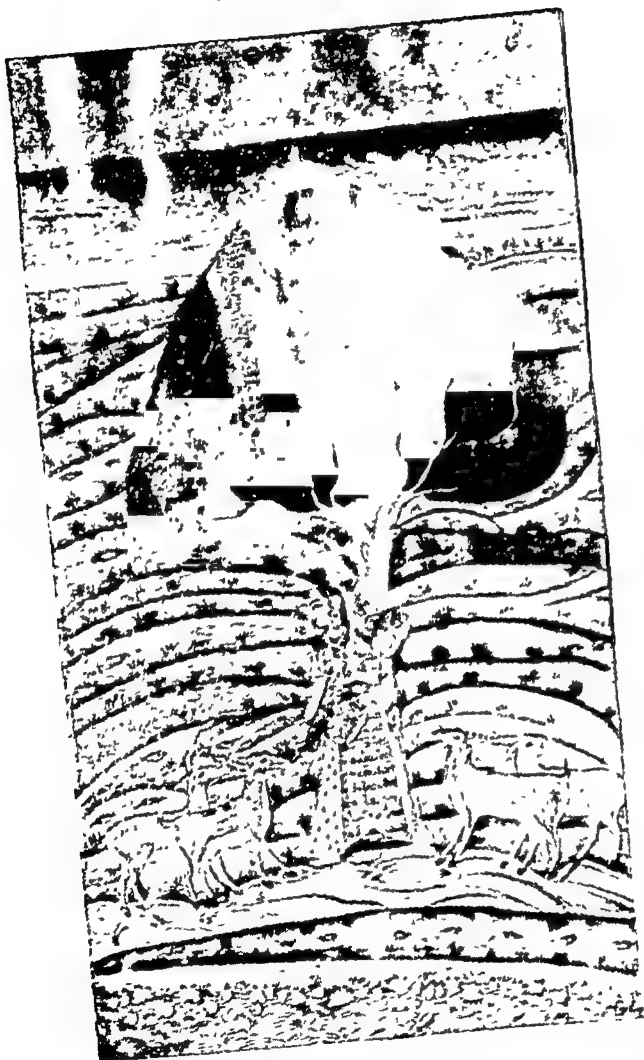
The Philosophy of Music. William Pole.
The Pocket Book of Quotations. edited by Henry David Off,
The Shorter Bartletts Familiar Quotations. John Bartlett.
Best Quotations for all Occasions. edited by Lewis C. Henery.
Loci-Critici. George Saintsbury.
Ragas and Raginis. O. C. Gangoli.
Rhetoric and Prosody. L. R. M. Brander.
Science and Music. Sir James Jeans.

रागिनी केदारा



चित्र सख्या १

रागिनी तोड़ी



चित्र संख्या १२

अनुक्रमणिका

(ग्रंथ)

——o——

अनुक्रमणिका

[पात्र]



शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
भूमिका क	८	उदग्रथ	उदग्र
„ घ	८	न	ने
„ ट	१४	ह	हैं
„ द	६	अविभावक	अभिभावक
११	२	जिनके	उनके
१८	१	परमानन्दादास	परमानन्ददास
१६	१०	म	में
२६	८	कुंभनदास	कृष्णदास
२६	१६	महाप्रभन	महाप्रभून
३५	२८	बोल	बोले
४३	२३	म	में
४६	१४	राजा असकरण	राजा आसकरण
४७	१७	होने कारण	होने के कारण
५४	१६	पद्य, पद्य	पद्य
५६	१३	संगीत दामोदर	संगीत पारिजात
५७	४	विकृन	विकृत
			।
५७	१५	मं	म
५७	२१	अन्य-अन्य	अन्य
५७	२६	वही, पृ० १८	संगीतपारिजात, अहोबल,पृ०१८
६२	२१	वही, पृ० ६६	संगीतदर्पण, दामोदर, पृ० ६६
६५	१०	वह	वे
६५	१०	करता है	करते हैं
६७	३	राष्ट्रीय के गान	राष्ट्रीय गान
६८	२	भिव जी	शिव जी
७०	१५	लगा व	लगाव
७२	३२	हिचकचाते	हिचकिचाते
७५	३४	once the once	once
८३	१	सं ाम	संगम
६१	१०	कर्ा	कवि

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६३	२	स ीत	संगीत
१२६	५	1४	1४ (हरिदास)
१२७	८	देशाख	देशाख
१३१	१२	भीजलिट	भीजलट
१३२	६	(हितहरिवंश)	(सूरदास)
१३८	२८	युगलशत	युगलशतक
१४०	१४	नृत्य के प्रकाश	नृत्य के प्रकार
१४४	१३	करता।	करता है।
१४५	२-३	प्रणय की की	प्रणय की
१४८	२६	वही, पद सं० १६	हस्तलिखित पद संग्रह, कृष्णदास, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० १६
१४९	३१	वही, पृ० २६, पद सं० ५८	गोविंदस्वामी, कांकरोली, पृ० २६, पद सं० ५८
१५३	२८	वही, (दूसरा खंड), पृ० १३८८, पद सं० ३६४६	सूरसागर, (दूसरा खंड), पृ० १३८८, पद सं० ३६४६
१६३	२२	वही, पृ० १०१, पद सं० ३०८	सूरसागर, पृ० १०१, पद सं० ३०८
१६६	२१	वही, पृ० १६४, पद सं० ६	अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० १६५, पद सं० ८
१६७	२०	वही, पृ० ३२६, पद सं० ४१	अष्टछाप परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० ३२६, पद सं० ४१
१६८	२३	वही, पृ० २५८, पद सं० २६६	भक्त कवि व्यास जी, वासुदेव गोस्वामी, पृ० २५८, पद सं० २६६
१७४	३	गायन गायन का	गायन का
१७५	२२	संगीताचार्य	संगीताचार्यों
१७८	१६	हिंडोला	हिंडोल
१८०	१७	खवावती	खमावती
१८२	१	(६)	(५)
१८३	११	पुडरीक विट्टठल	पुंडरीक विट्ठल
१८८	१६	म	में
१८९	१३	लालत	ललित
१९२	६	रामकगी-	रामकली
१९७	१४	१४	२४
२१४	२४	रामश्री	रामश्री

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२१४	३१	विलावल, रामकली	विलावल-रामकली
२१६	२	नटनारायण तथा चर्चरी	नटनारायण चर्चरी
२१७	१	निकर्ष	निकष
२१७	१९	emonion	emotion
२२६	३	ह	है
२२६	२३	और सिद्धांत	और समय सिद्धांत
२२७	८	शाहंशाह	शहंशाह
२२८	३१	(तृतीय खंड)	(द्वितीय खंड)
२३३	१	चरान	चराने
२३६	१३	५ वजे ७ वजे	५ वजे से ७ वजे
२३६	२६	रस और रागों	रस, रागों
२४४	४	श्री स्वामिनी जी जी	श्री स्वामिनी जी
२४५	२७	वही, पृ० ११९	८४ वैष्णवन की वार्ता, पृ० ११९
२५१	२	वादी स्वर (ध)	वादी स्वर धैवत (ध)
२५१	१५	रास सारंग	राग सारंग
२५५	३	पदों	पदों
२५५	११	गय	गेय
२५५	१२	असावरी	आसावरी
२७७	३०	प्रति सं० ३७१।२६४	प्रति सं० ३७१।२६९
२८८	१८	अपा ी	अपनी
२९५	१	कलश > कलश	कलश > कलस
३५०	६	नि त	चि त
३६४	१	गाया करते थे	विष्णुपद गाया करते थे

टिप्पणी— पृ० ३५१ पर रूपक ताल में दिये गये पद की ताल वद्ध रचना अशुद्ध मुद्रित हो गई है। उसका शुद्ध रूप निम्न प्रकार से है—

			स्थाई	क हि	ना ऽ
				२	३
प र ति	ते ऽ	रे ऽ	व द न	की ऽ	ऽ ऽ
×	२	३	×	२	३
ओ ऽ प	क हि	ना ऽ	प र ति		
×	२	३	×		

अंतरा पहला

										झ	ल	क	नि
										२		३	
न	व	मो	ति	न	हि	ल	आ	व	ति	नि	र	ख	ति
×			२		३		×			२		३	
स	सि	सो	भा	ऽ	म	ई	लो	ऽ	प				
×			२		३		×						

अंतरा दूसरा

										प	ल	क	न
										२		३	
ला	ग	स	चा	ऽ	ह	त	पिय	त	न	ख	ऽ	म	त
×			२		३		‿			२		३	
भो	ऽ	ह	मा	नो	घ	टा	टो	ऽ	प				
×			२		३		×						